परलोक-विज्ञान

अरूण कुमार शर्मा

प्रकाशक

© **चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २३३५२६३, २३३३४३१

प्रथम संस्करण 2006

मूल्य : 300.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २३८५६३९१

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २४२०४०४

श्रीमती किरण शर्मा
को
सस्नेह समर्पित

सम्पादकीय

परलोक का मुख्य माध्यम मृत्यु है। जब तक मृत्यु नहीं हो जाती तब तक परलोक के दर्शन नहीं हो सकते; किन्तु वेद, तन्त्र भली-भाँति यह उद्घोष करते है कि विना मृत्यु को प्राप्त हुए भी परलोक तथा परलोक के विज्ञान को जाना जा सकता है। योग-तन्त्र की सभी शाखाओं का दर्शन एक ही मत में समाहित है, वह यह कि मृत्यु को प्राप्त हुए विना ही परलोक के विज्ञान को जाना-समझा जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में आदरणीय पं० अरुण कुमार शर्मा जी ने मानवों की परलोकसम्बन्धी जिज्ञासाओं का भली-भाँति समाधान किया है तथा कुछ ऐसे रहस्यों को आनवृत भी किया है, जो अभी तक रहस्य ही बने हुए थे; किन्तु इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठकों की परलोकसम्बन्धी सभी जिज्ञासायें शान्त हो जायेंगी—ऐसा मुझे अनुमान ही नहीं; वरन् पूर्ण विश्वास भी है। सौभाग्य से मुझे इस पुस्तक को सम्पादित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस कठिन कार्य में मैं कहाँ तक सफल रहा हूँ, यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु आदरणीय गुरुदेव के आशीर्वाद से ही मै इस कार्य को सम्पादित कर सका हूँ।

श्रद्धेय पं० अरुण कुमार शर्मा जी से मेरा परिचय सन् १९८५ के लगभग हुआ था और तभी से उनके आशीर्वचनों की निरन्तर वर्षा मुझ पर होती रही है। तन्त्रसम्बन्धी जिज्ञासाओं को लिए मैं सदैव ही यत्र-तत्र शोध हेतु विद्वज्जनों के सम्पर्क में रहने का प्रयास करता रहता था। इसी बीच ईश्वरेच्छा से आदरणीय शर्मा जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ और अपनी अनेक जिज्ञासाओं के उत्तर भी प्राप्त हो गए। एक दिन इसी भाँति मैं शर्मा जी के आवास पर सायंकाल पहुँचा। शङ्का समाधान हेतु मन में अनेक प्रकार के प्रश्नों का अम्बार था, किन्तु जाते ही एक प्रश्न भी नहीं कर सका; क्योंकि जा कर बैठते ही आदेश हुआ कि तुम्हें परलोक विज्ञान का सङ्कलन कर उसका सम्पादन भी करना है। सङ्कलन तक तो मेरे वश में था; किन्तु सम्पादन मुझ जैसे अल्पमति के लिए अत्यन्त दुष्कर ही नहीं; वरन् असम्भव भी था। मैंने शर्मा जी से निवेदन किया कि सङ्कलन तो समझ में आता है, किन्तु जो कुछ आपने लिखा है, उसमें मैं अकिञ्चन भला क्या सम्पादन कर सकता हूँ? शर्मा जी ने कहा कि मुझे आशा ही नहीं, विश्वास है कि तुम ही इस कार्य के लिए उपयुक्त हो तथा यह कार्य तुम्हें ही करना है।

अस्तु; आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने लेखों को, जिनमें से कुछ प्रकाशित थे तथा

कुछ अप्रकाशित ही रखे थे, सर्वप्रथम सङ्कलित किया तथा सम्पादन, जो कि मेरे लिए स्वप्न में भी दुष्कर था, के नाम पर उन सभी लेखों को एक तारतम्य के हिसाब से बैठाने का प्रयास भी किया है। इस प्रयास में हुई गलतियों के लिये सुधी पाठक मुझ अज्ञानी को क्षमा करने के साथ ही साथ मुझे मेरी गलतियों से अवगत कराने की भी महती कृपा करेंगे; ताकि मैं अपने अज्ञान को समझ कर उसे दूर कर सकूँ।

अन्त में सर्वनियन्ता महाकाल के प्रति मैं श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिसने प्रत्येक क्षण उपस्थित सभी बाधाओं को दूर कर, इस महाग्रन्थ के प्राकट्य का सुयोग प्रदान किया।

नवरात्र प्रतिपदा, संवत्-२०५३ **महेश चन्द्र मिश्र**

कालिका गली
वाराणसी

आशीर्वाद

प्रिय

मनोज शर्मा
महेश चन्द्र मिश्र
सागर शर्मा

शुभास्ते
सन्तु
पन्थान :

अरुण कुमार शर्मा
बसन्त पञ्चमी
1996 ई०
वाराणसी

लेखक परिचय

- अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जिनकी लेखनी पिछले पचास वर्षों से अनवरत गतिशील है।
- अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे चिन्तक और विचारक का नाम है, जिन्होंने अपने गहन गम्भीर चिन्तन मनन द्वारा भारतीय गुह्य विद्याओं और उनके आध्यात्मिक तत्वों के अन्तराल में प्रवेश कर उनके विषय में अपने मौलिक विचारों को व्यक्त किया है।
- अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे सत्यान्वेषी व्यक्ति का नाम है, जिन्होंने योग तंत्र में निहित रहस्यमय सत्यों से परिचित होने के लिए प्रच्छन्न अप्रच्छन्न भाव से विचरण और निवास करने वाले सिद्ध सन्त महात्माओं और योगी साधकों की खोज में सम्पूर्ण भारत की ही नहीं बल्कि हिमालय और तिब्बत के दुर्गम स्थानों की जीवन मरण दायिनी हिम यात्रा की है।
- अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे साहित्यकार का नाम है, जिन्होंने अपनी सशक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक कृतियों से संबंधित समकालीनों को सैकड़ों मील पीछे छोड़ दिया है। विलक्षण प्राञ्जल भाषा, मनोहारी शिल्प आत्मग्राही शब्द सज्ञा और आकर्षक प्रस्तुति करण उनकी कृतियों का विशेषण है।
- हजारों पंक्तियों के बीच उनकी पंक्ति को पहचान लेना प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए सरल और सहज है। और यही वह तथ्य है जो अरुण कुमार शर्मा को अरुण कुमार शर्मा बनाता है।

—सागर शर्मा

प्रथम संस्करण से

परलोक विज्ञान मेरे बीस वर्षों के अन्वेषण और अनुभव का परिणाम है। इसके कतिपय महत्वपूर्ण अंश समय समय पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित तो हुए ही लेकिन जब हिन्दी जगत के प्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र 'आज' (वाराणसी) के रविवासरीय संस्करणमें 'परलोक विज्ञान' का धारावाहिक रूपमें प्रकाशन हुआ तो सभी वर्ग के पाठकों ने उसकी प्रशंसा की और उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का अनुरोध किया।

उन दिनों अस्वस्थ था मैं। इन्दौर के प्रसिद्ध होमियोपैथिक चिकित्सक डॉ० वी० वी० बंसल इलाज कर रहे थे। मानसिक श्रम न करने का परामर्श दिया था उन्होने। स्वस्थ होने पर 'परलोक विज्ञान' को मैंने पुस्तकाकार रूप देने की चर्चा महेश चन्द्र मिश्र से की मेहश चन्द्र मिश्र मेरे शिष्य हैं और मेरे साहित्य व्यवस्थापक भी हैं। सर्व प्रथम उन्होने 'परलोक विज्ञान' के विषयों का संकलन और सम्पादन किया फिर अपने मित्र सागर शर्मा से प्रकाशन के संबंध में वार्ता की। सागर शर्मा प्रसिद्ध नेपाली हिन्दी शब्दकोष और नेपाली अंग्रेजी शब्द कोष के प्रकाशक हैं। उन्होंने तत्काल परलोक विज्ञान को प्रकाशित करने का उत्तर दायित्व सहर्ष-स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं भविष्य में भी मेरे साहित्य का निर्विघ्न प्रकाशन हो, इसके लिए; आर्णव प्रकाशन की भी स्थापना की उन्होने। निश्चिय ही हिन्दी साहित्य के प्रकाशन की दिशा में उनका यह योगदान प्रशंसनीय है, इनमें सन्देह नहीं। अस्तु पुस्तक कैसी है? और कितनी उपादेय है, इसका निर्णय तो सुहृद पाठक गण ही करेंगे।

अरुण कुमार शर्मा

आगमनिगम सहवास
(प्राच्य ज्ञान अनुसंधान संस्थान)
बी० ५/२३, हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी-२२१००१ (उ०प्र०)
दूरभाष : ३१३७७५

प्राक्कथन

सन् १९५० ई०

हल्के कुहरे की परतों में लिपटी साँझ की स्याह चादर धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी। शमशान के वातावरण में उदासी भरी नीरवता छायी हुई थी। यदा कदा मांसखोर पक्षियों और मरियल कुत्तों का समवेत स्वर उस नीरवता को भंग कर देता था। कुछ देर पहले धूँ-धूँ कर जलती हुई चिताएँ अब मुट्ठी भर राख में बदल चुकी थी। उस समय पूरे शमशान में केवल एक ही चिता हा-हा करती हुई जल रही थी। वह एक युवक की चिता थी। कुछ समय पहले एक वृद्ध व्यक्ति अकेला अपने कमजोर बाजुओं पर कफन में लिपटी हुई एक लाश लिए आया था। कोई अर्थी को कन्धा देने वाला नहीं था।

शमशान के डोम ने आगे बढ़कर हौले से कहा-बाबा, तू थक गयल होव, लाव, लाश हमे दे द।

वृद्ध की आँखों में आँसू बह रहे थे। लाश को डोम के बाहों में देते हुए विचलित स्वर में बोला- भैय्या जरा संभाल कर। मेरा इकलौता बेटा है। उसके लिए वह अब तक 'है' था, 'था' नहीं हुआ था। थोड़ी देर बाद उस वृद्ध बाप ने अपने कमजोर हाथों से उठाकर अपने जवान बेटे की लाश को चिता की धधकती आग में डाला था। चिता में लाश को रखते समय मैंने उस वृद्ध की ओर उत्सुकतावश देखा था। उसकी सूनी और कमजोर आँखों में आँसू के कतरे तैर रहे थे। उसके समीप ही एक नवयुवती खड़ी सिसक रही थी और बार बार गालों पर ढुलक आए आँसूओं को आँचल से पोंछ रही थी। उसकी गोरी कलाइयों में काँच की लाल चूड़ियाँ थी। निश्चय ही वह नवयुवती मरने वाले उस युवक की नव परिणीता पत्नी थी। मैंने देखा लाश जैसे ही चिता पर रखी गई, उसने अपने दोनो हाथों को पत्थर पर पटक दिया। काँच की लाल चूड़ियाँ टूट कर बिखर गईं चूड़ियों के टूटने के साथ ही उस नवयुवती की सिसकियाँ और तेज हो गईं।

काशी के हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान के बगल वाले घाट की टूटी-फूटी और धूल से अटी सुनसान सीढ़ियों पर मै गालों पर हाथ रखे चुप चाप बैठा सोच रहा था-एक दिन यह शरीर और यह संसार मुझसे भी छूट जाएगा और तब मेरी भी लाश इस तरह एक दिन इसी शमशान में जलेगी चिता में। अकेला आया था, अकेला रहा, और अकेला ही चला जाऊँगा इस संसार से।

मृत्यु सत्य है, परम सत्य। कोई अकाट्य सत्य है तो मात्र केवल मृत्यु। परमात्मा की सत्ता है या नहीं कोई निश्चित रूप से नहीं बतला सकता। ईश्वर सत्य है या नहीं यह भी कोई निश्चित रूप से नहीं जानता समझता। लेकिन "मृत्यु" एक निश्चित और परम सत्य है–इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इसके लिए न कोई विवाद है न कोई तर्क। जिसे हम जीवन समझते हैं, वह रोज रोज और धीरे–धीरे मरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लम्बी मृत्यु को जीवन नहीं कहा जा सकता। हम जीवन के जितने क्षण गँवा देते हैं, उनको वापस पाने का कोई उपाय नहीं है। जीवन एक अवसर है, जिसको हम किसी भी रूप में परिवर्तित कर सकते हैं–धन–सम्पत्ति के रूप में, यश कीर्ति के रूप में, मान–प्रतिष्ठा के रूप में। लेकिन मृत्यु जब सामने आकर खड़ी होती है तो ये सब व्यर्थ हो जाते हैं। इन सबसे केवल हमारे अहंकार की तृप्ति होती है। ये सब मृत्यु के सामने टूट कर बिखर जाता है।

साँझ की स्याही रात की कालिमा में बदल चुकी थी अब। नवयुवक की चिता की लाल पीली लपटें धीरे–धीरे शान्त होती जा रहीं थी। वृद्ध और उसकी बहू राजा हरिश्चन्द्र के मन्दिर की टूटी–फूटी और गन्दी सीढ़ियों पर चुप चाप बैठे चिता को बुझते हुए देख रहे थे। अभी भी उनकी आँखों में आँसू थे और होठों पर थी थरथराहट। उस रात सो न सका मैं। पूरी रात जागता रहा और चिन्तन मनन करता रहा मृत्यु की दार्शनिकता पर।

कहने की आवश्यकता नहीं लाली घाट की धूल भरी टूटी–फूटी सीढ़ियों पर न जाने कितनी साँझ गुजरी थी मेरी और न जाने कितनी चिताएँ देखी थी जलती हुई शमशान में मैंने। लेकिन उस नवयुवक की जलती हुई चिता ने मेरे संस्कार को जगा दिया था, जिसके वशीभूत होकर मृत्यु के संबंध में सोचने समझने और चिन्तन मनन करने के लिए बाध्य होना पड़ा था मुझे।

जन्म–मृत्यु और पुनर्जन्म से संबंधित, हिन्दी और संस्कृत की बहुत सारी पुस्तकें पढ़ी लेकिन मन को जो शान्ति चाहिए और आत्मा को जो तृप्ति चाहिए वह नहीं मिली मुझे, बल्कि मेरी बढ़ती ही गई तृष्णा। संयोगवश उसी समय भारत यात्रा पर आये डा० हार्वर्ट से मेरा परिचय हुआ दिल्ली में। डा० हार्वर्ट अमेरिकन थे और थे इन्टरनेशनल पैरा सायकोलोजीकल सोसायटी (डरहम, नार्थ कैरोलिना, अमेरिका) के अध्यक्ष। प्रेत विद्या के मर्मज्ञ थे डा० हार्वर्ट, इसमें सन्देह नहीं। उनके

आकर्षक व्यक्तित्व और मिलनसार स्वभाव ने बरबस मुग्ध कर दिया मुझे एक बारगी। प्रसंग वश जब उनको ज्ञात हुआ कि मैं भी परामोविज्ञान में विशेष रुचि रखता हूँ तो अत्यन्त प्रभावित हुए वे मुझसे।

डा० हार्वर्ट उस समय एक पुस्तक लिख रहे थे, जिसका नाम था "स्पिरिट्स" सम्भवत: अपनी उसी महत्वपूर्ण पुस्तक के सिलसिले में भारत आए थे महाशय। डा० हार्वर्ट पूरे दो महीने रहे भारत में और इस अवधि में बराबर मैं उनके सम्पर्क और सान्निध्य में रहा। और उस सम्पर्क और सान्निध्य से डा० हार्वर्ट द्वारा प्रेत विद्या और पारलौकिक जगत से संबंधित जो महत्वपूर्ण जानकारी मुझे प्राप्त हुई, उसने मेरे मन में असीम जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि कर दी। परलोकगत आत्माओं और पारलौकिक जगत के प्रति अब तक पुस्तकों में जो कुछ पढ़ा था वह नगण्य सा प्रतीत होने लगा मुझे। अब मैं स्वयं किसी साधन विशेष से मृतात्माओं से सम्पर्क साधना चाहता था। पारलौकिक जगत के गूढ़ रहस्यों से परिचित होना चाहता था और चाहता था मरणोपरान्त जीवन का अनुभव। इतना ही नहीं, मृतात्माओं की मति गति तथा उनके भावों और विचारों को भी जानना समझना चाहता था। यदि विचार पूर्वक देखा जाए तो यह सब एक प्रकार से कठिन ही नहीं असम्भव कार्य था मेरे लिए। एक दिन इस संबंध में डा० हार्वर्ट को अमेरिका पत्र लिखा मैंने। लगभग पन्द्रह दिन बाद मेरे पत्र का उत्तर भी आ गया।

डा० हार्वर्ट ने पत्र के अन्त में लिखा था—अपने भारत यात्रा काल में मैं एक योगी से अपनी पुस्तक के संबंध में मिला था। उनका नाम है स्वामी निर्मलानन्द परम हंस। मैं उनके विषय में आपको बलताना भूल गया था, खैर, स्वामी जी पहुँचे हुए सिद्ध योगी हैं, इसमें कोई शक नहीं। उनके दो तीन चमत्कार स्वयं मैंने देखा था अपनी आँखों से। आप भी उनसे मिलिए। शायद पूरा हो जाए आप का उद्देश्य।

कहने की आवश्यकता नहीं। काफी बल मिला मुझे डा० हार्वर्ट के पत्र से। उसी सप्ताह मैं रवाना हो गया स्वामी निर्मलानन्द परमहंस से मिलने। और जब मैं बगल में झोला लटकाए और हाथ में अटैची लिए बस स्टैण्ड पर उतरा तो उस समय पंचमढ़ी के प्राकृतिक वातावरण में कुहरे की धवल चादर में लिपटी साँझ की सुरमयी फैली हुई थी। दूसरे दिन मिला मैं स्वामी निर्मलानन्द परमहंस से। पंचमढ़ी के घनघोर जंगल की सीमा जहाँ समाप्त होती थी वहीं एक पर्वतीय कन्दरा में रहते

थे स्वामी जी। आत्मा को सहज ही स्पर्श करने वाली परमशान्ति व्याप्त थी वहाँ के गहन शून्य से भरे निस्तब्ध वातावरण में। ऐसा लगा मानो सतयुग के किसी तपस्वी ऋषि के आश्रम के निकट पहुँच गया हूँ मैं।

काफी देर तक कन्दरा के सामने चुपचाप मौन साधे खड़ा रहा मैं। भीतर जाने का साहस नहीं जुटा पा रही थी मेरी आत्मा। मन ही मन सोच रहा था–संसार समाज से दूर, इस निर्जन सुनसान इलाके में प्रच्छन्न भाव से निवास करने वाले इस योगी का पता कैसे लगा समुद्र पार रहने वाले उस पश्चिमी विद्वान् को। निश्चय ही डा० हार्वर्ट मिले होंगे, इस योगी से। बातें भी की होंगी और अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान भी प्राप्त किया होगा। इसमें सन्देह नहीं। अकस्मात मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई अदृश्य किन्तु प्रबल शक्ति भीतर की ओर खींच रही है मेरे अस्तित्व को। सम्मोहित सा धीरे-धीरे चल कर कन्दरा में प्रवेश किया मैंने। मैंने देखा सामने पद्मासन की मुद्रा में ध्यानास्थ बैठे थे स्वामी निर्मलानन्द परमहंस। सुगठित देह यष्टि, गौर वर्ण और साधना के प्रबल तेज से उद्भाषित मुख मण्डल।

चरण स्पर्श कर वहीं सामने बैठ गया मैं। थोड़ी देर बाद ध्यान भंग हुआ, नेत्र खुले। गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा परमहंस ने। पहले डा० हार्वर्ट के संबंध में बतलाया फिर अपना परिचय दिया और अन्त में कहा–स्वामीजी, हमारे इस पार्थिव जगत और सूक्ष्म जगत के बीच निस्सन्देह कोई अदृश्य सीमा रेखा है, उसके पार क्या है? उसे जानने समझने के लिए हमेशा व्याकुल रहती है मेरी आत्मा। और इस व्याकुलता ने मेरे मन में इस संबंध में कई प्रकार की जिज्ञासाओं को एक साथ जन्म दे दिया है। कहने की आवश्यकता नहीं, स्वमीजी। उन जिज्ञासओं ने मुझे संसार, समाज और परिवार से एक बारगी अलग कर दिया है और एक ऐसे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ गहन शून्य के अलावा और कुछ नहीं है।

थोड़ा रुक कर मैंने आगे कहा–स्वामीजी, शरीर के मृत होते ही मनुष्य एक झटके से उस सीमा रेखा को पार कर के जाने किस गहन अन्धकार के असीम सागर में जा गिरता है। एक ही पल में सब कुछ उलट पुलट जाता है।

मेरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है स्वामीजी कि, क्या, शरीर के रहते जीते जी उस अदृश्य सीमा रेखा को पार किया जा सकता है? पारलौकिक जगत में प्रवेश किया जा सकता है? वहाँ का अनुभव प्राप्त

किया जा सकता है? और सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है उसमें निवास करने वाले प्राणियों से?

कुछ देर मौन साधे रहे मेरी बात सुनकर स्वामी निर्मलानन्द, फिर गम्भीर स्वर में बोले उस अदृश्य सीमा रेखा को पार करने, रहस्यमय पारलौकिक जगत में प्रवेश करने, तथा उसमें निवास करने वाले अपरिचित और अज्ञात प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए वैसे तो कई साधन प्रचलित हैं, लेकिन वे साधन पूर्ण रूप से पुष्ट और प्रमाणित नहीं है। यदि कोई पुष्ट, प्रामाणिक और साथ ही साथ पूर्ण विश्वसनीय साधन अथवा मार्ग है तो वह एक मात्र योग तंत्र। योग तपस्या का मार्ग है और जबकि तंत्र है साधना का मार्ग। पहले मार्ग में सफलता कब मिलेगी यह सन्दिग्ध है। दूसरा मार्ग कठिन और कंटकाकीर्ण अवश्य है। लेकिन जहाँ तक सफलता का प्रश्न है, वह साधक की योग्यता और संस्कार पर निर्भर है। थोड़ा रूककर शून्य में निहारते हुए स्वामी निर्मलानन्द परमहंस ने आगे कहना शुरू किया– तंत्र में बहुत सी ऐसी राजसी व तामसिक साधनाएँ हैं जिनमें सफल होने पर उनकी सहायता से एक सीमा तक परलोकगत सभी प्रकार की आत्माओं से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। उनकी मति गति को समझा भी जा सकता है। लेकिन जहाँ तक उस अदृश्य सीमा रेखा को पार करने और पारलौकिक जगत में प्रवेश करने का सवाल है। वह समाधि द्वारा ही सम्भव है।

समाधि द्वारा?

हाँ, समाधि द्वारा। योग की यह उच्चतम अवस्था है। और उस उच्वतम अवस्था को उपलब्ध होने के लिए ध्यान में प्रवेश करना होगा।

कुछ देर तक जाने क्या सोचते रहे स्वामी जी, फिर आगे बतलाने लगे, उस अदृश्य और रहस्यमय सीमा रेखा का उल्लंघन मृत्यु में ही सम्भव है। इसलिए मृत्यु से परिचित होना आवश्यक है, जो जीते जी सम्भव नहीं है। यदि जीते जी सम्भव है तो एक मात्र समाधि द्वारा है। मृत्यु और ध्यान दोनों की स्थिति समान है। मृत्यु की तरह हम ध्यान में भी धीरे–धीरे प्रवेश करते हैं। जैसे–जैसे हम आगे बढ़ते जाते हैं वैसे ही वैसे एक एक वस्तु हमसे छूटती चली जाती है। उनके हमारे बीच अन्तर बढ़ता जाता है। अन्त में वह क्षण आ जाता है, वह घड़ी आ जाती है कि लगता है हमसे सब दूर हो गया है, सब अलग हो गया है, शरीर भी। हम अपने शरीर को उसी प्रकार पड़े हुए देखते हैं जैसे किसी नदी

के किनारे किसी की लावारिस लाश को देखते हैं। फिर भी लगेगा कि हम हैं। हमारा अस्तित्व है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। और उसी के साथ हम अपने आपको सबसे अलग थलग भी अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है मानों हमारा अस्तित्व स्वतंत्र है। किसी वस्तु से उसका संबंध नहीं है। और जिस क्षण, जिस समय यह प्राप्ति होती है और यह अनुभव होता है, उसी क्षण और उसी समय हम मृत्यु के साक्षात्कार को जीते जी उपलब्ध हो जाते हैं। और फिर मृत्यु से कोई संबंध नहीं रह जाता है। हमारी जब मृत्यु आएगी तो वह हमारी मृत्यु नहीं होगी। वह हमारे जीवन का एक पड़ाव होगा, वस्त्र बदलने के समान होगा। वस्त्र की तरह शरीर को बदल कर नया शरीर स्वीकार कर लेंगे हम। और आगे की यात्रा पर निकल जाएँगे। जो हमारे नए जन्म और नए जीवन की यात्रा होगी।

बहुत चाहने और बहुत प्रयत्न करने पर भी ध्यान नहीं लगता इसका क्या कारण है?– मृत्यु का भय, यही एक मात्र कारण है। और ध्यान मरने की एक प्रक्रिया है। ध्यान की पूर्णावस्था में हम वहीं पहुँच जाते हैं जहाँ एक मृत व्यक्ति पहुँचता है। अन्तर मात्र केवल इतना ही होता है कि मृत व्यक्ति वहाँ बेहोशी की अवस्था में पहुँचता है जबकि हम बिल्कुल जागृत और चैतन्य अवस्था में पहुँचते हैं। हमारे और एक मृत व्यक्ति के विचारों में भी अंतर होता है। मृत व्यक्ति को पता नहीं होता कि 'क्या हो गया?' शरीर कैसे छूट गया और वह कैसे बच गया? हम सोचते हैं कि शरीर और हम एक दूसरे से अलग हो गए। शरीर तो नष्ट हो गया, लेकिन हम नष्ट नहीं हुए। हम पूर्ववत् ज्यों के त्यों हैं।

सारांश यह है कि ध्यान की जो चरमावस्था है और है पूर्णावस्था, वह है समाधि। उस अवस्था को दो प्रकार से उपलब्ध हुआ जाता है– मर कर या समाधि में। पहले प्रकार में हम बेहोश रहते हैं, चेतना शून्य रहते हैं इसलिए हम उस अदृश्य सीमा रेखा के पार कब चले जाते हैं? इसका कोई ज्ञान नहीं रहता हमें। जबकि दूसरे प्रकार में हम पूर्ण रूप से होश में रहते हैं और रहते हैं पूर्ण चैतन्य। इसलिए उस अदृश्य सीमा रेखा को पार करने और पार लौकिक जगत में प्रवेश करने का पूरा पूरा ज्ञान और पूरा पूरा अनुभव रहता है हमें। और जब हम समाधि से वापस लौटते हैं तो वह ज्ञान और वह अनुभव हमारे साथ होता है।

स्वामी निर्मलानन्द परमहंस की बातें सुन कर मन ही मन सोचने लगा–समाधि को उपलब्ध होने के लिए 'ध्यान' की लम्बी यात्रा करनी

पड़ेगी। अन्त में सफलता मिलेगी या नहीं यह भी कोई निश्चित नहीं। क्योंकि यह तपस्या का कंटकाकीर्ण मार्ग है। फिर.........., और इस 'फिर' पर आकर रुक गई मेरी विचारधारा।

शायद मेरे मन की बात समझ गए स्वामी निर्मलानन्द परमहंस। एक बार उन्होंने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और फिर बोले-सब कुछ सरल और सहज है। बस अभ्यास करना चाहिए। स्वामी जी के उपरोक्त शब्द एक एक कर मेरी आत्मा की गहराईयों में उतरते चले गए। फिर रुका नहीं मैं वहाँ वापस आकर अभ्यास करने लगा मैं। लगभग पन्द्रह दिन के बाद ऐसा लगने लगा कि अदृश्य रूप में मार्ग दर्शन कर रहे हैं स्वामी जी। कभी कभी तो उनके अस्तित्व का बोध होने लगा मुझे। ऐसा प्रतीत होता था कि अदृश्य रूप से मुझे निर्देशित कर रहे हैं वे।

धीरे-धीरे पूरे चार महीने का समय बीत गया। अब मेरा ध्यान सहज भाव से अपने आप बिना किसी प्रयास के निर्विघ्न लगने लगा था। और उस अवस्था में मैं अपने शरीर से अलग होने का अनुभव करता था और अन्त में अपने शरीर को अपने से अलग देखता था। उन दोनों स्थितियों में अपने आप में एक विचित्र सी भार हीनता का बोध करता था और अनुभव करता था एक अवर्णनीय सुख का भी। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि मैं अपने अस्तित्व और अपनी आन्तरिक अवस्था में शरीर के अभाव में भी किसी भी प्रकार के परिवर्तन का अनुभव नहीं करता था, पहली बार मैंने यह जाना कि स्थूल शरीर से जीवन का कोई नाता रिश्ता नहीं। उसके बिना भी जीवन का अस्तित्व है। कहने की आवश्यकता नहीं उसी देहातीत अवस्था में कमरे में बन्द और बिस्तर पर पद्मासन की मुद्रा में बैठे अपने पार्थिव शरीर से कभी कभी बहुत दूर निकल जाया करता था और बहुत देर तक स्वच्छन्द और निर्विघ्न विचरण करता रहता था। देहहीन होने के कारण लोग मुझे तो नहीं देख पाते थे। लेकिन सभी को देख सकने में समर्थ था। इतना ही नहीं लोगों के भावों, विचारों और वृत्तियों से भी तत्काल परिचित हो जाता था। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि अशरीरी प्राणियों को भी देख लेती थी मेरी दृष्टि। गंगा तट पर स्नान करते हुए, मन्दिरों में पूजा पाठ और ध्यान धारणा करते हुए शरीर धारियों से कहीं अधिक अशरीरी लोगों की भीड़ देखी मैंने। इसी प्रकार निम्न कोटि की निकृष्ट अशरीरी आत्माओं को भी देखा करता था। झुण्ड के रूप में वे विशेष कर श्मशान में, मदिरालय में और माँस की

दुकानों के अतिरिक्त वहाँ दिखलाई देती थी—जहाँ मार-पीट झगड़ा लड़ाई और असामाजिक कार्य होते थे। यह देख कर मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि ऐसी आत्माएँ लोगों के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डाल कर उनसे अपने इच्छानुरूप कार्य करवा लेतीं थी। इतना ही नहीं वे अपनी वासना की तृप्ति के लिए लोगों को प्रेरित भी किया करतीं थी। यह सब देख कर पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि मनुष्य कितना असहाय प्राणी है और है कितना विवश। उसका न अपने मन पर अधिकार है और न तो अधिकार है अपने कर्मों पर ही। अच्छे संस्कार और चरित्र की विदेही आत्माओं की संख्या नगण्य मिली मुझे। संस्कारहीन, निकृष्ट विदेही आत्माओं का बाहुल्य देखा मैंने, और देखा पचहत्तर प्रतिशत लोगों की मानसिकता को उनसे प्रभावित।

और फिर एक दिन।

अचानक न जाने कैसे उस परम अवस्था में भौतिक वातावरण की सीमा का उल्लंघन कर अभौतिक वातावरण में प्रविष्ट हो गया मैं। और एक अभूतपूर्व अनिर्वचनीय दृश्य देखा मैंने। हे भगवान! कितना मोहक और अविश्वसनीय दृश्य था वह? उस समय मैं अपने अस्तित्व का बोध अन्तरिक्ष के ऐसे वातावरण में कर रहा था—जहाँ गहन शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मेरे चारों ओर स्वच्छ निर्मल आकाश का नीला विस्तार था और उस नीले विस्तार में एक दूसरे से काफी दूर अगणित ग्रह नक्षत्र और तारे झिलमिला रहे थे। उनके आकार प्रकार काफी बड़े थे और उनमें से निकलने वाले प्रकाश भी भिन्न-भिन्न वर्णों के थे। और उन्हीं ग्रह नक्षत्र और तारा मण्डलों के बीच गोलाकार पृथ्वी को भी देखा अपने स्थान पर तीव्र गति से घूमते हुए। उसके जल का भाग नीला और धरती का भाग नारंगी वर्ण का था। उसके चारों ओर शुभ्रवर्ण का वलय था। बड़ा ही मोहक और आकर्षक लगी पृथ्वी मुझे।

मैं अपने आप में आनन्द मग्न था और तभी एकाएक ग्रह नक्षत्र और तारा मण्डलों के साथ पृथ्वी का भी अस्तित्व लुप्त हो गया मेरे सामने से और उसके स्थान पर सृष्टि हो गई एक नए वातावरण की। और वह वातावरण भी बड़ा ही मोहक, आकर्षक और अवर्णनीय था। चारों ओर परम शान्ति का साम्राज्य था। और उस परम शान्ति के साम्राज्य में प्रवेश करते ही मेरा मन प्रफुल्ल हो उठा और मेरी मानसिक शक्ति भी अधिक बढ़ गई। साथ ही साथ ऐसा लगा, मानों मेरी चेतना जो अब तक बोझिल थी वह हल्की और निर्मल हो गई। और हो गई प्रखर।

मनोमय जगत का था वह शान्त और रमणीक वातावरण। मुझे घोर आश्चर्य हुआ। कि कैसे पहुँच गया मैं वहाँ उस जगत में?

मैंने देखा–वहाँ के निवासी वे लोग थे, जिन लोगों ने संसार और शरीर में रह कर अपने जीवन काल में मानसिक विकास के अतिरिक्त अध्यात्मिक उन्नति की थी। मरणोपरान्त संसार और शरीर का त्याग कर लोग वहाँ सर्व प्रथम तेज पुंज के रूप में प्रकट होते थे और धीरे-धीरे वह तेज पुंज वैसा ही आकार प्रकार और रूप रंग ले लेता था जैसा उनका अपनी युवावस्था में था। यही कारण था कि वहाँ के सभी लोग युवा और तेजस्वी थे। उनके चेहरे पर यौवन की आभा और प्रखरता थी। और थी प्रसन्नता।

सभी लोग अपने मनोबल और प्रखर इच्छा शक्ति से अपने अनुकूल पृथ्वी जैसे वातावरण की मानसिक सृष्टि कर उसमें निवास कर रहे थे।

वहाँ सन्त, साधक और योगी महात्माओं का अपना-अपना वर्ग तो था ही, इसके अतिरिक्त विद्वानों, बुद्धिजीवियों और कवि, लेखकों का भी अपना अपना समाज था। वे लोग भी अपनी मानसिक सृष्टि में आनन्द मग्न थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि कोई किसी की सृष्टि में न प्रवेश कर सकता था और न तो उसको देख ही सकता था।

मनोमय जगत के निवासियों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जो जिस क्षेत्र का था वह उस क्षेत्र के व्यक्तियों से अपना मानसिक सम्पर्क बराबर बनाए रखता था और उसी सम्पर्क के माध्यम से आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करता रहता था, और करता रहता था मार्ग दर्शन भी।

कहने की आवश्यकता नहीं, मनोमय जगत में मुझे जिस आन्तरिक आनन्द का अनुभव हुआ वह संसार में कहाँ? संसार में तो समस्या ही समस्याएँ हैं। मनुष्य का पूरा पूरा जीवन उन्हीं समस्याओं से जूझने और उन्हें हल करने में ही बीत जाता है। इसी कारण वह न आत्मोन्नति कर पाता है और न तो अपने ही लिए कुछ कर पाता है। वह मोह माया के जाल में ऐसा फँस जाता है कि उसे इस बात की सुधि ही नहीं रहती कि उसे जीवन में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।

यह सत्य है कि मनुष्य का जन्म अपने आप में गरिमामय है और मानव शरीर और मानव जीवन भी अपने आप में महत्वपूर्ण और

मूल्यवान है, लेकिन दोनों के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि आसक्ति ही सारी समस्याओं की जननी है।

हाँ! तो, मैं मनोमय जगत के वातावरण में कब तक रहा यह तो नहीं बतलाया जा सकता लेकिन अभी तक जो मनोबल अत्यधिक प्रबल था वह सहसा क्षीण होने लगा और उसी के साथ-साथ क्षीण होने लगी मानसिक शक्ति भी। अब मैं अपने आप में प्राण शक्ति की अधिकता का बोध करने लग गया था। सचमुच बड़ी ही विचित्र स्थिति थी उस समय मेरी। और उसी विचित्र स्थिति में एक सर्वथा नए वातावरण में अनुभव किया मैंने अपने आप को, और वह नया वातावरण था सूक्ष्म जगत का। जिसे प्राण जगत भी कहते है। सम्भवत: इसीलिए मेरी प्राणशक्ति अधिक प्रबल और प्रखर हो गई थी।

सूक्ष्म जगत के वातावरण में विचारों का प्रवाह था। वहाँ के निवासी सूक्ष्म शरीर धारी थे और उनमें सद् विचारों का ही बाहुल्य था। मनोमय जगत के लोग जैसे मानसिक सृष्टि करने में निपुण थे, वैसे ही सूक्ष्म शरीर धारी सूक्ष्म जगत के लोग वैचारिक सृष्टि करने में सक्षम थे। वे अपने सद् असद् विचारों के अनुरूप अपने लिए घर मकान की, बाग बगीचे की और मन्दिर मठ की सृष्टि कर उसमें मग्न थे। एक अघोरी को देखा, वह शमशान की सृष्टि कर उसी में प्रसन्न था।

मेरे कहने का तात्पर्य यह कि अपने जीवन काल में जिसने जिस प्रकार के विचार को प्रमुखता दी थी और जिस विचार को लेकर पूरा जीवन जिया था। मरने के बाद वहाँ पहुँच कर उसी विचार को साकार कर दिया था और उसी में जी भी रहा था।

मनोमय जगत के लोगों की तरह यहाँ के निवासी भी व्यक्तियों से अपने वैचारिक संबंध जोड़े हुए थे। और अपने अच्छे बुरे विचारों के अनुरूप उनसे काम ले रहे थे।

अब मेरी प्राण शक्ति भी क्षीण होने लगी थी और भाव प्रबल होने लगा था। और उसी के साथ मेरा अस्तित्व 'भाव जगत' में प्रवेश कर रहा था। भाव जगत के वातावरण में चारों ओर कुहरे जैसा धुन्ध छाया हुआ था और वहाँ के निवासियों में न मन की शक्ति थी, न विचार की शक्ति थी। यदि कुछ था तो मात्र केवल 'भाव' अथवा भावना। वातावरण में भी भावना का ही तरल प्रवाह था। यहाँ के लोग भी अपनी अच्छी बुरी भावना के अनुरूप सृष्टि कर उसमें निवास कर रहे थे। और व्यक्तियों से अपना भावनात्मक संबंध स्थापित किए हुए थे।

सहसा भाव जगत का वातावरण लुप्त हो गया मेरे सामने से और दूसरे ही क्षण अपने भौतिक अस्तित्व का आभास हुआ मुझे। मेरी चेतना लौट आई थी पार्थिव काया में अपने आप आँखें खुल गईं। देखा अपने बन्द कमरे में अपने बिस्तर पर पद्मासन की मुद्रा में बैठा था मैं पाषाणवत्। सबेरा हो चुका था। पक्षी कलरव कर रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं पूरे सात घण्टे की अवधि में मन की सर्वोच्च अवस्था को उपलब्ध होकर जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया था निस्सन्देह उसने अविभूत कर दिया था मेरी चेतना को, झकझोर दिया था मेरे मन प्राण को और स्तब्ध कर दिया था मेरी आत्मा को एक बारगी।

स्वामीजी का कथन सत्य था--समाधि मृत्यु का साक्षात्कार है और है प्रत्यक्ष अनुभव। और मैंने कर लिया था वह साक्षात्कार और वह वर्णनातीत अनुभव। जीवन आत्मा के जुड़ा है। यदि आत्मा का अस्तित्व शाश्वत है तो जीवन का भी है अस्तित्व शाश्वत। 'मृत्यु' जैसा संसार में दूसरा कोई असत्य नहीं है। मृत्यु एक 'घटना' है। जो जीवन की धारा को मोड़ देती है और देती है नया रूप। मृत्यु को यदि हम यह मान लें कि वह स्वप्न रहित एक गहरी नींद है और इसके अलावा और कुछ नहीं तो यह अतिशयोक्ति न होगी। उस नींद से उठने के बाद सारी मोह माया के बंधन टूट गए प्रतीत होते हैं। अपने पराए का बोध भी समाप्त हो गया होता है। अपने आप में एक हल्का पन और स्वतंत्रता का अनुभव होता है। और इस बात का भी ज्ञान होता है कि हमने संसार में क्यों जन्म लिया था? किसलिए शरीर धारण किया था और किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन मिला था हमें? इस सन्दर्भ में यह भी बतला देना आवश्यक है कि मनोमय जगत प्राणमय जगत और भावमय जगत तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उनका अस्तित्व इस भौतिक जगत से परे नहीं है। आत्मा के लिए एक जगत से दूसरे जगत में जाना वैसे ही है जैसे एक मकान को छोड़कर दूसरे मकान में जाना या एक गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव में जाना।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि सभी जगत आपस में मिलकर सात स्तरों में विभक्त हैं। नीचे का पहला और दूसरा स्तर अत्यन्त घृणित हैं। बुरे कर्म करने वाले लोगों के लिए वे दोनों स्तर हैं। वहाँ घोर अन्धकार का साम्राज्य है। सम्भवत: इसीलिए उन दोनों स्तरों को नर्क की संज्ञा दी गई है। तीसरा और चौथा स्तर मध्यम श्रेणी की आत्माओं के लिए है। इसी प्रकार पाँचवें और छठे स्तर में उच्च कोटि की आत्माएँ निवास करती हैं। और इसीलिए उन दोनों स्तरों को 'स्वर्ग' की संज्ञा दी गई है।

अन्तिम सातवाँ स्तर सबसे भिन्न है और उन विशिष्ट आत्माओं के लिए है जिन्होंने जीवन काल में आत्म साक्षात्कार अथवा आत्मानुभव कर लिया है। सभी स्तरों में मृतात्मा को धरती पर किए गए कर्मों के अनुसार ही भेजा जाता है। प्राय: निचले स्तर की जीवात्मा को सत्कर्म करते हुए सातवें स्तर तक पहुँचने के लक्ष्य हेतु मनुष्य जीवन दे कर धरती पर भेजा जाता है। लेकिन प्राय: ऐसा नहीं होता है। वह ऐसे कार्य करता है कि एक स्तर या एक लोक नीचे ही सरक जाता है। सातवें स्तर में पहुँचने वाली दिव्यात्मा कहलाती है और उन्हें फिर मानव जीवन के लिए विवश नहीं होना पड़ता। सम्भवत: इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं या कहते हैं मुक्ति। कहने की आवश्यकता नहीं, इतना सब कुछ जानने समझने और अनुभव करने के पश्चात् न जाने कैसी हो गई मेरी मानसिक स्थिति और उसी विचित्र मानसिक स्थिति में 'सत्य' से और परिचित होने के लिए प्रच्छन्न, अप्रच्छन्न भाव से निवास करने वाले सन्त महात्माओं और गुप्त रूप से संचरण विचरण करने वाले योगी साधकों की खोज में निकल पड़ा मैं। और इसके लिए भारत के घनघोर जंगलों, दुर्गम पहाड़ी इलाकों और हिमालय के रहस्यमय स्थानों की अत्यन्त कष्ट दायिनी यात्रा तो की ही, इसके अतिरिक्त तिब्बत की भी जीवनमरण दायिनी हिम यात्रा की मैंने। जहाँ इस यात्रा से अपनी खोज की दिशा में आशातीत सफलता मिली मुझे, वहीं, अपने आप न जाने कैसे, आत्म ऊर्जा (प्लाजमा) की मात्रा अत्यधिक बढ़ गई मेरे शरीर में। आयुर्विज्ञान और शरीर विज्ञान के अनुसार आत्म ऊर्जा एक ऐसी विलक्षण नैसर्गिक ऊर्जा है जो एक निश्चित मात्रा में प्राण ऊर्जा के साथ मिल कर शरीर में जीवनी शक्ति यानी 'चेतना' के रूप में काम करती है। और जिसका एक मात्र केन्द्र है 'हृदय'। शरीर में रक्त का प्रवाह,हृदय की धड़कन और श्वास प्रश्वास क्रिया उसी पर निर्भर है। विचार करने की शक्ति, चिन्तन मनन करने की शक्ति, सोचने समझने की शक्ति, चेतना के ही विभिन्न रूप हैं। इच्छा, कामना, वासना, भावना आदि एक मात्र उसी के उल्लास हैं। आत्म ऊर्जा की अचानक वृद्धि का प्रभाव इन सब पर जितना जो पड़ना चाहिए, वह तो पड़ा ही, लेकिन उसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा मेरे विचारों पर। और इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे विचारों की सूक्ष्म तरंगें सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं को आकृष्ट करने लगीं। अनजाने में इस महत्वपूर्ण उपलब्धि का परिणाम यह हुआ कि परलोकगत सूक्ष्म शरीरधारी विभिन्न प्रकार की आत्माओं से मेरा वैचारिक संबंध अपने

आप जुड़ने लग गया। जिसके फलस्वरूप अनजाने लोक के अनजाने लोगों द्वारा धीरे धीरे पारलौकिक ज्ञान का भण्डार भरने लगा मेरा। कहने की आवश्यकता नहीं, प्रस्तुत परलोक विज्ञान उसी रहस्यमय पारलौकिक ज्ञान-भण्डार का एक महत्वपूर्ण अंश है।

परलोक तत्व एक ऐसा आध्यात्मिक विषय है जिसे सभी प्रचलित धर्मों और सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। यदि विचार पूर्वक देखा जाए तो भारतीय संस्कृति और साधना का एक प्रकार से मेरूदण्ड ही है परलोक तत्व। इसीलिए मैंने अपनी इस पुस्तक में गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषयों पर मनोवैज्ञानिक, परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार तो किया ही है इसके अतिरिक्त इस विषय से संबंधित विख्यात् पश्चिमी विद्वानों के विचारों को भी उपदिष्ट किया है आवश्यकतानुसार।

वैसे तो अंग्रेजी हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में लोक परलोक और आत्माओं के संबंध में बहुत सारी पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, लेकिन जहाँ तक प्रश्न परलोक विज्ञान का है, वह पूर्णतया स्वानुभव पर आधारित है। निश्चय ही पाठकों के पारलौकिक ज्ञान की वृद्धि की दिशा में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी, इसमें किंचित सन्देह नहीं।

चैत्रनवरात्र अष्टमी
विक्रम सम्वत् २०५३
सन् १९९६ मार्च

विद्वद्गण शुभाकांक्षी
अरूण कुमार शर्मा

अन्तर्वस्तु क्रम

कर्णिका-2

कार्णिका-3

कर्णिका-4

कर्णिका-5

कर्णिका-6

कार्णिका-7

कार्णिका-8

कार्णिका-9

मेरी जीवन यात्रा ?

अचिन्त्यमहाशक्ति की एक लीला

—अरुण कुमार शर्मा

कर्णिका–१
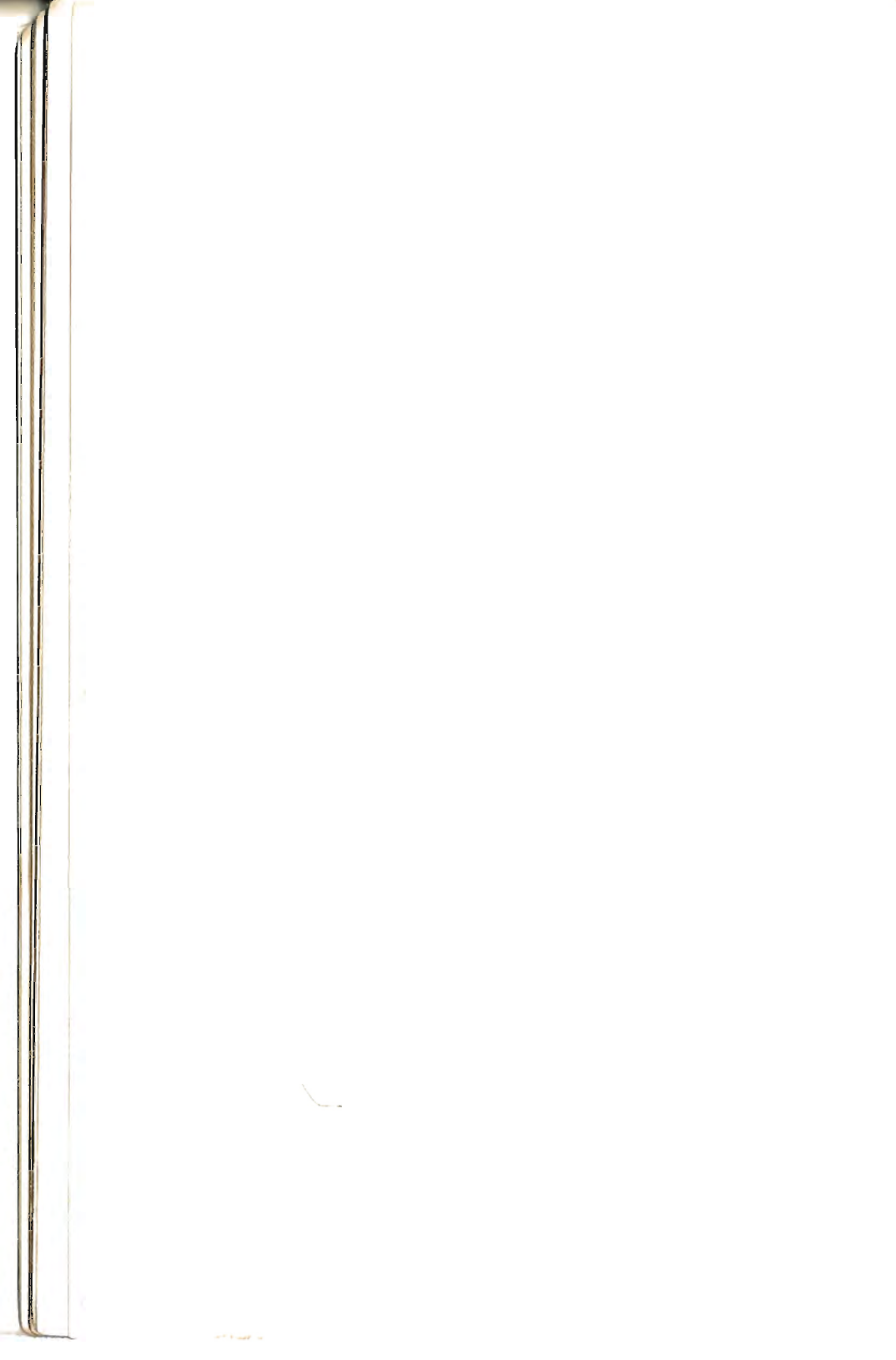
हिन्दुत्व का वैचारिक आधार

काल के प्रवाह में पड़कर हम आज भारत के अध्यात्म विज्ञान की प्राचीन परम्परा से इतनी दूर हो गए कि हमें आधुनिक विज्ञान के चकाचौंध में कुछ सुझाई ही नहीं पड़ रहा है। सच तो यह है कि आज उसका ठोस और दृढ़ आधार ही गायब हो गया है। जिसका आश्रय लेकर हम अपने चारों तरफ होने वाले परिवर्तनों और विज्ञान की होने वाली प्रगति और उन्नति की अनुकूल तथा प्रतिकूल अथवा स्वस्थ एवं अस्वस्थ प्रवृत्तियों का सही और वास्तविक मूल्यांकन अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से करें और उसके आधार पर अपने और जगतके लिए वास्तविक रूपसे कल्याणकारी मार्ग का निर्देशन कर सकें। कहने की आवश्यकता नहीं यह बहुत बड़ा महान कार्य है और इस महान कार्य के लिए सच पूछा जाएतो एक तेजस्वी और बौद्धिक क्षमता से परिपूर्ण नेतृत्व की अपेक्षा है। लेकिन सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उसके निर्माण के लिए अभी तक न तो किसी सुव्यवस्थित शिक्षा पद्धति की स्थापना की गयी और न तो उसका विकास ही किया जा सका। इतना ही नहीं अभी तक किसी ऐसे सुदृढ़ केन्द्र का न निर्माण ही किया जा सका और न तो स्थापना ही की जा सकी किसी ऐसे ज्ञानपीठ की। जिससे अधुनातन ज्ञान के प्रखर आलोक में और धवल प्रकाशमें भारत के प्राचीन अध्यात्म विज्ञान के विषय में शोध और अनुसंधान कार्य निष्ठा पूर्वक एवं मनोयोगसे सम्पन्न किया जा सके। सचमुच यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है स्वतंत्र भारत का।

कहने की आवश्यकता नहीं जब तक हम इस महान चिर अपेक्षित और साथ ही उपेक्षित कर्तव्य का पूर्णरूपेण सम्पादन नहीं कर लेते–तब तक हमारे देश का और हमारे राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं है। उसकी कोई प्रगति नहीं है। कोई उन्नति नहीं है।

इस संसार में जितने भी प्राणी हैं–उनमें केवल मनुष्य ही एकमात्र विचारशील प्राणी है। केवल मनुष्य ही आदर्श नियमों का निर्माण करता है और केवल मनुष्य ही वर्तमान के आधार पर भूत एवं भविष्य को एक श्रृंखला में जोड़ने का प्रयास करता है। आदर्श

नियमों द्वारा सामूहिक जीवन का नियमन मनुष्य की ही विशेषता है और इसी विशेषता का परिणाम है कि प्रत्येक काल और स्थानमें मनुष्य ने जीवन दर्शन का प्रतिपादन क्रिया है।

हिन्दू मानव ने जिस जीवन-दर्शन को विकसित किया-वही अपने संबंधित सामयिक पक्ष के साथ हिन्दुत्व के रूप में अविर्भूत हुआ। वेदों के प्रणेताओं उपनिषदों के मनीषियों धर्म शास्त्रों के रचयिताओं स्मृतिकारों और समय-समय पर आविर्भूत होने वाले समाज सुधारकों ने जिस वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन दर्शन को प्रतिपादित किया है-वही 'हिन्दुत्व' है। हिन्दुत्व वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण विशेष है। अध्यात्म विज्ञान के अनुसार हिन्दुओं ने सामाजिक संगठन से संबंधित समस्याओं पर काफी गम्भीरता से ध्यान दिया है और मानव जीवन के संगठन को जहाँ तक सम्भव हो सका उत्तमोत्तम बनाने का प्रयास किया है। इसी प्रयास में हिन्दुत्व की आधारभूत धारणाओं और उनसे नियमित हिन्दू सामाजिक संगठन की प्रणाली की रूपरेखा भी विकसित हुई है। हिन्दू जीवन-यापन में मानवी तथा मानवीय जोवन की आवश्यकताओं, अभिरुचियों, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के समन्वय का प्रयास किया गया है। इस समन्वय के दो आधार हैं-एक इहलौकिक जीवन की आवश्यकताएँ, और दूसरा-इस जीवन और जगत से परे जीवन की आवश्यकताएँ तथा उद्देश्य।

एक हिन्दू के लिए यह संसार, यह जगत एक रंगमच है और मानव जीवन एक साधन मात्र।

वह साधन जिससे जीवन-स्वातंत्र्य यानी मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य अथवा निर्वाण की प्राप्ति होती है। शरीरी आवश्यकताओं की पूर्ति जैविक गुण भी है और आवश्यकता भी। मानवीयता नितान्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से आगे उठा हुआ एक कदम है। क्योंकि शरीर नश्वर है। अमर है तो केवल आत्मा। आत्मा को निरन्तर प्रबुद्ध करते हुए जीवन-स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का प्रयास ही मानवीयता है। इस दृष्टिकोण की वांछनीयता इस तथ्य में निहित है कि मानव जीवन केवल शरीरी आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं है। मानवीयता निहित है शास्त्र प्रणीत धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करने में।

मानवीयता की माँग है मोक्ष-मुक्ति, कैवल्य और निर्वाण। और इनकी प्राप्ति होती है धर्म से। अत: जीवन धर्म से बँधा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय और साधना कर्म से होती है। कर्म प्रधान है। कर्म के समन्वयसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ आवश्यक है क्योंकि मानव-जीवन का उद्देश्य केवल पुरुष ही बने रहना नहीं है। मानव जीवन का उद्देश्य है-मानवी स्तर से मानवीयता की ओर अग्रसर होना। जिसका तात्पर्य है पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नरोत्तम होना। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो अभी तक दो ही व्यक्ति पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नरोत्तम हुए। पहले व्यक्ति हैं राम और दूसरे हैं कृष्ण। राम पुरुषोत्तम थे और कृष्ण थे नरोत्तम।

इस साधना में व्यक्ति और समाज दोनों आवश्यक है क्योंकि पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नरोत्तम बनने की प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति से समाज की और समाज से व्यक्ति की साधना होती है। व्यक्ति और समाज में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। बशर्ते कि उनके संबंधों का प्रणयन धर्म से हो।

समाज के रंग-मंच पर व्यक्ति का जीवन एक संक्रमण-प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की चार आधारभूत अवस्थाएँ हैं। जिनको आश्रम कहा गया है। जिनका साधन पुरुषार्थ के लिए आवश्यक है। क्योंकि ये अवस्थाएँ अथवा आश्रम-मानव की शरीरी तथा स्वाभाविक अभिरुचियों का एक सहज परिणाम है। अत: व्यक्ति अपने गुण तथा कर्मों के कारण ही समाज और धर्म से बँधता है और इसी कारण पुरुषार्थ की साधना का तात्पर्य है गुण और कर्म के अनुसार समाज में धर्म प्रणीत वैयक्तिक जीवनको अपनाने का प्रयास करना।

कहने की आवश्यकता नहीं-हिन्दुत्व का यह आधारभूत विचार सम्पूर्ण हिन्दू वाङ्मय में व्याप्त है। वेदों, संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, सूत्रों, स्मृतियों, महाकाव्यों, नीतिशास्त्रों तथा पुराणों और नाटक, काव्य तथा जन साहित्य में इसी आधारभूत विचार का समयानुसार विकास हुआ है। खैर इस प्रकार हिन्दुत्व तथा जीवन के प्रति हिन्दू दृष्टिकोण चार धारणाओं में निहित है। और वे धारणाएँ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जिन्हें पुरुषार्थ भी कहा गया है। यही है कर्म सिद्धान्त और वर्णाश्रम व्यवस्था। ये धारणाएँ यानी व्यवस्थाएँ तथा इनमें निहित वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की आवश्यकताएँ और उद्देश्य हिन्दुत्व का आधार हैं। इन्हीं धारणाओं ने हिन्दू समाज तथा संस्कृति को उसकी विशेषताएँ प्रदान की हैं। ये धारणाएँ किसी भी रूप में निरपेक्ष नहीं हैं वे सापेक्ष हैं व्यक्तिकी मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं, देश काल की परिस्थितियों से।

युग-युग की आवश्यकताओं के अनुसार इन धारणाओं के संवर्धन और प्रतिपादन में ही हिन्दुत्व का विकास और हमारे देश की उन्नति निहित है।

जैसाकि बतलाया गया है-आत्मा अमर है। उसका किसी भी अवस्था में तथा किसी भी काल में नाश सम्भव नहीं। वह अजर-अमर है।

आत्मा को प्रबुद्ध करना आवश्यक है। बिना आत्मा के प्रबुद्ध हुए जीवन-स्वातन्त्र्य यानी निर्वाण, मुक्ति, कैवल्य अथवा मोक्ष की उपलब्धि सम्भव नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं जीवन-स्वातन्त्र्य की दिशामें आत्मा को प्रबुद्ध करने की जो आन्तरिक प्रक्रिया है वही अध्यात्म है।

यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि हिन्दुत्व का जो यह वैचारिक आधार है उसी के गर्भ से भारतीय संस्कृति का अविर्भाव हुआ है। अब थोड़ा यहाँ भारतीय संस्कृति और उसकी विशेषता के संबंध में बतलाना आवश्यक है ताकि आगे के गम्भीर विषयों को पाठकगण भली-भाँति हृदयंगम कर सकें।

भारतीय संस्कृति और उसकी विशेषता

वास्तव में भारतीय संस्कृति पूर्ण रूपसे अध्यात्म पर प्रतिष्ठित है और उसी का विभिन्न मार्गों से प्रतिनिधित्व भी करती है।

'संस्कृति' शब्द का अर्थ है मनकी और हृदय की वृत्तियों को संस्कार द्वारा सुधारना और उदात्त बनाना। विश्व में जितनी भी संस्कृतियां हैं–उनमें सबसे प्रचीन और सर्वोपरि संस्कृति एक मात्र भारतीय संस्कृति है।

संस्कृति और सभ्यता में भेद : सभ्यता और संस्कृति सर्वथा सम्बद्ध होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं। संस्कृति अभ्यन्तरिक होती है और सभ्यता बाह्य तत्व है। संस्कृति को अपनाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु सभ्यता का तत्काल अनुकरण किया जा सकता है। वास्तव में संस्कृति का मूल सूत्र न धर्म है न भाषा है और न तो है भौगोलिक खण्ड। यह सूत्र तो है जीवन भाग के वास्तविक उपकरण, सामाजिक व्यवस्था और इन सबकी सहायतासे बना मानस लोक।

पहली विशेषता : भारतीय संस्कृति ने स्वार्थ सिद्धि की अपेक्षा पर सेवा और समाजसेवा तथा स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ पर अधिक जोर दिया है। उसने व्यक्ति को समाज में, समष्टि में और भगवान में लीन होने का उपदेश दिया है। और मार्ग भी बतलाया है। जो मार्ग, जो विधि, जो क्रिया हमें परमेश्वर की ओर ले जाती है वह है भारतीय संस्कृति।

दूसरी विशेषता : भारतीय संस्कृति का ध्येय मनुष्य का चरम लक्ष्य बतलाकर उसे प्राप्त करने का उपाय और मार्ग प्रर्दशित करना है। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति का विकास इस लक्ष्य के साधन के मार्ग हैं।

प्राचीन भारत में तीनों शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास ही मानव जीवन का उद्देश्य माना गया था। भारतीय संस्कृति का एकमात्र लक्ष्य है–मानव की आध्यात्मिक उन्नति।

सुकर्म ही आत्मा और मनको पवित्र तथा निर्मल बनाने का मुख्य साधन है जन्म–मरण का बंधन ही जीवात्मा को परमानन्द प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। यह अनन्त सुख और अक्षय आनन्द मोक्ष ही है। प्रत्येक जीवात्मा इसे प्राप्त कर सकती है। जीवन्मुक्त महापुरुष ही मोक्ष में शाश्वत शान्ति और परमानन्द उपलब्ध करने में समर्थ हैं। इसलिये भारत के ऋषियों ने शारीरिक, मानसिक तथा आत्मोन्नति को ही इस उद्देश्य की पूर्ति का साधन बतलाया है।

अतएव प्राचीन भारत में शारीरिक शक्ति के विकास के लिए ऐसा नियम और इस प्रकार का जीवन क्रम बनाया गया था जिससे शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक

विकास और आत्मिक विकास में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगो को पुष्ट करने के लिये व्यायाम, यम, नियम, प्राणायाम, आसन, ब्रह्मचर्य का विधान किया गया है। ये साधन शारीरिक उन्नति के साथ--साथ चंचल चित्त-वृत्ति का निरोध कर मनुष्य को एकाग्र बनाते हैं। जो आत्मोन्नति में सहायक सिद्ध होते हैं। प्राणायाम फेफड़ों को अधिक शक्तिशाली बनाकर हृदय को बल प्रदान करता है। जिससे मानसिक शक्ति के विकासमें सहायता मिलती है। इस प्रकार प्राचीन भारत ने शारीरिक शक्ति के विकास की एक ऐसी योजना बनाई थी जिससे मानसिक और आत्मिक विकास में भी स्वत: काफी सहायता मिल सकती है। शारीरिक विकास की ऐसी व्यवस्था संसार के अन्य किसी देश की संस्कृति में नही पाई जाती। यह भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता है।

तीसरी विशेषता : जब तक आत्मा को नहीं समझा जाता तब तक ज्ञान अधूरा ही रहता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्मा को समझकर उसे जीवन-मरण के बंधन से मुक्त करना ही मानव जीवन का एक मात्र ध्येय है। किस प्रकार इस हाड़-माँस के पुतले में हम समा गए? और जब निकलेंगे तो कहाँ जाएँगे? हम कौन हैं? कहाँ से आए हैं? और कहाँ जाएँगे? आदि समस्याओं का समाधान आवश्यक है। भारतीय संस्कृति मे मैं कौन हूँ? की खोज में लगे रहने का उपदेश दिया गया है। और उपदेश दिया है-प्राणिमात्र में भगवद् दर्शन का।

भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्माको समझकर जीवन मरण के बंधन से उसे मुक्त करना ही मानव जीवन का एक मात्र ध्येय है। यह भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता है।

चौथी विशेषता : मंत्र द्रष्टा ऋषियों के अनुसार सत्य और ऋत् (जीवन की सुव्यवस्था) ही सृष्टि के आदि उपादान कारण हैं। सत्याचरण हमारे देश के वातावरण में सदैव से व्याप्त है। सच्चरित्रता और सदाचरण भारतीयों की विशेषता है। भारत में आस्तिक वाद, नास्तिक वाद, द्वैत वाद, अद्वैत वाद, प्रभृति, विभिन्न मत-मतान्तरों के लिए बराबर स्थान रहा है। भारत में विचार स्वतंत्रता तो इतनी रही है कि महाभारत के वन पर्व में कहा है-जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाता है वह धर्म नहीं अधर्म है। धर्म तो वह है जो धर्म-विरोधी नहीं होता। अतएव भारत ने चरित्र बलको धर्म की कसौटी बतलाया है। इस कसौटी पर जो लोग सफल उतरे उन्हें भारत ने आदर और गौरव की दृष्टि से देखा। भले ही उनकी विचारधारा सर्वमान्य और सर्वप्रिय न हो। भारतमें अपने चरित्र बलके कारण ईश्वर को न मानने वाले महापुरुष भी न केवल आदर और मर्यादा के मापन हो सके हैं-वरन् उन्हें समाज में उच्चतर स्थान भी मिला है। ईश्वर में विश्वास न रखने से मान-मर्यादा में विरोध उपस्थित न हो सका है क्योंकि भारतीय संस्कृति का मूलाधार सत्य और ऋत् रहा है। भगवान बुद्ध ने स्पष्ट रूपसे ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं की है और न तो वेदों का ही आदर किया है। उनका कहना था कि ईश्वर के होने या न होने पर मनुष्य का

निर्वाण निर्भर नहीं करता बुद्ध ने न ईश्वर को माना और न तो वेद को ही। मगर वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ आचारवान पुरुष थे। जीव मात्र के प्रति उनकी समदृष्टि थी। सत्य और अहिंसा उनका मूल मंत्र था। अतएव उनकी विशेष प्रतिष्ठा हुई। उनकी गणना विष्णु के नवम् अवतार में की गयी। आज भी विष्णु के अवतार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है।

कपिल मुनि सांख्य दर्शन के प्रणेता थे। उन्होंने प्रकृति पुरुष की कल्पना से विश्व के रहस्य को समझाया है। अनावश्यक होने के कारण ईश्वर की सत्ता सांख्य को मान्य नहीं। अत: सांख्य नितान्त निरीश्वर वादी हैं। कपिल नितान्त चरित्रवान महापुरुष थे। इसी कारण निरीश्वर वादी होते हुए भी उन की गणना भगवान के चौबीस अवतारों में हुई है।

मीमांसा दर्शन भी निरीश्वर वादी है। इसके आचार्य जैमिनी का कहना है कि वेद स्वयं नित्य है। इस दर्शन के अनुसार विश्व में कर्म ही सबसे प्रधान वस्तु है। आचार्य बादरायण ईश्वर को कर्म फलों का दाता मानते हैं। परन्तु जैमिनी की सम्मति में यज्ञ से ही सतत् फलों की उपलब्धि होती हैं। ईश्वर की इस प्रकार अवहेलना करने पर भी केवल जैमिनी ही नहीं किन्तु आचारवान् मीमांसक की भी प्रतिष्ठा और मर्यादा बनी रही।

रावण वेदों का प्रकाण्ड विद्वान और भगवान शंकर का परम भक्त था। किन्तु आचार हीन होने के कारण उसकी गणना राक्षसों में की जाती है जबकि सदाचार के कारण उसके भाई विभीषण को मर्यादापूर्ण स्थान मिला था।

स्पष्ट है कि भारत में शुरू से ही धार्मिक स्वतंत्रता रही है। मनुष्य के आदर और सम्मान एवं प्रतिष्ठा का मापदण्ड ईश्वर की भक्ति तथा वेदादि सद्ग्रन्थों का अनुशीलन न होकर 'ऋत्' यानी चरित्र रहा है। यह भारतीय संस्कृति की चौथी विशेषता है।

पाँचवी विशेषता : भारतीय संस्कृति कर्मवाद मूलक है। इसलिए इसका लक्ष्य अखण्ड विश्व की ओर है। भारतीय सिद्धान्त है कि जीवात्मा एक जन्मसे जन्मान्तर में और एक योनि से दूसरी योनि में परिभ्रमण करता हुआ-कभी स्वर्ग जाता है तो कभी नर्क जाता है। कभी कहीं जन्म लेता है तो कभी कहीं। कभी स्त्री होता है तो कभी पुरुष। क्योंकि कर्म की गति विचित्र है। जब तक आत्म ज्ञान की अग्नि में कर्म-अकर्म भस्म नहीं हो जाते, जब तक आत्मा परमात्मा का तादात्म्य नहीं हो जाता, तब तक जीवात्मा को आवागमन से मुक्ति नहीं मिल सकती। वह जन्म-मरण के चक्कर में बराबर पड़ा रहता है। कर्मवाद मनुष्य को सुकर्म की ओर प्रेरित करता हैं। यह सत्य है कि भारत में चार्वाक् जैसे विचार धारा के लोग भी हुए हैं-जिनका सिद्धान्त रहा है कि जब तक जीवित रहो-तब तक सुख से जीते रहो, भले ही कर्ज क्यों न लेना पड़े। शरीर के भस्म हो जाने के बाद फिर जन्म कहाँ। परन्तु भारतीय संस्कृति कभी भी इस भावना की नींव पर खड़ी नहीं हुई और सर्वदा इस विचारधारा वालों की संख्या न्यून ही रही। अतएव कर्मवाद का सिद्धान्त

भारतीयों में प्रेम, सहिष्णुता, दया, कृपा, क्षमा आदि उच्चादेशों का पालन करने की प्रेरणा शुरू से देता आ रहा है। यह भारतीय संस्कृति की पाँचवी विशेषता है।

छठी विशेषता : आदि काल में अपने समन्वय और समुच्चय की प्रगतिशील नीति द्वारा आर्यों ने अनार्यों को मिला लिया था। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की त्रिमूर्ति उसी समन्वय और समुच्चय की कल्पना है। अनार्यों की लिंग पूजा आर्यों में और आर्यों की विष्णु उपासना अनार्यों में प्रचलित हो गयी। इसके बाद यूनानी, ईरानी, हूण, शक, सीपियन आदि आए। किन्तु उदार भारतीय संस्कृति में विलीन होकर उन्होंने अपने अस्तित्व को खो दिया। भारत में अब उनके चिन्ह भी शेष नहीं हैं। भारतीय संस्कृति में यह क्षमता है कि वह सम्पूर्ण विश्व को अपने विशाल अंक में भर सकी। यह इसकी छठी विशेषता है।

सातवीं विशेषता : 'सर्व जन सुखाय, सर्व जन हिताय' की भावना भारत में आदि काल से प्रबल रही है। भारतीय संस्कृति की इस आधारशिला रूप भावना पर भारतीय जीवन और धर्म का भव्य भवन अडिग और अचल खड़ा है। भारतवासियों की अभिलाषा केवल अपने को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्वको 'सर्वे भवन्तु सुखिन:'..... बनाने में पूर्ण होती है। इस उदार, उदात्त और सर्वोच्च अभिलाषा के कारण ही भारतीय संस्कृति की मौलिक महत्ता है। यह उसकी सातवीं विशेषता है।

वर्तमान समय में हम जिस भारतीय संस्कृति से परिचित हैं–वह काल के प्रभाव से भले ही विकृत और संकुचित क्यों न हो गयी हो किन्तु यह सत्य है कि वह एक विशाल गौरवमयी प्राचीन संस्कृति की उत्तराधिकारिणी है। इस सर्व प्राचीन संस्कृति का आदि रूप कैसा था यह तो साधिकार नहीं बतलाया जा सकता, लेकिन यह तो निश्चित है कि भारतीय संस्कृति के मूल श्रोत वेद और तंत्र हैं। और यही कारण है कि हमारे देश में संस्कृति के दो रूप हैं–पहला है वैदिक संस्कृति का रूप तथा दूसरा है तांत्रिक संस्कृति का। शुरू से ही दोनों संस्कृतियों की धाराएँ एक साथ समान रूपसे तथा अबाध गति से प्रवाहित रही हैं। पहली धारा वैदिक ज्ञान तथा दूसरी धारा तांत्रिक ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है। दोनों ज्ञान अपौरुषेय ज्ञान विशेष हैं। इसी कारण वेदको निगम और तंत्र को आगम की संज्ञा दी गई है। वैदिक ज्ञान परम ज्ञान है और तांत्रिक ज्ञान है गुह्य ज्ञान। दोनों लौकिक और पारलौकिक सुख और आनन्द के साधन हैं। लेकिन वे साधन तभी सिद्ध होते हैं जब उनका कर्म में नियोजन और आयत्तीकरण होता है। कर्म के अभाव में उत्तम से उत्तम ज्ञान भी व्यर्थ है और है भार स्वरूप।

ज्ञान का कर्म में नियोजन और आयत्तीकरण जिस आधार पर होता है–वह है कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग। पहला योग तपश्चर्या प्रधान, दूसरा योग भाव प्रधान तथा तीसरा योग ज्ञान प्रधान है। गीता का योग इन्हीं तीनों योगों का प्रतिनिधित्व करता है। गीता के प्रथम छ: अध्यायों मे कर्म का, बीच के छ: अध्यायों में भक्ति का और अन्तिम छ: अध्यायों में ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। अस्तु।

अब तक की विवेचना और समीक्षा से जो तथ्य स्पष्ट हुआ है उसके अनुसार भारतीय संस्कृति वैदिक तथा तांत्रिक साधना प्रधान है। आत्माको निरन्तर प्रबुद्ध करते हुए जीवन स्वातन्त्र्य को उपलब्धि, पुरुषार्थ की सिद्धि तथा भारतीय संस्कृति के जितने भी लौकिक, व पारलौकिक उद्देश्य हैं एवं जितने भी आध्यात्मिक लक्ष्य हैं और साथ ही उसकी जितनी भी विशेषताएँ हैं–वे सब योग और तंत्र के विभिन्न साधना व उपासना मार्गों द्वारा सफल तथा साकार होती हैं।

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भारतीय संस्कृति की दो धारा होने के फलस्वरूप शुरू से ही इस देश में आगम और निगम समस्त ज्ञान, कर्म, साधना और उपासना के महा स्रोत समझे जाते रहे हैं। आगम और निगम दोनों का आधार एक मात्र योग है। बिना योग के चाहे वह वैदिक साधना उपासना हो, चाहे तांत्रिक साधना उपासना हो, व्यर्थ है। सच बात तो यह है कि तंत्र और तांत्रिक साधना उपासना आदि के संबंध में जो अनेक भ्रामक एवं कुत्सित धारणाएँ जन-समाज में फैली हुयी हैं उनमें तांत्रिक परम्परा का दोष नहीं वरन् दोष है उन तांत्रिकों का जो बिना महती आस्था तथा योग के ही तंत्र साधक बन पापाचार व भ्रष्टाचार के उन्नायक बने।

वर्तमान समय में तो यह स्थिति और भी विषम है। ऐसी अवस्था में योग और तंत्र के वास्तविक स्वरूपको जहाँ तक सम्भव हो सके वैज्ञानिक तथा परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करना अति आवश्यक है। तभी जन मानस में सनातन से चली आ रही योग-तांत्रिक साधना-परम्परा के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होगा और साथ ही देश और समाज का कल्याण भी होगा।

परलोक विज्ञान का महत्त्व

भारतीय अध्यात्म शास्त्र के जितने भी विषय हैं, उनमें लौकिक और पारलौकिक तत्वों का निरूपण भी एक है। इन दोनों से संबंधित जो विज्ञान है उसे परलोक विज्ञान कहते हैं।

यदि विचार पूर्वक देखा जाए तो सभी प्रकार की योग तांत्रिक साधनाओं एवं उपासनाओं का आधार एक मात्र 'परलोक विज्ञान' ही है। कहने की आवश्यकता नहीं इसी परलोक विज्ञान की नींव पर भारतीय संस्कृति और साधना का विशाल, भव्य भवन खड़ा है। वैसे परलोक विज्ञान तो उतना ही प्राचीन है जितनी कि मानव सभ्यता। लेकिन वर्तमान काल में जिस परलोक विज्ञान की विशेष चर्चा हो रही है उस आधुनिक परलोक विज्ञान का अविर्भाव विज्ञानवाद और आध्यात्मवाद के समन्वय से हुआ है। उसके अविर्भाव की कथा भी कम विचित्र नहीं है।

दिसम्बर १८४७ ई० !

न्यूर्याक के एक मेथोडिस्ट के परिवार की दो लड़कियों को केन्द्र बनाकर रहस्यमयी घात ध्वनि सुनाई पड़ी थी। उस अलौकिक ध्वनि को सुनने के लिये उस विशाल भवन के चारों तरफ जनता की भीड़ उमड़ पड़ी थी। जैसाकि संकेत किया जा चुका है, उसी घटना को लेकर आधुनिक परलोक विज्ञान का जन्म हुआ और तभी से परलोक विज्ञान वैज्ञानिक शोध का विषय भी बना।

उस घटना के पश्चात सन् १८७३ ई० में 'ब्रिटिश नेशनल एसोसियेशन आफ स्पिरिटिस्ट्स' की स्थापना हुई और प्रख्यात् पत्रकार मि० स्टीड लगातार कई वर्षों तक आत्माओं से सम्पर्क करते रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि देश-विदेश में धीरे-धीरे 'सियांस' यानि 'प्रेत बैठकों' का आयोजन बराबर होने लगा। मिसेज़ पीयर जैसी वैज्ञानिक प्रेत संबंधी अनेक रहस्यमय क्रिया कलापों का प्रदर्शन करने लगीं। सन् १८६६ में सर विलियम वेरेट, एडवर्ड गानें आदि वैज्ञानिकों ने 'साइकिकल रिसर्च सोसायटी' की स्थापना की। जिससे संबंधित हिल्सप वमकासों जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस संसार से परे अदृश्य शक्ति में विश्वास रखते थे।

योग की जितनी भी रहस्यमयी सिद्धियाँ हैं-उनमें एक सिद्धि है आकाश चारिणी सिद्धि। इसे ही आकाश गमन विद्या भी कहते हैं। इस सिद्धि के बलपर योगीगण अपने शरीर को हल्का बना कर धरती से ऊपर उठ जाते हैं और इच्छानुसार आकाश में भ्रमण किया करते हैं। अपने तिब्बत प्रवास काल में मैंने इस प्रकार सिद्धि प्राप्त दो-तीन योगी भाइयों को आकाश मार्ग से गमन करते हुए देखा था।

एविला की सन्तटेरेसाने अपनी आत्म कथा में एक स्थान पर लिखा है कि वह ध्यानावास्था में कभी-कभी धरती से काफी ऊपर उठ जाती थीं।

सन् १८५२ में मैसेच्यूसेट्स के वार नामक स्थान पर एक बड़ी रहस्यमयी घटना घटी। श्रीमती चैनसी का बायाँ हाथ अचानक ही हवा में ऊपर उठने लगा और धीरे-धीरे इतना ऊँचा उठ गया कि उसने श्री मती चेनसी के शरीर को ऊपर खींच कर छत और फर्श के बीच लटका दिया।

इसी प्रकार की हवा में उड़ने की शक्ति डी० डी० होम नामक व्यक्ति में भी थी। सन् १८६८ में लन्दन में एक विशेष समारोह के अवसर पर वह अचानक ही कमरे के फर्श से उठकर छत पर जा लगे थे। उसके बाद वह उड़ते हुये तीसरी मंजिल की खिड़की से बाहर निकल गए और बीच हवा में उड़ते हुए दूसरी खिड़की से अन्दर आ गए। उनके इस अनोखे कार्य को देखकर वहाँ उपस्थित सभी विशिष्ट लोग आश्चर्य चकित रह गए थे। वैज्ञानिकों के लिए वह अत्यन्त अविश्वसनीय चमत्कार था। जिन वैज्ञानिकों ने उस विलक्षण दृश्य को देखा था, उनमें एक थे के० टी० किंग और दूसरे थे विलियम कुक्स। इन दोनों महानुभावों के घर में प्रेतात्माओं ने आविर्भूत हो कर जो उत्पात मचाया कि विवश हो कर वैज्ञानिकों को एक स्वर में प्रेतों के आस्तित्व को स्वीकार करना पड़ा।

कहने की आवश्यकता नहीं-तभी से परलोक विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक रुचि लेने लगे हैं। उनके शोधऔर अनुशीलन से परलोक विज्ञान की दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति हुई है और बराबर हो रही है। अब तो वैज्ञानिक लोग सुरक्षित शव में फिर से विदेही आत्मा को प्रविष्ट कराने के लिए प्रयास कर रहे हैं।

लाश को जीवित करने का वैज्ञानिक प्रयोग

क्या मनुष्य पुनर्जीवित हो सकता है?

पुनर्जीवित होने पर क्या उसकी वही आत्मा मृतशरीर में प्रवेश करती है जो पहले थी?

ये दोनों प्रश्न अत्यन्त जटिल हैं। लेकिन इनका समुचित उत्तर प्राप्त होना चाहिए।

लगभग पैंतालिस वर्ष पूर्व जब मैं योगी और तांत्रिकों के रहस्यमय देश तिब्बत की जीवन-मरण दायिनी हिम यात्रा पर था उस समय मेरे पथ प्रदर्शक और साथी लामा बोंग मुझे एक ऐसे गुप्त मठ में ले गए जहाँ तीन उच्चकोटि के लामा योगियों के शव पत्थर के टबों मे रखे हुए था। टबों में किसी अज्ञात जड़ी बूटी का रासायनिक द्रव भरा हुआ था। और उस द्रव में लाशें डुबो कर रखी हुई थीं। लामा बोंग ने बतलाया कि इन तीनों योगियों को शरीर छोड़े पूरे एक वर्ष हो गए हैं। अब उनके पुनर्जीवित होने का समय आ गया है। इस रासायनिक द्रव के प्रभाव से उनकी आत्मा पुन: शरीर में प्रवेश कर जाएगी और योगी जीवित हो उठेंगे। क्या ऐसा कभी हुआ है? मतलब कि अभी तक इस प्रकार कोई योगी पुर्नजीवित हुआ है?

मेरा प्रश्न सुन कर लामा बोंग ने हाथ उठाकर सामने उँगली से संकेत किया। मैंने सिर घुमाकर देखा। वहाँ एक अधेड़ आयु के लामा योगी पद्मासन की मुद्रा में ध्यानस्थ बैठे हुए थे।

लामा बोंग ने बतलाया कि इस महात्मा की आयु पूरे दो सौ वर्ष की है। इस अवधि में इन्होंने प्रकृति के नियम के अनुसार चार बार शरीर का त्याग किया और चारों बार इसी प्रक्रिया से पुनर्जीवित हुए। ये तीनों योगी जिन्हें आप मृतावस्था में देख रहे हैं-उन्हीं के परम शिष्य हैं, जो अब दूसरी बार पुनर्जीवित होने जा रहे हैं। इस समय इनकी आत्मा इसी मठ में होगी और अपने-अपने शरीर में पुनर्प्रवेश की प्रतीक्षा कर रही होंगी।

यह सब देख-सुन कर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। जड़ी के संबंध में पूछने पर लामा बोंग ने बतलाया कि उत्तरी तिब्बत के हिम भाग में एक घाटी है। नाम है संग्रीला। उसी घाटी के आस-पास चिंगवा नाम की एक जड़ी पायी जाती है। बड़ी ही दुर्लभ जड़ी है चिगंवा। आयुर्वेद में उसी का नाम मृत संजीवनी है। मगर विरले ही किसी को उपलब्ध होती है वह और विरला ही कोई पहुँच भी पाता है उस रहस्यमयी घाटी में, जो भी हो लेकिन यह सत्य है कि चीन सरकार को संग्रीला घाटी की अविश्वसनीय विशेषता और

चिंगवा जड़ी की गुणवत्ता का पता लग चुका है। पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि जीवन दायिनी चिगंवा जडी की सहायता से चीन के एक चिकित्सा विज्ञानी ने १८ वर्ष से कब्र में दफन एक लाश में जान फूँक दी।

क्या पाठकगण इस सत्य पर विश्वास करेंगे? विश्वास तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि चीन सरकार के शीर्ष अधिकारियों ने भी इस बात की पुष्टि की है इस अविश्वसनीय घटना से आश्चर्यचकित चीनी अधिकारियों ने अपने वक्तव्य में कहा है कि सन् १९७२ में मृत्यु प्राप्त फेंग आयों बन्द ताबूत में पूरे १८ वर्ष तक कब्र में गड़े रहने के बाद आज जीवित है। मगर दु:ख की बात तो यह, कि जिस डाक्टर ने फेंग आयों के मृत शरीर में प्राण फूँका था उसको प्रतिबंधित दवा के प्रयोग के आरोप में एक उम्र कैदी का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है इस समय।

साम्यवादी चीन की राजधानी बीजिंग में लगभग १२ वर्ष पूर्व डा० फेंग ली हुपांग ने चिंगवा जड़ी पर अनुसंधान कार्य शुरू किया था। पाठकों को जैसाकि बतलाया जा चुका है वह दुर्लभ जीवन दायिनी जड़ी तिब्बत की संग्रीला घाटी में पायी जाती है। संग्रीला घाटी संसार की सबसे अधिक रहस्यमयी घाटी है। सर्व साधारण का प्रवेश असम्भव है-उस रहस्यमयी घाटी में, जीवन की गति अति मन्द है। काल का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता है। वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है। भूख, प्यास और निद्रा इन तीनों का वहाँ पूर्ण अभाव है। मगर स्वास्थ्य पर उनका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। मगर किसी ने युवावस्था में उसमें प्रवेश किया है तो वह सैकड़ों वर्ष तक उसी प्रकार युवा, चिर यौवन सम्पन्न और स्वस्थ बना रहेगा। अस्तु।

चीन सरकार ने चिंगवा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। जैसाकि स्पष्ट है- चिंगवा दीर्घायु प्रदान करने वाली दिव्य औषधि है।

डा० फेंग को अपने अनुसंधान में उल्लेखनीय सफलता मिली तो उन्होंने स्वीडेन के प्रख्यात चिकित्सा विज्ञानी डा० कार्ल एकेनसड को चीन की विज्ञान अकादमी स्थित अपनी प्रयोगशाला में आमन्त्रित किया।

डा० कार्ल, डा० फेंग ली की उपलब्धियों को देख कर चौंक पड़े। डा० फेंग ली एक मानव शव को पुर्नजीवित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने सरकार के सामने चिंगवा का उपयोग मानव शव पर करने का प्रस्ताव रखा और अनुमति माँगी। लेकिन सरकार ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

डा० फेंग क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने एक बहुत ही दुस्साहस पूर्ण योजना बनायी। उन्होंने १८ वर्ष पूर्व मर चुके अपने पिता आयो को ही पुनर्जीवित करने का निश्चय किया एक रात डा० फेंग कब्र से अपने पिता का शव निकाल लाए और फिर उसे प्राकृतिक ढंग से ममीकृत किया उसके बाद शव को उन्होंने संघनित चिंगवा के घोल में डाल दिया। कुछ ही दिनों बाद शव की सिकुड़ी और मुरझाई त्वचा एक दम नई हो गई। दो सप्ताह

बाद हृदय की धड़कन शुरू करने के लिए उसे कृत्रिम श्वास देने वाले यंत्र से जोड़ दिया गया। कुछ ही घंटो में आयों के १८ वर्ष से निष्प्राण शरीर में चेतना आ गई। प्रारम्भ में आयों में स्मृति शक्ति क्षीण दिखी लेकिन बाद में वह अपने जीवन के बारे में विस्तार से बतलाने लगे। यहाँ एक प्रश्न उभरता है-वह यह कि १८ वर्षो तक आयों की आत्मा कहाँ और किस स्थिति में थी? इस संबंध में उन्होंने कुछ नहीं बतलाया। किसी प्रकार डा० फेंग ली की इस महत्वपूर्ण सफलता की खबर जब सरकार को मिली तो डा० फेंग ली को पुरस्कृत और सम्मानित करने के बजाय उसने उन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया और उनके पुनर्जीवित पिता आयों को एक अज्ञात अस्पताल में पहुँचा दिया।

पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिए योग बल, तपोबल और औषधि बल हैं। इन तीन बलों में से किसी की सहायता से पुनर्जीवन प्राप्त करने का विवरण हमारे पुराणों में यत्र-तत्र मिलता है। लेकिन वैज्ञानिकों के पास इन तीनों बलों मे से कोई एक भी बल नहीं है। उनके पास कोई बल है तो वह है विज्ञान बल।

अमरीका के भौतिकविद् राबर्ट सी. डब्लू. एटिंजर जिन्होंने अपनी पुस्तक में जीवन और मृत्यु की नई परिभाषा देते हुए अमरत्व की सम्भावना पर बल दिया है। उनका कहना है कि अब आवश्यक नहीं कि मृत्यु जीवन का अन्तिम दौर हो।

अन्तर, जीवन और मृत्यु का

मृत्यु के तुरन्त बाद आधुनिक साधनों के जरिए मनुष्य को फिर से जीवित किया जा सकता है। जीवन और मृत्यु का अन्तर स्पष्ट और सरल है। एक जीवित व्यक्ति सब कुछ करता है जबकि एक मृत व्यक्ति बस यूँ ही पड़ा रहता है और कुछ समय बाद घुलने लगता है। अगर शरीर का यह घुलना रोक दिया जाए तो व्यक्ति की मृत्यु तीन चरणों मे होती है-लाक्षणिक मृत्यु जो दिल की धड़कन बन्द हो जाने,साँस रुक जाने और मस्तिष्क तरंगों के समाप्त हो जाने पर होती है। शरीर क्रियात्मक मृत्यु, शरीर जिसमे इस सीमा तक नष्ट हो जाता है कि चिकित्सा विज्ञान की कोई क्रिया उसको पुनर्जीवित नहीं कर सकती। कोशिकीय मृत्यु जो शारीरिक कोशिकाओं के पूरी-पूरी तरह नष्ट हो जाने पर होती है। कोशिकीय मृत्यु लाक्षणिक मृत्यु के ४८ घंटे बाद होती है। फिर यही कारण है कि हिन्दू धर्म में कम से कम ४८ घंटे शव को रखने का नियम है। मैंने अपने शोध से यह ज्ञात किया है कि लाक्षणिक मृत्यु पर ही जिस व्यक्ति की शवदाह क्रिया हुई है वास्तव में वही व्यक्ति प्रेत होता है क्योंकि वह पूरी तरह भूत नहीं हुआ होता।

वैज्ञानिकों का कहना है कि लाक्षणिक मृत्यु के तुरन्त बाद लाश को अत्यन्त ठण्डा करके नाइट्रोजन द्रव में सुरक्षित रखा जाए तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। प्रो० एटिंपर की पुस्तक के प्रकाशन के बाद इस विषय में वैज्ञानिकों की रुचि बढ़ी है। और अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य को पुनर्जीवित करने के लिए अमरीका में

वैज्ञानिक साधन जुटाए जा रहे हैं। अमरीका में इस समय लगभग २५ लाशें उस दिन की प्रतीक्षामें हैं जब उनको इस संसार में आँखें खुलेंगी। सभी लाशें हिमकृत हैं और एक विशेष कैपसूल में सुरक्षित रखी हुई हैं। यहां एक प्रश्न है–वह यह कि क्या कभी वे लाशें जीवित होंगी? नहीं, इसकी सम्भावना कम ही है। अगर जीवित हुईं भी तो उनमें कोई भटकती हुई अवारा लावारिस आत्मा ही प्रवेश करेगी। शरीर की वास्तविक आत्मा नहीं। क्योंकि परलोक विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि शरीर छोड़ने के बाद तीन घंटे, तीन दिन, तीन महीने या अधिक से अधिक एक वर्ष के अन्दर आत्मा अवश्य ही कहीं न कहीं अपने योग्य गर्भ उपलब्ध कर लेती है। दूसरी बात यह है कि जिस शरीर को अयोग्य समझकर आत्मा एक बार त्याग कर देती है उसमें वह पुनः प्रवेश करना नहीं चाहती। कहने की आवश्यकता नहीं ऐसी स्थिति में आत्मा कैसे अपने पूर्व शरीर में प्रविष्ट हो सकती है? रही बात योग बल, तपोबल और औषधि बल की। उनके द्वारा भी आत्मा तभी अपने पूर्व मृत शरीर में प्रवेश करती है जब उसका कहीं जन्म नहीं हुआ होता है। अस्तु।

मनीषी जुंग की दृष्टि में 'अमरत्व'

जुंग के कथनानुसार मनुष्य के सामने निर्णायक प्रश्न यह है कि वह अनन्त से संबंधित है या नहीं। एक बार उसे यह अनुभूति हो जाए कि अनन्त ही सब कुछ है तो जीवन की तुच्छ बातों के प्रति उसका मोह और आकर्षण बहुत ही कम हो जाएगा। अपने चेतन और अचेतन के बीच सामंजस्य स्थापित करके मनुष्य मरणोत्तर जीवन के रहस्य को सुलझा सकेगा। अवचेतन के भी दो रूप हैं–मनुष्य का अपना अवचेतन और सामूहिक अवचेतन, जिसकी कोख से हमसे निराले और समझ में न आने वाले सपनों का जन्म होता है। मनुष्य के अपने अवचेतन को भी सामूहिक अवचेतन से जिसका सीधा संबंध आदिकालीन प्रतिबिम्बों और धारणाओं से है विचार प्राप्त होते रहते हैं। स्वभाव से ये विचार विश्व–व्यापक होते हैं और दिक् काल की कक्षासे परे और अप्रभावित।

स्वयं अपने सपनों तथा अपने रोगियों के सपनों का विश्लेषण करके मुझे मरणोत्तर जीवन तथा आत्मा की अमरता के बारे में अपने विचारों के निर्धारण में काफी सहायता मिली है। अमरत्व को यद्यपि आज तक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सका है तथापि ऐसे असंदिग्ध अनुभव मौजूद हैं जो यही अंकित करते हैं कि मनुष्य सदा अमर है।

'मानव' प्रकृति तुच्छ इच्छा

दूसरे महायुद्ध के बाद एक अत्यन्त महत्व पूर्ण वैज्ञानिक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था। जिसका आइंस्टीन जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिकों तथा अनेक बुद्धिजीवियों ने स्वागत किया। ग्रन्थ का नाम था ''दी सोल आफ यूनिवर्स'' यानी ब्रह्मण्ड की आत्मा, लेखक थे डा० गुस्ताव स्ट्रोम वर्ग।

अपने इस विचारोत्तेजक ग्रन्थ में डा० स्ट्रोम वर्ग ने मानव के लिए विज्ञान की उपयोगिता को नई दृष्टि से देखा है। वे यह मान कर चलते हैं कि विज्ञान इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ रहा है कि ब्रह्माण्ड की व्यवस्था में मानव का उचित स्थान कौन सा है? और विज्ञान ने मानव को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करने में कितना योगदान दिया है? क्या जीवन एक उद्देश्यहीन, अर्थहीन, लयहीन और बेतुके राग के समान है? क्या उससे किसी अर्थ या उद्देश्य की आशा रखना व्यर्थ है? क्यों मनुष्य कल्पनानुकूल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता? क्यों वह यह नहीं मान सकता कि उसका जीवन प्रयोजनहीन नहीं है; वह किसी के निमित्त है; व्यर्थ नहीं?

डा० स्ट्रोम वर्ग जानते थे कि खगोल-विज्ञान के अनुसार मानव प्रकृति की एक अत्यन्त तुच्छ तथा अनिच्छित इच्छा मात्र है। मानव का जन्म, खगोल विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड की किसी गम्भीर योजना का परिणाम नहीं हैं। कभी कभी गलत आकार के कुछ पदार्थ-पिण्ड प्रचण्ड ताप अथवा प्रभावोत्पादक शीत की सतर्क मार्जन क्रिया से बचे रह गए होंगे तभी मानव जाति का जन्म हुआ होगा।

डा० स्ट्रोम वर्ग की गणना उनके जीवन काल में विश्व के इने गिने खगोलवेत्ताओं में होती थी। और वे १९१७ से १९४६ तक अमरीका की विश्व विख्यात वेधशाला ''माउण्ट विल्सन इंस्टीट्यूट आफ वाशिंगटन'' से संबंधित थे। उनकी उपर्युक्त बहुचर्चित पुस्तक को पढ़ने का अवसर मुझे १९४५ में मिला। वह पुस्तक मेरे शोध कार्य में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई-इसमें सन्देह नहीं। डा० स्ट्रोमवर्ग के सामने प्रश्न यह था- क्या हमारा जीवन-धारण-कर्त्ता शरीर तारा पदार्थ का ऐसा अंश हैं जो प्रकृति के किसी अरक्षित जल में किसी संयोगिक घटना के फलस्वरूप अपने सामान्यप्रारब्ध से मुक्त होकर और भिन्न ताप की परिस्थितियों में लाभान्वित होकर एक असाधारण गहनता की स्थिति तक पहुँच गया तथा वह सब कौतुक करता है जिसे हम जीवन कहते हैं? वे न इस मतको स्थापित करना चाहते थे और न तो इस का खण्डन ही करते थे। उनके लिए यह एक खुला प्रश्न था।

उन्होंने इस विषय पर विज्ञान की अनेक विधाओं के माने हुए चिन्तकों- डा० एफ० आर० मोल्टन, डा० वाल्टर आउन्स, सर आर्थर एडिंगटन, डा० थामस हर मार्गन, डा० जान बू दिन, डा० कारेल हूजर, और डा० ओ० एल० स्पान्सलर आदि से विचार विमर्श किया।

डा० स्ट्रोमवर्ग के ग्रन्थ के संबंध में आइंस्टीन ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा कि--बहुत कम लोग इस पेचीदा मामले को इतनी स्पष्टता और संक्षिप्तता से प्रस्तुत कर सकते थे, जितना स्ट्रोम वर्ग ने किया है। मैं जिस बात से सबसे अधिक प्रभावित हुआ वह यह थी कि उन्होंने आवश्यक तथ्यों को उपलब्ध सामग्री से बड़ी सफाई से अलग करके उन्हें एक विवेकपूर्ण एक सूत्रता प्रदान की है और युक्ति मूलक विधि से प्रस्तुत किया है।

डा० स्ट्रोम वर्ग के सिद्धान्तों को समझने के लिए पहले यह समझना आवश्यक है कि आधुनिक विज्ञान ठोस पदार्थ नहीं मानता। उसके अनुसार सभी ठोस पदार्थों की रचना अणुओं से हुई हैं। और अणुओं को भी पदार्थ की इकाई मानना गलत होगा। कारण अणुओं की रचना भी परमाणुओं प्रोटानों, न्यूट्रानों आदि के योग से हुई है। और इधर जो नये प्रयोग किये गये हैं उनके परिणामों के अनुसार तो इन परमाणुओं, प्रोटानों आदि को 'कण' मानना भी गलत होगा। क्योंकि 'कण' शब्द उनके वास्तविक स्वरूप और स्वभाव को सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं करता। उनका असली स्वरूप और स्वभाव घनीभूत तंरगाकृतियों जैसा है। उन्हें निकट से और बारीकी से देखने पर पता चलता है कि विभिन्न आवृत्तियों यानी फ्रीक्वेंसीयों के इस संकर में कणों जैसी विशेषतायें इतनी ही होती हैं कि तरंगाकृतियों की स्वर शैली अनेक स्वरों को जन्म दे सकती है। अत: वैज्ञानकि दृष्टि से देखने पर उन्हें शक्ति के केन्द्रीकरण के बिन्दुओं के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। स्वतंत्र सत्ताधारी पदार्थों के रूप में नहीं।

ज्ञानेन्द्रियों से परे एक आयाम

पाठकों को ज्ञात होना चाहिये कि विज्ञान ने एक ऐसे आयाम की कल्पना की है जिसका अस्तित्व हमारी ज्ञानेन्द्रियों से परे है। विज्ञान ने यह भी कल्पना की है हम जिस संसार में रहते हैं उसका आविर्भाव इसी अतिरिक्त आयाम वाले जगत से हुआ था। इस अतिरिक्त आयाम का स्वरूप भले ही भौतिक था या अर्ध भौतिक। और उसी से उन शक्तियों के क्षेत्रों का भी जन्म हुआ जो प्रत्येक जीवित प्राणी-मानव-पशु-वनस्पति आदि के प्रतिरूपों के साँचों की रचना का काम करता है। इन्हीं साँचों में हमारे जगत का सारा पदार्थ संग्रहीत है। ये साँचे ही धरती पर विद्यमान सारे जीवन की व्यवस्था के सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। और यह निश्चित करते हैं कि उर्वक डिम्ब से कौन जन्म लेगा घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली या आदमी। विज्ञान ने प्रत्येक प्राणी में जिस विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का अनावरण किया है वह इन कल्पित प्रतिरूपों के साँचों की रचना का एक अंग है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त को और अधिक स्पष्टता से समझाने के लिये हमें यह मानना होगा कि ब्रह्माण्ड विशुद्ध शक्ति है और पदार्थ, शक्ति का घनी भूत रूप। ऊपर जिन साँचों का उल्लेख किया गया है उनकी सत्ता पदार्थ की सत्ता से स्वतंत्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी की प्राकृतिक विशेषताएँ उसके जन्म के समय ही निश्चित हो जाती हैं। शक्ति क्षेत्रों के प्रतिकार्यों के साँचों की रचना के परिणाम स्वरूप-जो अतिरिक्त आयाम में हुई, वो दूसरे शब्दों में-हमारा जीवन तथा पृथ्वी पर पाया जाने वाला सारा जीवन इस अदृश्य आयाम में ही रचा गया था। हमारे शरीर अणुओं, परमाणुओं से निर्मित घनीभूत शक्ति के पिण्डों के अस्थाई निवास के अलावा कुछ और नहीं है। क्या विज्ञान इस प्रकार नियति का समर्थन करता है?

डा० स्ट्रोमवर्ग ने इन साँचों को उद्‌गामी शक्ति के 'स्वायत्त क्षेत्रों' की संज्ञा प्रदान की है। उनके इस सिद्धान्त पर आधारित प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि स्वायत्त क्षेत्र कोशिकाओं के विभाजन और विकास की चमत्कारी निदेशात्मक प्रक्रियाओं के लिये भी जिम्मेदार हैं। जिस अभौतिक आयाम से उनका आविर्भाव होता है-वह हमारे वर्तमान वैज्ञानिक यंत्रों की पहुँच से बाहर है। उसकी स्थिति अथवा सत्ता विज्ञान की सीमा से परे है। और उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इतना अवश्य सत्य है कि हमारे ज्ञानेन्द्रिय जगत में उसकी अन्तर्व्यष्टि इसी बाहरी आयाम से ही होती है।

विचारों का मूल श्रोत

इस क्रान्तिकारी वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हमारा मस्तिष्क हमारे मन का एक साधन मात्र है। और स्वयं हमारा मन और हमारी चेतना इन साँचों में ही विद्यमान हैं। उन्हें अलग देखने और परखने के सब प्रयास बेकार साबित होंगे। स्मृति भी इन साँचो का एक अनिवार्य अंग है। हमारा चेतन मन ८० वर्षों तक स्मृतियों का संग्रह कर सकता है।

जब मस्तिष्क की कोशिकाओं में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं और नये अणु पुराने अणुओं का स्थान लेते रहते हैं तो स्मृति कैसे अक्षुण्ण रह सकती है। इस प्रश्न के उत्तर में विज्ञान का कहना है कि अणुओं के प्रभाव से रहित कोई शक्ति क्षेत्र होना चाहिए मस्तिष्क में। ऐसा शक्ति क्षेत्र-जो न कभी बदलता हो और न कभी नष्ट होता हो।

विचारों का जन्म मन और मस्तिष्क में होता है, उनका मूल श्रोत क्या है? और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या क्या है?

इस संबंध में डा० स्ट्रोम वर्ग का उत्तर वैज्ञानिक भाषा में होते हुए भी परामनोवैज्ञानिकों और परामनोविज्ञान में रुचि रखने वालों की समझ में आसानी से आ जाएगा।

उनका उत्तर था अणुओं और परमाणुओं का कोई भी संगठन मानव विचारों का कारण या जन्म स्रोत नहीं बन सकता। विचारों के मामले में हमारा मन दूर-बोध जैसी विचार संरचना से प्राप्त 'प्रभावों' का रिसीवर मात्र है। जिन विचारों को अन्त: प्रेरणा की संज्ञा दी जाती है वे वास्तव में 'ब्रह्माण्ड की 'आत्मा' आदि सर्व व्यापक मन' से हमें प्राप्त होते हैं। बुढ़ापे में होने वाले स्मृति क्षय के बारे में विज्ञान का कहना है कि वास्तव में स्मृति क्षय कभी नहीं होता।

संचित स्मृति अगले जीवन का कारण

कहने की आवश्यकता नहीं-विज्ञान के इस सिद्धान्त को भारतीय अध्यात्म भी स्वीकार करता है। उसके अनुसार वर्तमान जीवन में पिछले कई जन्मों की स्मृतियाँ मस्तिष्क कोशिकाओं में सुरक्षित रहती हैं। वास्तव में पूर्व जीवन की स्मृतियों के आधार पर अथवा उनके अनुसार ही अगला जन्म होता है फिर होता है जीवन का निर्माण। सच

पूछा जाय तो संचित स्मृति ही अगले जीवन का कारण होती है। जो बच्चे अपने पिछले जन्म की बातें बतलाते हैं वे संचित स्मृतियों के आधार पर ही बतलाते हैं। इस संबंध में एक प्रामाणिक घटना का उल्लेख मैं आगे करूँगा।

विज्ञान के अनुसार स्मृति क्षय का आभास हमें तब होता है जब हमारा आकुल चेतन मन कुछ अप्रिय घटनाओं को याद करने से इंकार कर देता है। पर जान-बूझ कर भूली-बिसरी ऐसी यादें सम्मोहन में उजागर हो जाती हैं। इस संबंध में डा० स्ट्रोम वर्ग का कहना है कि हमने देखा है कि स्मृति हमारे ही कारण क्षीण हो सकती है। पर समूल कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। हमारे जीवित मस्तिष्क में होने वाले विद्युतीय उत्थानों के बावजूद शक्तिक्षेत्रों के प्रतिरूपों के साँचों की संरचना सदैव अक्षुण्ण रहती है। और इन उत्पातों का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। वास्तव में यह संरचना तब भी अक्षुण्ण रहती है जब शारीरिक मृत्यु होने पर मस्तिष्क का विघटन हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमारे जीवन की व्यवस्था का निर्धारण करने वाली यह संरचना अमर है और प्राकृतिक मृत्यु के परिणामों से अप्रभावित रहती है।

विज्ञान के अनुसार जिस जगत में हमारी चेतना की जड़ें काफी गहराई से पैठी हुई हैं उसे हमारे मस्तिष्क से जोड़ने का काम करती हैं हमारी स्नायु कोशिकाएँ। मृत्यु के समय हमारे मस्तिष्क क्षेत्र का नाश नहीं होता। वह अपने स्रोत पर पहुँच कर यानी दूसरे आयाम में पहुँच कर अदृश्य हो जाता है। चूँकि हमारी स्मृतियाँ इसी शक्ति क्षेत्र में अंकित होती हैं इसलिये हमारा विश्वास है डा० स्ट्रोम वर्ग कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी उन्हें बुलाया जा सकता है। कारण मृत्यु के बाद मन जड़ पदार्थ से अवरूद्ध नहीं रहता। यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि जिसे आत्मा का आवाहन कहते हैं वास्तव में वह यही है। ज्ञानेन्द्रियों से परे जिस आयाम की चर्चा की गयी है सच पूछा जाय तो वह आत्मा का लोक अथवा जगत है। इस विषय पर विस्तार से आगे चर्चा की जाएगी।

वास्तविक हम कभी नहीं मरते !

डा० स्ट्रोम वर्ग के विचारों तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रकाश में आने के बाद परलोक विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रयोग किये गए-और जो नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये गए उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य का विद्युत चुम्बकीय रूप वास्तव में ऐसा शक्ति क्षेत्र है जो भौतिक अथवा दृश्य जगत को अभौतिक जगत यानी सूक्ष्म आयाम से जोड़ता है। इतना ही नहीं शरीर और मस्तिष्क के कार्य-कलापों की व्यवस्था करने की भूमिका भी निभाता है। मस्तिष्क के माध्यम से ही संवेदनायें नियंतक चेतना तक पहुँचती हैं और उससे परे स्थित उद्गामी शक्ति संरचना के स्मृति भण्डार में भी। अर्थात् हमारा शरीर और मस्तिष्क हमारी ज्ञानेन्द्रियों से परे स्थित 'वास्तविक हम' के साधनमार्ग हैं। और शरीर तथा मस्तिष्क की समाप्ति के बाद भी इस वास्तविक हम का नाश नहीं होता। वह सदैव अजर-अमर है। विज्ञान जिस वास्तविक हम की बात करता है वह और कुछ नहीं बल्कि

आत्मा है। आत्मा को वह वास्तविक हम कहता है। इसी प्रकार वह मनुष्य के जिस विद्युत चुम्बकीय रूप की चर्चा करता है वह क्या है? वास्तव में वह मनुष्य का सूक्ष्म शरीर है।

डा० स्ट्रोम वर्ग के सिद्धान्त और जीवन के विद्युतीय सिद्धान्त, जिसके अनुसार मनुष्य विशुद्ध विद्युहैगिक (इलेक्ट्रो डायनमिक) जीव है जिसको वैज्ञानिक दृष्टि से अन्तिम रूप से यह सिद्ध करने के लिये पेश किया जाने लगा कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य की चेतना अक्षुण्ण रहती है और कभी नहीं मरती। इससे यह भी प्रमाणित होता जा रहा है कि मनुष्य के जीवन में उसका व्यक्तित्व एकाधिक बार परिवर्तित हो सकता है, पर उसकी निजी विशिष्टता कभी नहीं बदलती।

इस समय पश्चिम के जितने भी धुरन्धर वैज्ञानिक हैं उन सबने एक स्वर में उस रहस्यमय आयाम जिसे मैंने आत्मलोक कहा है-का समर्थन किया है जिसकी मूल कल्पना सर्व प्रथम डा० स्ट्रोम वर्ग ने की थी।

अपने समय के मूर्धन्य वैज्ञानिक कोईस्तलर ने अपनी नवीन कृति 'दि रुट्स आफ कोईसिडेंस' में एक स्थान पर लिखा है प्रत्येक जीवित पदार्थ में एक संघटन शील सम्भावना होती है जो संयोगों और अव्याख्येय और अविश्लेष्य घटनाओं को जन्म देती है। इस प्रकार वस्तुओं और घटनाओं का ऐसा मेल सम्भव है-जो समूहों का रूप धारण कर के अव्यवस्था में से व्यवस्था को जन्म दे सके।

विख्यात् वैज्ञानिक लेकोम्वे का कहना है कि मानव विचार की प्रक्रिया काफी गुमराह करने वाली है। उनकी शुरूआत या तो संवेदी अवलोक से जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है या सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों से होती है। कोई भी वैज्ञानिक सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों को अन्तिम सत्य नहीं मान सकता। यदि ऐसे ही कथनों को अन्तिम सत्य मान लिया जाय तो हमें पृथ्वी को चपटा ही स्वीकार करना पड़ेगा और यह भी मानना पड़ेगा कि रेजर ब्लेड की धार एकदम सीधी है। जबकि अणु वीक्षण यंत्र से देखने पर वह लहरियादार रेखा लगती है। सामान्य ज्ञान के अनुसार लोहा ठोस होता है। पर एक्सरे से देखिए तो वह छिद्रिल दिखाई पड़ेगा। सामान्य ज्ञान पदार्थ को ठोस और निर्जीव मानता है। पर आधुनिक भौतिकी के अनुसार उसमें असंख्य लघु परमाणु विद्यमान हैं। तेजी से आगे और चक्कर लगाते हुए परमाणु-जो एक दूसरे से असंयुक्त हैं चूँकि हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान हमारी ज्ञानेन्द्रियों के अवलोकन पर आधारित है इसलिये वह निरपेक्ष नहीं होता सापेक्ष होता है।

अपनी ज्ञानेन्द्रियों के सीमित अवबोधन को ही अन्तिम आधार मान कर जो भी प्रत्यक्ष ज्ञान अर्जित करेंगे-वह एकांगी और असम्पूर्ण ही होगा। क्योंकि वह यथार्थता के हमारे स्तर पर प्राप्त होता हैं। पर हमें याद रखना होगा कि यथार्थता के और भी स्तर हैं।

व्यक्त और अव्यक्त

आपको ज्ञात होना चाहिए कि आप प्राकृतिक छटाओं से भरपूर जिस सुन्दर और आकर्षक जगत में इतना सुख शान्ति मय जीवन व्यतीत कर रहे हैं वह जितना व्यक्त है उससे कहीं अधिक अव्यक्त है। जितना जाना हुआ है उससे कहीं अधिक अनजाना है। जितना उद्घाटित है उससे कहीं अधिक रहस्यमय है। उन तिमिराच्छन्न रहस्यों को खोलने के लिये शुरू से ही विज्ञान सतत् प्रयत्नशील है। परिणाम हमारे सामने है।

आज के मनुष्य को विज्ञान के विकास पर गर्व है। निस्सन्देह विज्ञान की उत्तरोत्तर प्रगति अद्भुत और आश्चर्यजनक है। पिछली कई शताब्दियों में मानव जाति का विकास उतना सम्भव न हो सका जितना पिछली दशाब्दियों में केवल विज्ञान के बल पर हुआ। मनुष्य को इसका गर्व होना स्वाभाविक है। मगर मनुष्य का यह मानना कि विज्ञान का इतना विकास मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में कभी नहीं हुआ सबसे भारी भूल होगी। वास्तविकता तो यह है कि मानव जाति का विकास एक सागर की लहर के समान है। समुद्र की लहर नीचे से उठती है। क्रमशः ऊपर उठती हुई एक विशेष ऊँचाई तक जाती है और फिर नीचे गिरने लगती है। एक विशेष निचाई तक जाकर फिर ऊपर की ओर उठने लगती है। ऊपर उठती हुई लहर यदि यह सोचे कि मुझसे अधिक ऊपर आज तक कोई लहर नहीं पहुँच पाई तो उसका यह भ्रम ही होगा। वैसे ही मानव जाति में इतिहास के विकास और ह्रास का क्रम चलता रहता है। अतीत के उज्जवल विकास की कथा पर प्रकाश डालने वाले अनेक रहस्यमय तथ्य सामने आ रहे हैं: वे रहस्यमय तथ्य विस्मय जनक और आश्चर्यजनक ही नहीं आज के विज्ञान-मस्तिष्क को चुनौती देने वाले भी हैं। आज परलोक विज्ञान के जिन रहस्यमय तथ्यों ने वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया है और उनके मस्तिष्क में कौतूहल और जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी है-वे नवीन नहीं। वे आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय तत्व वेत्ताओं और मनीषियों द्वारा उद्घाटित हो चुके हैं। उन पर विस्तृत प्रकाश पड़ चुका है और उनकी विस्तृत व्याख्या भी हो चुकी है। इतना ही नहीं उनको शास्त्र और पुराण के रूप में लिपिबद्ध भी किया जा चुका है।

सन् १९४८ ई०।

पूरे तीन वर्ष तक योगी और तांत्रिकों के रहस्यमय देश तिब्बतमें रहकर वहाँ के सिद्ध आत्माओं की शव साधना जैसी रहस्यमयी और गोपनीय तांत्रिक विद्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् जब मैं वापस लौटा तो पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान पं० महा महोपाध्याय राखाल चन्द्र भट्टाचार्य स्मृति रत्न महोदय से परिचय हो गया मेरा एक सांस्कृतिक समारोह में।

कलकत्ता के हाजरा रोड में उनका अपना काफी बड़ा मकान था। मकान तीन मंजिला था और जिसमे भवतारिणी काली का एक भव्य मन्दिर भी था। तांत्रिक विधि से

माँ महामाया की पाषाण प्रतिमा की स्थापना पंच मुण्डी आसन पर की गयी थी। प्रतिमा जागृत थी। इसमें सन्देह नहीं। सुनने में आया था कि कभी किसी समय उच्च तांत्रिक साधना में सिद्धि लाभ के लिये कभी कदा नर बलि भी हुआ करती थी मन्दिर में!माँ जगदम्बा महामाया के सम्मुख एक बारगी रोमाञ्चित हो उठा था मेरा सारा शरीर माँ के सम्मुख पहली बार खड़े होने पर। राखाल चन्द्र भट्टाचार्य स्मृति रत्न महोदय वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद, दर्शन आदि के अद्‌भुत विद्वान तो थे ही इसके अतिरिक्त तांत्रिक साधना शास्त्र के भी पूर्ण मर्मज्ञ थे महाशय। उनका अपना स्वानुभव भी था। कई प्रकार की तांत्रिक सिद्धियाँ उपलब्ध थी उन्हें। न जाने कितने दु:खी, असन्तुष्ट और पीड़ित जन उनकी तांत्रिक साधना-शक्ति से लाभान्वित हुये थे बतलाया नही जा सकता।

कहने की आवश्यकता नहीं-प्रथम साक्षात्कार में ही प्रभावित हो गया था मैं राखालचन्द्र भट्टाचार्य स्मृति रत्न महाशय से। लम्बी चौड़ी काठी का स्वस्थ शरीर। गौर वर्ण, साधना के तेज से चम-चम करता मुख मण्डल। बड़े-बड़े रक्ताभ नेत्र। चौड़ा ललाट और उस चौड़े ललाटपर लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका। गले में रुद्राक्ष और स्फटिक की मालाएँ। कन्धे तक झूलते सिर के घुँघराले स्याह बाल। दाढ़ी-मूँछ सफाचट। शरीर पर श्वेत-धवल रेशमी वस्त्र। पैरों में खड़ाऊँ। आयु बस यही साठ-पैंसठ के लगभग। उन्हें देखकर किसी प्राचीन ऋषि-मुनि की याद आ जाती थी।

राखाल बाबू कलकत्ता के 'आगमानुसंधान समिति' और 'प्राच्य ज्ञान अनुसंधान केन्द्र' के अध्यक्ष थे। आगमानुसंधान समिति वह समिति है जिसने अनेक दुर्लभ तांत्रिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। ''प्राच्य ज्ञान अनुसंधान केन्द्र'' की स्थापना ''ओरियन्टल लर्निंग रिसर्च सेन्टर'' के नाम से कलकत्ता हाई कोर्ट के जज सर जान उडरफ ने कलकत्ता में की थी। उडरफ महाशय आगम निगम शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान तो थे ही इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध लेखक भी थे। उन्होंने आर्थर एवेलन के नाम से तंत्र शास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अंग्रेजी में लेखन और प्रणयन किया था। उनकी लिखित पुस्तकों में 'शक्ति एण्ड शाक्त' और 'सर्पेन्ट पावर' अति महत्वपूर्ण पुस्तक हैं। सच तो यह है कि तंत्र के क्षेत्र में सर जान उडरफ ने जितना प्रशंसनीय कार्य किया है उतना शायद ही किसी भारतीय विद्वान ने इस शताब्दी में किया होगा।

राखाल बाबू के माध्यम से पुरातत्व विभाग के निर्देशक श्री हरिपद सरकार और मिस डेविड नील से मेरा परिचय कलकत्ता में हुआ। मिस डेविड नील एक फ्रान्सिसी महिला थीं। बर्फ जैसा सफेद रंग, नीली आँखे, सुनहले बाल और मँझोला कद। मिस नील एक घुमक्कड़ महिला थीं। योग-तंत्र के अतिरिक्त भूत-प्रेत और काला जादू आदि में उनकी विशेष रुचि थी। अपनी इसी रुचि से प्रेरित होकर उन्होंने तिब्बत की एक बार नहीं पाँच बार जीवन-मरण दायिनी हिम यात्रा की थी, जिसका रोचक वर्णन उन्होंने

अपनी पुस्तक 'माई जर्नी टू ल्हासा' में किया है। अपनी अन्तिम यात्रा में मिस नील पूरे पन्द्रह वर्षों तक तिब्बत में रहीं और बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर लामाओं से योग सीखा और उसकी साधना भी की। 'माई जर्नी टू ल्हासा' के बाद उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक है 'विद मिस्टिक एण्ड मेजीशियन्स इन तिब्बत' अपनी इस पुस्तक में उन्होंने तिब्बती लामाओं की तांत्रिक सिद्धियों के अलावा उनकी विलक्षण यौगिक क्रियाओं का भी आश्चर्यजनक वर्णन किया है।

जब मिस नील को मालूम हुआ कि मैंने भी तिब्बत की यात्रा की है और वहाँ पूरे तीन वर्ष रह कर उच्च कोटि के मानवेतर शक्ति सम्पन्न योगी और तंत्र साधकों का दर्शन-लाभ प्राप्त किया है और साथ ही अनेक गुप्त एवं रहस्यमयी योग तांत्रिक विद्याओं का अध्ययन भी किया है तो वह आश्चर्यचकित सी रह गईं।

इसी प्रकार एक दिन जब राखाल बाबू को मालूम हुआ कि मैं योग तंत्र के जटिल और दुरूह विषयों पर शोध एवं अन्वेषण कार्य कर रहा हूँ और इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तांत्रिक मठों तथा योगाश्रमों के साथ ही साथ गुप्त रूप से संचरण विचरण करने वाले सिद्ध योगियों और प्रच्छन्न भावसे निवास करने वाले तंत्र साधकों से साक्षात्कार और उनके साधना संबंधी विचारों और अनुभवों से भी अवगत होना मेरा लक्ष्य है और इसी लक्ष्य को लेकर मैंने तिब्बत की कठिन हिमयात्रा भी की है तो अति प्रसन्न हुए महाशय! बोले-तुम्हारा कार्य और उद्देश्य निश्चय ही प्रशंसनीय है। फिर थोड़ा रुक कर गम्भीर स्वर में कहने लगे-तुमको ज्ञात होना चाहिए कि योग विज्ञान, तंत्र विज्ञान, ज्योति विज्ञान,नक्षत्र विज्ञान, काल विज्ञान, वायु विज्ञान, स्वर विज्ञान, क्षण विज्ञान और परलोक विज्ञान ये नौ प्रकृष्ट विज्ञान हैं। जिनमें सबसे महत्वपूर्ण और गरिमामय अन्तिम परलोक विज्ञान ही है एक मात्र। इसलिए कि वह अन्य सभी विज्ञानों का मूलस्रोत है। उसी के गर्भ से सभी का अविर्भाव हुआ है।

'प्रकृष्ट विज्ञान' से आपका क्या तात्पर्य है मेरे इस प्रश्न के उत्तर में राखाल बाबू ने कहा-विज्ञान का उद्देश्य सत्य को खोज है। उस सत्य की खोज जिसका परीक्षण पुन: सम्भव हो सकता है। व्यवस्थित ज्ञान एवं उसके अन्वेषण का ही दूसरा नाम 'विज्ञान है'। वह उन सत्यों का और उन संबंधो का ज्ञान है जो पुन: परीक्षित हो सकते हैं। वह उन परिणामों का ज्ञान है जो प्रयोग और गवेषणा द्वारा तथा व्यक्त एवं ज्ञात से अव्यक्त और अज्ञात की ओर अग्रसर होते हुए कोई सामान्य सिद्धान्त स्थित करने की सूचना देता है और परीक्षण करता हुआ ज्ञान यानी वस्तुओं के विस्तृत क्षेत्र से जानकारी लेकर हमारे ज्ञान भण्डार की वृद्धि करता जाता है। विज्ञान और प्रकृष्ट विज्ञान में केवल इतना ही अन्तर है कि उसके सत्य की खोज का पुन: परीक्षण सम्भव नहीं। उसके सिद्धान्त अटल हैं और हैं अपरिवर्तनीय।

परलोक विज्ञान का मुख्य विषय क्या है?

राखाल बाबू ने कहा–"इस विश्व ब्रह्माण्ड में केवल दो ही सत्य हैं एक है परमात्मा और दूसरा है आत्मा।" आत्मा सत्य है और परमात्मा है परम सत्य। इसके अतिरिक्त तीसरा कोई सत्य नहीं है। इस आधार पर सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड दो भागों में विभक्त है। पहला भाग परम सत्य परमात्मा का तथा दूसरा भाग सत्य आत्मा का है। आत्मा का जो भाग है वह भी दो भागों मे विभक्त है जिसे बहिर्जगत और अन्तर-जगत कहते हैं। एक है व्यक्त और दूसरा है अव्यक्त! एक का आधार लौकिक तत्व और दूसरे का आधार है पारलौकिक तत्व। इन्हीं दोनों तत्वों को वैदिक भाषा में जडतत्व अथवा भूत तत्व और देव तत्व अथवा चेतन तत्व कहते हैं।

वेद विज्ञान के अनुसार विश्व में दो ही मूल तत्व हैं–एक है देव और दूसरा है भूत। देव तत्व का ही दूसरा नाम शक्ति तत्व अथवा चेतन तत्व है। भूत दृश्य और स्थूल है। देव या शक्ति सूक्ष्म और अदृश्य है। प्रत्येक भूत एक-एक क्रूट या ढेर है। जिसकी विधृति शक्ति देव कहलाती है। बिना देव के किसी भी भूत की पृथक सत्ता सम्भव नहीं। मूल भूत देव तत्व एक और अखण्ड है। वही सृष्टि के लिए नाना भाव व नाना रूप में परिवर्तित होता है। यही सृष्टि का मूल सूत्र है।

वैदिक सृष्टि विद्या के अनुसार शक्ति प्रजापति है। प्रजापति के दो रूप हैं– अनिरुक्त और निरुक्त। एक अमूर्त तथा दूसरा मूर्त। एक परोक्ष तथा दूसरा प्रत्यक्ष। एक ऊर्ध्व तथा दूसरा अध:। एक तत् और दूसरा एतत्। एतत् को ही 'इदं सर्वम्' कहते हैं। जो विश्वातीत रूप है वह 'तत्' है। और जो विश्वात्मक रूप है वह 'इदं सर्वम्' है। प्रजापति का ही एक रूप 'अजायमान' और दूसरा 'बहुधा विजायते' भी है। थोड़ा रुक कर गम्भीर स्वर में राखाल बाबू आगे बोले–मेरा विचार है कि तुम परलोक विज्ञान और उससे संबंधित विषयों पर शोध और खोज कार्य करो। अब तक ये अछूते ही रहे हैं। इन पर विशेष रूप से किसी का ध्यान नहीं गया है। यह सुनकर मैंने कहा–शोध और खोज के लिये सामग्री कहाँ उपलब्ध होगी?

उनकी चिन्ता तुम मत करो–राखाल बाबू उसी प्रकार गम्भीर स्वर में बोले–मेरे पुस्तकालय में तुमको परलोक विज्ञान से संबंधित विषयों की प्राचीन हस्त लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी मिल जाएँगी। जो अपने आप में अति दुर्लभ और महत्वपूर्ण हैं। इतना ही नहीं मैं तुमको दो-चार ऐसे लोगों के नाम बतलाऊँगा जो परलोक विद्या के पूर्ण मर्मज्ञ तो हैं ही इसके अतिरिक्त उनके सम्पर्क मे कुछ विशिष्ट आत्माएँ भी हैं। यदि वे चाहेंगे तो उनके द्वारा तुम्हारा मार्ग दर्शन भी होगा।

आत्माओं के द्वारा मार्ग दर्शन? चौंक कर पूछा मैंने। तो राखाल बाबू बोले–जिन दो चार लोगों को मैं जानता हूँ उनमें दुर्गा प्रपन्न भट्टाचार्य सर्वोपरि हैं। वे परलोक विद्या के

ज्ञाता व मर्मज्ञ तो हैं ही इसके अतिरिक्त भयंकर तांत्रिक भी हैं महाशय, तंत्रबल पर उनके अधिकार में कई ऐसी आत्माएँ हैं जो परलोक का सविस्तार वर्णन करती हैं।

राखाल बाबू का आग्रह टाला न गया मुझसे दुर्गा प्रपन्न भट्टाचार्य से मिलने के लिये आतुर हो उठा मेरा मन।मेरे लिये सर्वथा नवीन विषय था। इसलिए उसके प्रति जिज्ञासा और कौतूहल होना स्वाभाविक था। राखाल बाबू के पुस्तकालय में लगभग ५, ६ हजार पुस्तकों का दुर्लभ संग्रह था। सोचा पहले दुर्गा प्रपन्न भट्टाचार्य से मिल लूँ, तब परलोक विज्ञान से संबंधित पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का अध्ययन करूँ। इसलिये राखाल बाबू से पता ठिकाना लेकर एक सप्ताह के अन्दर ही भट्टाचार्य महाशय के दर्शन के लिये रवाना हो गया मैं कलकत्ता से।

एक तंत्र साधक की मृतात्मा से भेंट

चलते समय राखाल बाबू ने उनके नाम एक पत्र भी लिख कर मुझे दे दिया। जब मैं पैसेंजर ट्रेन से नैहाटी स्टेशन पर उतरा तो उस समय शाम के चार बज रहे थे। दिसम्बर का महीना था। कुहरे की हल्की धुन्ध छाने लगी थी। उस समय नैहाटी एक छोटा सा बाजार था। २०-२५ खपरैले मकान, कुछ पक्के भी। झोपड़ीनुमा १०-१२ दुकानें जिनमें मिठाई और लाई चूड़ा से लेकर पान, सिगरेट, चाय के अलावा एक छोटी सी कपड़े की भी दुकान थी। मुझे चाय पीनी थी। और फिर आगे रवाना हो जाना था। चाय की दूकान पर एक १२-१३ साल की काली कलूटी लड़की बैठी केतली में पानी गरम कर रही थी। उसने एक बार मेरी ओर देखा फिर पूछा क्या चाहिए?

एक गिलास चाय और एक पाकेट कैंची सिगरेट! मैंने शाल लपेटते हुये कहा। चाय पीकर एक सिगरेट सुलगाई। फिर पूछा-कितना? एक आने चाय के और पाँच आने सिगरेट के।

पैसे लेकर वह लड़की बोली दादा तुमको कहाँ जाना है? क्या कलकत्ते से आये हो?

मैंने सिर हिलाकर कहा-हाँ! कलकत्ता से आया हूँ। हुगली पार जाना है। नाव मिल जायेगी न?

हाँ! मिल तो जानी चाहिए! संक्षिप्त सा उत्तर देकर लड़की दूसरे ग्राहक के लिये चाय बनाने में जुट गई।

जब मैं हुगली घाट पहुँचा। उस समय साँझ की स्याह कालिमा गहरा गई थी। हुगली के उस पार नैहाटी का श्मशान था। नाव पर बैठ कर हुगली पार किया। श्मशान से ही एक पगडण्डी नुमा रास्ता घने जंगलों के बीच से होकर उस गाँव की ओर जाता था जहाँ भट्टाचार्य महाशय रहते थे। श्मशान सूना पड़ा था। रास्ते तक पहुँचते-पहुँचते साँझ

की स्याही रात के घने अन्धकार में बदल गयी। चारों ओर गहरी निस्तब्धता थी। नजर उठा कर एक बार चारों तरफ देखा। अँधेरे में कोई नजर नहीं आया। थोड़ा भय लगा। मगर फिर साहस कर जल्दी-जल्दी पैर उठाता हुआ चल पड़ा मैं सोचा आधा घण्टे में सोना पुकुर पहुँच जाऊँगा फिर भट्टाचार्य महाशय का मकान खोजते देर न लगेगी परन्तु लगातार दो घंटे तक चलने पर भी न रास्ता खत्म हुआ और न तो सोना पुकुर गाँव ही दिखलायी पड़ा। शुक्ल पक्ष की सप्तमी का चाँद निकल आया था। उसकी हल्की सफेद चाँदनी जंगल के वातावरण में फैल गई थी। क्या रास्ता भूल गया? एक बारगी सिहर उठा मेरा मन। क्या करूँ अब.......?

कहिए! रास्ता भूल गये क्या? कहाँ जाना है आपको? अचानक यह आवाज सुन कर एक बारगी चौंक पड़ा मैं। कोई उस अँधेरे-उजाले प्रकाश में चुपचाप आ गया मेरे पीछे, बिल्कुल पता नहीं चल पाया। कुछ क्षण तो भय से ठिठका रहा। मेरी हिम्मत ही नहीं की कि गर्दन घुमाकर पीछे की ओर देख सकूँ। आखिर मैंने डरते-डरते पीछे घूम कर देखा। वहाँ एक लम्बी चौड़ी काठी का गौरांग व्यक्ति उपस्थित था। जिस के गर्दन तक बिखरे काले बाल, मस्तक पर लगा सिन्दूर का टीका, गले में झूलती मालाएँ कमर में पीले रंग की रेशमी धोती और पैर मे पड़े खड़ाऊँ उसके व्यक्तित्व को भयानक बना रहे थे। धोती का दूसरा छोर पीठ पर लपेट लिया गया था। घनी भौंहों के पीछे गढ़े में धसीं हुई आँखों की पैनी दृष्टि मेरी ओर इस तरह केन्द्रित थी मानो वह मेरा पिछला सारा इतिहास अपनी आँखों से पढ़ लेना चाहता हो। ओह: अब मैं समझा। आप कलकत्ता से आए हैं। राखाल ने दुर्गा भट्टाचार्य से मिलने के लिये भेजा है। है न? मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह व्यक्ति बोल पड़ा। मैं हैरान था कि उसे यह सब कैसे मालूम हुआ? घबाराइए नहीं। जिससे मिलने आप आए हैं वह आपके सामने ही खड़ा है महाशय!

ऐं आप.....! आप ही दुर्गा प्रपन्न जी हैं? मैं आश्चर्य चकित हो कर हकलाते हुए बोला।

"हाँ भाई मैं ही हूँ।"

अँधेरे में ही झुक कर श्रद्धापूर्वक चरण स्पर्श किया मैंने।

ठीक है ठीक है। आओ चलो मेरे साथ! स्वर में कोमलता थी। और था अपनापन भी।

रास्ते में उन्होंने फिर बोलना शुरू किया परलोक विद्या पर शोध-खोज करने के लिए प्रेरित हुए हो न! बड़ा ही कठिन कार्य है, समझे न,उसके विषय शीघ्र समझ में नहीं आते। क्या बतलाऊँ मैं आपको? परलोक विद्या के सारे रहस्यों के लिये ही तो मैंने तंत्र साधना की थी।

'हे भगवान्'! कैसे सारी बातें मालूम हो गई अपने आप इन महाशय को! मैं आश्चर्य में पड़ गया। फिर सोचा तांत्रिक हैं। किसी चमत्कारी तंत्र विद्या के जरिए सब मालूम कर लिया होगा।

अब तक चाँद काफी ऊपर आ गया था। उसकी पीली रोशनी में सारा वातावरण रहस्यमय लग रहा था। लगभग १५-२० मिनट ही चलने के बाद सामने केले का सुन्दर बगान दिखलायी पड़ा। उस घने बगान के पीछे एक छोटा सा एक मंजिला मकान था। मकान के सामने फूलों की बगिया थी जिसमें रातरानी, कृष्णचूड़ा और मल्लिका के फूल खिले हुये थे जिनके गंध से वातावरण गमक रहा था। चाँद की हल्की चाँदनी में क्यारियों में खिले हुये फूल बड़े ही मोहक और सुन्दर लग रहे थे। वातावरण में सिहरन के अलावा एक खिन्नता भरी उदासी भी थी। मकान में छोटे बड़े चार कमरे थे। एक कमरे में ठसाठस तमाम पुस्तकें भरी हुई थीं। दूसरे कमरे में काली की मूर्ति स्थापित थी। देखा- मूर्ति के सामने शराब की दो तीन बोतलें पड़ी थीं। कुछ जवा के सूखे मुरझाये फूल भी बिखरे थे। भीतर घुसते ही भट्टाचार्य महाशय ने आवाज दी श्यामला......! ओ श्यामला!

दूसरे ही क्षण १८-२० वर्ष की एक तन्वंगी सामने वाले कमरे से निकल कर आ खड़ी हुई। बड़ी ही सुन्दर और आकर्षक युवती थी वह। बंगाल का सारा सौन्दर्य जैसे उसमें भरा था।

सिर उठा कर श्यामला की ओर देखते हुये भट्टाचार्य महाशय बोले-यह मेरी भैरवी है। तंत्र की दीक्षा लेकर विधिवत् तंत्र साधना कर रही है यह।

मैंने श्यामला की ओर देखा, साधना के दिव्य तेज से उसका चेहरा दप-दपा रहा था, आँखों की ज्योति में प्रखरता थी, भट्टाचार्य जी ने इशारे से कुछ कहा, तुरन्त श्यामला भीतर चली गई और जब थोड़ी देर बाद वापस लौटी तो उसके हाथ में भोजन की थाली थी। उस समय मुझे बहुत जोर की भूख लगी थी। भोजन में सभी कुछ था। पूड़ी, कचौड़ी, दो सब्जियां, रायता, अचार, दही, सन्देस और एक कटोरी में खीर भी। इतनी जल्दी इतना व्यञ्जन कैसे तैयार हो गया ? आश्चर्य हुआ। मेरे साथ भट्टाचार्य महाशय ने भी भोजन किया। भोजन के बाद जान-बूझ कर 'परलोक विद्या' की चर्चा छेड़ दी मैंने फिर तो दुर्गा प्रपन्न भट्टाचार्य महाशय धारा प्रवाह बोलने लगे। भाषा प्राञ्जल थी और थी सरल। समझने में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ।

परलोक विज्ञान के रहस्य के परिचित होने के लिए सर्वप्रथम सृष्टि संरचना को समझ लेना आवश्यक होगा। भट्टाचार्य महाशय चाँदी के डिब्बे से पान का एक बीड़ा निकाल कर मुँह मे डालते हुए कहने लगे-हम अपनी सृष्टि को लेकर बहुत भ्रम में जीते हैं। वह यह कि हमारी ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ में जो भी पदार्थ या तरंगे आती हैं मानों वही अस्तित्व है। शेष कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इस लोक का जो अंश हमें आँखों

से दिखलायी पड़ता है हमें कानों से सुनाई पड़ता है वह पूर्ण अस्तित्व का कदाचित सहस्रांश या लक्षांश भी नहीं है। इस संबंध में पश्चिम के अनुभवी विद्वानों ने जो पुस्तकें लिखी हैं। उनमे सी० डी० डब्ल्यू० लैण्ड वीटी की 'द अदर साइड आफ डेथ' और श्रीमती एनी बेसेन्ट की 'लाइफ आफ्टर डेथ' अपने आप में अति महत्वपूर्ण हैं। इसलिए कि उन दोनों पुस्तकों में लेखकों का स्वानुभव विशेष रूप से संलग्न है।

विश्व के सात भाग, सात जगत और संबंधित सात शरीर

भट्टाचार्य जी ने आगे बतलाया कि सत्य रूपी आत्मा के भाग को 'विश्व' और परमसत्य रूपी परमात्मा के भाग को 'विश्वातीत' कहते हैं। विश्वातीत, 'विश्व' के बाहर है। विश्वातीत में कोई लोक या लोकान्तर नहीं है। लेकिन विश्व में असंख्य लोक लोकान्तर हैं। जिन्हें तत्व वेत्ताओं ने मुख्य रूप से सात भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक भाग अपने आप में एक स्वतंत्र जगत है। और प्रत्येक जगत में न जाने कितने लोक लोकान्तर हैं। और उन लोक-लोकान्तरों में न जाने कितने प्रकार के प्राणी हैं! बतलाया नहीं जा सकता (इस संबंध में आगे पढ़ें अनजाने लोक के अनजाने प्राणी) वैसे तो सातों जगत स्वतंत्र हैं। लेकिन आन्तरिक रूप से एक दूसरे से संबद्ध हैं। वे नीचे से ऊपर तक क्रमश: सूक्ष्मतिसूक्ष्म होते चले गए हैं। एक बहुत बड़ी अद्‌भुत बात तो यह है कि सातों जगत में संरचना जिन सूक्ष्म से सूक्ष्मतम अणु-परमाणुओं से हुई है उन्हीं सबसे मनुष्य के सात शरीरों की भी रचना हुई है। वे सातों शरीर आत्मा के वाहक रूप हैं। जब तक आत्मा में जीव भाव है-तब तक वह बिना शरीर के रह ही नहीं सकती। एक को छोड़ते ही दूसरे को पकड़ लेती है।

यह तुमको मालूम होना चाहिए कि जिन अणु-परमाणुओं से जिस जगत की संरचना हुई है और रचना हुई है शरीर की वह शरीर उसी जगत से संबंधित होता है। आत्मा उसी शरीर द्वारा उस लोक में प्रवेश करती है। इस अवस्था में अन्य शरीर बीज रूप में विद्यामान रहते हैं। जैसे इस स्थूल पार्थिव जगत से संबंधित स्थूल पार्थिव शरीर है। इस जगत के लिये आत्मा का वाहक स्थूल पार्थिव शरीर है। आत्मा स्थूल शरीर के द्वारा इस जगत में प्रवेश करती है। ऐसी अवस्था में स्थूल शरीर में अन्य शरीर बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। बीज के स्थान को ही केन्द्र या चक्र कहते हैं। योग में चक्र का काफी महत्व है। पहुँचे हुए योगी गण उसी चक्र के द्वारा संबंधित जगत में बैठे ही बैठे चले जाते हैं। सात जगत और सात शरीर की तरह सात चक्र भी हैं। प्रत्येक चक्र एक शरीर और एक जगत से संबंध रखते हैं। चक्रों की चर्चा आगे करूँगा।

समस्त सृष्टि के मूल में मात्र केवल एक ही तत्व है और वह तत्व है शून्य तत्व। शून्य का प्रतीक बिन्दु है और बिन्दु शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। सृष्टि के पूर्व शून्य था। शून्य के सिवाय और कुछ न था। लेकिन जहाँ कुछ नहीं होता वहीं बहुत कुछ होता है। और उसी बहुत कुछ का नाम शक्ति है। परलोक विद्या के अनुसार ८ बिन्दु के संयोग

से सर्वप्रथम १ सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेणु का निर्माण हुआ है और इसी प्रकार क्रम से निर्माण हुआ है ८ सू० सू० रेणु से १ सू० रेणु। ८ सू० रेणु से १ सू० सू० परमाणु। ८ सू० सू० परमाणु से १ सू० परमाणु। ८ सू० परमाणु से १ परमअणु। ३ परम अणु से १ असरेणु। ६ असरेणु से १ सू० सू० अणु। इसी स्थान से बहिर्जगत प्रारम्भ होता है। १ सू० सू० अणु पर्यन्त अन्तर्जगत है।

८ सू० सू० अणु से १ सू० अणु का निर्माण होता है। इसी सूक्ष्म अणु को विज्ञान की भाषा में परमाणु भी कहते हैं। ८ परमाणु का यानी ८ सू० अणु का १ अणु होता है। इसी अणु और परमाणु से स्थूल दृश्यमान बहिर्जगत की रचना हई है। अन्तर्जगत आत्म परम सत्ता के अन्तर्गत है और बहिर्जगत है वस्तु परम सत्ता के अन्तर्गत। अन्तजर्गत के संबंध मे भारतीय तत्व वेत्ताओं ने कहा है कि जो यह तत्व की समष्टि क्षय शक्ति है वही जगत का एक मात्र केन्द्र है और उसी को अन्तर्जगत कहते हैं। अब तो अन्तर्जगत के अस्तित्व को वैज्ञानिकों ने भी एक स्वर में स्वीकार किया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'हिसेल वुड' का कहना है कि अन्तर जगत की वास्तविकता का खण्डन नहीं किया जा सकता। उसकी वास्तविकता का प्रत्याख्या आस-पास की सम्पूर्ण सत्ता को एक दम अस्वीकार करने के समान है। उसकी अर्थवत्ता को कम करना, उस को महत्त्व न देना, जीवन के लक्ष्य को ही गिराना है। और उसे प्राकृतिक चयन के उत्पाद की संज्ञा दे कर उड़ा देना निरा तर्काभास है।

भट्टाचार्य महाशय ने कहा-आत्म परम सत्ता सब्जेक्टिव और वस्तु परक सत्ता अब्जेक्टिव है। एक मात्र यही कारण है कि वस्तु परम सत्ता से संबंध रखने वाली घटनाओं और अनुभवों का प्रमाण तो दिया जा सकता है लेकिन आत्म परक सत्ता से संबंधित घटनाओं और अनुभवों का नहीं। क्योंकि पहली सत्ता आत्म-प्रत्यक्ष है और दूसरी सत्ता है इन्द्रिय प्रत्यक्ष।

आत्मा के वाहक रूप सात शरीर कौन-कौन से हैं और उनका किन लोक जगत से संबंध है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में महाशय ने बतलाया कि बिन्दुसे लेकर अणु पर्यन्त की चर्चा मैंने की है। पहले तुमको यह बतला दूँ कि सात शरीर कौन-कौन से हैं। स्थूल शरीर (फिजिकल बाडी) आकाश शरीर (इथरिक बाडी) इस शरीर को वासना शरीर, भाव शरीर और प्रेत शरीर भी कहते हैं। सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बाडी) मनस शरीर (मेण्टल बाडी) आत्मिक शरीर (स्पिरिच्यूअल बाडी) ब्रहम शरीर (कास्मिक बाडी) अन्तिम सातवाँ शरीर है निर्वाण शरीर (बाडी लेस बाडी)।

इन्हीं के अनुसार सात जगत अथवा सात लोक भी हैं। जिनके नाम क्रमशः ये हैं (१) स्थूल जगत (२) भाव जगत (३) सूक्ष्म जगत (४) मनोमय जगत (५) आत्म जगत (इसे वैश्वानर लोक भी कहते हैं) (६) ब्रह्म जगत (इसी को ब्रह्म लोक अथवा ऋषि मण्डल कहते हैं) (७) अन्तिम सातवाँ जगत है निर्वाण जगत। इसके बाद परम

शून्य है। परम शून्य का मतलब है 'बिन्दु'। तंत्र के शाम्भव दर्शन के अनुसार समग्र। सृष्टि के मूल में एक मात्र बिन्दु है। तंत्र में बिन्दु का मतलब है 'शक्ति'। वह शक्ति जिसने अपने आप को दो रूपों में विभक्त किया है-पुरुष तत्व के रूप में एवं स्त्री तत्व के रूप में। इन दोनों तत्वों के सम्यिक्षण योगा योग अथवा मिथुन भाव से सारी सृष्टि निर्मित है। जैसा कि तुमको बतला चुका हूँ-८ बिन्दु के योग से १ सू० सू० रेणु का निर्माण होता है।

(१) निर्वाण जगत और निर्वाण शरीर

और उसी १ सू० सू० रेणु से निर्वाण जगत और उससे संबंधित निर्वाण शरीर की रचना हुई है। मानव शरीर में इस जगत और शरीर का केन्द्र है सहस्रार चक्र।

निर्वाण जगत 'विश्व' के केन्द्र में स्थित है। पिछले छ: शरीरों का क्रमश: त्याग कर आत्मा विशुद्ध रूप में अपने निर्वाण शरीर द्वारा इस परम दिव्य लोक में प्रवेश करती है। इस जगत की उपलब्धि है परम शान्ति। इसी जगत में आत्मा को भगवान शंकर के रूप में पुरुष तत्व का भगवती पार्वती के रूप में स्त्री तत्व का सहस्त्र दल कमल के ऊपर दर्शन लाभ होता है। और उसके पश्चात् वह परम निर्वाण को प्राप्त हो जाती है। आत्मा की लोक यात्रा की समाप्ति यहाँ हो जाती है। परम निर्वाण उसकी परम और अन्तिम उपलब्धि है।

(२) ब्रह्म जगत और ब्रह्मशरीर

ब्रह्म जगत और ब्रह्म शरीर की रचना १ सूक्ष्मरेणु से हुई है। मानव शरीर में इन दोनों का केन्द्र है आज्ञा चक्र। ब्रह्म जगत उषा कालीन धवल प्रकाश जैसा आलोकमय है। इस जगत में प्रवेश करने वाली आत्मा दिव्य आत्मा कहलाती है। दिव्यआत्मा अपने ब्रह्म शरीर द्वारा इस जगत में प्रवेश करती है। ब्रह्म जगत के अन्तर्गत तीन मण्डल हैं। पहले मण्डल को ऋषि मण्डल, दूसरे मण्डल को देव मण्डल और तीसरे मण्डल को सिद्ध मण्डल कहते हैं। पहले मण्डल में रितम्भरा प्रज्ञा के अधिकारी ऋषिगण निवास करते हैं। हमारे यहाँ जितने ऋषियों का विवरण मिलता है वे लोग इसी मण्डल से आये थे और मानव शरीर धारण कर आध्यात्मिक उन्नति में मनुष्य जाति को योग दान दिया था। वेदों के प्रणेताओं, उपनिषदों का मनीषियों और धर्मशास्त्र के रचयिताओं का संबंध इसी ऋषि मण्डल से समझना चाहिए। ऋषि मण्डल के नीचे देव मण्डल है। इसमें दो प्रकार की देवात्माएँ निवास करती हैं। पहली नित्य और दूसरी नैमित्तिक। नित्य देवात्मा स्थायी निवासिनी हैं। नैमित्तिक हैं स्थायी निवासिनी। ऋषियों की तरह इन दोनों प्रकार की देवात्माओं का संबंध मानव लोक से है। अन्तर केवल यही है कि नित्य देवात्माएँ अपने स्थान पर रहते हुए मानव मस्तिष्क का संचालन करती हैं। जबकि नैमित्तिक देवात्माएँ मानव कल्याण के लिए मानव शरीर में भूलोक में भी अवतरित हुआ करती हैं। ऋषियों की भी यही स्थिति है। नित्य ऋषि गण अपने स्थान से मानव मस्तिष्क का संचालन करते

हैं जबकि नैमित्तिक ऋषिगण मानव रूप भी धारण करते हैं। और इसका अवसर नहीं मिलता है तो वे भी अपने स्थान से मानव मस्तिष्क से आवश्यकता पड़ने पर सम्पर्क स्थापित करते हैं। अस्तु देव मण्डल के नीचे सिद्ध मण्डल हैं। इसमें भी नित्य और नैमित्तिक सिद्ध गण निवास करते हैं।

नित्य का मतलब मैं समझ गया। लेकिन नैमित्तिक से आपका का क्या आशय है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में भट्टाचार्य ने कहा-नैमित्तिक ऋषि देवता और सिद्ध से तात्पर्य उनसे है-जिन्होंने मानव शरीर द्वारा साधना और तपस्या कर ऋषित्व, देवत्व और सिद्धित्व को प्राप्त किया है और उसके बल पर ब्रह्म शरीर, देव शरीर और योग शरीर धारण कर उनसे संबंधित मण्डलों में प्रवेश किया है। ऐसे लोग इच्छानुसार मानव शरीर में जन्म लेकर संसार का कल्याण करते हैं और यथा समय पुन: अपने मण्डल में चले जाते हैं।

(३) आत्म जगत और आत्म शरीर

२ सू० रेणु द्वारा निर्मित १ रेणु से आत्म जगत और आत्म शरीर की रचना हुई है। आत्म शरीर और आत्म जगत आत्मा का अपना निज शरीर और निज लोक है। मानव शरीर में इनका केन्द्र है विशुद्ध चक्र। आत्मा अपने वाहक रूप आत्मशरीर द्वारा अपने लोक में प्रवेश करती है। आत्मलोक आत्मा का विश्राम स्थल है। यहाँ विशुद्ध और दिव्य शब्द का प्रयोग आत्मा के लिये नहीं होता। बस 'आत्मा' केवल आत्मा है। योगी गण विशुद्ध चक्र में चित्त को एकाग्र कर आत्म साक्षात्कार और आत्म ज्ञान प्राप्त करते हैं। नित्य आत्माएँ अपने लोक की स्थायी निवासिनी हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर धर्म की स्थापना, लुप्त प्राय शास्त्रों की रचना और मानव को अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से उच्चकुल में मानव रूप में अवतरित होती हैं।

अनित्य आत्माएँ वहाँ की अस्थायी निवासिनी हैं। वे आत्मायें अपने पुण्य बल और चरित्रबल के अतिरिक्त सत्कर्मों व शुभ संस्कारों द्वारा आत्मलोक को उपलब्ध होती हैं। और वहाँ अपने शुभ फलों को भोगने के बाद पुन: संसार में वापस लौटकर किसी उच्चकुलीन अथवा किसी राज परिवार में मानव रूप में अवतरित हो जाती हैं।

एक बात और बतला दूँ-भट्टाचार्य जी बोले। नित्य आत्माएँ ज्ञान-विज्ञान में श्रेष्ठ होती हैं। वे सभी प्रकार के ज्ञान और सभी प्रकार के विज्ञान के मौलिक स्वरूप से परिचित होती हैं और सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्य से भी। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि संसार में अब तक सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नतियाँ और उपलब्धियाँ हुई हैं-वे सब मानव मस्तिष्क को प्रेरित कर अदृश्य रूप से इन्हीं नित्य आत्माएँ द्वारा हुई हैं और भविष्य में बराबर होती रहेंगी।

(४) मनोमय जगत और मनोमय शरीर

२ रेणु के संयोग से बने १ सू० सू० परमाणु द्वारा मनोमय जगत और मनोमय शरीर की रचना हुई है। मानव शरीर में इन दोनों का केन्द्र है अनाहत चक्र। मनोमय जगत में आत्मा अपने मनोमय शरीर द्वारा प्रवेश करती है। हमारे तत्ववेत्ताओं ने मनोमय जगत को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया है। वास्तव में ये चारों भाग मनोमय जगत के उप जगत हैं। चारों अपने आप में स्वतंत्र जगत अथवा लोक हैं।(१)प मा जगत(२) मानसिक जगत (३) विचार जगत (४) बुद्धि जगत। कुछ लोग इन्हें परामानसिक लोक, मानसिक लोक, विचार लोक और बुद्धि लोक भी कहते हैं। इन चारों लोकों में प्रवेश करने वाली आत्माओं के मनोमय शरीर में लोक के प्रभाव स्वरूप थोड़ा अन्तर हो जाता है। अदृश्य रूप से इन चारों लोकों का संबंध मनुष्य के अवचेतन मन, चेतन मन, विचार और बुद्धि से है।

अपने अवचेतन मन, चेतन मन, विचार और अपनी बुद्धि के द्वारा प्रत्येक मनुष्य इन चारों लोकों से अनजाने में जुड़ा हुआ होता है जिसके फलस्वरूप उसे बराबर इन लोकों से परामानसिक और मानसिक शक्ति तथा साथ ही साथ विचार शक्ति प्राप्त होती रहती है और प्राप्त होता रहता है बराबर बुद्धि बल भी। वास्तव में मनोमय जगत के ये चारों लोक इन चारों शक्तियों के एक मात्र मूल स्रोत हैं।

मनोमय जगत में दो प्रकार की आत्माएँ निवास करती हैं। पहली वे जो वहाँ की स्थायी निवासिनी हैं और जिन्हें गुह्य आत्मा कहते हैं। दूसरी वे जो वहाँ अस्थायी निवासिनी हैं और जिन्हें जीवात्मा कहते हैं। जीवात्मा वह आत्मा है जो मनुष्य जीवन व्यतीत कर स्थूल जगत से वहाँ पहुँचती है और पहुँचने पर सर्वप्रथम अपने जीव-भाव का ज्ञान होता है। जीव-भाव का ज्ञान होते ही उससे मुक्त होने का प्रयास करने लग जाती है। अगर प्रयास सफल रहा तो ऊपर के लोकों में चली जाती है। अन्यथा नीचे के लोकों से गुजर कर अन्त के स्थूल जगत में आ जाती है। और संस्कार के अनुसार किसी मध्यम कुल में जन्म ले कर अपने कार्य क्षेत्र में संघर्ष करती है। आगे बढ़ती है और अन्त में उन्नति के शिखर पर पहुँच जाती है। लेकिन उसके साथ विडम्बना यह है कि उसकी आयु इतनी कम होती है कि शिखर पर पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाती है। जिसके फलस्वरूप वांच्छित सुख भोग नहीं पाती।

ऐसी आत्माओं ने यदि अपने जीवन काल में अपनी मानसिक शक्ति का विकास किया है तो परामानसिक जगत में, यदि अपनी विचार शक्ति का विकास किया है तो विचार जगत में और यदि अपनी बुद्धि का विकास किया है तो बुद्धि के जगत में, लौट कर प्रवेश करती हैं। जहाँ उन्हें स्थायी निवासिनी गुह्य आत्माओं द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद जब वे पुनः स्थूल जगत में जन्म लेती हैं तो उनका

विचार ज्ञान और उनकी बुद्धि अत्यधिक प्रखर होती है। इतना ही नहीं उनका मनोबल भी बहुत ऊँचा होता है। जन्म लेने वाली ऐसी ही आत्माओं को विचार वान, ज्ञान वान, बुद्धिमान और मनोबल सम्पन्न व्यक्ति कहा जाता है। उनके उच्च विचार, उच्चज्ञान और उनकी प्रखर बुद्धि से परिवार और समाज का कल्याण तो होता ही है इसके अतिरिक्त देश की उन्नति में भी वे सहायक सिद्ध होते हैं। वे अपने मनोबल से ऐसे ऐसे कार्य करते हैं जिसे देखकर लोग आश्चर्य चकित हो उठते हैं। अपने इसी मनोबल के कारण जब वे शरीर त्याग करते हैं तो उनकी आत्मा बिना किसी रोक-टोक के सीधे मनोमय जगत के परामानसिक भाग में प्रवेश करती है। वहाँ कितने समय तक उनका वास होता है यह तो बतलाया नहीं जा सकता लेकिन वे योग्य व्यक्ति के मस्तिष्क से सम्पर्क स्थापित कर उसे परामानसिक शक्ति अवश्य प्रदान करती हैं।

विश्व में सर्वत्र आत्मा का अस्तित्व

मैंने घड़ी की ओर देखा-ग्यारह चालीस, अरे इतना ही बजा है! मेरे मुँह से निकल गया अचानक। भट्टाचार्य महाशय थोड़ा मुस्कराए फिर बोले यहाँ तुमको समय की गति मन्द ही मिलेगी।क्या विश्राम करने की इच्छा है? .....अगर विश्राम करोगे तो फिर समय नहीं मिलेगा तुमको मुझसे बात करने का। इतना कहकर महाशय ने फिर एक बीड़ा पान मुँह में दबाया और आगे बोलने लगे। इस विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वत्र आत्मा का आस्तित्व है। कोई ऐसा लोक अथवा कोई ऐसा जगत नहीं है जहाँ आत्मा की उपस्थिति न हो। जहाँ आत्मा की सत्ता न हो। स्थूल जगत से लेकर निर्वाण जगत पर्यन्त एक ही आत्मा अपने संस्कार और अपनी उपलब्धियों के अनुसार विभिन्न नाम रूप और विभिन्न संज्ञा धारण करती है। अपनी योग्यता और अपने स्तर के आधार पर वह स्वयं अपने लिए जगत अथवा लोक का चुनाव कर लिया करती है। जब वह स्थूल जगत, भाव जगत और सूक्ष्म जगत में निवास करती है तो उसे मनुष्यात्मा, प्रेतात्मा और सूक्ष्मात्मा कहते हैं। इसी जगत और निर्वाण जगत में निवास करती है तो क्रमश: उसे कहते हैं-जीवात्मा, आत्मा, दिव्यात्मा और विशुद्धात्मा।

स्थूल जगत, भाव जगत और सूक्ष्म जगत इन तीन जगत को छोड़ कर शेष जगत में दो प्रकार की आत्माएँ निवास करती हैं। एक वह जो वहाँ की स्थायी निवासनी हैं। दूसरी वह जो वहाँ अन्य लोकों से पहुँची हैं। और कुछ समय निवास करने के बाद नीचे के लोकों में उतर आती हैं या फिर ऊपर के किसी लोक में चली जाती हैं।

परामानसिक जगत की स्थायी आत्माएँ

वैसे तो परामानसिक जगत अपने आप में एक स्वतंत्र क्षेत्र है। लेकिन परामानसिक शक्ति के प्रभाव में मनोमय जगत के सभी भाग अथवा सभी क्षेत्र हैं। यदि तांत्रिक दृष्टि से देखा जाए तो इस विश्व ब्रह्माण्ड में तीन ही महत्व पूर्ण महा शक्तियाँ हैं-

तीन महत्वपूर्ण शक्तियाँ

पहली है प्राण शक्ति, दूसरी है मन: शक्ति और तीसरी है आत्म शक्ति। प्रथम तीन जगत में प्राण शक्ति क्रियाशील है। मनोमय जगत में साम्राज्य है मन: शक्ति का, शेष जगत आत्म शक्ति का क्षेत्र है। तंत्र में इन्हीं तीनों महाशक्तियों को क्रमश: महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के नाम से सम्बोधित किया गया है। मन: शक्ति का जो परामानसिक रूप है-वह योगतंत्र की कुण्डलिनी शक्ति है। जैसे स्थूल जगत में सर्वत्र प्राण के ही विभिन्न रूपों का साम्राज्य है उसी प्रकार मनोमय जगत में सर्वत्र परामानसिक शक्ति ही विभिन्न रूपों से चैतन्य और क्रिया शील है।

परामानसिक शक्ति एक ऐसी परम शक्ति है जो समस्त गुण-धर्मों का मूल स्रोत है। इसीलिए इसे 'परा शक्ति' कहते हैं। परा शक्ति का मतलब है जो प्रकृति से 'परे' है। लौकिक जगत में प्रकृति-शक्ति है और पारलौकिक जगत में है परा शक्ति यानी परा-मानसिक शक्ति।

परामानसिक जगत में स्थायी आत्माओं के तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, आदि हैं। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत हैं बेताल, पिशाच, गुह्यक सिद्ध, भूत आदि। तीसरे वर्ग के अन्तर्गत हैं हाकिनी, डाकिनी, शाकिनी आदि प्रबल तमोगुणी शक्तियाँ। तीनों वर्ग की मनोमय शरीर धारिणी आत्माएँ बराबर मनुष्य जाति से अगोचर रूप से सम्पर्क बनाए रखती हैं। इन सबके कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं। गति-मति और गुण-धर्म भी अलग अलग हैं। थोड़ा समझाना पड़ेगा तुमको। क्योंकि इनके संबंध में काफी भ्रान्तियाँ हैं। पहले तुमको यक्षों के विषय में बतलाऊँगा। इसलिए कि इनका मनुष्य जाति से ऐतिहासिक संबंध रहा है।

यक्ष : यक्ष-यक्षिणियों के शरीर का रंग नीला और कद बहुत ऊँचा होता है। यक्षों का व्यक्तित्व अत्यधिक आकर्षक होता है। यक्षिणियाँ भी कम सुन्दर नहीं होतीं। उनका वक्ष उन्नत और शरीर सुगठित होता है। जहाँ यक्ष तंत्र-मंत्र और जादू टोना आदि के अधिकारी हैं वहीं यक्षिणियाँ भी सभी प्रकार की मनोकामना और सभी प्रकार की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली मानी जाती हैं। तंत्र में यक्षिणियों की साधना और सिद्धि का विस्तृत वर्णन किया गया है। लेकिन इनकी साधना काफी दुष्कर है। सबके वश की बात नहीं। विरला ही कोई यक्षिणी सिद्ध कर पाता है। समझे न! अगर सिद्ध हो गई तो फिर क्या पूछना! उसकी सहायता से जो चाहे वह कर सकता है मनुष्य। जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है वह। यक्ष भी कम नहीं हैं। वे अत्यधिक विलास प्रिय और भोगी होते हैं। एक विशिष्ट तांत्रिक सम्प्रदाय है। नाम है शाक्त सम्प्रदाय। वास्तव में इस सम्प्रदाय के जनक यक्ष ही हैं। हमारे देश में एक ऐसा भी समय था जब यक्ष लोग मानव रूप में यहाँ निवास करते थे। तुमको मालूम होना चाहिए हमारे देश में आर्यों के आने के पहले कई आर्येतर जातियाँ थी। जिनमें यक्ष और रक्ष इन दो जातियों का प्रभाव सर्वाधिक था।

रक्ष ही आगे चलकर राक्षस कहलाए। ये दोनों जातियाँ राजसी और तामसिक वृत्ति की थीं। जबकि आर्य सात्विक थे। जहाँ आर्य आनन्द वादी थे। वहीं यक्ष विलासवादी और राक्षस हठ वादी थे। इन तीनों कि शिष्ट जातियों का अपना-अपना धर्म था। आर्यों का वैष्णव धर्म, यक्षों का शाक्त धर्म और राक्षसों का शैव धर्म था। तीनों अपने-अपने धर्म के उन्नायक थे। तीनों धर्मों में शक्ति की उपासना और साधना थी। लेकिन तीनों में शक्ति का स्वरूप भिन्न-भिन्न था। वैष्णव धर्म में शक्ति पुरुष पराक्रम के रूप में थी। शाक्त धर्म मे शक्ति स्त्री के रूप में मुख्य थी जबकि शैव धर्म में वह स्त्री और पुरुष दोनों रूपों में थी। लेकिन उसका पुरुष वैष्णव धर्म का पुरुष नहीं था। स्त्री-पुरुष की संयुक्त सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित थी वह। वही संयुक्त सत्ता आगे चलकर अर्ध-नारीश्वर और लिंग व अर्घ्य के रूप में शैव धर्म का प्रतीक बनी। कहने की आवश्यकता नहीं-तीनों धर्मों के सिद्धान्तों के आधार पर शक्ति के तीनों रूपों की जो विशेष साधना उपासना पद्धति निर्मित हुई उसी का नाम क्रमश: वैष्णव तंत्र, शक्ति तंत्र और शैव तंत्र है। तंत्र का मतलब है शक्ति साधना की गुह्य पद्धति। समझ गये न? कालान्तर में इनके अनुयायियों का जो सम्प्रदाय बना वह है वैष्णव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदाय। वैष्णव, शाक्त, शैव धर्म; वैष्णव, शाक्त, शैव तंत्र और वैष्णव, शाक्त, शैव सम्प्रदाय-मुख्य हैं। कालान्तर में इन्हीं के गर्भ से समय-समय पर अनेक धर्म, अनेक तंत्र और अनेक सम्प्रदायों ने जन्म लिया।

गन्धर्व और किन्नर: भट्टाचार्य महोदय अपने विषय के उद्‌भट विद्वान हैं-अब तक के विषय प्रसंग से समझते देर न लगी मुझे। सिर घुमाकर खिड़की के बाहर देखा; घोर अन्धकार, चाँद का कहीं अता-पता नहीं। अचानक समवेत स्वर में सियार हुआँ-हुआँ करने लगे। तभी नीरवता भंग हुई कमरे की, भट्टाचार्य महाशय बतला रहे थे-गन्धर्वों का वर्ण पीला होता है और किन्नरों का होता है श्याम। दोनों ठिगने कद के और गठीले शरीर के होते हैं। उनके सिर के बाल काले और घुँघराले होते हैं। नेत्र बड़े-बड़े और झील जैसे गहरे होते हैं। गन्धर्व गायन और नृत्य कला में पारंगत होते हैं। जबकि किन्नर संगीत में। मानव इतिहास में अब तक गायन नृत्य और संगीत में जितनी जो उन्नति हुई है उसके पीछे अदृश्य रूप से इन्हीं लोगों का सहयोग है। बड़े-बड़े गायक प्रतिभावान नर्तक और प्रसिद्ध संगीतज्ञ इन्हीं लोगों की देन है। गन्धर्व और किन्नर स्त्रियाँ तो बहुत सुन्दर, आकर्षक और मोहक होती हैं। उनकी नासिका नुकीली होठ रक्ताभ और नेत्र मोरनी जैसे होते हैं। वक्ष उन्नत और कमर पतली होती है। क्षीण कटि नायिका समझिए। कोकिल कण्ठी तो होती ही हैं। इनकी अपनी सभा होती है-संगीत सभा जिसमें जब गन्धर्व और गन्धर्व कन्याएँ नृत्य करती हैं और किन्नर-किन्नरियाँ अपने वाद्य यंत्रों द्वारा उनको सहयोग देती हैं तो उस समय का दृश्य देखने योग्य होता है। उनके गायन के मन मोहक स्वर, उनके नृत्य की झंकार और उनके विविध वाद्य यंत्रों की सुमधुर ध्वनियाँ देवलोक का स्पर्श करती हुई धीरे-धीरे ब्रह्म लोक तक पहुँच जाती हैं। देवता चमत्कृत हो उठते हैं। बड़े-बड़े महात्मा और सिद्ध गण भी हो उठते हैं मुग्ध।

क्या उनके नृत्य और गायन की ध्वनि नीचे के लोकों में प्रवेश नहीं करती? मैंने पूछा।

प्रवेश करती क्यों नहीं है? मगर उसे कौन सुन पाता है भला। कर्णेन्द्रियों की अपनी सीमा है। अपनी सीमा तक ही सुन पाती हैं वह। केवल योगी गण उस लोक से संबंधित चक्र पर चित्त को एकाग्र कर समाधि की अवस्था में उस नृत्य-गायन और संगीत का रसास्वादन करते हैं। थोड़ा रुक कर भट्टाचार्य महाशय आगे बोले-तुमको यह जान कर आश्चर्य होगा कि कभी-कभी संसार में अपनी-अपनी कलाओं की गोपनीय विद्याओं से परिचित कराने तथा साथ ही साथ उन की सर्वांगीण उन्नति के लिये वे मानव योनि में जन्म भी ले लिया करते हैं। लेकिन मानव योनि धारण करते ही वे अपने स्वरूप को एक बारगी भूल जाते हैं और समझने लग जाते हैं अपने आप को मनुष्य! यह बहुत बड़ा रहस्य है।

वेताल और पिशाच: मनोमय शरीर धारी तमोगुण सम्पन्न वेताल और पिशाच परा-मानसिक जगत को प्रबल तामसिक शक्ति सम्पन्न प्राणी हैं। वेताल के शरीर का रंग लाल और पिशाच के शरीर का रंग काला होता है। वेताल और पिशाचों के शारीरिक गठन प्राय: एक से होते हैं। वे गठीले शरीर के तो होते हैं लेकिन उनका आकार बेडौल होता है। शरीर के अनुपात से उनका सिर काफी बड़ा होता है। चौड़ा मस्तक, आँखें छोटी-छोटी, नाक हद से ज्यादा लम्बी, लटका हुआ जबड़ा, मोटी गरदन और दाँत बड़े-बड़े होते हैं। मगर पिशाच से हजार गुनी शक्ति वेताल में होती है। ये अपनी शक्ति का प्रयोग प्रकृति में विकृति उत्पन्न करने के लिये करते हैं। उसी विकृति के फलस्वरूप संसार में समुद्री तुफान आते हैं। चक्रवात होते हैं। भयंकर जलप्लावन होता है। भयंकर दुर्घटनाएँ घटती हैं। सामूहिक नर संहार होता है। जनजीवन की भारी क्षति होती है। इतना ही नहीं सामूहिक रूप से वे मानव मस्तिष्क को भी विकृत कर दिया करते हैं जिसके फलस्वरूप संसार में राजोन्माद और धर्मोन्माद का वातावरण बन जाता है। मानवता नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती समाज में। सर्वत्र पापाचार और व्यभिचार होने लग जाता है। दुर्भिक्ष और अकाल की भी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं वे लोग जिससे भंयकर हानि होती है। उनकी शक्ति से यांत्रिक गड़बड़ियाँ भी उत्पन्न होती हैं जिसके परिणाम स्वरूप भयंकर रेल दुर्घटनाएँ और भयंकर जहाज दुर्घटनाएँ होती हैं। इसी प्रकार की अन्य हृदय विदारक दुर्घटनाएँ भी होती हैं।

वेताल और पिशाचों की प्रबल शक्ति से प्रकृति में विकृति उत्पन्न न हो जगत का अकल्याण न हो जन हानि न हो और किसी प्रकार का उत्पात न हो। इसके लिए ही हमारे यहाँ वैदिक यज्ञ-यागादि और विविध प्रकार के तांत्रिक अनुष्ठानों का विधि-विधान किया गया है। वेताल और पिशाचों को भी सिद्ध करने की कोई तांत्रिक साधना है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में भट्टाचार्य महाशय बोले-है लेकिन इसके लिये प्रबल मनोबल और प्राण बल होना चाहिए।

गुह्यक: पुराणों के अनुसार कुबेर यक्षों के स्वामी तो हैं ही इसके अतिरिक्त वह धन, वैभव और ऐश्वर्य के भी अधिष्ठाता हैं। गुह्यक उसी धन वैभव और ऐश्वर्य के रक्षक हैं। तंत्रशास्त्र में गुह्यकों से संबंधित यंत्र और मंत्र हैं जिनकी साधना और सिद्धि से गुह्यक गण मनुष्य की दरिद्रता का निवारण कर उसे धन, वैभव और ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अगर किसी कारण प्रकुपित हो जाते हैं तो सब कुछ नष्ट भी कर देते हैं वे। उन्हीं की कृपा से मनुष्य अचानक धनवान, ऐश्वर्यवान और वैभव सम्पन्न हो जाता है। भले ही उसका कारण कुछ और ही हो।

सिद्ध और भूत: ये दोनों वर्ग विशेष हैं। जहाँ संसार में सिद्ध गण मनुष्यों का शरीरिक और मानसिक कल्याण करते हैं, भयंकर से भयंकर रोग और व्याधियों का निवारण करते हैं। वहीं भूतगण विभिन्न प्रकार की रोग व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं। तंत्र शास्त्र में सिद्धों और भूतों से संबंधित जो यंत्र और मंत्र हैं उनके बल पर तांत्रिक लोग किसी के भी शरीर में भयंकर से भयंकर रोग व्याधि उत्पन्न कर सकते हैं। मस्तिष्क को भी विकृत कर सकते हैं। अगर किसी मनुष्य को रोग-व्याधि आदि है तो वे उसका सिद्धों से संबंधित यंत्र मंत्र से निवारण भी कर सकते हैं। आपके कहने का तात्पर्य है कि सिद्धों का कार्य नाना प्रकार की रोग-व्याधि आदि का नाश करना है और भूतों का कार्य है-नाना प्रकार की रोग-व्याधियों को उत्पन्न करना ?

हाँ! भट्टाचार्य बोले-एक और महत्वपूर्ण बात तुमको बतला दूँ मै। आयुर्वेद में जितनी औषधियों और जितनी जड़ी-बूटियों का उल्लेख है-उन सब पर सिद्धों और भूतों का अधिकार है। अगर विचार पूर्वक देखा जाए तो औषधि बल एक प्रकार से सिद्ध बल और भूत बल ही है। जितने प्रकार के तंत्र हैं उनमें एक औषधि तंत्र भी है। जिसके अनुसार प्रत्येक औषधि और प्रत्येक जड़ी-बूटी का अपना यंत्र भी है और उस यंत्र के अधिष्ठाता सिद्धगण और भूत गण हैं। अगर संबंधित यंत्र के साथ औषधि का प्रयोग किया जाय तो निश्चय ही औषधि की शक्ति प्रबल हो उठती है और उसका प्रभाव भी तत्काल पड़ता है। (इस विषय पर आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी)

हाकिनी, डाकिनी और शाकिनी: अगर सच पूछा जाय तो परा मानसिक जगत की सर्वाधिक तामसिक आत्माएँ हैं ये तीनों। तीनों में पुरुष तत्व और स्त्री तत्व दोनों समान भाग में हैं। इनका अपना कोई स्वरूप नहीं है। वैसे हैं तीनों घृणित और वीभत्स। वे अपने प्रबल मनोबल से कोई भी रूप धारण कर सकने में समर्थ होती हैं। कभी-कभी मानव रूप धारण कर संसार में भी विचरण करती हैं वे, उस अवस्था में उनकी मानवोचित गति-मति से उनको कोई पहचान नहीं पाता। कभी वे स्त्री रूप में तो कभी पुरूष के रूप में विचरण करती हैं। मगर किसी भी रूप में उन्हें पहचान पाना कठिन है। इन तीनों का काम है नाश करना। अगर वे किसी रूप में कल्याण भी करती हैं तो उसके

पीछे उनमें नाश की ही भावना रहती है। थोड़ा रुक कर भट्टाचार्य महाशय आगे बोले–हाकिनी, शाकिनी और डाकिनीयों का तंत्र से अति घनिष्ठ संबंध है। सच पूछा जाए तो तंत्र के तामसिक पक्ष पर उनका सर्वाधिकार है। तमोगुणी तांत्रिक मंत्रों के छन्द में बँधकर वे किसी का भी नाश कर सकती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं मारण प्रयोग जैसे भयंकर तांत्रिक प्रयोगों की सफलता के पीछे इन्हीं तीनों तमोगुणी शक्तियों का हाथ होता है। तामसिक तंत्र के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण विषय है यह कर्म साधन। मारण, विद्वेषण, उच्चाटन, आकर्षण, स्तम्भन और वशीकरण–इन छः को षट्कर्म कहते हैं। इनके अपने-अपने तांत्रिक मंत्र और अपनी-अपनी तामसिक क्रियाएँ हैं। इनकी अपनी-अपनी साधना पद्धति भी है–जो पंचमकार यानी मांस, मदिरा, मैथुन, मुद्रा और मीन द्वारा अनुष्ठित होती है। षट्कर्मों के अपने जो तांत्रिक मंत्र हं वे वास्तव में हाकिनी, डाकनी और शाकिनीयों से संबंधित होते हैं। वे तीनों मंत्रों से बिद्ध होकर साधक के संकेत पर मारण, विद्वेषण और उच्चाटन प्रयोग द्वारा किसी का भी प्राण हरण कर सकती हैं। किन्हीं दो के बीच विद्वेष उत्पन्न कर सकती हैं, और किसी को कहीं से भगा सकती हैं। इसी प्रकार आकर्षण, स्तम्भन और वशीकरण प्रयोग द्वारा सुदूर बैठे किसी को आकर्षित कर सकती हैं। किसी को बुला सकती हैं। किसी के मन-मस्तिष्क को स्तम्भित कर साधक के आदेश का पालन उससे करा सकती हैं और किसी भी स्त्री या पुरूष को वशीभूत कर सकती हैं। इन सबके अतिरिक्त तामसिक तंत्र में हाकिनी, डाकिनी और शाकिनियों की सिद्धि भी बतलाई गई है। लेकिन सिद्धि के लिये जिन तांत्रिक प्रयोगों के विधान हैं–उनकी पद्धतियाँ अत्यन्त रहस्यमय और भयंकर है। अगर तीनों में कोई एक सिद्ध हो जाए तो समझ लो फिर साधक के लिये कुछ भी असम्भव नहीं। वह प्रकृति में विकृति उत्पन्न कर जो चाहे वह कर सकता है।

क्या आपकी दृष्टि में हाकिनी, डाकिनी या शाकिनी को सिद्ध किया हुआ कोई साधक है–मैंने पूछा ?

'हाँ' हैं क्यों नहीं, लेकिन उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। तुमसे यथा समय उनका सम्पर्क जुड़ जाएगा।

आपकी बातों से यही सारांश निकलता है कि जितनी भी तांत्रिक क्रियाएँ, अनुष्ठान, प्रयोग आदि हैं उनके मूल में परामानसिक जगत की उपर्युक्त आत्माएँ ही हैं और जितने भी तांत्रिक यंत्र और मंत्र हैं वे सब उन्हीं सबसे संबंधित हैं। हाँ, इसमें क्या संदेह! भट्टाचार्य महाशय बोले–अब तुमको शेष तीन जगतों के विषय में संक्षेप में बतला दूँ।

(५) सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर : २ सू० सू० परमाणु से १ सू० परमाणु का निर्माण होता है। इस परमाणु के संघटन से सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर की रचना होती है। मानव शरीर में इन दोनों का केन्द्र है मणिपूरक चक्र।

(६) भाव जगत और भाव शरीर : २ सू० परमाणु से १ परमअणु का निर्माण होता है। 'भावजगत' जिसे वासना लोक और प्रेत लोक भी कहते हैं–की सीमा यहीं से शुरू होती है। ३ परम अणु का १ असरेणु होता है इसी से भाव शरीर और भाव जगत का निर्माण होता है। भाव जगत को ही प्रेत लोक कहते हैं। भाव जगत और भाव शरीर का केन्द्र है स्वाधिष्ठान चक्र।

(७) स्थूल जगत और स्थूल शरीर : २ असरेणु का १ सू० सू० अणु होता है। यहीं से भाव जगत की सीमा समाप्त हो कर स्थूल जगत की सीमा शुरू होती है। इन दोनों सीमाओं के बीच में एक रहस्यमय गहन अन्तराल है, उस अन्तराल में सृष्टि का कौन सा गम्भीर रहस्य छिपा है बतलाया नहीं जा सकता। तीन प्रकार की मूर्च्छा है। पहली मूर्च्छा साधारण होती है। दूसरी मूर्च्छा गहरी होती है जिसे कोमा कहते हैं। तीसरी मूर्च्छा मृत्यु की मूर्च्छा होती है। प्रत्येक व्यक्ति इसी तीसरी मूर्च्छा में शरीर त्याग करता है। शरीर छोड़ने के बाद मृत व्यक्ति कब तक अथवा कितने समय तक मृत्यु मूर्च्छा में रहता है यह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता लेकिन मृत व्यक्ति उसी रहस्यमई अवस्था में दोनों सीमाओं के गहन अन्तराल का अतिक्रमण करता है। गहन मूर्च्छा की स्थिति में होने के फलस्वरूप ही मृत व्यक्ति पुनर्जीवित होने अथवा पिछले जन्म की स्मृति जागृत होने पर उस रहस्यमयी अवस्था का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर पाता। बहुत से बालक ऐसे हैं जिन्हें अपने पिछले जन्म की सारी बातें याद हैं। लेकिन यह पूछे जाने पर कि मरने के बाद वह कहाँ था। यह नहीं बतला पाता है वह, मेरे कहने का मतलब यह कि 'मृत्यु' और 'जन्म' के बीच मृतात्मा किन-किन परिस्थितियों से गुजरती है। यह अज्ञात है। अभी तक इसका रहस्योद्‌घाटन पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है खैर २ सू० अणु का १ अणु होता है। इसी से स्थूल जगत और स्थूल शरीर का निर्माण होता है। मानव शरीर में इन दोनों का केन्द्र है-मूलाधार चक्र।

हाथ में बँधी घड़ी की ओर देखा मैंने–भोर के चार बजने वाले थे। पूरे सात घंटे तक परलोक तत्व पर हुई चर्चा ने बहुत कुछ सोचने-समझने के लिये विवश कर दिया था। भट्टाचार्य महाशय ने सब कुछ ऐसे बतलाया था मानों उन्होंने अपनी आँखों से देखा हो उन रहस्यमय लोक-लोकान्तरों को और उनमें निवास करने वाली आत्माओं को। उन्होंने जिस ढंग से उन सब का सटीक वर्णन किया था उसने मेरे मस्तिष्क में कई प्रश्नों को जन्म दे दिया था। अचानक पूछ बैठा मैं–आपने परलोक तत्व का जो वर्णन किया है क्या वह पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित है ? नहीं पुस्तकों में कहाँ इतनी विस्तृत और गम्भीर विवेचना मिलेगी? सब कुछ मेरा अनुभव है। ऐं क्या कहा? आपका अपना स्वानुभव? अचकचा कर बोल पड़ा मैं।

हाँ अपना स्वानुभव, तांत्रिक साधना बल पर मुझे स्वानुभव हुआ है। विषण्ण भाव से उत्तर दिया भट्टाचार्य महाशय ने एकाएक उनका चेहरा विकृत हो गया। थोड़ी देर चुप

रहे, फिर कहने लगे–तुम मिल गए। बड़ा अच्छा हुआ। मेरा समय पूरा हो गया है। तुमको अपनी साधना की कथा सुनाकर इस भटकते हुए जीवन से हमेशा के लिये मुक्ति पा लूँगा। पिछले दस साल से इसी श्मशान मे भटक रहा हूँ मैं, समझे न! फिर दीर्घ श्वाँस लेते हुए बोले–तंत्र-मंत्र के प्रति बचपन से ही आकर्षित था मैं। इधर-उधर से खोज-खोज कर तांत्रिक पुस्तकें पढ़ा करता था बराबर। जिस के परिणाम स्वरूप तांत्रिक साधना में रुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था। सोचा तांत्रिक साधना कर सिद्धि प्राप्त करूँगा और उस सिद्धि के बल पर जी भर कर संसार के सारे सुख और ऐश्वर्य का उपभोग करूँगा मैं। इतना ही नहीं तांत्रिक साधनाबल पर किसी पारलौकिक जगत की आत्मा को वश में कर लोक परलोक के तमाम रहस्यों से भी परिचित होने की अभिलाषा थी मेरे मन में। तांत्रिक सिद्धि लाभ और साथ ही पारलौकिक जगत की आत्मा को वश में करने के बाद फिर भला मेरी बराबरी कौन करेगा। मेरा मन मयूर नाच उठा इस कल्पना से। मेरी लालसा बराबर बढ़ती ही गई। लेकिन उस समय मुझे क्या पता था कि भोग की भावना से तांत्रिक साधना करने के चक्कर में सिद्धि मिलनी तो दूर रही धीरे-धीरे मुझे अपना सर्वस्व गवाँ देना पड़ेगा।

आखिर एक दिन घर-बार छोड़-छाड़ कर निकल पड़ा मैं गुरु की खोज में। बिना गुरु के तांत्रिक साधना कभी भी सफल नहीं होती। सुना था कि वक्रेश्वर के श्मशान में एक तांत्रिक साधु रहते हैं। वे श्मशान में नंगे लेटे रहते हैं। कभी किसी ने भोजन दे दिया तो खा लिया अन्यथा वैसे ही रह जाते हैं। मुर्दे का मांस, लता पत्र, तथा विष्ठा तक खाने में उन्हें एतराज नहीं था। कोई अरुचि नहीं थी। वह इतने वीत राग थे। पहले तो दर्शन ही नहीं हुए मुझे। लगातार पन्द्रह दिन धरना देने के बाद जाकर मुझे दर्शन मिला। विशाल काया, पैनी आँखें, सिर पर जटा-जूट और पागलों जैसी हरकतें! मगर पागल नहीं थे वह मुर्दे की खोपड़ी में खिचड़ी खा रहे थे महाशय। मेरी ही आँखों के सामने एक दिन वे सियार का रूप धारण कर जंगल में घुस गए। ऐसे ही एक रात कुत्ते के रूप में श्मशान के कुत्तों के साथ मिल कर भूँकने लगे। आखिर मैं जिनकी तलाश में था वह मुझे अचानक मिल गए थे। किन्तु सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उन्हें गुरु बनाया कैसे जाए? वे महाशय किसी भी तरह हत्थे पर चढ़ते ही नहीं थे। कुछ कहने पर और कुछ बोलने पर श्मशानी लकड़ी उठा कर मारने दौड़ते थे मुझे। एक दिन खूब रोने गिड़गिडाने पर मेरी पूरी कथा सुनी उन्होंने। मगर कथा पूरी होते ही उन्होंने मुझे वह डाँट पिलाई कि बस!

आँखे लाल कर और घूरते हुए मुझसे बोले भला चाहता है तो सीधे घर लौट जा। यह सब चक्कर छोड़। दो किताबें पढ़कर तांत्रिक गुरु की खोज में निकला है स्साला। दो अंगुल की छाती लेकर साधना करने चला है दुष्ट। यह तेरा काम नहीं समझा! जान चली जाएगी। फिर भोग की लालसा कामना से जो लोग साधना करने जाते हैं उनका लोक-परलोक दोनों खराब हो जाता है। तूने रामकृष्ण परमहंस की कथा नहीं पढ़ी। एक

दिन उन्होंने माँ से कहा–माँ मुझे अष्ट सिद्धि दे। मैं अष्ट सिद्धि चाहता हूँ। माँ ने कहा कल सबेरे तुझे इसका उत्तर मिल जाएगा। दूसरे ही दिन सवेरे दरवाजा खोलते ही उन्होंने देखा कि एक लड़की उधर ही मुँह करके शौच करने बैठी है। परमहंस देव बौखला उठे। लौट कर उन्होंने अपने मनको खूब मारा। आया समझ में! साधना कोई ऐसी वैसी बात नहीं है। कोई छोटी-मोटी चीज नहीं है । घर लौट जा। शादी ब्याह कर। भगवान को याद कर या फिर अपने कुल गुरुओं से ही दीक्षा ले ले। मैं काफी रोया, काफी गिड़गिड़ाया। मगर बाबा को फिर भी मुझ पर दया नहीं आई। लेकिन बन्धु! मैंने भी पीछा नहीं छोड़ा। वहीं खड़ा रहा बिना कुछ खाए पीए। बस गुप्त रूप से उन पर नजर रखे रहा बराबर इसलिए कि शायद असली क्रिया का कोई सुराग मिल जाए। समझा तुमने! आखिर इतने दिनों से इस चक्कर में भाड़ थोड़े ही झोंक रहा था मैं, एक दिन की बात है एक साधक और एक भैरवी श्मशान में बाबा से मिलने आए थे। आए थे तो चुपके से ही लेकिन मेरी नजर से बचना मुश्किल था। आधी रात के समय उन लोगों की कई बार मण्डली बैठी। भैरवी की नग्न पूजा हुई। मदिरा-मांस का भोग लगा। फिर मंत्रजप शुरू हुआ। मैं मौन साधे चुपचाप सब कुछ देखता रहा। बस फिर क्या था। मुझे लगा कि मैं सब कुछ सीख रहा हूँ। लौट कर घर नहीं गया। साधना के लिये अनुकूल और शान्त एकान्त स्थान की तलाश करते-करते यहाँ आ पहुँचा। अपना आश्रम बनाया। और फिर पूरे ग्यारह साल कठोर साधना की इसी श्मशान में, आखिर सिद्धि प्राप्त कर के ही छोड़ा। फिर तो उस सिद्धि की सुगन्ध फैलते देर न लगी। नाम यश प्रतिष्ठा तो पाई ही, रुपया भी काफी कमाया। बाद में मुझे भैरवी की जरूरत पड़ी। बिना भैरवी के सिद्धि ज्यादा दिन टिक नहीं पाती। मेरा एक शिष्य था। नाम था विरेन्द्र कुमार घोष। घोष की एक छोटी बहन थी श्यामला। उसने श्यामला को इसके लिए सहर्ष दे दिया मुझे। श्यामला में भैरवी के सभी गुण और सभी लक्षण थे। तुम देख ही रहे हो गौर वर्ण पुष्ट अंग, उन्नत वक्ष, मुक्तकेश, बड़े-बड़े नेत्र, रक्ताभ ओंठ, चौड़ा ललाट और मधुर वाणी, सब कुछ तो है श्यामला में। दीपावली की महानिशा पूजा के समय पीठ दीक्षा देकर श्यामला को अपनी भैरवी बना लिया मैंने मेरी भैरवी बन कर श्यामला को भी कम प्रसन्नता नहीं हुई थी। मगर बन्धु उसे भैरवी बनाने के बावजूद भी सिद्धि मेरे हाथ से एक दिन निकल ही गयी।

'वह कैसे' मैंने सहज भाव से पूछा।

शायद तुमको नहीं मालूम है। तंत्र के अन्तर्गत सोलह विद्याएँ हैं। दस तो महा विद्याएँ हैं। शेष विद्याएँ हैं हादि विद्या, व्यादि विद्या, हाकिनी विद्या डाकिनी विद्या, शाकिनी विद्या और टहा विद्या। एक दिन सहसा मन से विचार उठा कि क्यों न अपनी सिद्धि के बल पर श्यामला की देह में हाकिनी, डाकिनी और शाकिनी इन तीनों में से किसी एक का आवाहन करूँ। अगर सफलता मिल गयी तो पारलौकिक जगत की एक बहुत बड़ी शक्ति मेरे वश में हो जाएगी और उसकी सहायता से परलोक के बहुत सारे रहस्य मेरे सामने अनावृत्त हो जाएँगे। साथ ही साथ अपनी तांत्रिक शक्ति भी बढ़ जाएगी।

क्या आपने श्यामला के शरीर में आवाहन किया? हाँ, किया—भट्टाचार्य महाशय पूर्ववत् विषण्ण भाव से बोले। दीपावली की काली अँधेरी रात थी। इसी श्मशान में शव पर बैठा साधना कर रहा था मैं। मेरे सामने पद्मासन की मुद्रा में बैठी थी निर्विकार श्यामला भी। शवसाधना के द्वारा उसके शरीर में उन तीनों में से किसी को बुलाना था मुझे। तभी एकाएक जमीन फोड़ कर एक समूचा नर कंकाल बाहर निकला और मेरे करीब आकर भिन-भिनाते स्वर में बोला दूर हो, दूर हो। इतना कह कर वह कंकाल मेरे चारों ओर चक्कर लगाने लगा। मै जिस शव पर बैठा था। वह भी बुरी तरह हिलने लगा। भट्टाचार्य महाशय थोड़ी देर के लिये रुके फिर लम्बी साँस लेते हुये आगे कहने लगे—मैं बेहद डर गया। किन्तु यह भी जानता था कि एक बार विचलित हुआ तो सर्वस्व नाश! फिर जान की खैर नहीं। हमेशा के लिये छुट्टी हो जाएगी। मैं प्राणप्रण से चिल्ला उठा—नहीं जाऊँगा! नहीं उठूँगा तू क्या कर लेगा मेरा? बगल में यमघंट पर दीप जल रहा था। उसी की मद्धिम रोशनी में मेरी दृष्टि श्यामला पर पड़ी उसी समय। मैंने देखा उसका सारा शरीर जोर-जोर से काँप रहा था। आँखें भी लाल हो रही थीं। निश्चय ही उसके शरीर में हाकिनी, डाकिन, शाकिनी में से किसी एक का प्रवेश हो चुका था उस समय सहसा उठ खड़ी हुई वह। फिर विचित्र स्वर में बोली—बन्द करो अपनी साधना....अनर्थ हो जायेगा......बन्द करो.......! श्यामला का स्वर विचित्र तो था ही इसके अलावा वह रहस्यमय भी लगा मुझे। मेरी समझ में नहीं आया कुछ, मुँह बाए श्यामला के अकल्पनीय रौद्र रूप को देखता रहा और तभी चारों तरफ चक्कर लगा रहे उस नर-कंकाल ने आगे बढ़कर अपनी अस्थिमय ऊँगलियों से मेरी गर्दन कस कर-पकड़ ली। उफ् कितनी भयंकर थी वह अमानवीय पकड़। मानों लोहे की सँड़सी से मेरी गर्दन दबा दी गयी हो। मैंने छूटने की काफी कोशिश की, किन्तु उस वज्र जैसे हाथ से छूट पाना कठिन था। मेरी साँस बन्द हो गई। छाती असहनीय पीड़ा से एक बारगी कड़कड़ा उठी। ऐसा लगा मानो मेरी नस-नस फटती जा रही हो। एक बूँद हवा के लिये तड़फड़ाने लगा मैं। हवा मेरे चारों ओर थी किन्तु मैं एक बार भी साँस नहीं ले पाया। यही नहीं सँड़सी जैसी वह भयानक पकड़ मेरी गर्दन पर और भी मजबूत होती गई।

फिर ? फिर क्या हुआ? मैंने साँस रोक कर पूछा। 'फिर......' हो-हो कर हँस पड़े भट्टाचार्य महोदय। फिर जो होना था-वह हुआ।

क्या हुआ? व्यग्र हो पूछा मैंने।

तभी से इस श्मशान में घूम रहा हूँ मैं। पूरे ग्यारह वर्ष हो गए मुझे घूमते हुए। न कोई काम, न कोई झंझट-परेशानी! मुझे इस स्थान से मोह हो गया है। चाह कर भी छोड़ नहीं पाता हूँ मैं। सबसे बड़ा एक दारुण कष्ट था। वह आज दूर हो गया।

'कौन सा था वह दारुण कष्ट'?

किसी को अपनी कथा सुनाने का विचार था फिर वह तुम्हारे द्वारा पूरा हो गया। शायद इसीलिए तुम्हारा यहाँ आना हुआ था।

म......मगर आपको मुक्ति कैसे मिली? बोलते हुए अज्ञात आशंका से मेरी आवाज जैसे काँप उठी। मुक्ति कहाँ मिली बन्धु! भर्राये स्वर में भट्टाचार्य महाशय बोले–मेरी जब आँखे खुलीं तो मैंने देखा कि श्मशान में शवासन के करीब मेरा शरीर निश्चेष्ट पड़ा हुआ है और उसके सिरहाने खड़ा हूँ मैं। नरकंकाल का कहीं अता-पता नहीं था। वह मुझे कहीं दिखलाई नहीं दिया। शायद उसका काम पूरा हो चुका था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सब कुछ एक बारगी शान्त हो चुका था।

श्यामला का क्या हुआ? वह कहाँ गयी?

मेरा प्रश्न सुनकर एकबारगी भट्टाचार्य महोदय हो..हो कर हँस पड़े। फिर बोले जाएगी कहाँ। वह भी मेरी ही तरह इसी श्मशान में घूमती रहती है।

यह सब सुनकर भी मुझको वास्तविक रहस्य जानने समझने में दो एक मिनट का समय लग ही गया। बोलते समय मेरी जीभ लटपटा गई। इसका मतलब क्या है? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आप दोनों उस समय मर चुके थे। क्या आप सब............। प्रश्न का शेष अंश एक आकस्मिक आर्त्तनाद के रूप में बदल गया।

यह प्रश्न मैं किससे पूछ रहा था? कोई भी तो नहीं था सामने। न थे दुर्गा भट्टाचार्य और न तो थी श्यामला ही। बस अकेला मैं ही बैठा हुआ था कमरे में। कमरे में सारी चीजें यथावत् रखी हुई थीं। लालटेन भी उसी तरह धुआँ फेंकती हुई जल रही थी। केवल अभी तक पालथी मारकर सामने बैठे हुए दुर्गा भट्टाचार्य महोदय–जो अपनी कथा सुना रहे थे, नहीं थे और न थी उनकी भैरवी। मैं व्याकुल होकर इधर-उधर सिर घुमा-घुमा कर देखते हुए बार-बार यही सोचता रहा कि यह सब क्या था? मगर उस समय मेरी बात का जवाब देता भला कौन? कौन था वहाँ ? कुछ क्षण बाद अचानक मेरे मस्तिष्क में मूल प्रश्न पुनः उभर आया–तो क्या? भट्टाचार्य महाशय मनुष्य नहीं थे। दोनों की अशरीरी देह रहित आत्मा उपस्थित थी अब तक मेरे सामने। जो अपनी एक प्रबल इच्छा को पूरी करने के लिए पिछले ग्यारह वर्षों से भटक रही थी श्मशान में! क्या उसको उस दारुण कष्ट से मुक्ति मिल गई जिसकी चर्चा अभी-अभी की थी उन्होंने?

अचानक मुर्दे की सन्धाड़ से नासापुट भर उठा और उसी के साथ मेरे चारों ओर हुआँ-हुआँ करते हुए दर्जनों सियार आकर खड़े हो गए। मेरा मन भय और आतंक के मिले-जुले भाव से अवसन्न हो गया। सिर घुमा कर चारों तरफ देखा–हे भगवान! मैं तो श्मशान के किनारे एक पत्थर पर बैठा हुआ था। दुर्गा भट्टाचार्य महाशय का मकान भी अपना अस्तित्व खो बैठा था। कहीं कुछ न था सिवाय समवेत् स्वर में रोते हुये सियारों के।

कलकत्ता लौट कर मैंने जब सारी कथा राखाल बाबू को सुनाई तो वे एक बारगी स्तब्ध रह गये। पहले तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। वे अभी तक यही समझ रहे थे कि भट्टाचार्य महाशय जीवित हैं। तभी तो उन्होंने मुझे नैहाटी भेजा था।

उसी रात सपने मे मुझे श्यामला दिखलाई दी। उसका चेहरा उदास था। आँखे भी भरी थीं। उसने उदास स्वर में कहा–भट्टाचार्य महाशय की जो अभिलाषा थी वह पूरी हो चुकी। अब उनकी आत्मा पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त हो कर सूक्ष्म लोक में चली गई। यथा समय उनका कहीं पुनर्जन्म भी हो जाएगा। लेकिन मेरा क्या होगा? मैं तो अभी भी नैहाटी के श्मशान में भटक रही हूँ। मेरी कैसे होगी मुक्ति? फिर थोड़ा रुककर वह आगे बोली–तुम थोड़ी सहायता करोगे मेरी? बोलो, करोगे?

हाँ करूँगा! बोलो! कौन सी सहायता चाहिए तुमको मुझसे? जो भी होगा मुझसे वह करूँगा तुम्हारे लिए। आवेश में बोल गया मैं इतना सब।

काली घाट में ग्यारह कुमारियों को भोजन करा सकोगे ?

क्यों नही। मगर उससे क्या होगा?

मुझे भी प्रेत योनि के कष्ट से मुक्ति मिल जाएगी और मिल जाएगा श्मशान से छुटकारा भी। कहने की आवश्यकता नहीं, दूसरे ही दिन मैंने कालीघाटी में ग्यारह कुमारियों को भोजन कराया। एक–एक साड़ी दी और पाँच–पाँच रुपये प्रणामी भी दी। और फिर एक रात श्यामला मुझे फिर दिखलाई दी सपने में। अब उसके चेहरे पर न उदासी थी और न तो आँखे ही भरी थीं। पूर्ण प्रसन्न दिख रही थी वह। हौले से बोली–मैं तुम्हारा उपकार कभी भी भूल न सकूँगी। प्रेत योनि से मुझे मुक्ति मिल गई। अब मैं सूक्ष्म लोक की आत्मा हूँ। बोलो–इस उपकार के बदले तुम मुझसे क्या चाहते हो?

'तुम्हारा जगत कैसा है?'

'बहुत सुन्दर, बहुत रमणीक और बहुत ही आकर्षक।' 'क्या तुम वहाँ की सूक्ष्म शरीर धारी विशिष्ट आत्माओं से मेरा सम्पर्क करा सकती हो?'

थोड़ा रुक कर श्यामला बोली–'क्यों नहीं! मगर इसके लिये तुमको थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह सुनकर प्रसन्नता से झूम उठा मैं। आगे कुछ पूछना चाहा मैंने। लेकिन तब तक श्यामला का अस्तित्व लुप्त हो चुका था मेरे सामने से।

कर्णिका-२

सत्य की खोज

हलके कुहरे की पर्त में लिपटी साँझ की स्याह छाया गहरी होती जा रही थी। श्मशान में गहरी नीरवता थी। वातावरण मे भी सन्नाटा छाया हुआ था। यदा-कदा जानवरों का भयावह स्वर वातावरण की नीरवता को, सन्नाटे को और खामोशी को भंग कर देता था। कुछ देर पहले हा-हाकार कर जलती हुई चिताएँ अब मुट्ठी भर राख मे बदल चुकी थीं। इस समय पूरे श्मशान में केवल एक ही चिता जल रही थी और वह चिता थी किसी युवक की जिसकी ताजी लाश को उसके बूढ़े बाप ने अपने कमजोर बाजुओं से उठा कर लपलपाती चिता की धधकती आग में रखा था। लाश रखते समय मैंने उस बूढ़े की तरफ उत्सुकता वश देखा। उसकी सूनी और कमजोर आँखों में आँसू तैर रहे थे। चेहरे पर शोक की स्याही पुती थी और कमजोर हाथ काँप रहे थे। उसके समीप ही एक जवान और सुन्दर औरत खड़ी सिसक रही थी जिसकी गोरी कलाईयों मे काँच की लाल चूड़ियाँ थीं और माँग मे सिन्दूर की ताजी रेखा थी। शरीर पर लाल चुनरी की साड़ी थी। निश्चय ही वह औरत मरने वाले उस युवक की पत्नी थी। मैंने देखा-लाश जैसे ही चिता पर रखी गई उसने अपने दोनों हाथों को पत्थर पर पटक दिया। काँच की लाल चूड़ियाँ टूट कर बिखर गईं चारों तरफ। चूड़ियों के टूटने के साथ ही उस नवपरिणीता की सिसकियाँ और तेज हो गईं। कुछ क्षण बाद उसकी सिसकियाँ रुदन में बदल गईं। रोती क्यों न? जिसके हाथों में लगी मेहँदी का रंग अभी छूटा न हो और जीवन वैधव्य की कठोर चट्टान से टकरा जाए तो उसके लिए रोने के सिवाय और है ही क्या?

हरिश्चन्द्र घाट की धूल भरी सुनसान सीढ़ियों पर मैं गालों पर हाथ धरे चुपचाप मौन साधे सोचने लगा-यह युवती किस लिए और किसके लिए रो रही है? उसके पति के शरीर में कौन था? वह कहाँ से आया था? फिर कहाँ चला गया? अगर यह सब वह नहीं जानती तो रो क्यों रही है? किसके लिए रो रही है? क्या पार्थिव शरीर के लिए? शायद शरीर के प्रति मोह-माया ही विलाप का एक मात्र कारण है! मृत्यु की धारणा मृत्यु के प्रति भय पैदा करती है और इसी से आभास होता है कि जीवन नाशवान है और यही

भावना दृढ़ होकर वैराग्य का रूप धारण कर लेती है। इसी वैराग्य ने मुझे अन्तर्मुखी बना दिया। वहीं दूसरी ओर मुझमें सत्य की खोज की प्रवृत्ति भी जागृत कर दी। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप मुझे सर्वप्रथम अपनी आत्मा के स्वरूप का अनुभव हुआ। मैंने जाना कि आत्मा ही सब कुछ है। आत्मा ही एक ऐसी वस्तु है जो निरन्तर ज्ञान की ओर बढ़ती रहती है। यदि हम उसके मूक निर्देश और संकेत को समझने का प्रयत्न करें तो जीवन अपने आप सही दिशा में बढ़ता जाएगा। अपने आप सही मार्ग पर हम चलते जाएँगे। सच तो यह है कि आत्मा की सारी प्रक्रियाएँ जीवन निर्माण के लिए हैं। हमें मनुष्य बनाने के लिये हैं। परलोक विज्ञान ने आत्मा को सर्वाधिक महत्व दिया है। उसका कहना है कि जिसने आत्मा को समझा, उसके मूक संकेत को समझा और उसकी मूक पग ध्वनि सुनी वास्तव में उसी के जीवन का सच्चे अर्थों में निर्माण होता है। आत्मा ही एक मात्र सत्य है–बाकी सब असत्य। आत्मा अगर सत्य है तो परमात्मा है परम सत्य। हम दु:खी इसलिए हैं कि हम न सत्य से परिचित हैं और न तो परिचित हैं परम सत्य से। सत्य, जीवन–जगत का और आत्मा–परमात्मा का प्राण है। उनके अस्तित्व का भी अस्तित्व है। सत्य की खोज नहीं की जाती। 'खोज' शब्द उसके लिये बेकार है। वास्तव में खोज सत्य की नहीं बल्कि असत्य की होती है। खोज तो उस वस्तु की होती है जो हमारे पास नहीं है और जिसकी हमें आवश्यकता है। खोज उसकी नहीं हो सकती जो हमारे पास है, हमारे करीब है। किसी वस्तु को खोजने के लिये 'दो' की आवश्यकता पड़ती है। पहला खोजने वाले की और दूसरा जिसकी खोज हो। मगर जहाँ तक सत्य की खोज की बात है वहाँ दोनों एक ही हैं। जैसे नृत्य से नृत्यकार को, संगीत से संगीतकार को और मूर्ति से मूर्तिकार को न अलग किया जा सकता है और न तो समझा जा सकता है। इसी प्रकार सत्य को और सत्य को खोजने वाले को भी न अलग किया जा सकता है और न तो समझा जा सकता है।

हमारे जीवन के दो छोर हैं–पहला छोर है अन्तर्मुखी और दूसरा बहिर्मुखी। बहिर्मुखी जीवन में प्रकाश है और अन्तर्मुखी जीवन में घोर अन्धकार भरा है। आँखें बन्द करते ही उस घोर अन्धकार का अनुभव हमें होता है। हमारी सारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं। मन भी बाहर ही भटकता रहता है। बाहर प्रकाश है। इन्द्रियाँ और मन दोनों बाहर सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं। भीतर का जो अन्तर्मुखी जीवन है वहाँ न इन्द्रियाँ काम करती हैं और न तो मन ही झाँकता है। जहाँ तक इन्द्रियों की सीमाएँ हैं और जहाँ तक हमारा मन दौड़–भाग करता है वहीं तक हम खोज कर सकेंगे। इन्द्रियों की और मन की सीमा खोज की सीमा है। और जहाँ वह सीमा समाप्त हो जाती है जहाँ से हमारी सारी इन्द्रियाँ वापस लौट आती हैं और लौट आता है हमारा मन। और जहाँ वापस लौट कर दोनों आते हैं वह भीतर है, और उस भीतर में घोर अन्धकार है। और उस घोर अन्धकार में डूबा हुआ 'महा शून्य' है। मगर शून्य से हमारा मतलब अभाव नहीं है। जहाँ शून्य

होगा–वहाँ शक्ति होगी। शून्य जितना गहरा होगा वहाँ शक्ति भी उतनी ही गहरी होगी। शून्य यानी शक्ति का केन्द्र, शक्ति का पीठ! हमारे शरीर के भीतर जहाँ अन्धकार है, जहाँ उस अन्धकार में डूबा हुआ परम शून्य है–वहाँ आत्म–शक्ति का केन्द्र है। आत्मा की सत्ता है। आत्मा का है अस्तित्व। सत्य के रूप में प्रतिष्ठित है वहाँ आत्मा।

मगर हमारी इन्द्रियाँ मन की सहायता से परम सत्य को, उस आत्मा को बाहर प्रकाश में खोजती हैं और प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं।

आत्मा परम सत्य है। आत्मा की शक्ति ही परम शक्ति है। और वह परम शक्ति प्रकृति के रूप में सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई है।

वैज्ञानिकों की धारणा है कि वे सत्य की खोज करते हैं। लेकिन हम कहते हैं कि वे सत्य की खोज का अभिनय करते हैं। नाटक करते हैं ? विज्ञान चलता है सत्य की खोज में मगर उपलब्ध होती है उसे शक्ति। आज का विज्ञान सत्य की खोज की भावना और विचार लेकर शक्ति अर्जित करता जा रहा है। बराबर शक्तिशाली होता जा रहा है। सच तो यह है कि विज्ञान शक्तिशाली अवश्य है लेकिन सत्यशाली नहीं है। सत्य उसे कभी भी प्राप्त नहीं होता। प्राप्त होती है उसे शक्ति। यदि ऐसे व्यक्ति के पास शक्ति आ जाए जिसने सत्य को प्राप्त नहीं किया है, सत्य की अनुभूति नहीं की है–काफी खतरनाक सिद्ध होता है। क्योंकि वह अपनी तमाम शक्तियों का उपयोग असत्य के नियोजन में ही करेगा। यही स्थिति विज्ञान की है आज। उसके पास असीम शक्ति है। लेकिन सत्य का सर्वथा अभाव है और यही कारण है कि आज विज्ञान से भारी खतरा पैदा हो गया है। अशान्ति पैदा हो गई है। वह प्रकृति पर बराबर विजय प्राप्त करता जा रहा है। बराबर विभुता स्थापित करता जा रहा है।

इस प्रकार विज्ञान ने बहुत उन्नति की है। लेकिन मनुष्य की तृष्णा अभी भी नहीं बुझी। बड़े–बड़े वैज्ञानिकों के विचार डावाँडोल हो रहे हैं। वे कहाँ जा रहे हैं उन्हें ज्ञात नहीं। उनका कहना है कि हम अपने अविष्कारोन्मुख प्रतिभा और विज्ञान का गर्व करते हुए भी सत्यता के स्वभाव, रूप एवं उसकी प्रगतियों से मौलिक रूप से अनभिज्ञ हैं। हम कहाँ जा रहे हैं–नहीं जानते और न हमें यह ज्ञात है कि हम अनुकूल मार्ग पर हैं। यदि भविष्य में कोई वाञ्छनीय लक्ष्य है भी तो कदाचित् हम उससे बहुत दूर जा पड़े हैं।

यह आश्चर्य किन्तु सत्य है कि प्रतिवर्ष मानव–मन प्रकृति की शक्तियों पर विभुता स्थापित करता जा रहा है। पर उसे स्वयं अपने पर ही संयम नहीं है और वह ज्यों का त्यों अबौद्धिक और असभ्य पड़ा हुआ है। खैर..., यह भी सत्य है कि सत्य के नाम पर विज्ञान की शक्ति की खोज ने मानव समाज को भयंकर कठिनाइयों में डाल दिया है। उसकी अब तक की उपलब्धियों के कारण अपने भीतर के अयामों को खोजने की प्रवृत्ति मनुष्य में बिल्कुल मन्द पड़ गयी है। परिणाम यह हुआ कि पिछले हजार वर्षों में भगवान बुद्ध, महावीर, ईसा, क्राइस्ट, मुहम्मद आदि जैसे युग पुरुषों और महापुरुषों को संसार पैदा न

कर सका। इसलिए कि युग पुरुष, महापुरुष अथवा अवतारी पुरुष गण भीतर के आयामों से पैदा हुआ करते हैं। आज बाहरी आयामों की खोज हो रही है। भीतर के आयामों की ओर न अब तक किसी का ध्यान गया है और न जा रहा है। जिसके फलस्वरूप पिछले तीन सौ वर्षों के अन्तराल में मनुष्य के बाहरी आयामों की खोज की प्रतिभा आइन्स्टीन जैसे लोगों को ही पैदा कर सकी। हम यह स्वीकार करते हैं कि मानव प्रज्ञा ने तरह-तरह के अविष्कार किए तरह-तरह के निर्माण किए, लेकिन सत्य का अविष्कार और निर्माण न कर सका। इसलिए कि सत्य का निर्माण व अविष्कार करने के लिए संसार में न कोई साधन है न कोई उपाय ही है। सत्य स्वयं निर्मित है। सत्य स्वयम्भू है। सत्य सनातन है। मनुष्य के द्वारा जो भी निर्माण होता है, जो भी अविष्कार होता है वह असत्य ही होता है इसलिए कि वह निर्मित है। मगर मनुष्य ने सोचा कि वह सत्य का भी निर्माण कर सकता है। उसकी इस वैचारिक भ्रान्ति ने अनर्थ कर डाला। सच तो यह है कि इसी मानव भ्रान्ति के फलस्वरूप बहुत सारे नियम, सिद्धान्त आदि बन गए।

तमाम शास्त्रों की रचना हो गई। तमाम धर्म ग्रन्थों की रचना हो गई। तरह-तरह के सम्प्रदायों का अविर्भाव हो गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वास्तविक सत्य की खोज की 'प्रवृत्ति' नष्ट हो गई। आज हम सत्य की खोज के लिए जाते हैं तो प्राय: कोई न कोई नियम या सिद्धान्त लेकर वापस लौट आते हैं। सत्य की खोज करने जाते हैं-- गीता, रामायण, कुरान, बाइबिल आदि लेकर लौट आते हैं। सत्य को खोजने जाते हैं तो गुरु मिल जाते हैं और हम शिष्य बन कर वापस लौट आते हैं। सोचते हैं, समझते हैं कि हमें सत्य मिल गया। हम सत्य को उपलब्ध हो गये हैं।

सभी धर्मों का अपना-अपना सत्य

इस समय संसार में पूरे तीन सौ धर्म हैं। इनके अलावा न जाने कितने व्यक्तिगत धर्म हैं। मगर इन तमाम धर्मों का कहना है कि सत्य उनके पास है। इस्लाम धर्म का कहना है कि सत्य उसने देखा है। ईसाई धर्म का कहना है कि उसने सत्य की अनुभूति की है। हिन्दू धर्म का कहना है सत्य से वह पूर्ण परिचित है। जैन और बौद्ध धर्म का कहना है कि सत्य का उसने प्रत्यक्ष दर्शन किया है। सच बात तो यह है कि इसी के फलस्वरूप एक धर्म दूसरे धर्म से निरन्तर संघर्ष करते चले आ रहे हैं। लड़ते-भिड़ते चले आ रहे हैं। आज तक धर्म के नाम पर जितना संघर्ष हुआ, लड़ाईयाँ हुईं रक्तपात हुए, उतना अन्य कारणों से नही हुए।

जहाँ सत्य है वहाँ शान्ति होगी, संघर्ष नहीं

मेरे विचार से जितने भी धर्म हैं और उनके जितने भी शास्त्र और सिद्धान्त हैं वे सबके सब मनुष्यों को आपस में लड़ाने के सिवाय और कुछ नहीं करते। इसलिए निश्चित रूप से यही कहा जाएगा कि इन सबकी गहराई मे इन सब की जड़ में भयंकर असत्य छिपा बैठा हुआ है। जहाँ सत्य होगा-वहाँ शान्ति होगी, सुलह होगी। जहाँ सत्य

होगा–वहाँ प्रेम होगा, घृणा न होगी। हम शास्त्रों, सिद्धान्तों, सम्प्रदायों के नियमों से बँधे हैं। गुरुओं के झमेले में फँसे हैं। यदि हमें सत्य को प्राप्त करना है तो इन सारे बंधनों से अपने आपको मुक्त करना होगा। गुरुओं से भी बचना होगा। सचतो यह है कि हम कल्पनाओं में जीते हैं। इसीलिए हमारे संबंध सत्य से स्थापित नहीं हो पाते। हम सत्य को देख नहीं पाते। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व असत्य है। और साथ ही हम सत्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। हमारा सारा जीवन असत्य पर आधारित है, सारा व्यक्तित्व असत्य पर खड़ा है। सत्य की खोज के लिए, सत्य को पाने के लिए–व्यक्तित्व से, जीवन से असत्य को निकाल बाहर कर देना आवश्यक है।

सत्य की उपलब्धि कैसे?

जीवन में, व्यक्तित्व में और व्यवहार में हम जैसे बाहर हैं वैसे भीतर नहीं हैं। और जैसे भीतर हैं वैसे बाहर नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति वैसा दिखलाई देना नहीं चाहता जैसा कि वह है। जो सत्य है, जो वास्तविकता है उसको व्यक्ति छिपा लेना चाहता है और जो झूठ है, असत्य है, मिथ्या है उसकी चादर ओढ़ लेना चाहता है। फिर वही व्यक्ति सोचने लगता है कि सत्य को कैसे प्राप्त करूँ? वही व्यक्ति फिर गीता, रामायण, बाइबिल और कुरान का पाठ करता है। फिर वही व्यक्ति भगवान की मूर्ति के सामने खड़ा हो कर हाथ जोड़ता है। भजन गाता है। प्रार्थना करता है। व्रत उपवास करता है। ताकि उसे सत्य मिल जाए। सत्य के दर्शन हो जाएँ। वह व्यक्ति कभी भी सोचने–समझने की चेष्टा नहीं करता कि वह अगर असत्य है, उसका व्यक्तित्व असत्य पर निर्भर है, उसका सारा जीवन असत्यमय है, तो उसको सत्य का पता कैसे चल सकता है?

सत्य की प्राप्ति के लिये सबसे पहले हमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सत्य पर प्रतिष्ठित करना होगा। हमारा व्यक्तित्व जैसा है, वैसा ही होना चाहिए। सीधा–सरल और पूर्ण रूपेण स्वच्छ। हम जैसे बाहर हैं वैसे ही भीतर हों। जैसे भीतर हैं वैसे ही बाहर हों। हम जैसे हैं, जो भी हैं व्यक्तित्व की स्वीकृति भी वैसी ही होनी चाहिए। लेकिन वह स्वीकृति हमारे मनके भीतर कहीं नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि जिनको हम भले आदमी कहते हैं उनमें वह सरलता, वह सहजता और वह स्वच्छता और भी कम दिखलाई देती है। इसके ठीक विपरीत जिन्हें हम बुरा आदमी समझते हैं अपराधी समझते हैं चोर बदमाश कहते हैं वे सरल हो सकते हैं। लेकिन जिन्हें हम साधु और सज्जन कहते हैं वे तो बिल्कुल भी सरल नहीं है। यही मूल कारण है कि सभ्यता और संस्कृति जैसे–जैसे विकसित होती चली गई–वैसे ही वैसे मनुष्य असत्य होता चला गया।

मानव सभ्यता और संस्कृति का आधार धर्म है। मगर धर्म के नाम पर आज तक जितनी हत्याएँ हुई हैं, न तो डाकुओं ने उतनी हत्याएँ की होंगी और न चोरों बदमाशों ने। धर्म के नाम पर जितने मकान, जितने शहर, जितने गाँव जलाए गए और जितनी स्त्रियों

का अपमान किया गया आज तक उतना, सारे पापीयों ने भी मिलकर न किया होगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि यदि धर्म के नाम पर यह सब होगा तो अधर्म के लिये कुछ बाकी न रह जाएगा। फिर अधर्म का क्या होगा? अधर्म के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है धार्मिकों ने!

सत्य को समझने के लिये 'मृत्यु' को जानना होगा

बहुत से ऐसे लोग हैं जो आत्मा की अमरता का मंत्र बराबर रटते रहते हैं। मगर इससे हमें यह न समझ लेना चाहिए कि उन्हें आत्मा की अमरता का पता है। अगर वास्तव में पता होता तो उनका जीवन सुगन्ध बन जाता, सत्य बन जाता, वे कुछ और ही होते। मेरी दृष्टि में इस प्रकार अजर-अमर आत्मा का मंत्र रटने वाले पागल हैं। पागल के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अगर उन्हें ज्ञात हो गया है कि वे अजर-अमर आत्मा हैं तो इस तरह रटने की क्या आवश्यकता है? वे किसको सुनाने के लिये रट रहे हैं? ऐसे लोगों को भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि बार-बार रटने से आत्मा का पता चल जाएगा। यदि सत्य इतना आसान और सरल होता कि हम बार-बार किसी बात को दुहराएँ और रटें तो संसार के सारे लोग न जाने कभी का सत्य को जान गए होते। रटने से, किसी बात को बार-बार दुहराने से भ्रम पैदा होता है। सत्य की प्राप्ति नहीं होती।

हमें आत्मा के संबंध में कुछ भी ज्ञान नहीं है। यदि हम यह कहते हैं कि 'आत्मा अमर है' तो हम मृत्यु को भुलाने के लिए और मृत्यु को झुठलाने के लिए कहते हैं। अगर एक पुरुष बैठ कर यह बार-बार रटने लगे कि 'मै पुरुष हूँ' 'मै पुरुष हूँ' तो इसका क्या तात्पर्य होगा? क्या मतलब होगा? यही होगा कि उसे पुरुष होने में सन्देह है। भ्रम है। वर्ना बार-बार दुहराता नहीं। रटता नहीं। सच बात तो यह है कि हमको जिस बात का सन्देह होता है वही हम बार-बार दुहराते हैं और जिसे हम जानते समझते हैं उसे कभी नहीं दुहराते। दुहराने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। मतलब यह कि हमें न आत्मा का पता है और न उसकी अमरता का ही। यही कारण है कि हम बराबर उसका नाम लेकर रटते रहते हैं कि आत्मा अमर है। सत्य को समझने के लिये हमें सबसे पहले मृत्यु को जानना होगा और स्वीकार करना होगा। उसके फलस्वरूप हम मृत्यु के भय से सर्वथा के लिए रहित हो जाएँगे! भय रहित होते ही और यह ज्ञात होते ही कि मृत्यु नाम की कोई वस्तु नहीं है उसी समय हम किसी दूसरे ही संसार मे अपने आप प्रवेश कर जाएँगे। हमारा उस सत्य से साक्षात्कार हो जाएगा-जिसको जान समझ लेने पर सब कुछ जान समझ लिया जाता है। फिर कुछ शेष नहीं रहता और हम 'अमृतत्व' को प्राप्त हो जाते हैं। और जिसने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया उसका जीवन क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि से रहित हो जाएगा। न उसका कोई मित्र होगा और न होगा कोई शत्रु। प्रेम और करुणा से भर उठेगा उसका सम्पूर्ण जीवन।

वह अविश्वसनीय अपूर्व घटना

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी है। अब उस युवक की चिता धीरे-धीरे मुट्ठी भर राख में बदलती जा रही है। श्मशान के वातावरण में पहले ही जैसी गहरी नीरवता बिखरी हुई है। वह बूढ़ा बाप अपने जीवन का अनमोल रत्न हमेशा के लिये गँवा कर अपनी विधवा पुत्रवधु के कन्धे का सहारा लिए धीरे-धीरे श्मशान घाट की धूल भरी सीढ़ियाँ चढ़ते ऊपर जा रहा है अब। मैं उसे जाते हुए देख रहा हूँ। कुछ क्षण बाद मेरी नजर घूम कर फिर चिता की गर्म राख पर ठहर जाती है और उसी के साथ याद आ जाती है निशा शर्मा की चिता की राख भी!

पिछले साल ही तो निशा के पार्थिव शरीर को इसी प्रकार श्मशान में चिता की धधकती आग की गोद में अर्पित किया था मैंने अपने हाथों से। उस दिन भी इसी तरह अँधेरी काली रात थी। इसी तरह श्मशान में गहरी नीरवता छायी हुई थी। और इसी तरह उसकी लाश को चिता में जलती हुई देखा था मैंने। अचानक निशा का कोमल और स्निग्ध चेहरा मेरे मानस-पटल पर उभर आता है एक बारगी और उसी के साथ अतीत के तिमिराच्छन्न अन्धकार में डूब जाता हूँ मैं।

नैहाटी से लौटने के बाद पूरी तरह जुड़ गया मैं राखाल चन्द्र भट्टाचार्य से। उन्हीं के मकान में रहने भी लगा मैं। मेरा अधिकांश समय उनके पुस्तकालय में ही व्यतीत होता था। मकान की ऊपरी मंजिल में अपनी एक मात्र पुत्री और पत्नी के साथ एक महाशय भी रहते थे। नाम था त्र्यंबक शर्मा। महाराष्ट्रियन ब्राह्मण थे। बिड़ला के किसी मिल के मैनेजर थे। किसी बात का अभाव नहीं था त्र्यंबक शर्मा को। उनकी इकलौती पुत्री का नाम था निशा शर्मा। बड़ा ही सुन्दर रूप और बड़ा ही आकर्षक व्यक्तित्व था निशा का। जो भी देखता-बस देखता ही रह जाता उसके अजरूप कमनीय सौन्दर्य को। सचमुच एक नारी में फिर इतना सौन्दर्य नहीं दिखलाई दिया मुझे। एक ही मकान में रहने के कारण परिचय होना स्वाभाविक था। बाद में निशा से मेरा परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया और हम दोनों ने विवाह करने का निर्णय कर लिया। न त्र्यंबक शर्मा को आपत्ति थी और न तो आपत्ति थी उनकी पत्नी को। राखाल बाबू तो आशीर्वाद देने के लिये तैयार ही बैठे थे। उन्हीं के काली मन्दिर में विवाह होना तय हुआ था। कहने की आवश्यकता नहीं विवाह के निर्णय ने हम दोनों को इतना समीप ला दिया था जहाँ तन-मन और आत्मा-तीनों एकाकार हो जाते हैं और एकाकार हो कर अनिर्वचनीय सुख के अथाह सागर में आकण्ठ डूब जाते हैं।

वह रहस्यमय असाध्य रोग

क्या हम दोनों का विवाह हुआ? नहीं, यदि हो गया होता तो इस खोज पूर्ण पुस्तक का जन्म भला कैसे होता। और कैसे होता मेरे सामने पारलौकिक तत्वों के गहनतम रहस्यों का उद्‌घाटन?

विवाह के एक महीने पूर्व अचानक बीमार पड़ गई निशा। कौन सी बीमारी थी? अन्त तक समझ में नही आया डॉक्टरों को। पूरे एक महीने रोग-शय्या पर पड़ी-पड़ी असह्य वेदना और अपरिमित पीड़ा भोगती रही निशा। अन्त में उसने दवा लेना भी बन्द कर दिया। मेरी समझ में नही आ रहा था कि आखिर हो क्या गया निशा को। सिर थामे उदास मन लिये घंटो बैठा रहता मै निशा की चारपाई के पास। वह अपनी धुन मे बड़बड़ाती रहती। कभी-कभी बीच में उत्तेजित होकर जोर-जोर से बोल उठती-'ओह!' कितना सुन्दर...... कितना रमणीक........।

मैं विस्मित था और चिंतित भी। डॉक्टर को बतलाई मैंने यह बात। वे अपने चेम्बर से निकल कर निशा के केबिन की ओर गए। केबिन के बाहर निशा के माता-पिता उदास और गमगीन चेहरे लिए किसी अघटित की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं निशा के पास था। डॉ० को देखकर निशा पूर्ण निर्विकार रही। कोई भाव नहीं उभरा उसके क्लान्त चेहरे पर। केबिन के बाईं ओर एक बड़ी सी खिड़की थी। जो बाग की ओर खुलती थी। वह अपलक उस खुली हुई खिड़की की ओर देख रही थी। खिड़की के बाहर हरा-भरा बाग था और था स्वच्छ आकाश। खिड़की से छन कर आती हुयी हल्की सुनहरी धूप निशा के क्लान्त चेहरे पर पड़ रही थी।

पच्चीस वर्षीया उस सुन्दर नवयुवती की सुडौल संगमरमरी देह का अज्ञात रोग ने कैसा सर्वनाश कर दिया था। दारुण यंत्रणा के कारण उसके क्लान्त और म्लान चेहरे पर न जाने कैसी काली छाया घिर आई थी। केवल उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें किसी अपूर्व आनन्द से चमक रही थीं। धीरे-धीरे काँप रहे थे निशा के सूखे होंठ। ऐसा लगा मानो वह खिड़की के बाहर-आकाश की ओर देख कर वहाँ विद्यमान किसी अदृश्य अस्तित्व के बारे में किसी से बहुत धीरे-धीरे बातें कर रही हो। कभी वह अपने आप से भी बातें करने लग जाती थी।

वह रहस्यमय पारलौकिक अनुभव

निशा के पास जाकर मैंने उन अस्फुट बातों को सुनने की कोशिश की। वह बहुत धीरे-धीरे कह रही थी सुन्दर बहुत सुन्दर। कैसा अपूर्व प्रकाश है। कैसी अपूर्व शान्ति है वहाँ के वातावरण में।

क्या सुन्दर है? कैसा प्रकाश है? कैसी शान्ति है निशा? तुम क्या देख रही हो? किससे बातें कर रही हो? बोलो! बतलाओ मुझे निशा! मैंने उसके सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुये पूछा।

अचानक निशा की चेतना वापस लौटी। उसने सिर घुमा कर मेरी ओर देखा। उस समय उसके विवर्ण मुख पर अपूर्व शान्ति थी और थी अपूर्व संतोष की छाया।

निशा के हाथ पर अपना हाथ रखा मैंने। परम निर्भयता और पूर्ण संतोष से मेरा हाथ पकड़ लिया निशा ने। फिर वह क्षीण स्वर में बोली–मै वहाँ जाना चाहती हूँ। शर्मा! वहाँ लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।........ मुझे लोग बुला रहे हैं अपने पास! कहाँ जाओगी? कौन है वह जगह? कौन हैं वे सब लोग। बोलो! कुछ बतलाओ मुझे! कातर और विचलित स्वर में पूछा मैंने। निशा बोली नहीं, मौन रही। डाक्टर पास ही खड़ा था। उसने सोचा कि जरूर उसे बोलने मे कष्ट हो रहा है। उसने बड़े ही स्नेह से निशा के शरीर पर चादर ठीक कर दी। फिर उसके सिर पर हाथ रख कर बोला वह–'आप उत्तेजित न हों। शान्त रहने का प्रयास करें।'

यह सुनकर निशा एकाएक बिगड़ गयी। बोली–आप मुझे बहुत परेशान करते हैं डॉक्टर रमन! क्यों नहीं आप मुझे वहाँ जाने देते। जाने दीजिये प्लीज! रोकिए मत मुझे। आपकी दवा बार–बार मुझे वहाँ जाने से रोक देती है। इसी लिए दवा लेना मैंने बन्द कर दिया है। समझे न डॉक्टर! मुझे रोक रखने में आप सबको क्या मिलेगा?

डा० रमन कलकत्ता के बहुत बड़े अनुभवी डाक्टर थे। पूरे सात वर्ष अमरीका में प्रैक्टिस कर वापस स्वदेश लौटे थे वह। निशा को वे भी रोक न सके थे। उसका उपाय भी नही था उनके पास। लेकिन वह सुन्दर दृश्य देखने के बाद आश्चर्य जनक ढंग से शान्त हो गयी थी। उसकी शारीरिक पीड़ा भी मानो बहुत कम हो चली थी। मगर ! हाँ.. उसके पास कोई खड़ा होता तो अवश्य वह परेशान हो जाती। वह एकान्त में ही अधिक रहना पसन्द करती थी। लेकिन आश्चर्य की बात थी कि जब कभी मै वहाँ से हटने की कोशिश करता तो वह अपनी बन्द आँखें धीरे-धीरे खोलकर अपलक निहारने लगती मेरी ओर। और तब मेरे कदम अपने आप थम जाते। और फिर मैं अपने स्थान पर वापस लौट आता। चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरने लगता पहले की तरह।

वह रहस्यमय रमणीक स्थान और बिना शरीर के अस्तित्व का बोध

उस समय रात के ग्यारह बजे थे। रोज की तरह निशा के सिरहाने बैठा था मैं उदास–उदास सा। डा० रमन दो बार आकर उसे देख चुके थे। साँझ से ही निशा मौन साधे निर्विकार पड़ी थी बिस्तर पर, आँखे बन्द किए। अचानक चैतन्य हो उठी वह। तकिया के सहारे उसने सिर घुमाया और मेरी ओर देखकर कहने लगी वह–'सुनो' जहाँ से मैं अभी लौटी हूँ वह बहुत ही सुन्दर और रमणीक स्थान है। शान्ति तो इतनी है कि बतला नहीं सकती। इतना बतला कर निशा हाँफने लगी। फिर थोड़ा रुककर आगे कहने लगी–पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि मैं शरीर में नही हूँ। कितने मूर्ख और पागल हैं वे लोग जो शरीर को लेकर अपने अस्तित्व का बोध करते हैं। थोड़ी देर पहले मैं न जाने कैसे अपने शरीर से अलग हो गयी थी उस अवस्था में मैं अपने शरीर को उसी तरह देख रही थी जैसे तुम्हारे शरीर को देख रही हूँ। शरीर से अलग होने पर मैं सोचने लगी अरे! मैं तो बिना शरीर के भी जीवित हूँ। शरीर के अभाव में भी मेरा अस्तित्व बना हुआ है। किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आया है मेरे व्यक्तित्व में। 'फिर क्या हुआ'– मैंने पूछा?

उस समय मैं केवल अपने शरीर को ही देख रही थी। शरीर के अलावा मुझे और कोई वस्तु नहीं दिखाई दे रही थी। इस बात का बोध होते ही कि 'मैं' बिना शरीर के भी जीवित हूँ शरीर के प्रति तुरन्त उसी समय मेरा मोह और आकर्षण समाप्त हो गया। दूसरे क्षण किसी अज्ञात आकर्षण के वशीभूत हो कर आकाश में स्वच्छन्द उड़ने लगी। कभी मैं बादलों के बीच होती तो कभी निरभ्र गगन में। मैं अपने आप में काफी हल्कापन और तरोताजा अनुभव कर रही थी उस समय। ऐसा लगता था कि मैं किसी भारी बंधन से मुक्त हो गई हूँ।.... सच, शर्मा; शरीर एक भारी बंधन के सिवाय और है ही क्या?

'उसके बाद'- मैंने उत्सुकता से पूछा?

मैं उड़ती रही, उड़ती रही, फिर मैं एक ऐसे प्रकाशमय जगत मे जा पहुँची जिसमें प्रवेश करने के लिए एक काफी ऊँचा दरवाजा था। वह दरवाजा किसी लाल रंग की धातु का बना था।

असीम आनन्द का अनुभव

जब मैंने उस दरवाजे के भीतर से उस अलौकिक प्रकाशमय जगत में प्रवेश किया उस समय मुझे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस रहस्यमय अज्ञात जगत में चारों तरफ विभिन्न रंगो और विभिन्न प्रकार के फूल ही फूल खिले हुए थे जिनकी मिली-जुली सुगन्ध से वातावरण भरा हुआ था। चारों तरफ बिखरा हुआ प्रकाश हर क्षण अपना रंग बदल रहा था। कभी गुलाबी, कभी हरा, कभी नीला, कभी पीला तो कभी लाल रंग हो जाता था उस प्रकाश का।

इतना कहने के बाद निशा जोर-जोर से खाँसने लगी जिसकी आवाज सुनकर डा० रमन केबिन में चले आये। उस समय निशा जोर-जोर से साँस ले रही थी। एक प्रकार से वह हाँफ रही थी। दूसरे क्षण वह शान्त हो गई। चेहरा निर्विकार हो गया। डा० रमन ने इन्जेक्शन लगाया। उसी समय निशा ने फिर आँखे खोल दी। और कातर स्वर में कहने लगी 'मुझे क्यों रोक रहे हैं आप लोग?' फिर डाक्टर रमन की ओर देखकर बोली- 'डाक्टर! आप सुन नहीं रहे है कि वह प्रकाशमय जगत बार-बार मुझे आने को कह रहा है। मुझे जाने दें आप! प्लीज....।'

इतना कहकर निशा ने अपनी आँखे बन्द कर ली। लगभग १५-२० मिनट बाद उसने आँखे खोल कर मेरी ओर देखा और फिर कहने लगी वह-'मैंने अपना वादा पूरा नहीं किया शर्मा। तुम्हारी प्रेमिका बनी। प्रेयसी बनी। लेकिन पत्नी न बन सकी तुम्हारी। क्षमा करना तुम मुझे। मैं जानती हूँ तुम मेरे बिना नहीं रह सकोगे। तोड़ दोगे तुम अपने आपको! मेरे अभाव में तुम संसार मे कैसे रहोगे-इसकी कल्पना कर के सिहर उठती है मेरी आत्मा। लेकिन कर ही क्या सकती हूँ मैं। लाचार हूँ। विवश हूँ। नियति के सामने हार

रही हूँ मैं। मृत्यु हम दोनों को अलग अवश्य कर रही है, मगर हम दोनों का आत्मा के स्तर पर हमेशा-हमेशा संबंध बना रहेगा। आत्मा की दृष्टि से हम लोग कभी किसी काल में अलग न होंगे।'

'ऐसा मत कहो निशा। ऐसा मत बोलो। तुमको कुछ न होगा! निशा का दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुये करुण और विचलित स्वर में मैने कहा-बहुत जल्दी ठीक हो जाओगी तुम। तुम तो अच्छी तरह समझती हो कि तुम्हारे बिना मैं रह नही सकता इस संसार में। तुम्हारे अभाव में मेरा जीवन शून्य हो जाएगा। कब्रिस्तान की सारी खामोशी और श्मशान की सारी नीरवता भर जाएगी मेरे जीवन में! सारा भविष्य गहन अन्धकार में डूब जाएगा! बोलो निशा; साथ नहीं छोड़ोगी न तुम?' मगर मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निशा थी कहाँ? उसकी आत्मा शरीर का बंधन तोड़ कर महायात्रा पर निकल गई थी।

डा० रमन वहीं खड़े थे। उन्होंने जाँच की फिर मेरी ओर निराशा भरी दृष्टि से देखा। उनकी आँखों से आँसू निकल आये थे?

निशा इस नश्वर लोक को छोड़ कर उसी अज्ञात आलोकमय लोक में थी, मेरे जीवन में अन्धकार भर कर। उस समय मेरी मानसिक स्थिति कैसी थी बतला न सकूँगा। पूरी रात निशा की निर्जीव काया के निकट बैठा जीवन और मृत्यु की फिलासफी पर विचार करता रहा मैं।

क्या वह जीवित थी?

पूरी रात अस्पताल के उस प्राइवेट केबिन में निशा का शव पड़ा रहा बिस्तर पर और पूरी रात उसके सिरहाने बैठा रहा मैं अकेले। सबेरे लाश को हटाने के लिये डॉ० रमन आये। उनके साथ उस समय एक और सज्जन थे। नाम था डॉ० मिल्टन। डॉ० मिल्टन अमेरिकन थे। उन दिनों अपने भारतीय डॉक्टर मित्रों से मिलने कलकत्ता आए हुए थे। उनके भारतीय मित्रों में डॉ० रमन भी एक थे।

जब मैं मिला उस समय दोनों डाक्टरों के चेहरे पर घोर, आश्चर्य के भाव थे। डॉ० रमन ने बतलाया कि निशा मृत होते हुए भी एक प्रकार से अभी भी जीवित है। 'ऐं क्या कहा आपने?' आश्चर्य से पूछा मैने।

'हाँ मैं ठीक कहता हूँ। कल जब मैंने उसका निरीक्षण किया था उस समय उसका सारा शरीर बर्फ की तरह शीतल हो चुका था। जीवन का कोई भी चिह्न शेष नही था। यानी निशा मर चुकी थी। लेकिन.... लेकिन इस समय जब मैंने लाश को हटाने के पहले नियमानुसार उसकी जाँच की तो एक बारगी चौंक पड़ा मैं। निशा का पूरा शरीर पहले की ही तरह शीतल है। लेकिन मस्तिष्क गर्म है और उसका टेम्परेचर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। जीवन के सभी लक्षण समाप्त हो जाने के बाद मस्तिष्क भी दो घंटे बाद शान्त और शीतल

हो जाता है। मगर बारह घंटे बाद फिर मस्तिष्क क्यों गर्म हो गया? और क्यों उसकी गरमी धीरे-धीरे बढ़ रही है? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है? यह मेरा पहला अनुभव है।'

'यह सचमुच एक अत्यन्त रहस्यमय और आश्चर्यजनक बात है'-मैंने कहा।

चिकित्सा शास्त्र के अनुसार निशा की मृत्यु को पूरे बारह घंटे हो चुके हैं। मगर एक हिसाब से वह जीवित भी है। निःसंदेह निशा अपने आप में एक विचित्र रहस्य है। डॉ० मिल्टन ने कहा-जिस गति से मस्तिष्क का टेम्परेचर बढ़ रहा हैं उसके मस्तिष्क का रक्त सूख जाना चाहिए। नसें फट जानी चाहिए। मगर ऐसा कुछ भी नहीं है। इतना कह कर डॉ० मिल्टन चुपचाप कुछ सोचने लगे।

जब वह मर कर वापस लौटी

अब तक वहाँ निशा के परिजनों के अलावा अस्पताल के भी कुछ विशिष्ट लोग आ गए थे। सभी के चेहरे पर कौतूहल और आश्चर्य के मिले-जुले भाव थे।

सभी के सामने डा० मिल्टन ने लाश को फिर चेक किया। उनकी मुख मुद्रा गम्भीर थी उस समय गम्भीर स्वर में बोले इस समय जो स्थिति है उसे न गहरी नींद कहा जा सकता है न कोमा कहा जा सकता है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मृत भी नहीं कहा जा सकता। मस्तिष्क में टेम्परेचर है। इसलिए हम सब मृत भी घोषित नहीं कर पा रहे हैं। बड़ी असमंजस की स्थिति है। पूर्व मृत हो जाने के बारह घंटे बाद अचानक मस्तिष्क का हद से ज्यादा गर्म हो जाना सचमुच सभी के लिये आश्चर्य की बात थी। पूरे ग्यारह दिनों तक उसी रहस्यमयी विचित्र स्थिति मे रही निशा की लाश। बारहवें दिन उपस्थित सभी लोगों को घोर आश्चर्य में डाल कर निशा ने धीरे-धीरे अपनी आँखे खोलीं।

इतने दिनों तक वह युवती एक दम मृत स्थिति में किसी अज्ञात लोक में समहित थी जहाँ से लौटने के बाद उसने उत्सुकता से पूछा। आप सब लोग यहाँ क्यों खड़े हैं? क्या मुझे कुछ हो गया था?

कौन भला उसके इस प्रश्न का उत्तर देता? सभी मौन रहे। और सभी एक दूसरे के मुँह ताकते रहे।

उस समय मुझे कितनी खुशी हुई थी, बतला नहीं सकता मैं। मगर मेरी वह खुशी क्षणिक ही थी।

चिकित्सा शास्त्र के लिये अभूत पूर्व घटना

ग्यारह दिन के बाद किसी लोक अथवा किसी अज्ञात स्थिति से लौट कर निशा का आँखें खोल कर देखना और संचेत होकर बातें करना सबके लिये आश्चर्यजनक और अकल्पनीय था। डा० मिल्टन उत्तेजित हो उठे। उनके मन में अनेक जिज्ञासाएँ थी। अनेक

प्रश्न थे। मगर वें केवल दो-चार प्रश्न ही कर सके निशा से। उनका पंहला प्रश्न था-क्या आप इतने समय तक किसी स्वप्न की दुनियाँ में थीं। बतलाईए! कैसा स्वप्न था वह? आपने क्या-क्या देखा और क्या-क्या सुना समझा? दूसरा प्रश्न था-क्या आपकी बन्द आँखों के सामने सब कुछ अन्धकार मय था या प्रकाश मय? आप विस्तार से बतलाईए। आप किस परिस्थिति में थीं। उस प्रश्न को सुन कर बहुत देर तक उदास और विषण्ण दृष्टि से डा० मिल्टन की ओर अपलक देखती रही निशा। फिर उसने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

कुछ भी हो। निशा के उस अभूत पूर्व रहस्यमय प्रत्यावर्त्तन का कोई कारण डा० मिल्टन समझ नहीं पा रहे थे। उनकी दृष्टि में चिकित्सा शास्त्र में वह एक अभूत पूर्व अलौकिक घटना थी। वे अपने चेम्बर में लौटे मैं भी उनके साथ था उन्होंने तुरन्त अपने एक मित्र को बाम्बे फोन किया। मित्र का नाम था मि० जेम्स। मि० जेम्स सम्मोहन विद्या में पारंगत और परामनो वैज्ञानिक थे। और अमरीका के साइकोलाइजिकल सोसायटी के उपाध्यक्ष भी थे। उन दिनों डा० मिल्टन के साथ भारत वे भी आए हुए थे।

फोन पर डा० मिल्टन द्वारा निशा की रहस्यमयी कथा सुनकर मि० जेम्स पहले तो एकबारगी चौंक पड़े। फिर बोले-यह तो अत्यन्त विलक्षण, आश्चर्यजनक और रहस्यमय है, डा० मिल्टन! मैंने जीवन में ऐसी घटना न देखी है और न तो सुनी है। खैर में अगली फ्लाइट से कलकत्ता पहुँच रहा हूँ। इन्तजार करो।

सम्मोहित आत्म चेतना ने जब अतीत में प्रवेश किया

उसी दिन सायंकाल मि० जेम्स बाम्बे से आ गए। उन्होंने आते ही निशा को देखा। उस समय सिर और छाती को छोड़कर सारा शरीर बर्फ की तरह शीतल था निशा का 'निश्चिन्त रहो।' मि० जेम्स बोले-'जब रोगिणी बातें कर रही है तो घबराने का कोई कारण नहीं। उसे हम अपने ढंग से सम्मोहित कर उसके अवचेतन मन की एक-एक बातें जान समझ लेंगे।'

'ठीक है। मैं सहमत हूँ आपके विचार से' डा० मिल्टन ने कहा।

मैं भी वहीं खड़ा था। डा० जेम्स की बात सुनकर एकबार मुझे रोमाञ्च हो आया। परलोक विज्ञान की दृष्टि से मेरे सामने किसी अलौकिक जगत का रहस्य खुलने जा रहा था। मुँह बाए कभी मैं डा० रमन की ओर देखता तो कभी मि० जेम्स की ओर।

निशा को एक ताप-नियन्त्रित और ध्वनि रोधक कक्ष में ले जाया गया। उस समय रात के नौ बजे थे। उस कक्ष में किसी को जाने की अनुमति नहीं थी। उन तीनों महापुरुषों के अलावा केवल मैं था वहाँ। प्रयोग शुरु हुआ। मि० जेम्स ने अपनी पद्धति से निशा की आत्मा को सम्मोहित करना शुरु किया। उस समय निशा बहुत धीरे-धीरे साँस ले रही थीं।

उसके क्लान्त चेहरे पर किसी प्रकार का भाव नहीं था। ऐसा लगा मानो वह किसी को पहचान नहीं रही है। 'मिस निशा, आप मेरी ओर देखिए'-मि० जेम्स का गम्भीर स्वर ध्वनि रोधक कक्ष में गूँजा। आप मिस निशा शर्मा हैं। आपकी उम्र पच्चीस वर्ष है। कोल्हापुर में आप का जन्म हुआ था। हाँ आप धीरे-धीरे साँस लीजिये। आप मेरी बात सुन रही हैं न!

'सुन रही हूँ'-निशा ने धीमे स्वर में कहा।

आप पूरे एक महीने तक किसी अज्ञात बिमारी के कारण जीवन और मृत्यु के बीच थी! उसके बाद फिर आप पूरे बारह घंटे तक मौत की अंधेरी घाटियों में थी। इस दुनियाँ में आपका आस्तित्व नहीं था। बतलाईए उस अवस्था में आपने क्या-क्या देखा और क्या-क्या अनुभव किया?

सम्मोहन की उस उस स्थिति में लगा कि निशा के अन्दर से मानों कोई बाधा अ रही है जो उसे बोलने नहीं दे रही है! उस समय उसकी आँखें बन्द थी। और चेहरे पर किसी भी प्रकार के विकार का चिन्ह नहीं था। लेकिन उसके लिए मि० जेम्स के आदेश का उल्लंघन करना असम्भव था। उसके मस्तिष्क में बार-बार मि० जेम्स का आदेश ध्वनित होने लगा।

'मिस० निशा शर्मा याद करिए' फिर थोड़ा ठहर कर मि० जेम्स बोले-याद रखिये.....याद रखिये.....मैं आपसे जवाब माँग रहा हूँ। बतलाईए।

सम्मोहन की उस आरम्भिक स्थिति में ही निशा की बाह्य चेतना पूरी तरह लुप्त हो गई और उसी के साथ-साथ जागृत हो गई अन्तर चेतना।

निशा के होंठ हिले। कहने लगी वह-'मैं अपने शरीर को छोड़ना नहीं चाहती थी' उससे अलग भी होना नहीं चाहती थी। मगर कोई अज्ञात शक्ति मुझे खींच रही थी अपनी ओर उस समय अपने को असहाय अनुभव कर रही थी मैं। सिर छाती और नाभि के पास भयानक जलन हो रही थी। मेरा अपने अंगो पर कोई अधिकार नहीं रह गया था। देखने-सुनने और समझने की ताकत भी खत्म हो गई थी। फिर धीरे-धीरे चारों तरफ अंधेरा छा गया। अंधेरे के कारण मैं घबराने लगी और साँस लेने में तकलीफ होने लगी। मेरी स्थिति काफी शोचनीय थी उस समय मेरा ध्यान बस साँस लेने में ही केन्द्रित था। यदि साँस भीतर जाती तो बाहर निकलने में तकलीफ होती। यदि साँस बाहर निकल आती तो फिर भीतर ले जाने में भयानक तकलीफ होती। उसी अवधि में अचानक मुझे क्या हो गया, मैं नहीं जानती। उस स्थिति में मैं अपनी जाति, अपनी सांसारिक स्थिति और अपना नाम भूल गई। उस समय मैं पच्चीस वर्ष की युवती नहीं थी। मैं धीरे-धीरे छोटी होती चली गई थी।

'जरा इस बात को और स्पष्ट करो' मि० जेम्स का गम्भीर स्वर गूँजा!

निशा क्षण भर चुप रही। फिर कहने लगी–'मैं छोटी से छोटी होती चली गई। जन्म से मृत्यु की ओर नहीं मृत्यु से जन्म की ओर मैं बढ़ती गयी थी और अन्त में बिल्कुल छोटी बन कर अपनी माँ की गोद में खेलने लगी। उसके बाद और भी छोटी और भी सूक्ष्म होते-होते बिल्कुल गायब हो गयी।'

मां के गर्भ में

'याद करने की कोशिश करिए मिस० शर्मा' जेम्स का गम्भीर स्वर फिर कक्ष के शान्त वातावरण में गूँजा। अभी तो आपने बतलाना शुरु किया है। अभी आप को और बहुत कुछ बतलाना है। बतलाईए! याद करने की कोशिश करिए।

......बतलाती हूँ......बतलाती हूँ......मैं अपनी माँ के गर्भ में पहुँच गयी थी। चारों तरफ घना अन्धकार था। मगर मैं उस घने अन्धकार में रह कर भी अपनी माँ की आवाज साफ सुनती थी। माँ की मानसिक स्थिति को भी साफ-साफ समझती थी। वह कब और क्या सोचती थी वह मुझे तत्काल मालूम हो जाता था। कभी कभी माँ के आस पास होने वाली आवाज और वार्तालाप को भी सुन लिया करती थी। लेकिन फिर भी मेरा ध्यान हर समय अपने अतीत की ओर ही रहता था।

इस समय जो तुम्हारी माँ है–उन्हीं के गर्भ की बात तुम कह रही हो?

हाँ इसी माँ के गर्भ में अपनी स्थिति की चर्चा की है मैंने!

वर्तमान जन्म की माँ के गर्भ में आने के पहले तुम कौन थी? कहाँ थी? और कैसे मर कर वर्तमान माँ के गर्भ में प्रवेश किया। मि० जेम्स एक-एक शब्दों पर जोर दे कर बोले।

पिछले जन्म का विवरण

कुछ देर तक कक्ष में गहरी निस्तब्धता छाई रही। फिर निशा का मद्धिम स्वर वातावरण में तैरने लगा–'मैं जरा-जीर्ण वृद्धा थी। मृत्यु के समीप थी। मेरे पास अपार धन था। परिवार भी मेरा काफी बड़ा था। सब कुछ रहते हुए भी मेरे मन में शान्ति नहीं थी। शान्ति के लिये बराबर व्याकुल रहा करती थी। मैंने अपने पति के साथ आधे से अधिक विश्व भ्रमण किया था। धनवैभव ने मुझे अहंकारी बना दिया था। जब मैं चालीस वर्ष की उम्र की थी उस समय मेरे पति की मृत्यु हवाई दुर्घटना में हो गई। पति की मृत्यु के बाद मैं और अधिक अशान्त हो गई। मेरा जीवन एकाकी और अशान्त बीतने लगा। अन्त में मुझे कैंसर हो गया। और उसी बीमारी में अस्सी वर्ष की उम्र में मेरी मृत्यु हो गई।'

'तुम्हारा नाम क्या था'

मालती देशमुख।

फिर क्या हुआ? मि० जेम्स ने फिर प्रश्न किया।

जब उसने अपनी जलती हुयी चिता देखी

निशा मौन रही। उसके होंठ अवश्य हिले, लेकिन बोल नहीं निकले।

मि० जेम्स ने फिर तीव्र स्वर में कहा-'रुक क्यों गई ?'

बताईए। चुप रहने से नहीं चलेगा। तुमको बतलाना ही होगा।'

हाँ बतला रही हूँ.....बतला रही हूँ। मृत्यु के क्षण मैं बेहोश हो गई थी। कब तक बेहोश रही यह तो नहीं जानती। लेकिन जब होश आया तो देखा कि नदी के किनारे मेरी लाश को लोग जला रहे थे। वहाँ मैंने अपने परिवार के लोगों को गमगीन और उदास देखा। मैंने उन लोगों से बात करनी चाही। मगर ऐसा न हो सका। मेरे और उनके बीच कोई ऐसी चीज थी जिससे मैं न अपने परिवार के लोगों की बात सुन पाती थी और न तो मेरी बात को वे ही लोग सुन पाते थे। पहले तो मुझे अपनी जीर्ण-शीर्ण काया को चिता में जलती हुई देखकर घोर क्लेश हुआ, काफी देर तक मांस मज्जा के शरीर को चिता की लपटों में भस्मीभूत होते हुए देखती रही। लेकिन बाद में जब इस बात का मुझे ज्ञान हुआ कि मैं बिना शरीर के भी रह सकती हूँ तो वह क्लेश और शरीर के प्रति मोह तुरन्त समाप्त हो गया। मैं इधर-उधर हवा में एक प्रकार से तैरती हुई डोलती रही। कितने समय तक मेरी वह स्थिति थी बतला नहीं सकती।'

नये गर्भ की खोज में

आत्मा को उसके विचार, भाव और संस्कार के अनुसार नया गर्भ मिलता है। मैं किसी ऐसी महिला की खोज में भटकने लगी जो मुझे गर्भ में धारण कर सके। जिस किसी स्त्री को गर्भवती देखती-उसी के पीछे लग जाती मैं। मगर बाद में स्वयं मुझे ऐसा लगता कि वह स्त्री मुझे धारण करने के योग्य नहीं है। इस प्रकार मैं काफी दिनों तक इधर-उधर चक्कर काटती रही। अन्त में एक महिला मिली जो मेरे संस्कार, विचार और भाव के अनुकूल थी। वह मुझे धारण करने योग्य थी। उसका प्रसव समय आ गया था। मैं तुरन्त उस महिला के मुँह के रास्ते गर्भ में प्रवेश कर गई। उसके बाद फिर मुझे किसी बात का ज्ञान नहीं रहा। उसी महिला की पुत्री को आप निशा शर्मा कहकर पुकार रहे हैं।

निशा के संबंध में हम जानते हैं। आप अपने विषय में मुझे बतलाए मालती देश मुख! आप मालती देशमुख के पहले क्या थीं? मालती देश मुख के रूप में जन्म लेने के पूर्व आपने कहाँ जन्म लिया था और किस रूप में थीं। मैं अब और अतीत में नहीं जा सकती। मुझे भारी कष्ट हो रहा है-दयनीय स्वर में निशा ने कहा।

'आपको जाना पड़ेगा...... जाना ही पड़ेगा'-मि० जेम्स का आदेश भरा स्वर सुनाई पड़ा।

एक सौ दस वर्ष पूर्व उसने वाराणसी में जन्म लिया था

'मालती देश मुख के पहले मैं वाराणसी में थी।' निशा ने धीरे-धीरे कहना शुरु किया-'लगभग एक सौ दस वर्ष पूर्व मैंने वाराणसी में जन्म लिया था। मेरा नाम था सुधा जोशी।' मेरा परिवार काफी सम्पन्न और सुसंस्कृत था। मेरे पिता यशवन्त जोशी ब्रिटिश सेना में एक उच्च अधिकारी थे। जब मैं अपनी माँ के गर्भ में थी-तभी उनकी मृत्यु हो गई। मेरी माँ, पिता जी की याद में हमेशा रोती रहती थीं। गर्भ में रहकर भी मैं माँ के रोने की आवाज बराबर सुना करती थी। मुझे घोर कष्ट होता था। फिर कब और कैसे मेरा जन्म हो गया-मुझे पता नहीं। निशा फिर चुप हो गयी।

मि० जेम्स ने आगे बोलने का आदेश दिया।

लड़खड़ाते स्वर में निशा ने आगे बतलाना शुरु किया 'मैं' बहुत सुन्दर थी। जब कोई मेरे रूप-रंग और सौन्दर्य की चर्चा करता तो फूले न समाती मैं। धीरे-धीरे मैंने यौवन में प्रवेश किया। रंगीन सपनों और सुनहली कल्पनाओं के सागर में हर समय डूबी रहने लगी मैं। अभी मैंने अट्ठारह बसन्त ही देखे थे कि माँ का भी साया उठ गया और अनाथ हो गयी मैं। उस रात खूब रोई थी मैं। मरते समय माँ ने कहा था-'सुधा तुम अपनी पढ़ाई मत बन्द करना। कितना ही कष्ट झेलना पड़े 'मगर पढ़ाई पूरी अवश्य करना।'

मैंने माँ के अन्तिम आदेश और अन्तिम अभिलाषा को पूरा किया। उस समय बनारस में विश्व विद्यालय नहीं था। संस्कृत पाठशालाओं की ही संख्या काफी थी। संस्कृत के विद्यार्थियों को बहुत सारी सुविधाएँ मिलती थीं। स्त्रियों में शिक्षा का अभाव था। पर्दा प्रथा कठोर थी। लेकिन फिर भी मैंने अपने सतत् प्रयास से संस्कृत साहित्य में आचार्य किया। कालिदास के काव्यों को पढ़ने का अवसर मिला। परिणाम स्वरूप मैं हद से ज्यादा कल्पनाशील और भावुक बन गई। हर समय कल्पनालोक में ही विचरण करने लगी। और बहने लगी भावना के प्रवाह में।

अन्त में कल्पना और भावुकता ने मुझे उन लड़कियों की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया जो अरमानों की दरिया के किनारे सपनों का घरौंदा बना तो लेती हैं किन्तु कठोर यथार्थ के एक ही झोंके में सब कुछ बिखर जाता है टूट जाता है। फिर कोई राह नहीं सूझती, मिलते हैं सिर्फ आँसू।

इतना कह कर निशा सिसकने लगी और सारा वातवरण बोझिल हो उठा एक बारगी। निश्चय ही निशा के मानस पटल पर अतीत का कोई दुखद दृश्य उभर कर साकार हो गया था उस समय। अन्त में वह अतीत के सागर में न जाने कहाँ डूब गयी। उसका चेहरा एक दम स्याह हो गया।

अखण्ड आत्मा की अन्तहीन यात्रा

मि० जेम्स परेशान हो उठे। एक दो बार उन्होंने प्रश्न किया। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। तब उन्होंने डा० रमन से कहा–'मि० रमन! तुम जरा निशा की नब्ज तो देखो।'

डा० रमन ने निशा की नब्ज देख कर कहा–'नब्ज हद से ज्यादा तेज चल रही है। जरा सावधान रहना होगा। मै देख रहा हूँ कि जैसे-जैसे निशा एक-एक जन्म पीछे लौट रही है इनमें दारुण प्रक्रिया हो रही है।'

डा० मिल्टन बोले–'मि० जेम्स! इस समय यह परीक्षण खत्म किया जाए। रोगिणी को आराम करने की जरूरत है।'

ठीक है! मि० जेम्स ने कहा– 'आप यहीं रहें। मैं तब तक इनके मस्तिष्क का फालोग्राम रिकार्डिंग देख लूँ।' मि० जेम्स चले गए। केवल डा० रमन और डा० मिल्टन वहाँ रहे। निशा बिस्तर पर निश्चेष्ट और निश्चल पड़ी थी।

अब तक मैंने जो कुछ देखा-सुना और समझा था उसने मेरे अन्तरमन में एक भयानक तूफान खड़ा कर दिया था। अनेक प्रश्नों और अनेक जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी थी मेरे मस्तिष्क में। मैं अवाक् था। स्तब्ध था। उस घटना ने मेरी विचार धारा को ही एकदम बदल दिया था। यह बात अच्छी तरह मेरी समझ में आ गई कि जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म का संबंध आत्मा से नहीं बल्कि शरीर से है। शरीर ही जन्म लेता है। शरीर ही मरता है और शरीर ही पुनर्जन्म भी स्वीकार करता है। आत्मा का अस्तित्व स्वतंत्र है। न वह मरती है, न जन्म लेती है और न तो उसका पुनर्जन्म ही होता है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में आत्मा की यात्रा अन्तहीन है। और उस अन्तहीन यात्रा का अपना दीर्घ इतिहास है। मृत्यु केवल उस दीर्घ इतिहास को अध्याय अथवा परिच्छेद में विभक्त कर देती है। हर अध्याय में और हर परिच्छेद में मनुष्य का नया शरीर होता है। नया जीवन होता है। नया रूप होता है। नया नाम होता है और नई सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था होती है। निशा के पिछले दो जन्मों की कथा इस कठोर और अकाट्य सत्य की साक्षिणी थी मेरे लिये।

वह रहस्यमय धब्बा

बिस्तर पर निश्चेष्ट पड़ी निशा की ओर अपलक निहार रहा था मैं। थोड़ी देर बाद मि० जेम्स लौट आए। उस समय उनके चेहरे पर विस्मय का भाव था।

क्या हुआ? तुमने क्या देखा? डा० मिल्टन ने प्रश्न किया। सचमुच बड़ा आश्चर्य है। इनके फालोग्राम का रिकार्ड देखा। उसमें विलक्षण बात है डा० मिल्टन! मै कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। अपनी जिन्दगी में मैंने ऐसा रिकार्ड कभी नहीं देखा।

बात क्या है? फिल्म के बीच-बीच मे धब्बे हैं। मानो उन स्थलों पर फ्लैश लाइट का तेज प्रकाश पड़ा हो। वे धब्बे कैसे है? किस तरह समझाऊँ? वे कुहरे से घिरे सूर्य के

चारों तरफ अलौकिक प्रकाश वृत्त की तरह हैं। तुमने ठीक ही कहा था कि एक जन्म पीछे लौटते समय रोगिणी मे तीव्र प्रतिक्रिया हो रही है। रोगिणी के अवचेतन मन पर उन संक्रमण के क्षणों की प्रतिक्रिया के ही प्रमाण हैं ये रहस्यमय धब्बे। उन क्षणों में रोगिणी की नब्ज भी बहुत अनियमित हो गई थी।

आश्चर्य है! डा० मिल्टन! क्या निशा अगली सिटिंग के लिये तैयार है? नहीं! एकदम नहीं! इस गहरी नींद से अभी किसी भी तरह नहीं जगेंगी।

ठीक है। कल तक आराम कर लेने दो। परसों रात को मैं फिर अपना प्रयोग करूँगा। मि० जेम्स ने कहा। लगा कि मि० जेम्स अपनी किसी जिज्ञासा के समाधान के लिए आतुर हैं।

मैं भी यह जानने के लिये उत्सुक और व्यग्र था कि सुधा जोशी के जीवन में कौन सी ऐसी घटना घटी और कौन सी ऐसी बात हुई जिसने उसकी सारी जिन्दगी को आँसुओं में डुबो दिया।

तीसरे दिन मि० जेम्स ने अपना प्रयोग शुरु किया। उस समय भी पहले की ही तरह हम चार व्यक्ति वहाँ थे। रात की स्याह चादर फैल चुकी थी। कमरे में सिर्फ नीले रंग का एक छोटा सा बल्ब जल रहा था। वातावरण में गहरी खामोशी छायी हुई थी। इस बार निशा की आत्मा को सम्मोहित होने मे अधिक समय नहीं लगा। धीरे-धीरे वह अवचेतन अवस्था में चली गई।

एक असफल प्रणय गाथा

आप कौन हैं? मि० जेम्स ने गम्भीर स्वर मे प्रश्न किया? निशा शर्मा।

मैं आपको आदेश देता हूँ कि आप एक सौ दस वर्ष पीछे अतीत मे चली जाएँ। लगभग पन्द्रह मिनट बाद मि० जेम्स ने फिर प्रश्न किया-अब बतलाईए आप कौन है?

सुधा जोशी। क्षीण स्वर मे उत्तर मिला। मुझे बतलाईए कि आपके साथ कौन सा ऐसा हादसा हुआ जिसकी वजह से आपकी जिन्दगी उन लड़कियों जैसी हो गई जिन्हें आँसू के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। बतलाईए! आपको बतलाना ही होगा।

मि० जेम्स के इस प्रश्न के उत्तर मे सुधा जोशी की जो मर्मस्पर्शी प्रणय कथा सामने आई उसने मेरी आत्मा को एक बारगी झकझोर दिया। और इस तथ्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया कि हम जिससे इस जन्म में मिलते हैं उससे पिछले किसी जन्म में भी मिले हुये होते हैं।

धीरे-धीरे माँ की रखी सारी पूँजी खत्म हो गई। अब सुधा को नौकरी की जरूरत महसूस होने लगी। वह सुन्दर थी। स्मार्ट थी। सुशिक्षित भी थी। संस्कृत में आचार्य करने के साथ-साथ उसने बी० ए० भी किया था। इसलिये थोड़े से ही प्रयास से अच्छी

सरकारी नौकरी मिल गई उसे। सुधा नौकरी करने लगी। समय बीतता गया। उसके कार्यालय मे एक युवक भी काम करता था। नाम था अनुराग शर्मा। वह गरीब युवक था। परिवार में केवल माँ थी और एक छोटी बहन। किसी प्रकार बी० ए० करने के बाद बड़ी कठिनाई से नौकरी मिली थी उसे। वह बहुत बड़ा महत्वाकांक्षी और होनहार युवक था। सुधा उसे बहुत भली और मोहक लगी। जब उसे यह मालूम हुआ कि सुधा कवियित्री भी है तो और अधिक मुग्ध हो गया वह। क्योंकि वह स्वयं कविता प्रेमी था। जब सुधा कार्यालय मे आती तो अनुराग अपलक निहारने लगता कभी-कभी उसे। वह उससे बाते करने के लिये बेचैन सा रहने लगा। पर सुधा ने शुरु में उसे कोई लिफ्ट नहीं दी थी। इसी बीच सुधा बीमार पड़ गई। और कई दिनों तक नौकरी पर नहीं गई। अनुराग को जब उसकी बीमारी का समाचार मिला तो उसे चैन नहीं पड़ा। वह फल वगैरह लेकर एक दिन सुधा के घर जा पहुँचा।

अनुराग को इस प्रकार आया देखकर सुधा को आश्चर्य हुआ और खुशी भी। उस दिन पहली बार महसूस हुआ कि अनुराग के ह्रदय में उसके लिये कोमल भावनाएँ हैं उसने स्वयं भी अनुराग को इसी नजर से देखा तो वह उसे अपनी कल्पानाओं के अनुरूप ही लगा। उस दिन दोनों काफी देर तक बातें करते रहे। अनुराग उसे किसी अच्छे डाक्टर से दवा लेने की सलाह देकर चला गया। उसके जाते समय सुधा ने उसे मुस्कराते हुए विदा किया। और फिर आने का आग्रह भी।

अगले दिन अनुराग फिर सुधा के घर जा पहुँचा। उसे आया देख सुधा का मुरझाया चेहरा एक बारगी खिल उठा। अनुराग अपने साथ उसे डाक्टर के पास ले गया। चेकअप कराया। दवा ली। पैसा भी उसने अपना ही खर्च किया।

अनुराग ने अपने इस अपनत्व भरे व्यवहार से सुधा के ह्रदय में स्थान बना लिया। अच्छा इलाज और आन्तरिक उल्लास से वह दो-तीन दिन में ही स्वस्थ हो गई। स्वस्थ होकर जब सुधा कार्यालय पहुँची तो उसकी आँखों मे नई चमक और मन में उमंग थी। सायंकाल कार्यालय से दोनों साथ ही बाहर निकले। बातचीत में पहल अनुराग ने ही की। सुधा अब बीमार मत पड़ना कभी। जानती नहीं। तुम जब कार्यालय नहीं आती तो सब सूना-सूना सा लगता है।

ऐसा क्यों? सुधा ने दबी मुस्कान के साथ पूछा तो अनुराग सहज भाव से बोला- यह तो मैं स्वयं नहीं जानता, पर यह मेरा अपना अनुभव है। --यह नहीं जानते पर सेवा टहल करना खूब जानते हैं। -हम दोनों एक ही राह के मुसाफिर हैं। एक दूसरे का साथ सुख में न सही दु:ख में तो देना ही चाहिए। अनुराग ने कहा।

यह सुनकर सुधा बोली-जितना तुमने मेरे लिये किया इतना तो कोई अपने जीवन साथी के लिए भी नहीं करता। यही तो हम स्वयं नहीं जानते-समझते कि कब कौन साथी जीवन भर साथ निभाने का वादा कर हाथ बढ़ा दे। सहज भाव से अनुराग बोला।

सुधा से कुछ बोला न गया। वह चुप रही। फिर भी वह अनुराग का मन्तव्य समझ गई। उसने बातचीत का विषय बदल दिया। काफी दूर तक दोनों साथ-साथ चलते रहे। फिर अपने-अपने घर चले गए।

अब दोनों रोज छुट्टी के बाद घंटे दो घंटे साथ बिताने लगे। वे किसी एकान्त स्थान में बैठते। अनुराग के कहने पर सुधा उसे कविता सुनाती। दोनों प्रेम की अनुभूति में घंटो खोए रहते।

जब अनुराग और सुधा का प्रेम सारे बन्धनों को तोड़ने के लिये आतुर हो उठा तो दोनों ने विवाह करने का निर्णय कर लिया। अगले महीने दोनों की शादी हो गई। दोनों का-वैवाहिक जीवन बड़े ही सुख से बीतने लगा। मगर वह सुख अधिक दिनों तक न रह सका। अनुराग की मृत्यु एक दुर्घटना में हो गई। सुधा के जीवन में घोर अन्धकार छा गया। वह बेसहारा हो गई। वैसे उसके पास किसी चीज का अभाव नहीं था। लेकिन अकेलापन और जीवन में भर आई शून्यता उसे कभी-कभी विचलित कर देती।

उन्हीं दिनो की एक उदास शाम।--

सुधा अपने लान में बैठी कोई दर्द भरी कविता गुन-गुना रही थी। जिसे सुनकर उधर से गुजर रहे एक युवक कमलेश के पैर थम गए। कमलेश उसी मुहल्ले में अपने बहनोई के पास रहकर व्यापार करता था। लान के चारों तरफ झाड़ियों की बाढ़ थी। कमलेश ने झाड़ियों के पार झाँक कर देखा तो काफी देर तक मंत्र मुग्ध सा देखता ही रह गया। उसे सुधा न देख सकी। कविता समाप्त हुई तो कमलेश प्रशंसा किए बगैर न रह सका-बहुत अच्छा गाती हैं आप। सुधा ने नजर उठा कर देखा। झाड़ियों के पास खड़े उस सुदर्शन युवक की बात उसे अच्छी लगी। शिष्टता के साथ की गई प्रशंसा उसके मन को छू गई। क्योंकि इस सहज अभिव्यक्ति ने उसे गहरी निराशा में डूबने से बचा लिया था। प्राय: वह आहत मन को कुरेदती ऐसी शामों को गीत गाने के बाद सिसक-सिसक कर रोने लगती थी। बाहर घिरता अंधेरा उसके अन्त:स्थल में पैठ जाता था। और तब वह अनुराग के चित्र के सामने जाकर खड़ी हो जाती थी। और काफी देर तक उसे निहारा करती थी।

कमलेश की मनोदशा विचित्र हो गई थी। वह सुधा से परिचय करने के लिए व्याकुल रहने लगा उस दिन से। एक दिन उसे मौका मिल गया। सुधा बाजार जा रही थी, कमलेश उसे रास्ते में मिल गया और बड़ी शालीनता से वह कहने लगा-सचमुच आप बहुत अच्छा गाती हैं। मै चाहकर भी अपने को रोक न सका था। आपकी आवाज में जो कसक थी और जो दर्द था उसे मै भुला नहीं पा रहा हूँ। क्या फिर कभी सुन सकूँगा आपकी आवाज?

सुधा को कमलेश का इस तरह बात करना अच्छा लगा। उसका मन हुआ कि कमलेश उसकी अधिक से अधिक प्रशंसा करे और वह चुप सुनती रहे। अपने दर्द को यों सहलाती रहे। आप चुप हैं! बुरा मान गईं क्या? मैं...... मैं..... क्षमा.....। कमलेश का गला रुँधने लगा।

नहीं, नहीं.....आपने मेरी तारीफ की है। बुरा नहीं कुछ अच्छा ही लगा है। आप कौन.........कहाँ रहते हैं? सुधा पहले जल्दी-जल्दी फिर रुक-रुक कर बोली। उसी दिन दोनों एक दूसरे से परिचित हुए। और उसी दिन से दोनों का प्राय: मिलना जुलना भी शुरु हो गया। कमलेश सुन्दर और आकर्षक युवक था। अभी उसका विवाह नहीं हुआ था। सुधा उससे मिलकर थोड़ा हँस-बोल लेती तो बरसों से घना होता आया कुहरा छँटने लगता। ठहरी हुई जिन्दगी को गति देने की ललक फिर जोर मारने लगती। उसका कलाकार मन हरा हो जाता।

हालाँकि सुधा सच्चे हृदय से कमलेश को प्यार करने लगी थी। फिर भी उसने उसे यह नही बतलाया कि वह विधवा है। सुधा चाहती तो थी कि कमलेश को सब कुछ बतला दे। पर उसे इस बात का डर था कि वास्तविकता जानने के बाद कमलेश उसका साथ न छोड़ दे। इसलिए वह चुप रही।

कमलेश सुधा से शादी करना चाहता था। सुधा भी स्वयं यही चाहती थी कि किसी प्रकार उसे कमलेश का सहारा मिल जाए। लेकिन अभी वह अपने विवाहित होने की बात बतलाना नहीं चाहती थी। इसलिए घरेलू विवशता का बहाना करके कमलेश को कुछ दिन रुकने को कह दिया उसने। धीरे-धीरे दोंनो का संबंध प्रगाढ़ होता गया। अन्त में सुधा ने अपने आप को पूर्णतया समर्पित कर दिया। दोनों पति-पत्नी की तरह रहने लगे। सुधा के मकान मे ही अधिकांश समय बीतने लगा कमलेश का लेकिन सत्य अधिक समय तक छिपा न रह सका। एक दिन कमलेश को सारी बातें मालूम हो गई। तब वह सुधा को एक खूबसुरत छलावा समझ कर उससे धीरे-धीरे दूर होने लगा। फिर मिलना जुलना भी बन्द कर दिया उसने। कमलेश का यह व्यवहार देख कर सुधा के भावुक मन को गहरी चोट लगी।

एक दिन सुधा कमलेश से मिली और उससे नाराज होने का कारण पूछा। कमलेश के होंठो पर व्यंगपूर्ण मुस्कराहट आ गई। वह सुधा के चेहरे पर दृष्टि जमाकर बोला- 'सुधा' मैंने सोचा था कि तुमको अपनी जीवन संगिनी बनाऊँगा एक दिन। मगर अब लगता है कि यह एक सपना था जो तुम्हारी इन फरेबी आँखों की गहराई मे डूब गया। तुमने मुझसे अपना सब कुछ छिपाए रखकर मुझे धोखा दिया। ऐसा क्यों किया तुमने मेरे साथ?

कमलेश की बात सुनकर सुधा की आँखें भर आयी। अवरुद्ध कण्ठ से बोली–मुझे मालूम था ऐसा ही होगा एक न एक दिन। दुर्भाग्य मेरा है। भूल मेरी अपनी है। इसलिए तुम्हें कुछ कहने का हक भी नहीं है मुझे। कमलेश कुछ बोला नहीं चुपचाप चला गया। सुधा फिर एक बार अकेली हो गई। कमलेश जाते–जाते उसे ऐसा दर्द दे गया कि जो उसके नस–नस में उतरता चला गया। उसने निश्चय कर लिया कि वह अब जीवन भर अकेली ही रहेगी। लेकिन प्रयास करने पर भी अपने मनसे कमलेश की याद निकाल न पाई। चाह कर भी भूल न सकी उसे। वह जितना संयमित और दृढ़ रहने की कोशिश करती उतना ही अधिक निराश होती। अन्त में एक दिन उसने जहर खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की लेकिन उसे बचा लिया गया। जब कमलेश को इस बात का पता चला तो उसे दु:ख हुआ। वह सुधा से मिला और सांत्वना देते हुए कहा वह उससे भले ही शादी न करे पर प्रेम संबंध जीवन भर बनाए रखेगा। कमलेश का यह निर्णय सुनकर सुधा के मनको थोड़ी शान्ति मिली। कमलेश पहले की ही तरह सुधा के यहाँ आने जाने लगा। कभी-कभी तो वह हफ्तों उसी के यहाँ रह जाता। सुधा प्रसन्न थी। उसके कलाकार हृदय को फिर नई प्रेरणा और नया उत्साह मिला। इसी बीच वह गर्भवती हो गई। एक दिन सुधा ने अपने गर्भवती होने की चर्चा कमलेश से की। और अन्त में कहा–अब उसके बिना वह एक पल भी नहीं जीवित रह सकती। अगर वह वास्तव में उससे प्रेम करता है तो वह उसे अपने पास नौकरानी ही बना कर रखे।

यह सुनकर कमलेश सन्न रह गया। उसकी समझ मे नही आया कि क्या जवाब दे सुधा को। सुधा दु:ख और निराशा के सागर में फिर डूबने लगी। वह अपने भविष्य के प्रति चिन्तित तो थी ही अब पेट में पल रहे बच्चे के प्रति भी परेशान रहने लगी। एक सप्ताह बाद कमलेश आया और बोला कि अब वह हमेशा के लिये अपने घर जा रहा है। बहनोई के पास नहीं रहेगा। उससे अब वह कभी नहीं मिलेगा।

यह सुनकर सुधा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह रोती हुई बोली– 'कमलेश!' जानते हो कि मैं तुम्हारे बच्चे की माँ बनने वाली हूँ। मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा। और न तो कभी मागूँगी ही। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकते कि मुझे अपने प्यार का सहारा बराबर दिए रहो। मैं जीवन भर तुम्हारी नौकरानी बन कर रहने को तैयार हूँ। पर तुमसे दूर रहने की कल्पना भी नहीं कर सकती मैं। इससे तो मौत भली।

लेकिन कमलेश ने सुधा की बात को गहराई से नहीं लिया और उसकी भावनाओं को ठुकरा कर हमेशा के लिए चला गया अपने घर।

लगभग एक महीने बाद सुधा ने एक वकील को बुलाया और लिखा पढ़ी कर अपना मकान और सारी अन्य चल–अचल सम्पत्ति अनाथालय को दान कर दी। और उसी रात फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली उसने। एक भावुक कवियित्री को उसका

अपना ही भावुक हृदय काला नाग बनकर डँस गया। फाँसी लगाने के पूर्व उसने कागज के एक टुकड़े पर लिखा था साथी कोई उम्र भर का उम्र भर न मिला।

प्रत्येक व्यक्ति अज्ञात रूप से अपने पिछले जीवन की न जाने कितनी पीड़ाओं, वेदनाओं, व्यथाओं और न जाने कितने कष्टों का बोझ ढोता रहता है। उसे स्वयं पता नहीं। उसे यह भी पता नहीं कि उसकी मस्तिष्क कोशिकाओं में पिछले कितने जन्मों की स्मृतियाँ भरी पड़ी हैं। निशा के पिछले जन्म की मर्मस्पर्शी कथा सुनकर हम सब लोगों पर गहरी उदासी छा गई। मै तो एक बारगी किंकर्तव्यविमूढ़ और स्तब्ध सा हो गया था। मि० जेम्स मुँह में सिगरेट दबाए न जाने क्या सोच रहे थे। उसके बाद निशा पूरे चालीस घंटे गहरी नींद में सोई रही। मि० जेम्स का विचार था कि एक और सिटिंग करेंगे। मगर इसका मौका उनको नहीं मिला। चालीस घंटे की गहरी नींद के बाद निशा ने कुछ क्षण के लिये आँखें खोली और एक बार चारों तरफ नजर घुमाकर देखा और फिर हमेशा-हमेशा के लिये चिर निद्रा में सो गई वह।

कहने की आवश्यकता नहीं। निशा की मृत्यु ने मेरे जीवन में जहाँ अंधकार भर दिया था वही दूसरी ओर उसके जीवन की मर्मस्पर्शी कथाओं ने मेरी खोज के मार्ग को आलोकित कर दिया था ! आज भी मेरा खोज कार्य बन्द नहीं है। अदृश्य रूप से निशा की आत्मा बराबर मुझे प्रेरित करती रहती है खोज की दिशा में।

कौन था वह?

मि० जेम्स जब तक भारत में रहे मुझे अपने शोध कार्य में उनसे बराबर कई महत्वपूर्ण सहयोग मिला। वे कोई योगी या तांत्रिक तो नहीं थे। लेकिन परामानसिक तत्व से संबंधित अनेक रहस्यमयी शक्तियों से भली-भाँति परिचित थे वह। उन्होंने एक प्रसंग में बतलाया कि कई प्रकार की सम्मोहन विद्याएँ हैं। जिनमें आत्म सम्मोहन विद्या सबसे महत्वपूर्ण है। इसका संबंध शरीर और मन से नहीं बल्कि सीधे आत्मा से है। इसके द्वारा आत्मा को सम्मोहित कर उसका संबंध मस्तिष्क की स्मृति कोशिकाओं से करा दिया जाता है। मानव-जीवन के अतीत से संबंध रखने वाली तीन करोड़ कोशिकाएँ हैं और लगभग इतनी ही कोशिकाएँ भविष्य से भी संबंध रखने वाली हैं। वे कोशिकाएँ विद्युतमई हैं। उनमें से बराबर विद्युत धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। इन कोशिकाओं के द्वारा भूत और भविष्य की अन्तहीन रहस्यमयी अंधेरी घाटियों में किसी की भी आत्मा को ले जाया जा सकता है और दोनों काल से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं को जाना जा सकता है। वास्तव में कोशिकाओं में सञ्चित समृतियाँ ही मनुष्य के भावी जन्म और जीवन का एक मात्र कारण है।

थोड़ा रुक कर मि० जेम्स बोले-बम्बई में मेरे एक भारतीय मित्र हैं नाम है हंस देशमुख। उनकी पत्नी सुशीला देशमुख अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व की विदुषी महिला हैं।

पति-पत्नी को किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। अभाव है तो केवल यही कि उन्हें सन्तान नहीं है। सन्तानहीनता की व्यथा से वे दोनों हमेशा सन्तप्त रहते हैं। हंस देशमुख का कहना है कि उनकी पत्नी पर किसी आत्मा की छाया है उसी के कारण वे सन्तानोपलब्धि से वंचित हैं। मुझे उनके अनुरोध पर इस बात का पता लगाना है कि वह आत्मा है कौन? और उसका संबंध कैसे जुड़ गया उनकी पत्नी से?

क्या मैं आपके साथ बम्बई चल सकता हूँ। सम्भवत: मेरे खोज कार्य में इससे कुछ सहायता मिले। मेरी बात सुन कर मि० जेम्स ने सिर हिला कर अपनी सहमति दे दी।

कहने की आवश्यकता नहीं-तीसरे दिन हम दोनों हवड़ा-बाम्बे मेल से रवाना हो गये बाम्बे के लिए। सचमुच सुशीला देशमुख सुन्दर और आकर्षक महिला थीं। चालीस वर्ष की आयु में भी वे मुझे तीस से अधिक नहीं लगीं।

रात नौ बजे सिटिंग शुरु हुई। कमरे में मेरे और मि० जेम्स के अलावा दो और व्यक्ति थे। एक थे डा० कुलकर्णी और दूसरे थे हंस देशमुख। पूरे पच्चीस मिनट के प्रयास से सुशीला देशमुख आत्म सम्मोहित हो उठीं। उनकी सूक्ष्म चेतना अतीत की गहराई में उतर गई धीरे-धीरे!

कौन हैं आप? मि० जेम्स का स्वर गूँजा।

सुशीला देशमुख।

आपके साथ कौन सी आत्मा है?

मुझे मालूम नहीं।

क्या चाहती है वह?

यह भी मुझे मालूम नहीं।

आपके साथ वह कब से है?

पिछले पाँच जन्मों से।

मतलब कि जन्म-जन्मान्तर से रिश्ता है आपका इस आत्मा से।

ऐसा ही समझिए। मैं मरती रही और जन्म लेती रही मगर उसने मेरा साथ नहीं छोड़ा। हर जन्म में वह अपना एहसास दिलाने के लिए बस यही कहता कि 'मैं आ गया।'

क्या वह किसी पुरुष की आत्मा है?

हाँ! यवन पुरुष की।

इस जन्म में आपको कब उसने अपना एहसास दिलाया।

जब मैं अट्ठारह-बीस साल की थी।

क्या स्पष्ट करेंगी?

मि० जेम्स के इस प्रश्न के उत्तर मे सुशीला देश मुख की सम्मोहित आत्मा ने रुक-रुक कर और ठहर-ठहर कर जो कुछ बतलाया उसे मै यहाँ सिलसिलेवार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सुशीला देशमुख के माता-पिता गुजरात के रहने वाले थे। सुशीला देशमुख उनकी एक मात्र पुत्री थी। एक दिन वह नित्य की भाँति सायंकाल अपने बाग में बैठी थी अकेली। अचानक दूर कहीं से आती हुयी शहनाई की स्वर लहरी उसके कानों में पड़ी। धीरे-धीरे उसकी चेतना आच्छन्न होने लगी। बस यहीं से शुरु होती है एक रहस्यमयी कथा।

किसी गीत के बोल सुनाई पड़ने लगे उसको। वह डूबती गई संगीत के उस जादू में। नशा सा छा गया उसके तन मन पर। फिर एकाएक मन उदास हो गया उसका। और तभी शान्त वातावरण में धीमे से एक आवाज सुनाई दी-मैं आ गया।

सुशीला देशमुख का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने देखा कि उनके सामने एक ऊँची कद काठी का सुन्दर युवक खड़ा है। उसके गौर वर्ण शरीर पर कीमती रेशमी वस्त्र था। उसका चेहरा कठोर था। लेकिन दृष्टि में कोमलता और स्निग्धता थी-साथ ही मर्मभेदी तीक्ष्णता भी। कंधों तक लहराते घने केश, आँखों में सुरमा, लम्बी पतली नाक, घनी मूँछें और मूँछों के नीचे पतले गुलाब जैसे कोमल रक्ताभ होंठ। कमर में तलवार लटक रही थी और दोनों हाथ पीछे की ओर थे। भिन्न-भिन्न इत्रों की मिली-जुली सुगन्ध सुशीला देशमुख के नाक में भर गई एक बारगी। चौंक पड़ी वह। उन्हें ऐसा लगा मानो पुराने इतिहास के किसी पृष्ठ से निकल कर कोई शाहजादा उनके सामने आ खड़ा हुआ है। वह बोली-मैं आपको नहीं पहचानती।

वह युवक कुछ बोला नहीं, हाथ पीछे किए हुए ही पहले की तरह सुशीला देश मुख पर अपनी नजर गड़ाए रहा। तब सूर्य अस्त हो चुका था। लेकिन हल्का उजाला तब भी था। उसी हल्के उजाले में सुशीला देशमुख ने देखा-युवक के चेहरे पर मन्द-मन्द मुस्कान थी। हवा के हल्के झोंको से उसके रेशमी अचकन का कोना रह-रह कर उड़ रहा था।

युवक मुस्कराते हुए हौले से बोला-मुझे पहचानो। मैं वही हूँ। वही नसीर बेग। जो बरसों से बल्कि युगों से तुम्हारे पीछे हूँ। तुमको पाने के इन्तजार में हूँ। इतने लम्बे अर्से के बाद अब मिली हो तो कह रही हो कि मुझे पहचानी नहीं। फिर उसकी आँखों मे याचना छलक आयी। उसने कहा-थोड़ी कोशिश करो! याद करो! तुम हमेशा हर जन्म में इसी तरह मुझे निराश करती रही हो। फिर भी मैंने कोशिश नहीं छोड़ी। आज से तीन सौ वर्ष पहले की उस रात की बात तो तुम्हें याद होगी जब लखनऊ की मशहूर तवायफ रजिया को मुजरा पेश करने के लिए बाइज्जत महल में बुलवाया गया था। उसके साथ

साजिन्दों का काफिला था। उस रात रंगीन झाड़-फानूस की रोशनी से जगमगा उठा था पूरा दरबार। रजिया नृत्यकला में लाजवाब थी ही, बेजोड़ गायिका भी थी। वह युवक कहता गया-बेला, हीना, जूही, चमेली आदि की खुशबू से सारा दरबार गमक रहा था। रजिया ने तबले की थाप और सारंगी के स्वर पर गजल गाना शुरु किया। उसकी सुरीली आवाज ने समाँ बाँध दिया धीरे-धीरे।

वह नाच के लिए उठी। नाच शुरु हुआ। उसके हुस्न में शोखी थी और अदाओं में मस्ती। तिरछी नजर जिसपर डाल देती उसी के दिल पर छुरियां चल जातीं। महफिल के दौरान देखने वालों के सामने कीमती शराब के अलावा अनार, अंगूर, नाशपाती, सेव की खूबसूरत रकाबियाँ रखी थीं। लोग अपने पसन्द के मुताबिक फल खाते जाते थे और शराब के जाम पर जाम पीते जाते थे। ज्यों-ज्यों रात शबाब पर आई नृत्य की गति तेज और तेज होती गई। झूम-झूम कर नाची रजिया उस रात।

मैं नवाबजादे का खास दोस्त था और महफिल में उस के साथ मौजूद था। लेकिन मेरा ध्यान मुजरे पर नहीं था। मेरी दिलचस्पी शराब और साकी किसी पर नहीं थी। मैं उस कमसिन लड़की को देखता रहा जो मायूस निगाहों से वह नाच देख रही थी। रेशमी गद्दे पर बैठी वह चन्दनबदन लड़की जाफरानी रंग की सलवार और कुर्ती पहने थी। उसकी चम्पई रंग की उगलियों मे हीरे की अँगूठियाँ जगमगा रही थीं। बहिश्त की हूर जैसी खूबसूरत थी वह। धूपदान से उठता सुगन्धित धुआँ उसके आस-पास फैल कर उसकी सुन्दरता को और नशीली बना रहा था। रजिया शोला थी और वह लड़की थी शबनम। रजिया का हुश्न शरीर में तपन पैदा करने वाला था और उस लड़की के रूप मे चाँदनी की शीतलता थी। आँखों मे झील की गहराईयाँ थी। तीखे नैन नक्श और साँचे में ढली देह। जैसे किसी मूर्तिकार ने अपनी कला का बेहतरीन नमूना पेश किया हो। जानती हो वह कौन थी? वह तुम थी, रजिया की जवान बेटी, हुस्न बानो।

नहीं...,नही, नही, सुशीला देशमुख जोर से चिल्लाई आपको धोखा हो गया है। मैं हुस्न बानो नहीं हूँ। इससे पहले आपको देखा नहीं मैने। आप यहाँ से चले जाईए।

पीछे हाथ बाँधे युवक तब भी खड़ा था किसी बुत की तरह। उसकी आँखो में विषाद की छाया उतर आई। क्या उस रात की बात भी याद नहीं? उसने फिर कहा-जब शाही बजरे पर जल विहार करते हुए तुम्हारी माँ का मुजरा हुआ था? उस दिन पूनम की रात थी। नवाबजादे के साथ मैं भी था। रजिया के साथ तुम भी मौजूद थी। रजिया ने पहले चैती, कजरी सुनाई। उसकी नशीली आवाज सारी झील पर छा गई। फिर नाच शुरु हुआ। तुम उस रात महफिल में नहीं थी। मैं चुपचाप उठ आया था। तुम्हारी तलाश करता मैं पहुँच भी गया था तुम तक। तुम एक छोटे से केबिन में सो रही थी। उस रात तुम्हारे रूप के आगे पूनम का चाँद भी फीका था। तुम्हारे नाक की हीरे जड़ी कील चाँदनी में जगमगा

रही थी। उस समय तुम कोई मीठा सपना देख रही थी, क्योंकि मन्द-मन्द मुस्कान थी तुम्हारे गुलाबी होठों पर मैं तुम्हारे पलंग के पास जा पहुँचा। इच्छा हुई कि मोम सी उजली तुम्हारी नाजुक देह को अपनी बाँहों में समेट लूँ। लेकिन ऐसा मैं कर नहीं पाया। लगा कोई अदृश्य पहरा है तुम्हारे इर्द-गिर्द। मैं तुम्हारे सिरहाने जा बैठा घुटनों के बल। तुम्हारी केश राशि, तुम्हारी साँसों और तुम्हारी देह की सुगन्ध मैंने महसूस की। तुम्हारे पतले गुलाबी होंठों पर मैं तपते हुए होंठ रखने ही वाला था कि मेरी छाया पड़ी तुम्हारे चेहरे पर और तुम्हारी आँख खुल गई।

वासना की कालिख पुती थी मेरे चेहरे पर जो तुम्हारे चेहरे से कुछ ही फासले पर रह गया था। तुम फुर्ती से उठ कर अलग जा खड़ी हो गई और ठीक इसी तरह चीख उठी थी नहीं, नहीं, नहीं। उस क्षण तुम उत्तेजना से हाँफ रही थी। तुम्हारे नथुने फड़क रहे थे। तुम्हारी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों में आतंक झलक आया था।

मैं अपने को सँभाल नहीं पाया था। फुर्ती से उछल कर पलंग की दूसरी तरफ पहुँच गया था जहाँ तुम खड़ी थी। मैंने एक हाथ से तुम्हारी कमर को घेर लिया था और दूसरे हाथ से तुम्हारी चोटी पकड़ने की कोशिश की थी। तभी तुम लता की तरह झूल गई थी मेरी बाँहों में। शराब की उत्तेजना से मेरा सारा शरीर तप रहा था। आज नहीं फिर कभी तुमने रुआँसी हो कर कहा था। और मैंने तुम्हारी आँखों में पढ़ लिया था कि जोर-जर्बदस्ती से तुम्हें हासिल नहीं किया जा सकता। मेरा सारा जोश एक पल में ठंडा पड़ गया था।

इतना कहकर वह रुका। थोड़ा दम लेने के बाद बोला मैं समझ गया कि तुमको हासिल करने के लिए तुम्हारे साथ-साथ तुम्हारी माँ रजिया की रजामन्दी भी जरूरी थी। मैं यह भी जानता था कि अगर मैं अपनी बात तुम्हारी माँ से करूँ तो वह इन्कार नहीं कर पाएगी। इसलिए मैंने सब्र कर लिया था।

काँच के जार में रखी रंगीन मछली को कभी भी हासिल किया जा सकता है। मैं इन्तजार कर सकता था उस घड़ी का जब तुम अपनी माँ की मर्जी से राजी खुशी मेरी हो जाओ। अपनी वासना के तूफान को दबा लिया था मैंने उस दिन। क्या तुमको यह घटना भी याद नहीं रही?

'नहीं' मैं आपसे फिर कह रही हूँ कि मैं वह नहीं हूँ। फिर याद आने का सवाल ही कहाँ उठता है ? सुशीला देशमुख ने कहा।

वह युवक अपनी जगह पर खड़ा रहा। बाग के पेड़ों को छूकर चलती हवा में उसके लम्बे बाल फरफराते रहे। अचकन का छोर उड़ता रहा। उसकी आँखों में निराशा का सागर लहराने लगा।

उसने फिर कहा--उस रात तुमने जब कहा था कि 'आज नहीं फिर कभी' तो तुम जानती थी कि अगले दिन नवाब जादे के साथ हम सब वापस जा रहे हैं अपनी रियासत में। साल मे एकबार ही हम वहाँ आते थे और तभी मिलने की सम्भावना हो सकती थी। जरा सोचो आज हम कितनी मुद्दत के बाद मिले हैं। इस दौरान मैं बराबर दुनिया के कोने-कोने में तुम्हें पाने की उम्मीद में भटकता रहा हूँ। अपना सिर धुनता रहा हूँ। चारों तरफ तुमको खोजता रहा हूँ। मेरा उद्धार करो। इस अँधेरी दुनियाँ से ले चलो अपने साथ। और कितने दिन, महीने, बरस काटने होंगे मुझे अँधेरे में डूबी इस बेजान दुनियाँ में यह तो बतला दो मुझे! आखिर कब होगी मेरी मुक्ति? कैसे होगी? सुशीला देशमुख की समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे वह इस अजनबी को जो उसके पीछे ही पड़ गया था।

कुछ क्षण बाद युवक गम्भीर स्वर में बोल उठा--एक साल बाद फिर ऐसा मौका मिला। हम यहाँ आए। रजिया से इस बार मुझे अपनी बात कहनी पड़ी उसने अपनी रजामन्दी जाहिर कर दी। और फिर तुमसे बात की। लेकिन फिर भी तुम तैयार नहीं हुई। मैं खीज उठा। उसी रात की बात है, रजिया का मुजरा हो रहा था, तुम महफिल से उठ कर धीमी चाल से महल से बाहर आ गयी और तालाब के किनारे बैठ कर तुमने अपने गोरे-गोरे पाँव पानी में डुबो दिए। पैरों के साथ घाघरे का निचला सिरा भी भींग गया।

पूनम की रात थी वह। आसमान साफ था। रुपहली चाँदनी बगीचे में बिखरी पड़ी थी। फौव्वारे से पानी फूट कर चारों तरफ बूँदों की शक्ल में गिर रहा था। खुशबूदार हवा के झोंके आ रहे थे। महल रोशनी से जगमगा रहा था। संगीत और नृत्य की मधुर स्वर लहरी वहाँ तक पहुँच रही थी। तुम आसमान की तरफ़ ताक रही थी। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आया था। मैंने तुमको मनाते हुए कहा--तुमने जब-जब समय माँगा मैंने दिया है। अब, जब तुम्हारी माँ ने इजाजत दे दी है तब तुम क्यों नहीं मान लेती मेरी बात। तुमने कहा था 'ठीक है' दो दिन का समय मुझे और दो। फिर मेरा मन हुआ कि जबरन तुम पर काबू पा लूँ। पर अपने को रोक लिया मैंने। दो दिन का समय तुमने क्यों माँगा--यह मेरी समझ में नहीं आया। दरअसल तुम जितनी खूबसूरत थी, उससे ज्यादा खतरनाक थी। यह मैं नहीं सोच पाया। आगन्तुक युवक की आँखों मे दर्द का सागर उमड़ आया। कुछ देर खामोश रहने के बाद उसने भरे गले से कहा--तीसरे दिन तुमने सन्देश भेजा कि आज हमारे अभिसार की रात होगी। खुशी से झूम उठा मैं। दिन बड़ी मुश्किल से कटा। रात हुई, वह रात! जिसका जाने कब से इन्तजार था मुझे।

इज्जत के लिए हत्या की

तुम्हारे स्वागत की पूरी तैयारी मैंने कर ली। कमरा इत्रों और फूलों की सुगन्ध से गम-गमा उठा। मैं रत्न जड़ित धवल सेज पर अधलेटा था। बाँदी मुझे चँवर डुला रही थी और शराब पिला रही थी। कमरे का लाल मखमली पर्दा धीरे से सरका और तुम धीमे कदमों से मेरे कमरे में दाखिल हुई। चँवर डुलाने वाली बाँदी आँखे नचाकर बाहर चली

गई। उस रात तुम सोलह श्रृंगार किए थी शायद तुम्हारी माँ ने कराया होगा! ऐसा मैंने सोचा। मैंने पहली बार देखा कि तुम्हारी भौंहें भी बाँकी कमान हैं जिनसे चलने वाले तीर देखने वाले के कलेजे को बेध देते हैं। आम तौर पर तुम जेवर नहीं पहनतीं थीं। लेकिन उस रात तुम नई दुल्हन की तरह सजी थी सिर से पैर तक। उस रात तुम्हारा रूप असाधारण था। तुम आग की लपट जैसी दीख रही थी। अपनी लाल-लाल पोशाक में पायलों से रुन-झुन करती तुम आकर मेरे पास बैठ गई मुझसे सट कर। मैंने निगाह उठाकर तुम्हारे गुलाबी चेहरे की तरफ देखा तो एकाएक मुझे अपनी नजर पर विश्वास नहीं हुआ तुम्हारी आँखों में मुस्कान भरा मौन आमंत्रण था। जैसे ही मैंने तुम्हारी गोरी और नाजुक कलाई को हाथ लगाया तुम खुद-ब-खुद मेरे दामन में सिमट आई।

उसी समय महल में रात का दूसरा पहर खत्म होने का गज़र बजा। मैंने बाँहें पसार कर आलिंगन में भर लिया तुम्हें। लेकिन मेरे प्यासे होंठ तुम्हारे रस भरे होंठो को छू पाते उससे पहले ही मैंने पहले एक चुभन और फिर हजारों बिच्छुओं के डंक की जलन महसूस की। एक पतली तेज धारदार नुकीली कटार तुमने मेरे सीने में पूरी की पूरी उतार दी। जिसकी नोंक पर अफगानिस्तान में पाया जाने वाला तेज जहर लगा था। उस जहर की तासीर थी कि शरीर में कहीं भी प्रविष्ट होते ही आदमी दो-चार क्षणों में ही दम तोड़ देता। निश्चय ही तुम किसी और से प्यार करती थी। अपने प्यार में मुझे रोड़ा समझ कर अपनी इज्जत बचाने के लिए तुमने मुझे अपने रूपजाल मे फँसा कर बड़ी खूबी से अपने रास्ते से हटा दिया था मेरे को। शरीर धारी उस अतीत ने लम्बी सास ली। इतनी देर बाद उसके हाथ सामने आए। शान्त स्वर सुनाई पड़ा अपनी छुरी वापस ले लो तुम। चमचमाती कटार के फलक पर ताजा खून लगा था। जिसे देखते ही सुशीला देशमुख एक बारगी चीख पड़ी-नहीं...नहीं, नहीं।

वह खून से सनी कटार

और उसी नहीं... नहीं...नहीं के साथ सुशीला देश मुख की सम्मोहित आत्मा बाहरी दुनियाँ में चैतन्य हो उठी। उन्होंने आँख खोल कर एक बार चारों तरफ देखा और फिर उठ कर-बैठ गई वह।

बड़ी विचित्र बात थी। सुशीला देश मुख अपने बाग में पन्द्रह या बीस मिनट अकेली बैठी रही होगी। इतने कम समय मे वायु मण्डल में रहने वाला कोई अशरीरी आकर इतना कुछ घटा गया। इतना कुछ कह गया। इतनी बड़ी कथा सुशीला देश मुख के सामने आ गई। खैर... उसी दिन से वह रहस्यमय अशरीरी रोज हर रात आने लगा। उस समय सुशीला देश मुख की उम्र अट्ठारह बीस वर्ष के लगभग थी। वह दिन भर भली चंगी रहती। सबसे हँसती बोलती। मगर साँझ की काली छाया उतरते ही उसकी मुख मुद्रा बदल जाती। रह-रहकर वह चौंक पड़ती। भय और आतंक की छाया उसकी आँखों में उतर आती। आधी रात होते ही, घड़ी मे बारह बजते ही वह चीख पड़ती नहीं.. नहीं... नहीं।

वर्तमान जन्म का पति पिछले जन्म का प्रेमी

उसी स्थिति में सुशीला देश मुख का विवाह हो गया। वह बम्बई आ गयी। लेकिन उस रहस्यमयी अशरीरी आत्मा ने फिर भी उसका साथ नहीं छोड़ा और न तो उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन ही हुआ।

हंस देशमुख ने बतलाया कि वह महसूस करती हैं कि खून से सनी वही कटार उसके सामने है और कोई उससे कह रहा है–'अपनी कटार वापस ले लो'। या फिर उनके कानों मे यह करुण आवाज गूँजने लगती है–तुमको तो तुम्हारा प्रेमी इस जन्म में पति के रूप में मिल गया। मगर मेरा क्या होगा? मेरा उद्धार कैसे होगा? तुमको ही मेरा उद्धार करना होगा। इस अँधेरी भूल-भुलैया में भटकने से तुम्हीं को बचाना होगा मुझे! बचालो मुझे। उजाले की दुनियाँ मे ले चलो मुझे। और कितने दिन, कितने महीने, और कितने बरस काटने पड़ेंगे मुझे इस अँधेरी बेजान और सुनसान दुनियाँ में। यह तो मुझे बतला दो। आखिर मेरी मुक्ति कब होगी?

हंस देशमुख आगे बतलाने लगे--सुबह होते ही वह सहज हो जाती है। फिर हँसने बोलने लगती है। गृहस्थी में रम जाती है। प्यार करती है। प्यार पाती है। भली चंगी रहती है। लेकिन उसकी काया सूखती जा रही है दिनों दिन। जैसे कोई हरी-भरी बेल कुम्हलाती जा रही हो, सूखती जा रही हो।

आप दोनों के शारीरिक संबंध में कभी कोई रुकावट यानी कोई बाधा उसके द्वारा आयी है? हंस देशमुख से मि० जेम्स ने पूछा।

नहीं! कभी नहीं! मगर एक बात अवश्य है–वह यह कि शुरु से ही उसकी दिलचस्पी नहीं रही है शारीरिक संबंध के प्रति। जब भी पहल किया है तो मैंने ही किया है।

सन्तान के संबंध मे उस अशरीरी ने कभी कुछ कहा है। हाँ! कुछ सोचते हुए हंस देशमुख बोले--शुरु-शुरु मे एक बार उसने पत्नी से अवश्य कहा था कि तुमने अपने प्रेमी को पति के रूप में पा तो जरूर लिया, लेकिन बाल-बच्चे कभी भी हासिल न होंगे तुम्हें। मैं कभी नही चाहूँगा कि मेरे प्रतिद्वन्दी के बच्चे की माँ बनो तुम।

कहने की आवश्यकता नहीं सुशीला देश मुख की रहस्यमयी कथा ने परलोक से संबंधित कई तिमिराच्छन्न तथ्यों को अनावृत्त कर दिया था मेरे सामने। जो सबसे महत्वपूर्ण बात ज्ञात हुई वह यह थी कि मानव जीवन में एक बार जो नाता-रिश्ता और संबंध किसी के साथ गहराई से जुड़ जाता है वह अगले कई जन्मों तक बना रहता है किसी न किसी रूप में। यह आवश्यक नहीं है कि जिसके साथ गहरा संबंध रहा है उसने जन्म लिया ही हो। अशरीरी रूप मे भी संबंध बना रह सकता है। जैसा कि सुशीला देशमुख की उपर्युक्त कथा से स्पष्ट है। विशेष कर ऐसा प्रेमी-प्रेमिका और पति-पत्नी के

संबंधो में ही होता है। अब मैं आपको एक ऐसे प्रेमी की सत्य कथा सुनाऊँगा जो भयानक प्रेत योनि में रहते हुए भी अपने प्रेमिका का पीछा तीन जन्मों तक करता रहा।

रहस्यमय चिरागे हाजरात

उस भयंकर ब्रह्म पिशाच की आत्मा का कहना था कि वह लड़की उसकी प्रेमिका है। और वह भी पिछले तीन जन्म की। वह कभी भी अपनी प्रेमिका की शादी किसी गैर आदमी से न होने देगा। यह प्रेम कथा उस समय और मार्मिक फिर दर्दीली हो गई जब मैंने चिरागे हाजरात की गुलाबी रोशनी में उस लड़की के पिछले जन्म की एक और घटना को देखा.........

अपने शोध कार्य के सिलसिले में भटकते हुए मेरी भेंट अचानक एक बूढ़े फकीर से हो गई। वह बूढ़ा फकीर मुलतान का रहने वाला था और उसकी उम्र कोई सौ साल पार कर गयी थी। इतनी उम्र होने के वावजूद भी उसकी झुर्रीदार देह में ताजगी थी और चेहरे पर थी चमक। जिस्म का रंग बिल्कुल काला था। काजल लगी बड़ी-बड़ी आँखों में एक विचित्र ज्योति थी। गंजे सिर पर लाल रंग का एक कपड़ा बँधा था। उसकी कमर में एक लुंगी बँधी थी। ऊपर का हिस्सा नंगा था। गले मे लाल हरे और काले रंग के मनकों की मालाएँ छाती तक झूल रही थी। वह बगल में एक पोटली लटकाए हुए था। जिससे जड़ी बूटियाँ और सूखी लतरें भरी हुई थीं। हाथ में वह एक सोटा और खप्पर लिए हुए था।

मेरी नजर अचानक उस पर पड़ गई थी। उस समय वह एक घने पेड़ के साये के नीचे बैठा अपने पैर में लगे जख्म को गौर से देख रहा था। जख्म काफी गहरा था। उसमें से खून रिस रहा था। मुझसे रहा न गया। उसके करीब जा कर खड़ा हो गया मैं। उसने जख्म पर से अपनी नजर हटा कर मेरी ओर घूम कर एक बार देखा। उसकी जलती हुई आँखें जैसे घुस सी गईं मेरे सीने में! न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उस फकीर को शहर ले आया और अस्पताल के स्पेशल वार्ड में भरती करा दिया। डाक्टर मेरे परिचित थे। उसका इलाज तुरन्त शुरु हो गया। मैं प्राय: रोजाना उसको देखने जाने लगा। जब भी जाता तो फल दूध या खाने की और कोई चीजें अवश्य ले जाता। लगभग दो सप्ताह में वह भला-चंगा हो गया। एक दिन जब मैं उसे देखने के लिए फल, मेवा ले कर अस्पताल पहुँचा तो वह मुझे प्रसन्न नजर आया। मुझे अपने पास बिठाते हुए बोला-बेटे तुमने मेरी सेवा की है। इलाज कराया है। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। मेरे पास देने को तो कुछ भी नहीं है मगर तू बोल क्या चाहिए तुझे। तू जो माँगेगा वह तुझे देने की कोशिश करूँगा।

मैंने आहिस्ते से कहा बाबा मुझे अपने लिए कुछ न चाहिए। इस वक्त मैं जिन्दगी और मौत के तमाम रहस्यों को जानने समझने की कोशिश में लगा हूँ। अगर आप देना ही चाहते हैं तो कोई ऐसा तरीका बतलाएँ-जिसके बूते पर मैं इन्सान की जिन्दगी और मौत के बारे में ही नहीं बल्कि उसके पिछले जन्मों की तमाम घटनाओं को भी जान-समझ सकूँ।

मेरी बात सुनकर फकीर कुछ देर चुप रहा और अपनी दाढ़ी सहलाता रहा। फिर गम्भीर स्वर में बोला--अरबी तंत्र-यंत्र के अन्दर जितनी भी अलौकिक सिद्धियाँ हैं, उनमें चिरागे हाजरात का नाम सबसे ऊपर है। उसके जरिए कम से कम तीन सौ वर्ष पहले और करीब एक सौ वर्ष आगे की किसी भी घटना के दृश्य को चिराग की रंग-बिरंगी रोशनी के धब्बे पर देखा जा सकता है। फकीर ने आगे कहा यह इल्म अपने आप में काफी कीमती है, लेकिन खतरनाक भी है। वक्त जरूरत पर ही इसको इस्तेमाल में लाना चाहिए। इसकी शक्ति के आकर्षण में फँस कर चौथे आसमान में रहने वाली रूहें किसी भी इनसान की अगली और पिछली जिन्दगी की किसी भी घटना को दृश्य के रूप में वर्तमान में लाकर पेश कर दिया करती हैं। लेकिन इसके लिए काफी मानसिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। और इसके अलावा हर वक्त जान का खतरा भी बना रहता है। जरा सी गलती होने पर रूहानी दुनियाँ की रूहें छोड़ती नहीं।

इसके बाद उस फकीर ने चिरागे हाजरात के इल्म को समझाया। जिसके अनुसार मैंने एक सुनसान कब्रिस्तान में लगातार चालीस रात बैठ कर चिरागे हाजरात की सिद्धि प्राप्त की।

ब्रह्म पिशाच की प्रेमिका

सर्वप्रथम चिरागे हाजरात के जरिए मैंने अतीत की जिन घटनाओं को देखा था वे घटनाएँ एक ऐसी लड़की के पूर्व जन्मों से संबंधित थी जो काफी लम्बे अर्से से एक ब्रह्म पिशाच की भयंकर बाधा से परेशान और पीड़ित थी। बड़े-बड़े कामिल-आलिम, पहुँचे हुए तांत्रिक और ज्योतिषी भी उस बेचारी लड़की को उस ब्रह्म पिशाच के चंगुल से मुक्त न करा सके थे। और न तो मुक्त करा सकी थीं दुनियाँ भर के देवी देवताओं की तमाम मन्नत-मनौतियाँ और उनकी पूजा-उपासना। ब्रह्म पिशाच के जरिए लड़की को शारीरिक तकलीफ तो पहुँची ही थी उस लड़की की शादी में भी रुकावट पड़ गई थी। पहले तो शादी कहीं तय नहीं हो पाती थी। अगर तय हो भी जाती थी तो किसी न किसी कारण वश कट जाती थी। ऐसा एक दो बार नहीं बल्कि दर्जनों बार हुआ था।

उस ब्रह्म पिशाच का कहना था कि वह लड़की उसकी प्रेमिका है। और वह भी पिछले तीन जन्म की। कभी भी वह अपनी प्रेमिका की शादी किसी गैर मर्द के साथ न होने देगा। बात अपनी जगह बिल्कुल ठीक थी। कोई भी प्रेमी चाहे इन्सान हो या शैतान, अपनी प्रेमिका को किसी को भी दुल्हन बनी हुई नहीं देख सकता। भला कौन इसे देख सकता है, कौन अपने सीने पर पत्थर रख कर बर्दाश्त कर सकता है? कौन इस तरह अपनी आशाओं और कामनाओं की लाश को जलती हुई देख सकता है?

जब गुलाबी दीप शिखा में अतीत का दृश्य उभरने लगा

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। कमरे का वातावरण बिल्कुल खामोश था और था बोझिल, जिसमें रहस्यमयता का एहसास भी घुला हुआ था। स्फटिक की वेदी

पर जलती हुई चमेली के सुगन्धित तेल की दीप शिखा एक बार काँपी फिर वृत्ताकार रूप में चारों ओर फैलने लगी। एक सीमा तक फैलने के बाद उसका प्रकाश गहरा नीला हो गया। और उसके बाद हल्का गुलाबी। उस गुलाबी प्रकाश में मेरे सामने पहला दृश्य उभरा। उस पहले दृश्य में मैंने एक सुन्दर-सजीले युवक का सुन्दर और आकर्षक रूप देखा। वह युवक मुगल कालीन वेश-भूषा में था। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर रोब था। मगर मुझसे नजर टकराते ही उसका रोबदार चेहरा स्याह पड़ गया और आँखों की चमक भी बुझ सी गई।

टीपू सुल्तान की महफिल

दीप शिखा के उस गुलाबी प्रकाश के चमचमाते धब्बे पर से एकाएक युवक की शक्ल गायब हो गई। उसके बाद वहाँ जो दृश्य उभरा वह एक सजी-सवँरी महफिल का था। इतिहास के पन्नों पर एक बारगी छा जाने वाले टीपू सुलतान की महफिल का एक लम्बा चौड़ा हाल था। जिसके चारों ओर नक्काशीदार खम्भे थे। फर्श पर मखमली कालीन बिछा हुआ था और खम्भों में जूही, चमेली, रातरानी की लड़ियों की मालाएँ लिपटी हुई थीं। हाल में एक ओर मखमली गद्दी बिछी हुई थी। जिस पर रेशमी चादर पड़ी हुई थी। उसी गद्दी पर मसलन्द का सहारा लेकर सुलतान बैठा था। हाल के दूसरी ओर भी उसी तरह की गद्दी लगी हुई थी। जिस पर सुलतान के हाकिम और सिपहसालार के अलावा अमीर उमराव भी बैठे हुए थे। तरह-तरह के इत्रों और फूलों की मिली-जुली सुगन्ध से महिफल का वातावरण सुगन्धित हो रहा था। महफिल में उस रात चुनी हुई कमसिन नर्तकियाँ बुलाई गई थीं। वे सभी एक साथ सामूहिक रूप से नृत्य कर रही थीं। घुँघुरूओं की झंकार के बीच कभी-कभी वाह-वाह और माशाल्लाह का स्वर गूँज उठता था। नृत्य कर रही नर्तकियाँ एक से एक बढ़कर हसीन, सुन्दर और जवान थीं। मगर सुलतान की पारखी नजर जिस हसीना पर बार-बार फिसल जाती थी वह वास्तव में लाखों में एक थी। सचमुच उसके बेपनाह हुस्न ने सुलतान की रगों में दौड़ते हुए खून की रफ्तार को तेज कर दिया था।

नृत्य करते समय उस हसीना के घुँघुराले बालों की कोई आवारा लट उसके चाँद जैसे मुखड़े पर जब बिखर जाती तो ऐसा लगता था मानो पूर्णमासी के रुपहले चाँद को सावन-भादो के काले बादल के किसी स्याह टुकड़े ने ढ़कने की कोशिश की है और तभी सुलतान की मजबूत उँगलियों में फँसा जाम काँप-काँप उठता और शराब की कुछ बूँदें छलक कर नीचे गिर जातीं। सुलतान के मुँह से दबी हुई आवाज निकल पड़ती-- या अल्लाह! क्या गजब का हुस्न है?

कौन थी वह नर्तकी ?

एकाएक दीप शिखा का रंग बदल कर हल्का नीला हो गया। और उसी के साथ दृश्य भी बदल गया। अब मैं उस हल्के नीले प्रकाश में सिर्फ उस हुस्न की मलिका को

देख रहा था। जिसने सुलतान की आँखों की नींद और दिल का चैन छीन लिया था। वह गुलमोहर की छाँव मे बैठी हुई थी। उसके चेहरे पर उदासी थी। कभी-कभी चौंक पड़ती थी और चौंक कर सिर घुमाकर अपने चारों ओर देखने लगती थी।

कौन थी वह नर्तकी? क्यों इतनी उदास और सहमी-सहमी थी वह उस समय? मुझे समझ में नहीं आ रहा था। तभी मुझे सामने से वही युवक आता दिखलाई पड़ा। जिसे मैंने गुलाबी प्रकाश के धब्बे में शुरु-शुरु में देखा था। नर्तकी शायद उसी का इन्तजार कर रही थी। युवक के नजदीक आते ही उसका मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा। गुलाब के फूल की तरह। और फिर वह युवक से लिपट गई। मिलन के उन क्षणों में दोनों में जो बातें हुई उससे दोनों का संबंध साफ जाहिर हो गया। नर्तकी का नाम सलमा था और युवक का नाम भानु था। दोनों एक दूसरे को चाहते थे और जल्द से जल्द शादी कर लेना चाहते थे। मगर दोनों के बीच जाति और सम्प्रदाय की वही रुकावट थी, जिसका सामना सदियों से एक दूसरे को चाहने वाले लोग करते आ रहे हैं।

सलमा के स्याह घुँघराले बालों को अपनी उँगलियों से सहलाता हुआ युवक हौले से बोला--अमावस्या की अँधेरी रात में तुम्हें लेने आऊँगा सलमा। तैयार रहना तुम। मैं यही कहने आया था।

'ठीक है' सलमा ने जबाव दिया।

दीप शिखा फिर एकबार झिलमिलाई। प्रकाश का दायरा एक बार फिर कसमसाया। अब मैं जो दृश्य देख रहा था वह किसी पहाड़ी का था। सामने एक पहाड़ी थी जिसके नीचे से बेहद पतली और आड़ी तिरछी सीढ़ियों की कतार, घूमती हुई ऊपर की ओर गई थी। जहाँ वे सीढ़ियाँ खत्म हुई थीं उसी के सामने एक दरवाजा था जिस पर नक्काशी का काम था। उसके बाद पत्थरों से सटा हुआ एक चबूतरा था। चबूतरे के ठीक बीचों-बीच पहाड़ी के एक दम चोटी पर एक मकान था। वह सफेद संगमरमर में लाल पत्थर का अभूतपूर्व संयोग करके बनाया गया था। चबूतरे के चारों कोनों पर ऊँची-ऊँची चार मीनारें थीं। बीच में मकान के ऊपर भी एक गुम्बज था।

महल के अतीत का दृश्य

मुझे वह महलनुमा मकान काफी अच्छा लगा। जहाँ तक नजर जाती थी-वहाँ तक हरियाली ही हरियाली थी। जो दूर क्षितिज की नीलिमा में जाकर मिल गई थी। बीच-बीच में पर्वत श्रेणियों की अल्पना थी। सीढ़ी की कतार जंगल के हरे-भरे प्रदेश तक उतर गई थी। इस प्राकृतिक मनोरम दृश्य को देख कर एकाएक मेरे मस्तिष्क में गहरे अतीत की एक स्मृति जागृत हो गई। लगभग १५-१६ वर्ष पहले मैंने प्रकृति की गोद में छिपे इस अद्‌भुत महल के ध्वन्सावशेष को मैसूर प्रान्त के हासान जिले में स्थित श्रवण वेल-गोला में देखा था। वहाँ गोमेश्वर महादेव की मूर्ति है। मैं उसी को देखने गया था। वहीं

मैंने काफी दूर एक एकान्त वन प्रदेश में स्थित इस महल का ध्वन्सावशेष देखा था। उस समय मैं अचानक ही अकेला घूमता हुआ काफी दूर तक निकल गया था।

मुझे महल और मीनारों के खण्डहरों नें अपनी ओर बरबस खींच लिया था। मैं टूटी फूटी धूल से भरी सीढियों पर काफी देर तक बैठा रहा था। वहाँ बड़ी शान्ति थी। ऐसा लगता था मानो उस खण्डहर में बहुत सारी संतुष्ट आत्माएँ गहरी नींद में सो रही हों। दीप शिखा के प्रकाश में उभर आए महल और मीनारों की भव्यता देख कर सचमुच स्तब्ध रह गया मैं। कैसा विचित्र संयोग था। मैंने जिस महल के खण्डहर को देखा था उसी के शानदार रूप को चिरागे हाजरात में देख रहा था मैं उस समय।

साँझ की स्याह कालिमा फैलती जा रही थी। गोधूलि बेला के हल्के प्रकाश में पक्षियों का कलरव बन्द नहीं हुआ था। चबूतरे पर धीमे कदमों से एक युवती चहल कदमी कर रही थी। वह जाफरानी रंग का चूड़ीदार पाजामा और गुलाबी रंग का अंगरखा पहने हुए थी। सिर और चेहरे का आधा हिस्सा आसमानी रंग की एक पतली-सी ओढ़नी से ढका हुआ था। छाती और पीठ पर केशों की दो वेणियाँ साँप की तरह बल खाती हुई झूल रही थीं। वेणी में नरगिस के फूल लगे हुए थे। वह युवती और कोई नहीं असाधारण सुन्दरी सलीमा थी। मैंने देखा–सलमा के चेहरे पर चिन्ता का भाव था। वह अपने दोनों हाथ पीछे की ओर बाँधे चबूतरे पर चहल कदमी कर रही थी। अपने पतले होंठों को दाँतों से दबा कर अपनी उत्तेजना को शान्त करने का व्यर्थ प्रयास कर रही थी। कभी-कभी चौंककर वह नीचे काफी दूर तक फैले हुए घने जंगलों की ओर देखने लगती थी। जैसे किसी के आने की प्रतीक्षा में उसका मन चंचल हो रहा हो।

थोड़ी देर बाद तेजी से आते हुए घोड़े की टापें सुनाई देने लगीं। दूसरे क्षण ही जंगल की सीमा रेखा को भेद कर घोड़े की पीठ पर एक सवार आता हुआ दिखाई पड़ा। सवार ने सीढ़ियों के नीचे पहुँचकर घोड़े की लगाम खींची। लगाम खींचते ही दूधिया सफेद रंग का वह अरबी घोड़ा अगला पैर उठाकर खड़ा हो गया। सवार ने एक बार ऊपर की ओर सिर उठाकर देखा फिर छलाँग लगाकर घोड़े की पीठ पर से नीचे कूद पड़ा और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

उस सवार को पहचानने में कठिनाई नहीं हुई। वह भानु था। वह प्रसन्न मुद्रा में आखिरी सीढ़ी पर पैर रखते हुए खुले दरवाजे की किवाड़ों को थाम कर खड़ा हो गया। उसका पौरुष नवयौवन की आभा से दीप्त हो रहा था उस समय। मुझे उसकी आकृति, हँसी और खड़े होने की भंगिमा सुन्दर लगी। हीरे और पन्ने से जड़ित उसका मुकुट देखने से यह समझा जा सकता था कि वह किसी हिन्दू राजवंश का राजकुमार था।

दरवाजे पर हाथ धरे मन्द-मन्द मुस्कराता खड़ा रहा भानु, और कुछ दूर पर चित्र लिखित सी खड़ी रही सलीमा। कुछ क्षण बाद प्यार भरे स्वर में भानु ने पुकारा--सलीमा!

'टीपू सुल्तान का आदमी आया था?'

सुनो! वह आज आया था। अब्बाजान ने वादा किया है। सुल्तान को मुझे उपहार के रूप में दे देने पर उन्हें सारी अपनी जायदाद वापस मिल जाएगी। शान्त स्वर में सलीमा बोली।

यह सुनकर भानु का चेहरा फीका पड़ गया। 'तो मुझे क्या करने को कहती हो?' उसी भाव और उसी मुद्रा में भानु ने प्रश्न किया।

आँखों में आँखे मिलाकर बिना पलक झपकाए ताकती रही सलीमा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखे जैसे गुलाबी शीराजी के नशे से मदिर हो उठी थीं। अवाक् स्वर में बोली वह--तुम हिन्दू ब्राह्मण हो, मैं मुसलमान पठान हूँ। चाँद सितारे और आसमान को गवाह बनाकर हमने जो कमस खाई है वह क्या बेकार चली जाएगी? क्या वह सपना झूठा हो जाएगा? क्या हमारा जीवन हमारा यौवन और हमारी सारी आशाएँ बेकार हो जाएँगी मिट्टी में मिल जाएँगी? हमेशा के लिए दफन हो जाएँगी? बोलो! कुछ कहो, कुछ जबाब दो। पत्थर की बुत की तरह खड़ा रहा भानु निश्चल निर्विकार।

नहीं! ऐसा नहीं होगा आवेग से काँपते हुए स्वर में सलीमा कहती गई--वह काम अच्छा है जिसका मकसद अच्छा हो तुम पुरुष हो। मैं नारी हूँ। तुम हमारा सौन्दर्य और यौवन चाहते हो और मैं चाहती हूँ तुम्हारा ऐश्वर्य और शौर्य।

जरा रुककर दबे हुऐ मगर कठोर स्वर में सलीमा बोली--भानु तुम मुझे अभी इसी वक्त यहाँ से ले चलो। अमावस की रात का मैं इन्तजार नहीं कर सकती।

अभी! विस्मित हुआ भानु।

हाँ! हाँ! अभी। और वक्त अब नहीं है। कल ही अब्बा जान मुझे सुल्तान को भरे दरबार में पेश करने वाले हैं। इसलिए कहती हूँ।

स्थिर खड़ा रहा भानु।

साँझ की गोधूलि रात के घने अँधेरे में बदल चुकी थी। वातावरण में गहरी निस्तब्धता छा गई थी। भानु की आँखों में संकल्प की चमक उभरी एक बारगी। वह अपनी जगह से जरा सा भी हटे बगैर बोला--ठीक है! यही सही। मैं......,उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गई। अचानक हवा में एक सीटी गूँज उठी। एक क्षीण आवाज हुई। सलीमा चौंक पड़ी। लेकिन वक्त और नहीं था। क्षणभर के अन्दर ही विष से बुझा एक तीर आकर भानु की पीठ में धँस गया उसके मुँह से एक आवाज तक न निकल सकी। उसका दमकता हुआ चेहरा वेदना और पीड़ा से विकृत हो गया। उसने अपने बाँये हाथ से तीर निकालने की व्यर्थ कोशिश की। दूसरे क्षण उसकी निष्प्राण काया सीढ़ियों पर लुढ़क गई।

वज्राहत सी खड़ी रह गई सलीमा। जब उसकी चेतना वापस लौटी तो एक और पदचाप सुनाई पड़ने लगी। एक हाथ में लम्बा सा धनुष-बाण लिए एक दीर्घ काय व्यक्ति आगे बढ़ आया और सलीमा को देखकर अट्टाहास कर उठा। बोला--'क्यों री, सलीमा! तुम्हारे काफिर मेहमान का क्या हाल है?'

सलीमा की दोनों आँखें नफरत से जल उठी। उसने घृणात्मक और रोष भरे स्वर में कहा--मेरे करीब मत आओ तुम! शाबाश बेटी! लड़की के पास उसका बाप आए भी नहीं ? क्या कहती हो तुम? इतना कहकर वह भीमकाय व्यक्ति और करीब आ गया।

तभी एक भयंकर काण्ड हो गया। सलीमा ने लपक कर भानु के निष्प्राण शरीर को अपनी गोद मे उठा लिया और खुले दरवाजे से पहाड़ के नीचे कूद पड़ी। चीत्कार करती हुई भानु की लाश को लिए उसकी देह सैकड़ों फुट नीचे चली गई और उसी के साथ झिलमिलाता हुआ दीप एक बारगी बुझ गया और कमरे के वातावरण में एक खिन्नता भरी उदासी छा गई।

सलीमा और भानु दूसरे जन्म में राधा और गोपी

यह प्रेम कथा उस समय और दर्दीली और मार्मिक हो गई जब मैंने अपनी दूसरी बैठक में चिरागे हाजरात की गुलाबी रोशनी में उस लड़की के पिछले जन्म की एक और करुणा में डूबी घटना को देखा।

वह लड़की जिसके जिस्म के भीतर सलीमा की रूह पनाह पा रही थी पिछले जन्म में भी एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुई थी। उस वक्त उसका नाम था राधा।

अगर मेरी तरह आप ने भी सलीमा को देखा होता तो राधा और सलीमा में कोई भी फर्क नजर न आता आपको। वही रूप वही रंग और वही सौन्दर्य! कहीं कोई वैषम्य नहीं। मैं भी अवाक् रह गया था सलीमा को राधा के रूप में देखकर। मुझे पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ था कि सलीमा की आत्मा ने जन्म लिया है राधा के रूप में। पुनर्जन्म वाद को न मानने वाले मुसलमान की रूह क्या पुन: जन्म ले सकती है? और वह भी एक हिन्दू ब्राह्मण के यहाँ ? हाँ! ले सकती है। परलोक विज्ञान के अनुसार किसी अदम्य लालसा अथवा कामना को लेकर कोई भी आत्मा शरीर का त्याग करती है तो उसकी पूर्ति के लिए निश्चित ही उसे कभी न कभी जन्म लेना पड़ेगा। चाहे वह हिन्दू की आत्मा हो या मुसलमान की रूह। सलीमा की कामना, भावना, वासना और लालसा एक ब्राह्मण युवक से जुड़ी थी। इसलिए उसे भी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेना पड़ा। खैर....

दीपशिखा की पीली लौ एक बार कसमसाई और फिर एक बारगी फैल गई। उसके फैले हुए प्रकाश में मैंने राधा को पीपल की छाँव तले बैठी हुई देखा। उसके हाथ में एक पत्र था। जिसे वह बार-बार पढ़ती थी और रख देती थी। पढ़ती थी और रख देती थी। लगता था कि उस पत्र ने राधा के कलेजे को झकझोर कर रख दिया था। वह पत्र उसके

प्रेमी गोपी का था। भानु की ही आत्मा ने जन्म लिया था गोपी के रूप में। मगर न राधा ही जानती थी कि गोपी उसके पूर्व जन्म का प्रेमी भानु है और न गोपी ही इस रहस्य को जानता था कि उसकी राधा उसके पूर्व जन्म की सलीमा है। कितनी विचित्र लीला थी प्रकृति के विधान की। वह बेचैन होकर पत्र पढ़ने लगी--'बड़ी कठिनता से तुम्हारा पता पा सका हूँ। परन्तु फिर भी विश्वास नहीं होता कि यह पत्र तुमको मिलेगा। एक बार तुमसे मिलना चाहता हूँ। बहुत सारी बातें हैं। सात साल की लम्बी कहानी में बहुत से उतार-चढ़ाव आए हैं। आज मै एकदम एकाकी हूँ। आश्रय का भूखा और स्नेह का प्यासा। दारुण कष्टों से घिरा, अँधेरे में डूबा हुआ हूँ। पत्र मिले तो फौरन जबाब देना। इतनी दया अवश्य करना। मैं तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा बेसब्री से करूँगा।'

सारी रात उस पत्र के शब्द राधा के मन के आकाश पर सावन-भादो की घटा की तरह छाए रहे। दूसरे दिन काँपते हाथों से उसने लिखा--'तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं बनारस में ही हूँ। स्कूल में अध्यापिका हूँ। पर तुमको इतने सालों के बाद मेरा पता जानने की जरूरत क्यों पड़ गई ? कैसे याद आई मेरी तुम्हें? यहाँ आना चाहो तो आ जाओ। मेरे घर का द्वार तुम्हारे लिए सदा खुला है। तुम्हारे कष्ट निवारण के लिए जो कुछ भी हो सकेगा करूँगी। सुनूँ भी तो, क्या कष्ट है तुम्हें? अपने को एकाकी क्यों लिखा है? यह विशेषण तो भगवान ने मुझे दिया है। पत्र लिखना कब आ रहे हो? प्रतीक्षा करूँगी।

राधा प्रतीक्षा करती रही, फिर एक पत्र आया। गोपी ने लिखा था--'तुम्हारा पत्र पाकर बहुत खुश हुआ। आधा कष्ट तो तुम्हारी लिखावट देख कर ही समाप्त हो गया। आधा तुम्हें देखकर समाप्त हो जाएगा। 'इतने सालों के बाद तुम्हारी सुधि आयी है' यह तुमने गलत लिखा है। ईश्वर साक्षी है एक दिन भी तुमको भुला नही सका हूँ। परिस्थितियों ने मुझे तुमसे अलग कर दिया है यह सही है पर हृदय से तुम्हे मैं कभी अलग नहीं कर सका हूँ। विश्वास करो राधा। एक पल के लिए भी तुमको बिसार नहीं पाया हूँ। तुमको भूल जाना क्या मेरे लिए सम्भव है? तुम्हीं मेरी जिन्दगी थी और तुम्हीं मेरी जिन्दगी रहोगी। इस धारणा को कोई मिटा नहीं सकता। तुम मुझे विश्वासघाती समझो या अधम। पर मेरे लिए जो तुम सात साल पहले थी वही अब भी हो। जब वे दारुण दिन आए थे, तुम्हीं अचानक मुझसे छिप गई थी। मैंने तुमको कितना खोजा, पर तुम्हें फिर न देख सका। विवश होकर मैंने सिर पर कफन रख लिया। फिर क्या-क्या हुआ? क्या-क्या सहा मैंने--तुम सुनोगी? इन सालों में तुम पर क्या-क्या बीती ? कुछ नहीं जान पाया। तुमने भी काफी व्यथा सही होगी। यही लगता है। मेरा विश्वास है कि यही हुआ भी होगा। पर जब शायद हमारे डूबे हुए नक्षत्र फिर से उभर आए हैं। शायद हमारे कष्टों का अन्त हो जाए। बहुत जल्दी तुमसे मिलने आ रहा हूँ। तुम्हारे पत्रों के सहारे तब तक मन को संतोष दूँगा। पत्र तो दोगी न?'

राधा ने अथाह अनन्त सागर में तैरते हुए लिखा--'तुम्हारा पत्र पाकर आँसू रोक नहीं पा रही हूँ। कितना रुलाया तुमने मुझे? मैं तुमसे बिछुड़ कर सालों रोती रही। फिर

जैसे स्रोत ही सूख गया। आँखे सूनी रह गईं। सब सूना हो गया। सात सालों बाद आज अचानक फिर उस सूखी नदी में बाढ़ आ गई है। तुम क्या जीवन भर मुझे सताते ही रहोगे? 'विश्वासघाती' मैंने तुमको कभी नहीं कहा। 'अधम' तुम कैसे हो सकते हो? तुमने सच ही लिखा है--परिस्थितियाँ आदमी को विवश कर देती हैं, इसे मैं भी मानती हूँ। छुट्टी कब तक मंजूर होगी? कब आओगे? लिखना। गरमी बहुत पड़ रही है। बरफ का पानी मत पीना। नुकसान करेगा।' उधर से पत्र फिर नहीं आया। तार आया। सात तारीख की शाम को प्लेन से आ रहा हूँ।

राधा ने गुसलखाने में घुस कर जल्दी-जल्दी कपड़े उतारे अपना ही शरीर देखने लगी-सामने शीशे में। यह कोमल काया आज तक अछूती रही। यह नैवेद्य का प्रसून आज तक किसी देवता के चरणों में अर्पित नहीं हुआ। ये बाहु लताएँ, ये सुकुमार अधर, ये स्निग्ध कपोल। पूजा का फूल थाली में रखा-रखा कुम्हलाता रहा। रूपश्री मन्द पड़ गई। उसने जाना ही नहीं। उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया। आज लग रहा है--काल रथ के पहिए के नीचे कोई कली जैसे कुचल गई। राधा ने शीशे से नजर हटा ली। वह पानी की धार के नीचे बैठ गई।

राधा एक घण्टे पूर्व ही पहुँच गई ऐरो ड्रोम पर, उसे एक-एक पल भारी लग रहा था। अचानक में खलबली मच गई। मालूम हुआ कि इण्डियन एयर लाइन्स के प्लेन का एक्सीडेन्ट हो गया। उसी प्लेन से तो आ रहा था गोपी। राधा की आँखों के सामने एक बारगी अँधेरा छा गया।

प्लेन में सफर करने वाले व्यक्तियों में कोई नहीं बचा था। गोपी भी नहीं बचा। दूसरे दिन उसकी अधजली लाश राधा को सौंप दी गई।

वह हृदय विदारक कारुणिक दृश्य

फिर अन्तिम दृश्य उभरा मेरे सामने। बड़ा ही कारुणिक और हृदय विदारक दृश्य था वह--जिसे देखकर मैं भी अपने आँसुओ को रोक न सका।

मैने देखा--गोपी की अधजली लाश सीने से लगा कर बेसुध पड़ी थी राधा। उसके बाल बिखरे हुए थे।

मगर यह क्या?

जब लोगों नें लाश से राधा को अलग करने की कोशिश की तो देखा गया कि राधा भी गोपी की तरह इस संसार को हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ कर चली गई है। कितनी भारी विडम्बना थी। कितना क्रूर अन्याय किया था नियति ने राधा के जीवन के साथ। पिछले जन्म में भी दोनों न मिल सके। इस जन्म में भी दोनों एक न हो सके। गोपी की लाश के साथ ही राधा की लाश को भी चिता पर रखा गया और चिता धूँ-धूँ कर जलने

लगी तो उसकी लाल-पीली लपटों के बीच मैंने एक अविश्वसनीय अपूर्व दृश्य देखा जो अपने आप में आश्चर्य जनक और कौतूहल पूर्ण भी था।

मैंने देखा--गोपी की आँखो में झाँकती हुई राधा कह रही थी फिर छोड़ कर मुझे चले गए न तुम! मगर मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगी। तुम जहाँ रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी। तुम जहाँ जाओगे वहाँ मैं भी जाऊँगी। तुम्हारा मेरा जनम-जनम का साथ है। हम दोनों को मौत भी कभी अलग नहीं कर सकती। --हाँ राधा, कोई भी शक्ति हमें अलग नहीं कर सकती। थोड़ा रुक कर आगे बोला गोपी मगर कभी परिस्थितियों नें हम दोनों को फिर अलग कर दिया तो क्या होगा?

गोपी की छाती पर अपना सिर टिका कर राधा ने हौले से कहा--होगा क्या? मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगी और तुम भी मेरा इन्तजार करना। करोगे न इन्तजार? बिसार तो नहीं दोगे मुझे?

नही राधा! ऐसा कैसे हो सकता है? मैं भला कैसे भुला सकता हूँ तुमको? कैसे अपनी आत्मा की गहराई से तुम्हारी छवि को निकाल सकता हूँ। चिता की लाल-पीली लपटें एक बार हवा में लहराईं और फिर धीरे-धीरे कम होती गईं। अन्त में उसी के साथ खत्म हो गया अतीत का वह मार्मिक प्रसंग भी। मेरा मन विषण्ण हो उठा एक बारगी।

राधा का सरोज शर्मा के रूप में जन्म

अब मेरे सामने भानु और सलीमा के तीसरे जन्म की पीड़ा भरी और आँसुओं में डूबी हुई कथा का था दृश्य। सलीमा की आत्मा नें राधा के शरीर छोड़ने के बाद उत्तर प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया था। जहाँ उसका नाम था सरोज शर्मा। मगर भानु की आत्मा गोपी का शरीर छोड़ने के बाद जन्म न ले सकी। दुर्घटना में अकाल मृत्यु हुई थी। इसलिये मनुष्य का शरीर मिलने के बजाय ब्राह्मण होने के कारण उसे ब्रह्म पिशाच की योनि मिली थी। मानव योनि में जितनी आयु शेष रहती है उसकी आठ गुनी आयु भोगनी पड़ती है ब्रह्म पिशाच की योनि में। मुझे इस बात का घोर आश्चर्य हुआ कि ब्रह्म पिशाच की योनि में चले जाने के बावजूद भी गोपी अपनी राधा को भूल न सका था और न तो साथ ही छोड़ा था उसका।

ब्रह्म पिशाच बाधा

गोपी की आत्मा सूक्ष्म शरीर में थी और राधा की आत्मा थी स्थूल शरीर में सरोज शर्मा के रूप में। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। सरोज के जन्म लेते ही गोपी का सूक्ष्म शरीर धारी ब्रह्म पिशाच उसके साथ हर समय रहने लगा। भला वह क्या जानता था कि उसके इस प्रकार संबंध बनाए रखने के फलस्वरूप सरोज शर्मा को कितनी मानसिक और शारीरिक वेदना और यंत्रणा सहनी पड़ रही है। कितनी बाधाओं का सामना करना, पड़ रहा है। पहले इसे कोई बिमारी समझी गई और बिमारी समझ कर इलाज भी काफी

कराया गया। मगर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। होता भी कैसे? कोई रोग होता तो दवा भी काम करती। वहाँ तो बाधा थी और वह भी ब्रह्म बाधा। उसे कोई न समझ सका और न तो कोई बतला ही सका। सरोज शर्मा का जीवन अभिशाप बन गया। वह अपने आपमें घुटती रही, गलती रही और होती रही बर्बाद। उसे भला क्या मालूम था कि उसका जनम-जनम का प्रेमी ही उसके लिए अभिशाप बन गया है और बन गया है बर्बादी का कारण। उसके ही कारण उसका भविष्य दुर्भाग्य के अन्धकार में डूब चुका है और जीवन के सारे सपने टूट कर बिखर चुके हैं।

कभी-कभी सरोज शर्मा का चेहरा तमतमा उठता। आँखे भी लाल हो जातीं और उस स्थिति में अपने आप बड़बड़ाने लग जाती। उसके सामने कोई उसकी शादी की चर्चा करता तो उसका रूप और अधिक भयंकर और रौद्र हो उठता। वह चीख कर कहने लगती वह शादी कभी नहीं करेगी।

ब्रह्म पिशाच की उपस्थिति

सरोज शर्मा का कमरा अलग था। वह अपने कमरे को हमेशा साफ स्वच्छ और सफा कर रखती थी। किसी को भी अपने कमरे में आने भी न देती। जब कभी कदा कोई चला भी जाता तो उसे कमरे के वातावरण में तरह-तरह के फूलों की सुगन्ध बिखरी हुई मिलती थी। परिवार के सभी लोग हैरान थे कि इसका कारण क्या है? सरोज शर्मा अपने कमरे में किसी को क्यों नहीं जाने देती? इतनी ज्याद सफाई क्यों रखती है? और कमरे में फूलों की इतनी सुगन्ध कहाँ से आती है?

हर रात की तरह उस रात भी वातावरण में गहरी खामोशी छाई हुई थी। शायद रात का तीसरा प्रहर था कमरे का बन्द दरवाजा अपने आप फटाक से खुल गया और उसी के साथ हवा का एक सर्द झोंका आकर कमरे में बिखर गया। गहरी नींद में सो रही सरोज शर्मा एक बारगी चौंक कर उठ बैठी। उसने अँधेरे में ही देखा कि उसके बिस्तर के करीब एक लम्बी चौड़ी काठी का युवक उसकी ओर अपलक निहारते हुए मुस्करा रहा है। युवक हद से ज्यादा सुन्दर और आकर्षक था, उसका रंग काफी गोरा था। वह चूड़ीदार पायजामा और केसरिया रंग का चुस्त कुर्ता पहने हुए था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और स्वप्निल थीं। काले घुँघराले बाल कन्धों तक झूल रहे थे। कानों में हीरे के बुन्दे थे और उँगलियो में नीलम, पुखराज और माणिक की अँगूठियाँ थीं। गले में मोतियों की माला भी थी। उस स्याह गहरी रात में-इस तरह अपने सामने एक सुन्दर अपरिचित युवक को देखकर सरोज शर्मा चीखना चाही मगर चीख न सकी और न तो किसी को पुकार ही सकी।

धीरे-धीरे चल कर वह युवक सरोज के करीब पहुँचा और आहिस्ते से पुकारा 'सलीमा! पहचाना नहीं। मैं भानु हूँ। तुम्हारा भानु.......।'

सरोज समझ पाती–इसके पहले ही उस युवक ने लपक कर उसे अपने आगोश में ले लिया। और फिर.......। दूसरे दिन सरोज ने रात की सारी घटनाएँ घर वालों को बतलाई तो उस पर किसी को विश्वास ही नहीं हुआ।

वह कौन था ?

घटना की सत्यता जानने के लिए सरोज शर्मा के बड़े भाई रमेश शर्मा ने दूसरी रात उसके कमरे में सोने का निश्चय किया।

समय धीरे-धीरे गुजरने लगा और उसी के साथ रात भी गहराती गई। मगर रमेश शर्मा की आँखों में नींद नहीं थी। वे तो वास्तविकता को जानने के लिए व्याकुल थे। तीसरे प्रहर थोड़ी सी झपकी लग गई उन्हें और उसी अवस्था में रमेश शर्मा को ऐसा लगा जैसे कोई अदृश्य व्यक्ति उनकी छाती पर चढ़कर उनका गला दबा रहा है। वे पीड़ा से कराह उठे और उस अदृश्य व्यक्ति के पंजे से अपने को मुक्त करने की कोशिश करने लगे। पर उन्हें सफलता नहीं मिली उन्होंने चीखना चाहा, लेकिन अवरुद्ध कण्ठ से गों-गों के सिवाय और कोई आवाज न निकल सकी। भय, पीड़ा और आतंक से उनका बुरा हाल हो रहा था।

कौन था वह? किसकी फौलाद जैसी उँगलियाँ उनका गला दबा रही थी। जब दूसरे दिन उन्होंने ये सारी बाते घर वालों को बतलाई तो सभी लोगों का मन भय, विस्मय, आतंक और संशय के मिले-जुले भाव से भर गया। सरोज शर्मा पर किसी आत्मा का साया है यह समझते देर न लगी लोगों को। फिर उसी दिन से पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और झाड़-फूँक का सिलसिला चल पड़ा। लेकिन जैसा कि मैं पीछे बतला चुका हूँ--इन सबसे कोई लाभ नहीं हुआ। बड़े-बड़े तांत्रिक, मांत्रिक, ओझा और मौलवी अपनी-अपनी शक्तियों की आजमाईश करते रहे। मगर सभी असफल रहे। सरोज शर्मा की शारीरिक मानसिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। उसकी हालत दिनों-दिन खराब होती चली गई। उन्हीं दिनों सरोज के पिता बृजमोहन शर्मा को मेरे अनुसंधान और शोध कार्य का पता न जाने कैसे लग गया। एक दिन वे सरोज शर्मा को लेकर मेरे यहाँ आ गए। जब मैंने उन्हें यह बतलाया कि भूत-प्रेत जन्य रोग व्याधि का उपचार करना मेरा काम नहीं है। मैं तो केवल परलोक विज्ञान पर खोज कार्य कर रहा हूँ। तो उनकी आँखों की चमक एक बारगी बुझ गई। कुछ देर तक वे शून्य में निहारते रहे। फिर आहिस्ते से बोले शर्मा जी! बड़ी आशा लेकर आया हूँ मैं आपके यहाँ। यदि आप मुझे निराश कर देगें और मेरी सहायता नही करेंगे तो तंत्र-मंत्र पर से मेरा विश्वास हमेशा के लिए उठ जाएगा। मैं यही समझूगा कि सब धोखा और पाखण्ड है। इतना कहने के बाद वे सिसक पडे और सरोज शर्मा की भी स्थिति करुणा जनक हो गई।

मैं सरोज शर्मा के विषय में सोचने विचारने लगा--तभी मुझे ऐसा लगा कि कोई अदृश्य शक्ति सरोज शर्मा के चारों तरफ चक्कर लगा रही है और उसकी आत्मा को

प्रभावित कर रही है। निश्चय ही ब्रह्म पिशाच था। यह समझते देर न लगी मुझे। दूसरे क्षण सरोज शर्मा चेतना शून्य हो गई और उसका सिर एक ओर लटक गया। शरीर भी ठंडा हो गया। यह स्थिति देखकर मुझसे रहा न गया, रोक न सका मैं अपने आपको। न चाहते हुए भी मुझे सहायता करनी पड़ गई। जैसा कि बतला चुका हूँ--जब मैंने चिरागे-हाजरात में ब्रह्म पिशाच और सरोज शर्मा के पिछले जन्मों की तमाम घटनाओं और उनसे संबंधित करुण दृश्यों को देखा था तभी मेरा मन एक बारगी द्रवित हो उठा था।

उन दिनों एक मेरे तांत्रिक मित्र थे। नाम था तारा नाथ भट्टाचार्य। केदार घाट पर रहते थे। बड़े पहुँचे हुए सिद्ध तांत्रिक थे। मैंने उन्हें सारी कथा सुनाई। वे मेरी सहायता के लिए तैयार हो गए। उन्होंने एक विशेष तांत्रिक अनुष्ठान किया और अन्त में ब्रह्म पिशाच का आह्वान किया। अचानक विषम स्थिति उत्पन्न हो गई। ब्रह्म पिशाच ने बतलाया कि दुर्घटना में मृत्यु होने के फलस्वरूप उसे ब्रह्म पिशाच की योनि मिली है। स्थूल शरीर और भौतिक जीवन में उसकी जितनी आयु शेष थी उसकी आठ गुनी आयु उस योनि में उसे भोगनी पड़ेगी। तब तक उसका संबंध सरोज शर्मा की आत्मा से बराबर बना रहेगा। कोई भी किसी भी प्रकार उसे अलग नहीं कर सकता । बात अपनी जगह बिल्कुल प्रकृति के नियम के अनुसार थी। ब्रह्म पिशाच बाधा तब तक बनी रहती है जब तक ब्रह्म पिशाच की आयु तामसिक लोक में रहती है।

ब्रह्म पिशाच की योनि से मुक्ति

तारा नाथ भट्टाचार्य का चेहरा गम्भीर हो गया। थोड़ी देर बाद कुछ सोचते हुए मुझसे बोले--वास्तव में इस स्थिति में किसी भी तांत्रिक क्रिया द्वारा सरोज को ब्रह्म पिशाच के चंगुल से मुक्त कराया नहीं जा सकता। बस इसके लिए एक ही रास्ता है और वह यह कि ब्रह्म पिशाच को तामसिक योनि से मुक्त कराकर सूक्ष्म शरीर में भेज दिया जाए। अभी उसे शेष आयु भोगनी है। उसे इस दशा मे मानव शरीर तो नहीं मिल सकता, लेकिन जो आयु शेष है उसे वह सूक्ष्म शरीर में भोग लेगा। और भोगने के बाद समय पर कहीं जन्म ले लेगा।

इससे लाभ क्या होगा? मैंने प्रश्न किया।

लाभ यह होगा कि ब्रह्म पिशाच का संबंध तामसिक शरीर के कारण सरोज से है और जब उसे वह छोड़ कर सूक्ष्म शरीर में चला जाएगा तो अपने आप संबंध टूट जाएगा। 'ठीक है', मैंने स्वीकारोक्ति भरे स्वर में सिर हिलाते हुए कहा। आपको जो उचित प्रतीत हो वह करें।

काश! मुझे इस बात की जरा सी भी भनक मिली होती कि मैं तारा नाथ भट्टाचार्य को यह आज्ञा देकर अपने सिर पर बहुत बड़ा झंझट मोल ले रहा हूँ तो कदापि हाँ मे हाँ न मिलाया होता। मगर जो होना था वह हो गया। तीन जन्मों से चली आ रही प्रेम कथा

समाप्त हो गई। ब्रह्म पिशाच तामसिक योनि से हमेशा के लिए मुक्त होकर सूक्ष्म शरीर में शेष आयु भोगने के लिए चला गया और सरोज की आत्मा भी उसके चंगुल से मुक्त हो गई। मगर मै फँस गया ब्रह्म पिशाच के चंगुल में। सूक्ष्म शरीर में रहते हुए भी वह मुझसे आज तक बराबर संबंध बनाए हुए है। उसका बस यही बार-बार कहना है कि उसकी आत्मा को सूक्ष्म शरीर से भी मुक्त करा दूँ और ऐसी व्यवस्था कर दूँ कि सरोज के पुत्र रूप में उसका जन्म हो। पत्नी रूप में उसको पा न सका तो माँ के रूप में पा ही सकता हूँ उसे।

मगर मैं ऐसी व्यवस्था नहीं कर सकता। यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। इसके अलावा मुझमें यह सामर्थ्य भी नहीं है कि इस दिशा में उसकी मैं कोई सहायता कर सकूँ। मगर वह मानता ही नहीं। बराबर मुझे परेशान किए रहता है। शायद उसे यह नहीं मालूम कि सरोज की आयु इस समय उस अवस्था में है जबकि महिलाएँ दादी-नानी बन जाती हैं। खैर... मैं तो ब्रह्म पिशाच की इच्छा की पूर्ति तो न कर सका। लेकिन उससे मुझे अपने परलोक विज्ञान के शोध कार्य में अवश्य एक सीमा तक महत्वपूर्ण सहयोग मिला। इसमें सन्देह नहीं।

●

कर्णिका-३

जो मृत्यु के मुँह से वापस लौट आए

एक ओर जीवन और दूसरी ओर मृत्यु। दोनों के बीच के क्षणों में मरणासन्न व्यक्ति कैसी चमत्कारी अनुभूतियों का साक्षात्कार करता है? और जो चिकित्सा शास्त्री की दृष्टि में मृत हैं, वे मृत्यु के पार के रहस्यमय जगत का कैसा अनोखा वर्णन करते हैं? क्या मृत्यु के बाद भी जीवन का अस्तित्व है? पढ़िए इस अध्याय में इससे संबंधित प्रामाणिक विवरण।

मानव शरीर में आत्मा की सत्ता को सभी ने स्वीकार किया है। शरीर मरण धर्मा है। मरणशील है। मगर आत्मा 'अमर' है। मृत्यु के बाद शरीर को जलाते हुए, जमीन में गाड़ते हुए अथवा जल प्रवाह करते हुए सभी देखते हैं। लेकिन आत्मा का क्या होता है? वह कहाँ जाती है? क्या करती है? शरीर के नष्ट हो जाने के बाद वह कहाँ रहती है? उसका निवास कहाँ होता है। क्या शरीर छूट जाने के बाद भी उसका इस संसार से संबंध बना रहता है? क्या वह व्यक्ति विशेष का ही प्रतिनिधित्व करता है? और इससे सम्बद्ध अनेक प्रश्न स्वभावतः मानव मन में बराबर उठते रहते हैं। लेकिन आज के युग में उनका सुनिश्चित तर्क संगत वैज्ञानिक उत्तर नहीं मिल पाता। इसलिए मानव मन दुविधा में पड़ा रहता है। उसकी खोज और चिन्तन का क्रम चलता रहता है।

मैंने जिस क्रम में पारलौकिक विषयों पर शोध कार्य किया है। उसके अनुसार मेरा आगामी शोध विषय था 'मरणोपरान्त जीवन के अनुभव' जिसके अन्तर्गत वे तमाम प्रश्न आ जाते हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। परलोक विज्ञान के जितने महत्वपूर्ण विषय हैं उनमें यह भी एक है।

शास्त्रों और पुराणों में मरणोत्तर जीवन का बड़ा विशद और संशय रहित विवरण मिलता है। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में उसकी विशदता और संशयहीनता ही आज के मनुष्य के लिए अविश्वास का कारण बनती है। उसका कहना है कि स्वयं मरे बिना मरणोत्तर जीवन की बात कैसे जानी जा सकती है? और मरने के बाद उस जानकारी को लिपिबद्ध कैसे किया जा सकता है। इसलिए शास्त्रों व पुराणों का विवरण कोरी कल्पना मात्र है।

मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि शास्त्रों व पुराणों का विवरण तथ्य है या कल्पना। लेकिन आए दिन ऐसी घटनाएँ घटती हैं। जिनसे उन विवरणों की पुष्टि होती है। श्री वी० डी० रिषि, राम दास गौड़, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे लोगों ने विशेष माध्यम से मृत संबंधियों से सम्पर्क स्थापित किए हैं और विश्वसनीय सूचनाएँ भी प्राप्त की हैं; इन सारी घटनाओं को अविश्वासी की फूँक से उड़ा देना सम्भव नहीं है।

मरणोपरान्त जीवन का अस्तित्व है और उसके अपने अनुभव भी हैं। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह निश्चित है कि मरने के बाद मनुष्य जीवित नहीं होता। लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो मरने के थोड़ी देर बाद जीवित हो उठे हैं और मरणोपरान्त अवस्था का उन्होंने वर्णन भी किया है। मेरे पास ऐसे कई भाग्यवानों का विवरण है जो मरने के बाद पुनर्जीवित हो उठे और अपना अनुभव भी बतलाया।

लेकिन सभी विवरण लिपिबद्ध करना यहाँ सम्भव नहीं। यहाँ मैं उन्ही विवरणों को प्रस्तुत करूँगा जो अति महत्वपूर्ण हैं और जिनका संबंध मेरे शोध से है।

शरीर और आत्मा के बीच प्राण है। प्राण का ही दूसरा नाम श्वास है। जब तक श्वास है तब तक शरीर और आत्मा का संबंध बना रहता है। प्राण के विषय में आगे मैं विस्तार से चर्चा करूँगा। यहाँ इतना ही बतला देना पर्याप्त है कि प्रत्येक मनुष्य (पशु-पक्षी नहीं) चौबीस घण्टे में २१६०० बार श्वास लेता है। यदि इस संख्या में कमी बेसी न हो तो मनुष्य अपनी पूर्ण आयु १०० वर्ष भोग सकता है। इससे अधिक भी जीवित रह सकता है।

श्वास का मनोविज्ञान

मैं प्रसंग वश यहाँ संक्षिप्त में श्वास के मनोविज्ञान पर चर्चा करूँगा। अधिक तेज आवाज में बोलने पर, क्रोध करने पर, शराब पीने पर, सम्भोग के समय तीव्र गति से दौड़ने पर श्वास का व्यय सर्वाधिक होता है। निर्धारित मात्रा से अधिक श्वास के व्यय होने के फल स्वरूप जीवन शक्ति की मात्रा कम हो जाती है। और आयु भी कम हो जाती है।

शान्ति के साथ धीरे-धीरे गहरी श्वास लेते रहने पर प्राण शक्ति के व्यय में बचत होती है। और मनुष्य दीर्घायु हो जाता है। श्वास की बचत से प्राण शक्ति की बचत होती है। योगी लोगों की अधिक आयु होने तथा उनके सौ वर्ष से अधिक जीवित रहने का एक मात्र कारण यही है कि वे श्वास बहुत कम लेते हैं। निर्धारित श्वास लेने पर शरीर मस्तिष्क दोनों स्वस्थ रहते हैं। कम से कम श्वास लेने पर शान्ति और आराम मिलता है। मानव जीवन में आराम अति महत्व पूर्ण वस्तु है। मगर आराम मिलता ही कितने लोगों को है ? वास्तव में आराम लेते हैं पशु गण। इसलिए कि वे प्राकृतिक प्रेरणा के अनुकूल चलते हैं। जबकि मनुष्य अपनी बुद्धि और अपने विचारों के अनुकूल। प्राय: मनुष्य का

अपने विचारों पर ही अधिकार नहीं रहता। बुरे विचारों के परिणाम उसके शरीर, मस्तिष्क और नाड़ी चक्रों पर परिलक्षित होते हैं। अत: वास्तविक आराम क्या है वे नहीं जानते जीवन में।

जम्हाई श्वास का ही एक अंग है। इस पर भी थोड़ा विचार करना आवश्यक है। शरीर में जम्हाई की अपनी एक विशेष यांत्रिक व्यवस्था है। वह व्यवस्था यह है कि जब आप सोने की तैयारी करते हैं। जब आपको नींद आने लगती है। नींद आसन्न है, तब आपके श्वास की प्रक्रिया में परिवर्तन होता है। जब आप जागते हैं तब आप अधिक आक्सीजन लेते हैं। क्योंकि आपको उसकी अधिक आवश्यकता पड़ती हैं। कोई भी काम करते समय आपको जोर से श्वास लेनी पड़ती है। क्योंकि उस अवस्था में शरीर काफी मात्रा में आक्सीजन जलाता है। इसलिए आक्सीजन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। जब आप कोई काम नहीं करते, श्रम नहीं करते उस समय उतनी श्वास नहीं लेनी पड़ती। क्योंकि शरीर अधिक आक्सीजन नहीं जलाता। श्वास की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब सोने जाते हैं। जब नींद आने लगती है तो शरीर को आक्सीजन की आवश्यकता कम पड़ती है। इसलिए श्वास की गति मंद पड़ जाती है। मात्रा कम हो जाती है और शरीर के भीतर कार्बन डाइ आक्साइड एकत्र होने लगती है। वह जितनी मात्रा में भीतर इकट्ठी होगी-उतनी ही गहरी नींद आपको आएगी। जितनी कम मात्रा में एकत्र होगी उतनी उथली नींद आएगी। अगर एकत्र ही न हो तो नींद आना कठिन ही है। यही कारण है कि रात में सारी प्रकृति सोती है। क्योंकि जैसे ही सूरज अस्ताचल की ओर बढ़ता है, हवाओं में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। पशु पक्षी सो जाते हैं। आप भी सोने लग जाते हैं। इसी प्रकार सूरज के उदय होते ही वायु मण्डल में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। सारी प्रकृति जाग जाती है। सारे पशु-पक्षी उठने लगते हैं। आप भी जाग जाते हैं।

नींद के लिए कार्बन डाइआक्साइड की एक खास मात्रा आवश्यक है। इसी प्रकार जागने के लिए भी आक्सीजन की एक खास मात्रा आवश्यक है। अगर मात्रा अधिक हो जाए तो नींद इतनी गहरी हो जाएगी कि आप हमेशा के लिए सो जाएँगे। या फिर सो ही न सकेंगे।

श्वास की प्रक्रिया आपके मनोभाव पर निर्भर है। अगर आप अपने प्रेमी के पास बैठे हैं तो आप गहरी श्वास लेंगे, यदि शत्रु के पास बैठे हैं तो आपकी श्वास गति होगी। जब आप बगीचे में जाते हैं तो गहरी श्वास लेते हैं। कहीं दुर्गन्ध होती है तो आप श्वास रोक लेते हैं। क्योंकि श्वास के साथ सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों भीतर जाता है। श्वास के साथ तमस् भी भीतर जाता है और सत्व भी। श्वास के साथ साधु भी भीतर जाता है और असाधु भी। श्वास सेतु है। आपके भीतर वस्तु को लाने और ले जाने का।

अगर इकट्ठा हुआ कार्बन डाइआक्सायड शरीर के बाहर न निकले तो आपका मन घबराने लगेगा। आप की बेचैनी बढ़ जाएगी। जो अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर मृत्यु का कारण बन जाती है।

इसीलिए उबाने वाली बातें सुनकर आप जम्हाई लेने लग जाते हैं। आपकी पत्नी अपना राग अलाप रही है तो आप जम्हाई लेने लग जाते हैं। आपकी जम्हाई इस बात का सूचक है कि आप सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन आप संकोच वश कहना नहीं चाहते। लेकिन शरीर से प्रकट कर रहे हैं आप। कोई मित्र आ गया। बकवासी है। आपका सिर खा रहा है। शरीर जम्हाई लेने लगता है। शरीर उसे सूचना दे रहा है कि अब जाओ भी।

विचारक भुलक्कड़ होते हैं, जितना बड़ा विचारक उतना बड़ा भुलक्कड़। और जितना बड़ा ध्यानी हो उतनी ही उसकी स्मृति प्रखर व तीव्र हो जाती है। विचार की गहनता विस्मृति का कारण है। मन की एकाग्रता स्मृति वर्धक है। विचारक भुलक्कड़ हो जाता है। क्योंकि उसके भीतर विचारों की स्मृति असम्यक् हो जाती है। ध्यान की एक विशेष अवस्था है। उस अवस्था को प्राप्त होने पर ध्यानी किसी प्रकार की याद ही नहीं रखता। इसलिए भूलने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता उसके लिए। जबकि विचारक इसके ठीक विपरीत विचारों को बराबर याद रखने का प्रयास करता रहता है। इसलिए वह भूल-भूल जाता है। क्योंकि उसे बहुत सी चीजें सम्हालनी पड़ती हैं। ध्यानी कुछ सम्भालता नहीं। वह खाली रहता है। सब अपने से ही सँभला रहता है।

वास्तव में जम्हाई श्वास की एक विशिष्ट भाषा है। जो आप से कह रही है कि यह बात आपके लिए नहीं है। यह काम कठिन है। उबाने वाला है। जम्हाई भाषा है। लेकिन कारण एक ही है। चाहे नींद की वजह से आए। चाहे ऊबकी वजह से आए। दोनों ही अवस्था में फेफड़ों में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाने पर घातक सिद्ध होती है। अगर सो जाइए तो ठीक है। अगर न सोएँ तो शरीर को उसे बाहर फेंकना पड़ता है। इसीलिए जम्हाई आती है।

जम्हाई तामसी व्यक्ति को अधिक आती है। राजसी व्यक्ति को कम आती है। सात्विक व्यक्ति के लिए वह शून्यवत हो जाती है। उसे बहुत मुश्किल से आती है, जब कोई असम्यक् स्थिति हो जाए। क्योंकि कभी सात्विक व्यक्ति को भी जागना पड़ सकता है। आप कितने बड़े सात्विक व्यक्ति क्यों न हों ? कभी कोई ऐसी स्थिति आपके सामने आ सकती है। जिसके फलस्वरूप आपको जागना पड़ सकता है। बैठना पड़ सकता है। जिसके कारण आपको जम्हाई लेनी पड़ जाएगी। अन्यथा सात्विक को जम्हाई नहीं आती। तामसिक व्यक्ति को जम्हाई इसलिए अधिक आती है कि उसके लिए जागना अत्यन्त कष्ट पूर्ण होता है। राजसी व्यक्ति को जम्हाई इसलिए अधिक आती है कि वह

सोने के लिए तैयार नहीं है। उसे बहुत सारे काम करने हैं। नींद उसकी शत्रु है। जितना काम कर सके उतना अच्छा। क्योंकि उतने समय को बचाना हो जाएगा। उतने समय में अपनी कुछ महत्वाकांक्षा को पूर्ण कर लेगा। सात्विक व्यक्ति की कोई महत्वाकांक्षा नहीं होती। इसलिए जब उसे नींद आती हैं तो सो जाता है वह। जब भूख लगती है तो खाना खा लेता है वह।

रिंझाई बहुत बड़ा योगी था। किसी ने उससे पूछा कि क्या है तुम्हारी साधना ? उसने कहा जब भूख लगती है खाना खा लेता हूँ, जब नींद आती है तो सो जाता हूँ। बस यही साधना है मेरी।

कहने का मतलब यही है कि सत्व को उपलब्ध व्यक्ति ऐसे ही जीता है। किसी दुर्घटना के फलस्वरूप उसे जम्हाई आ सकती है। अन्यथा कोई कारण नहीं है।

जीवन और मृत्यु

जैसा कि संकेत किया जा चुका है–शरीर को चैतन्य बनाए रखने वाली और शरीर को धारण करने वाली जो सूक्ष्मतम शक्ति है जिसे आत्म शक्ति भी कहा जा सकता है उसी की इस पार्थिव संसार में स्थूल अभिव्यक्ति प्राण अथवा श्वास है। जव वह सूक्ष्मतम शक्ति शरीर के बाहर निकल जाती है और श्वास रुक जाती है तो उसी अवस्था को मृत्यु कहा जाता है। मृत्यु का सीधा संबंध श्वास से समझना होगा। श्वास के कारण ही वह सूक्ष्मतम शक्ति शरीर के अवयवों में विद्यमान रहती है। वैसे वह सूक्ष्मतम शक्ति शरीर को कभी भी छोड़ना नहीं चाहती। लेकिन श्वास की गति समाप्त होने पर उसे विवश होकर शरीर से अलग होना पड़ता है। इसीलिए योगी गण सर्वाधिक ध्यान अपने श्वास पर रखते हैं। श्वास प्राण की ही एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है। शरीर में पाँच कोष हैं। जिनमें एक प्राणमय कोष भी है। शरीर में अन्नों के रासायनिक तत्वों से प्राण की उत्पत्ति होती है। और वह उत्पत्ति का केन्द्र है प्राणमय कोष। आयु के अनुसार प्राण का निर्माण शनैः शनैः बन्द होने लग जाता है और उसी के साथ श्वास की गति भी मन्द पड़ने लग जाती है। जिसके फलस्वरूप शरीर और मस्तिष्क दोनों शिथिल पड़ जाते हैं। और जब वह शिथिलता अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है तो वह सूक्ष्मतम शक्ति विवश हो कर शरीर छोड़ देती है। इसी का नाम मृत्यु है। शरीर के जिस केन्द्र में अन्नों के रासायनिक तत्वों का निर्माण होता है उसे अन्नमय कोष कहते है। अन्नमय कोष और प्राणमय कोष एक दूसरे पर आश्रित हैं। दोनों की सक्रियता का ही नाम जीवन है।

इस संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि लोग दूसरों को मरते हुए देख कर भी यह नहीं सोचते कि उन्हें भी इसीप्रकार मरना है एक दिन। वे यही समझते हैं कि उन्हें अमरत्व का दान मिला है।

मृत्यु अवश्यम्भावी है। किन्तु मृत्यु क्या है ? प्राणों का अन्त क्या होता है? क्या प्राण वास्तव में शरीर से निकलकर कहीं चला जाता है? यह सब ऐसी पहेली है जिसे सुलझाने

में विज्ञान अभी तक सफल नहीं हो पाया है। साधारण तौर पर शारीरिक और मानसिक शक्तियों का समाप्त होना ही मृत्यु की स्थिति है। जब हृदय की धड़कन रुक जाती है। श्वास बन्द हो जाती है। स्मृति पटलसे स्मृति नष्ट हो जाती है तो हम उसे मृत्यु कहते हैं। कुछ लोगों के मत में शरीर से प्राणों के बहिर्गमन का नाम मृत्यु है। जो भी हो। यह एक ऐसा प्रश्न है, ऐसा रहस्य है, जो आदि काल से वैज्ञानिकों दार्शनिकों चिन्तकों और विद्वानों के मन में कौतूहल की सृष्टि करता आया है।

अब प्रश्न उठता है कि मानव केवल कार्बन यौगिकों का पुतला मात्र है? या पंचतत्व, जिससे प्राणी बना है; मानव तथा दूसरे जन्तुओं को जीवित रखते हैं और उनके नष्ट होने से जीवन नष्ट हो जाता है? या हमारे हृदय गुर्दे और मस्तिष्क में प्राण बसते हैं और इनका क्षय ही मृत्यु का संकेत होता है? या फिर आत्मा का कोई अस्तित्व है? और उसके शरीर से निकल जाने को मृत्यु कहा जाता है?

पिछले सौ वर्षों में पूर्व तथा पश्चिम के वैज्ञानिकों ने मृत्यु और पुनर्जन्म के रहस्य को जानने के अनेक प्रयत्न किए हैं। किन्तु यह गुत्थी सम्मुख अब भी प्रश्न चिन्ह बनी खड़ी है। ओलिवर लॉज और विलियम कुक्स जैसे वैज्ञानिकों के इन विषयों में रुचि रखने के कारण संसार भर के वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया है। और उन्होंने अनेक नई दिशाओं की खोज की है।

जर्मनी के प्राणी शास्त्री आगुस्त बीजमान का मत है कि पृथ्वी पर जीव का अविर्भाव एक कोशिकीय जीवों से हुआ। एक कोशीय जीव अमीबा धरती का सफलतम जीव है। अमीबा की वृद्धि कोशिका के विभाजन से होती है। एक से बँटकर दो जीव हो जाते हैं। विभाजन द्वारा निरन्तर वृद्धि ही होती जाती है। इस विषय पर आगे पढ़े (कोशिकाओं का रहस्य और जीवन में वैज्ञानिक दृष्टि) बीजमान के अनुसार विकास के क्रम में जब जीव में रीढ़ की हड्डी तथा मस्तिष्क बने, तभी धरती पर काल भी प्रकट हुआ।

.......तो क्या मस्तिष्क का प्राणों से कोई संबंध है? क्या मस्तिष्क के नष्ट होने से ही प्राण नष्ट हो जाते हैं ?

जीव शास्त्रीय मृत्यु

विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों नें जो परीक्षण किए हैं। उनसे ज्ञात होता हैं कि मृत्यु के समय जब मनुष्य का फेफड़ा और हृदय निष्क्रिय हो जाता है तो भी मस्तिष्क तन्तुओं में बहुत अल्प समय तक जीवन रहता है। वस्तुत: वह अवस्था न पूर्ण जीवन की होती हैं और न तो पूर्ण मृत्यु की ही होती है। जीवन और मृत्यु के बीच की स्थिति होती है वह। ऐसी ही स्थिति में मरणासन्न व्यक्ति मरणोत्तर जीवन की झलक पा लेता है। और पुनर्जीवित होने पर उसका वर्णन करता है। इस विषय पर आगे पढ़ें (जो मृत्यु के मुँह से लौट आए) खैर चिकित्सा शास्त्री यह बात बहुत पहले से स्वीकार करते आए हैं कि

शरीर के समस्त अवयव एक साथ नहीं मरते। मस्तिष्क की कोशिकाएँ दूसरे अंगों की कोशिकाओं से अधिक स्थायी होती हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० नेगोस्की ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि श्वास और हृदय की धड़कन बन्द होने के बाद भी मस्तिष्क शरीर के अन्य अवयवों को सन्देश प्रेषित करता रहता है। अनुमान है कि प्राणी की श्वास और हृदय की धड़कन बन्द हो जाने के बाद मस्तिष्क की कोशिकाएँ दस-पन्द्रह सेकेण्ड से पाँच छ: मिनट तक जीवित रहती हैं। इसके बाद कोशिकाओं का क्षय होने लगता है। और वे नष्ट हो जाती हैं। यही वह स्थिति है, जब प्राणी में प्राण का पूर्णतया अन्त होता है। वैज्ञानिक इसे जीव शास्त्रीय मृत्यु कहते हैं।

जीव शास्त्रीय मृत्यु के बाद शरीर में पुन: प्राण का संचार सम्भव नहीं है। इस समय शरीर में जीवाणुओं की हलचल बिल्कुल बन्द हो जाती है और उसमें सड़न शुरु हो जाती है।

क्या पुनर्जीवन सम्भव है, मगर कब ?

वैज्ञानिक मत से ५, ६ मिनट का वह समय जब मस्तिष्क की कोशिकाओं में जीवन रहता है, प्राणियों में पुन: प्राण फूँक सकता है। यदि इतने समय में कुछ न किया जाए तो मृत्यु निश्चित है। वैज्ञानिकों के पास पाँच छ: मिनट का यह समय पुनर्जीवन की आशा की स्वर्णिम आभा है। प्रयोगशाला में डाक्टर इसी ज्योति में अनेक प्राणियों का जीवन बचाने में सफल हुए हैं। लेकिन इतने समय में जीवन कैसे वापस लाया जाए? यह बहुत कुछ रोगी की दशा पर निर्भर है। पहले कृत्रिम तरीकों से हृदय की धड़कन पुन: चालू की जाती है और एक विशेष मशीन द्वारा कृत्रिम श्वास क्रिया जारी रखी जाती है। इसके बाद मस्तिष्क के तन्तु कार्य करने लगते हैं। और प्राणी में प्राण का संचार होने लगता है।

एक रूसी वैज्ञानिक 'लोजिन्स्की' ने कीटाणुओं को शून्य से चार डिग्री नीचे तापमान पर हीलियम द्रव्य में जमा दिया। इससे उनके शरीर के सभी अंग शिथिल हो गए। मगर कुछ समय पश्चात जब उनमें चेतना लाने का यत्न किया गया तो वे फिर जीवित हो उठे।

इससे स्पष्ट है कि शारीरिक प्रक्रिया मे बन्द हो जाने के बाद भी मस्तिष्क की कोशिकाएँ क्रियाशील रहती हैं और पूर्ण मृत्यु तभी होती है जब वे कोशिकाएँ अपनी क्रियाएँ बन्द कर देती हैं। इस विषय पर आगे पढ़ें (रहस्यमयी कोशिकाएँ) वैज्ञानिकों का मत है कि हृदय के शुद्ध रक्त प्रवाह से ही मस्तिष्क की कोशिकाएँ जीवित और क्रियाशील रहती हैं।

सन् १९६२ की बात है। रूसी नोबेल पुरस्कार विजेता लेव लेण्डो एक मोटर दुर्घटना में आहत हो गए। दुर्घटना के बाद काफी समय तक मूर्च्छित पड़े रहे। इस अवधि में अनेक बार कई घण्टों तक उनके हृदय की धड़कन बन्द रही। उनकी श्वास और नाड़ी

रुक गई तथा उन्हें चार बार मृत घोषित किया गया। किन्तु वास्तव में उनकी मस्तिष्क कोशिकाएँ अभी भी जीवित थीं। उपचार जारी रहे और वैज्ञानिक उन्हें फिर से सक्रिय करने में सफल हो गए। इसके बाद वे छः वर्ष तक जीवित रहे। वैज्ञानिकों के मत में उनकी दैहिक मृत्यु के बाद मस्तिष्क की कोशिकाओं के जीवित रहने के कारण ही उनका पुनर्जन्म सम्भव हुआ।

शरीर और आत्मा का संबंध

तो क्या मस्तिष्क में ही प्राणों का निवास है? और मस्तिष्क में बैठा प्राण मानव जीवन के समस्त कार्य-कलापों, उसकी भावनाओं, और पुण्य-पापों पर नियन्त्रण रखता है। या मस्तिष्क स्वयं ही प्राण है। और उसके क्षय के साथ ही प्राणों का भी अन्त हो जाता है। भारतीय अध्यात्म शास्त्र के अनुसार आत्मा, प्राण और मन तीनों का अस्तित्व अपने आप में स्वतंत्र है। शरीर के तल पर जब उनका गठन होता है, तभी जीवन की अभिव्यक्ति होती है। इस संबंध में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का मत है कि आत्माएँ दो प्रकार की होती हैं--एक आत्मा अमर है और दूसरी का क्षय हो जाता है। अरस्तु ने अपनी पुस्तक 'आत्मा पर' में लिखा है कि आत्मा क्या है? और उसका क्या अस्तित्व है? इस संबंध में स्पष्ट प्रमाण देना सम्भव नहीं है। फिर भी अरस्तू ने आत्मा की व्याख्या की है। उनके मतानुसार शरीर एक भौतिक पदार्थ का आकार है। शरीर और आत्मा में वैसा ही संबंध हैं जैसा मोम में और मोमबत्ती में। मोम एक भौतिक पदार्थ है और मोमबत्ती उसका आकार है। वेदान्त के अनुसार एक ब्रह्म है जो सारे संसार में व्याप्त है। ब्रह्माण्ड में रहते हुए भी उससे परे है। आत्मा इसी ब्रह्म का अंश है।

आत्मा के अस्तित्व को वैज्ञानिक मान्यता

किन्तु इन विश्वासों और मान्यताओं की बात छोड़ भी दें और ठोस वैज्ञानिक धरातल पर घटनाओं का अध्ययन करें तो पाएँगे कि अनेक विख्यात वैज्ञानिकों और मनः चिकित्सकों ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है और अनेक प्रयोग कर के आत्मा की स्थिति में आस्था और विश्वास दर्शाया है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टेनीस्लाव ग्रोल और जान हेली फेक्स ग्रोफ नें अनेक रोगियों का अध्ययन किया। इनमें एक छब्बीस वर्षीय रोगी था--डीना, वह कैंसर रोग से पीड़ित था। उसे दो बार दिल के दौरे पड़े और चिकित्सकों ने उसे मृत घोषित कर दिया। किन्तु कुछ ही समय बाद उसके प्राण फिर से लौट आए और वह जीवित हो उठा। मृतक अवस्था में उसे लगा जैसे वह अंधकार के गर्त में समाता जा रहा है। किन्तु शीघ्र ही वह अंधकार एक अलौकिक ज्योति के रूपमें परिवर्तित हो गया और उसे लगा जैसे वह उस ज्योति में एकाकार हो गया है। उसी समय उसे छत पर छाया चित्र दिखाई दिया

जिसमें उसके सभी बुरे कर्मों का चित्रण किया गया था। इन सभी घटनाओं के दौरान उसे लगा जैसे सर्वशक्ति मान ईश्वर कहीं समीप ही उपस्थित है और उसके कार्यों की समीक्षा कर रहा है। उसके पश्चात् वह पुनः अपने शरीर में लौट आया।

रेमण्ड ए० मूडी ने अपनी पुस्तक 'जीवन के बाद जीवन' में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है। जब रोगी मृतक घोषित कर दिए जाने के बाद जीवित हो उठा है और उसने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा है। डा० मूडी अन्धविश्वासी नहीं हैं और न ही मिथ्या प्रचार उनके उनके अध्ययन का उद्देश्य है।

डा० मूडी ने चिकित्सा विद्यालय में प्रवेश पाने के बाद अनेक ऐसे रोगियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जो मृत घोषित किए जाने के वाद पुन: जीवित हो उठे थे। ये रोगी विभिन्न धर्मों और वर्गों के लोग थे। उनका बौद्धिक और शैक्षिक धरातल भी भिन्न था। किन्तु उन्होंने मृत्यु के समय घटने वाली जिन घटनाओं और अनुभवों का उल्लेख किया उनमें एक अद्‌भुत साम्य है। विभिन्न स्थानों से आए, विभिन्न धर्मों और देशों के लोगों के अनुभवों में ऐसा साम्य किसी अनजाने सत्य का संकेत नहीं है ?

एक रोगी के पेट की शल्य चिकित्सा की जा रही थी। तभी उसकी मृत्यु हो गई और वह बीस मिनट तक इसी स्थिति में रहा। इसके बाद उसमें फिर से जीवन लौट आया। पुनर्जीवित होने के बाद उसने बतलाया कि जब उसकी मृत्यु हुई तो उसे लगा जैसे उसके सिर से भिनभिनाने की तेज आवाज निकल रही है। एक स्त्री ने भी मृत्यु के समय इसी प्रकार की ध्वनि का उल्लेख किया है। एक और व्यक्ति ने जिसे मृत्यु का अनुभव हो चुका था। बतलाया कि उसे लगा कि जैसे वह अचानक ही किसी गहरी अँधेरी खाई में चला गया है जिसमें एक मार्ग है, और वह उस पर तेजी से चला जा रहा है।

ऐसे अन्धकार का उल्लेख मरने वाले प्राय: सभी लोगों ने किया है। एक स्त्री ने बतलाया कि एक वर्ष पूर्व जब मैं हृदय रोग से पीड़ित होकर अस्पताल में दाखिल हुई थी तो मेरे हृदय में असहनीय पीड़ा हो रही थी। तभी मुझे लगा जैसे मेरी श्वास रुक गई है और हृदय ने धड़कना बन्द कर दिया है। मैंने अनुभव किया कि मैं शरीर से निकल कर पलंग की पाटी पर आ गई हूँ। इसके बाद फर्श पर चली गई हूँ। फिर धीरे-धीरे ऊपर उठना शुरु किया। मैं कागज के टुकड़े की तरह उड़कर ऊपर उठ रही थी। और छत की तरफ जा रही थी। वहाँ पहुँच कर मैं काफी समय तक डाक्टरों को कार्य करते देखती रही। मेरा शरीर बिस्तरे पर सीधा पड़ा था। और डाक्टर उसके चारों ओर खड़े उसे जीवित करने का प्रयास कर रहे थे। तभी उन्होंने एक मशीन से मेरी छाती पर झटके देने शुरू किए। उन झटकों से मेरा शरीर उछल रहा था और मैं अपनी हड्डियों की चटख साफ सुन रही थी। इसके बाद मैंने अपने शरीर में कैसे प्रवेश किया इसका ज्ञान मुझे नहीं है। इसी प्रकार एक अन्य महिला ने अपना अनुभव सुनाया--यह अनुभव मुझे तब हुआ जब मैं एक बालक को जन्म दे रही थी। मेरा काफी रक्त निकल चुका था। डाक्टर ने मेरे बचने

की आशा छोड़ दी थी और मेरे संबंधियों को इसकी सूचना दे दी थी। जब डाक्टर यह बता रहा था तभी मुझे लगा, जैसे मैं शरीर के बाहर निकल रही हूँ। शरीर के बाहर निकलकर मैंने देखा कि कमरे की छत के पास मेरे सभी सगे-संबधी परिचित, और मित्र मेरा स्वागत करने को उपस्थित हैं। जो मुझसे पहले इस संसार को छोड़ कर चले गए थे। मैंने अपनी दादी और उस लड़की को पहचान लिया जो स्कूल में मेरी सहेली थी। मैं उन सबकी उपस्थिति अनुभव कर रही थी और वे सभी प्रसन्न थे। मुझे अनुभव हो रहा था जैसे वे मेरी रक्षा करने तथा स्वागत के साथ घर ले जाने आए हैं। वास्तव में वे काफी सुखद क्षण थे। डा० मूडी ने जिन रोगियों का अध्ययन किया उनमें से अधिकाँश ने यह स्वीकार किया है कि मृतक अवस्था में उन्हें एक अलौकिक ज्योति के दर्शन हुए। उन्हें लगा जैसे यह ज्योति एक ज्योति ही नहीं, एक व्यक्तित्व है। ममता स्नेह और स्वागत से भरा एक अनोखा व्यक्तित्व। एक व्यक्ति ने बताया--

मैने सुना डाक्टरों नें मुझे मृत घोषित कर दिया है। दूसरे ही क्षण में एक प्रकार के अन्धकार में उड़ रहा था। यह एक तरह की खाई थी। और चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था। तभी मुझे एक ज्योति दिखाई थी। उस ज्योति का आकार शुरु में छोटा था किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों मैं उसके समीप गया वह अलौकिक ज्योति महाप्रकाशवान बन गई। यह ज्योति बहुत सुन्दर और सुखद थी। धरती पर ऐसी ज्योति की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी व्यक्ति का आकार उस ज्योति में समाहित नहीं था। यह तो एक सम्पूर्ण स्नेह और सम्पूर्ण सुख की ज्योति थी।

वैज्ञानिकों के पास कोई स्पष्ट उत्तर नहीं

कनाडा के एक मानव सम्पदा निर्देशक हर्थ ग्रिथिल हृदय के मरीज थे। सन् १९७४ में उन्हें मात्र तीन दौरे पड़े। फिर बीस बार से अधिक दिलके दौरे पड़े। हर बार डाक्टरों ने उन्हें मृत घोषित किया और हर बार वे जीवित हो उठे। डाक्टरों ने उसे एक अनहोनी घटना के रूप में स्वीकार किया। मृत्यु के पश्चात् उन्हें जो अनुभूति होती थी, वह प्राय: एक सी थी। उनका कहना है कि प्रत्येक मरणोपरान्त उन्होंने अपने को एक उज्जवल तेज प्रकाश से घिरा पाया। जिसमें गर्मी की अनुभूति होती थी। वह प्रकाश आकाशीय बिजली जैसा प्रकाश था। ध्यान से देखने पर पाया कि वह प्रकाश मेरी ओर बढ़ रहा है। मेरे और प्रकाश के बीच में एक काली छाया थी। जो तेज प्रकाश से मेरी रक्षा कर रही थी। उस समय मैंने अपने शरीर को काफी हल्का अनुभव किया। इसके साथ ही काली छाया के सागर में तैरने की भी अनुभूति हो रही थी। इतने में पुन: उज्ज्वल प्रकाश मेरी ओर बढ़ी। डर तो नहीं लगा पर रहस्यात्मक अनुभूति से रोमाञ्चित हो उठा। ठीक उसी समय मेरा एक पुराना परिचित प्रकट हुआ जो सिलेटी रंग का सूट पहने था। वह मेरे बिल्कुल करीब था। उसने निडर भाव से कहा--आ जाओ। सब ठीक है। अचानक मुझे सीने पर तेज आघात महसूस हुआ। आवाज भी सुनाई दी--क्या मैं बिजली के झटके दूँ? दूसरी ओर से

आवाज आई--नहीं अभी नहीं उसकी पलकें झपक रही हैं। इसकी आयु अभी पूरी नहीं हुई है। इसे जिन्दा रहना चाहिए। इसके बाद मैं अपने शरीर में वापस आ गया।

अब तक मैंने मौत के मुँह से वापस लौट आने वालों की चर्चा की है। वे सभी पश्चिम के जाने माने व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने अनुभवों को बतलाने में किसी प्रकार की कल्पना का सहारा नहीं लिया। कहने की आवश्यकता नहीं वे सभी विज्ञान के सम्मुख एक रहस्यमयी पहेली हैं। और उनके अनुभवों के आधार पर आत्मा के अस्तित्व से इन्कार करना कठिन प्रतीत होता है।

तो क्या आत्मा का अस्तित्व है? क्या आत्मा ही प्राणों का पर्याय है? क्या आत्मा के शरीर से बहिर्गमन का ही नाम मृत्यु या प्राणों का अन्त है?

आज वैज्ञानिकों के पास इन प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। वे आत्मा को नहीं मानते और उसके अस्तित्व को अस्वीकार भी नहीं कर सकते। प्राणों की गुत्थी, आज भी उनके सम्मुख प्रश्न चिन्ह बनी खड़ी है। वे नहीं कह सकते कि प्राण मस्तिष्क में बसता है या आत्मा में। या आत्मा और मस्तिष्क का कोई ऐसा संबंध है जिसका पर्दा सभी वैज्ञानिक उठा नहीं पाए हैं।

प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री मि० पोल्यानी अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विश्व के अधिकाँश. वस्तुओं का अस्तित्व कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित है जिनका ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को नहीं है। हो सकता है किसी दिन वैज्ञानिक इन गुप्त सूत्रों को पकड़ लें और उस दिन आत्मा और प्राण की रहस्यमयी पहेली सुलझ जाए।

इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि वैज्ञानिक लोग आत्मा के अस्तित्व को एक तरफ स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर अस्वीकार भी करते हैं। जबकि पश्चिम वासियों को, जो मृत्यु के मुँह से वापस लौट आए हैं अपनी आत्मा के अस्तित्व के अतिरिक्त मरणोपरान्त की अवस्थाओं के अनुभव भी हुए हैं। जो अपने आप में प्रमाणिक हैं।

जिन वैज्ञानिकों ने निस्संकोच और बिना तर्क के आत्मा के आस्तित्व को स्वीकर किया है, उनमें एक हैं--फ्रान्स के प्रसिद्ध वैज्ञानिक फले मोरियो। जो फ्रान्स के एक ज्योतिष वेधशाला के अध्यक्ष भी हैं। उनकी लिखी एक अति महत्वपूर्ण पुस्तक है। नाम है--'युरानिया'। यह पुस्तक मुझे अपने शोध काल में अपने एक मित्र द्वारा प्राप्त हुई थी।

अपनी पुस्तक में विद्वान लेखक ने अपने मित्र के मर जाने के बाद एक दिन उन्होंने जो दृश्य देखा उसे उल्लेखित किया है, 'मेरा पैर अभी अन्तिम सीढ़ी पर ही था कि मैंने वो दृश्य देखा जिससे मेरा पैर वहीं जम गया।' भयग्रस्त हो कर मेरे कंठ से एक चीख निकली। मैंने पेरिस में जैसा उसे देखा था उसकी मुखाकृति और शरीर ठीक वैसा का वैसा ही था। वह छत पर बैठा था। मैंने कहा स्पैरो, तो वह चिर परिचित वाणी में बोला

क्या तुमको मुझसे भय लगता है? वह मेरी ओर देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। मैं उसको देखता ही रह गया। फिर मैंने कहा--क्या तुम सचमुच उपस्थित हो ? मैं तुम्हें भली प्रकार देख लूँ। मैंने अपने हाथों से उसके शरीर का स्पर्श किया। बालों को सहलाया तो मुझे यही लगा कि वह जीवित है। मेरे मुख से आश्चर्य के उद्वेग से निकला--क्या यह तुम्ही हो? फिर मैं उसके सामने बैठ गया फिर चिर-बिछुड़े मित्रों में बातें होने लगीं। स्पैरो ने अपने परलोक के अनुभव सुनाए और वहाँ के जीवन पर प्रकाश डाला। उसने बतलाया कि जो आत्माएँ इस लोक में सचेत हो जाती हैं वे काल यानी समय और स्थान नहीं घेरती।

स्पैरो ने आगे बतलाया कि मनुष्य अपने भाग्य को स्वयं बनाता है। आत्मा का लक्ष्य प्राकृतिक संसार की मोह माया से निकलना है। तब उसका अध्यात्म जीवन में प्रवेश होता है। मानव मात्र का परम पुरुषार्थ मुक्ति या परमानन्द की प्राप्ति है। यह वार्तालाप पर्याप्त समय तक चलता रहा। फिर स्पैरो एकाएक अदृश्य हो गया।

एक मृतात्मा का स्थूल शरीर में प्राकट्य

उपर्युक्त उद्धरण एक विदेशी विद्वान की लेखनी से प्रस्तुत किया गया। अब मैं स्वयं के जीवन का एक ऐसा ही उद्धरण यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ।

बात उन दिनों की है जब मैं बी० ए० का छात्र था। मेरा एक सहपाठी था। नाम था पुरुषोत्तम अम्बालाल पटेल। खम्भात का रहने वाला था पटेल। हम दोनों में गहरी मित्रता थी। एक बार बातचीत के सिलसिले में अचानक बोल बैठा पटेल--भाई शर्मा जी हम दोनों में जो पहले मरेगा वह परलोक की बात बतलाएगा दूसरे को।

मैंने हँस कर कहा, तुम पागल हो। अभी तक किसी ने मरने के बाद बतलाया है आकर परलोक की बात। मगर मैं बतलाऊँगा देखना--पटेल का स्वर गम्भीर था। भला मैं उस समय कहाँ जानता था कि पटेल जो कह रहा है वह कभी कर के दिखाएगा।

परीक्षा फल निकलने के बाद पटेल अपने घर चला गया। कुछ समय तक हम दोनों में पत्र व्यवहार होता रहा। फिर धीरे-धीरे बन्द हो गया। बाद में पता चला कि फौज में भर्ती हो गया है पटेल। दूसरे महायुद्ध का अन्तिम चरण था। उस समय अचानक पता चला कि पटेल युद्ध में मारा गया। यह समाचार सुनकर स्तब्ध रह गया था मैं। धीरे-धीरे चार साल का लम्बा अर्सा गुजर गया। और उसी के साथ सब कुछ भूल गया मैं।

उस दिन सुबह से ही झम-झम कर बरस थे मेघा, साँझ का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा विद्यालय की परीक्षा की कापी जाँच रहा था। तभी फटाक् से बन्द दरवाजा खुला। सिर उठा कर देखा। सामने पटेल खड़ा मुस्करा रहा था। पूरे फौजी वर्दी में था वह. उसे देखते ही एक बारगी सन्न रह गया मैं। सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा मेरा। सुषुम्ना

शिथिल होती जान पड़ी। खून बर्फ हो जाए, ऐसा ठण्डा आतंक मेरी शिराओं में दौड़ गया। किसी प्रकार गला साफ कर हकलाते हुए बोला--अरे पटेल तुम? तुम.....तुम तो मर चुके हो न। मेरी बात सुनकर सामने रखी कुर्सी पर बैठते हुए उसने कहा, कौन कहता है कि मैं मर गया हूँ ? दुनियाँ की नजर में भले ही मर चुका हूँ, मगर मैं जिन्दा हूँ। कोई फर्क नहीं पड़ा है मुझमें। मेर विचार, सिद्धान्त, मेरी भावनाएँ, इच्छाएँ, सब कुछ वैसी की वैसी ही हैं, जैसी जीवित अवस्था में थीं, कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा है, सच पूछो तो वे सब पहले से ज्यादा शक्तिशाली हो गई हैं। अपनी प्रबल भावना और प्रबल इच्छा के बल पर मैं जो चाहे वह कर सकता हूँ। एक ही साँस में इतना सब बोल गया पटेल।

मैं भौंचक्का सा देखता रहा पटेल को! सचमुच कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा था। पहले ही जैसा फूर्तीलापन और पहले ही जैसा गठीला-सजीला शरीर। धुली हई फौजी वर्दी में बड़ा ही सजीला जवान लग रहा था वह उस समय। कुछ क्षण के लिए मैं भूल ही गया कि मेरे सामने एक मृतात्मा शरीर बैठी हुई है।

जेब से कैप्सटन सिगरेट का डब्बा निकालकर एक सिगरेट सुलगाते हुए बोला पटेल शायद तुमको इस बात का आश्चर्य होता होगा कि मैं तुम्हारे सामने फिजिकल बॉडी में कैसे हूँ ? जबकि मेरी फिजिकल बॉडी न जाने कब की चिता की आग में जल कर राख हो चुकी है।

थोड़ा रुक कर सिगरेट की राख झाड़ा उसने फिर आगे बोला तुमसे एक वादा किया था शर्मा, शायद तुम भूल गए होगे। कौन सा वादा किया था पटेल ने? सचमुच भूल गया था मैं उसे।

--कौन सा वादा? हकलाते हुये पूछा मैंने।

हँसकर बोला--एक बार मैंने तुमसे कहा था न जो पहले मरेगा वह दूसरे को परलोक की बात बतलाएगा याद आया।

पटेल ने एक लम्बी साँस ली और फिर धीमे स्वर में बोलना शुरु किया--अपने वादे को पूरा करने के लिए ही मुझे अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर अपनी फिजिकल बॉडी में तुम्हारे पास आना पड़ा मुझे। जैसे कोई चित्रकार अपनी कल्पना को चित्र के रूप में कागज पर उतार देता है। उसी प्रकार कोई भी प्रबल इच्छाशक्ति सम्पन्न आत्मा अपनी संकल्प के बल पर अपने स्थूल शरीर की कल्पना कर कुछ समय के लिए उसे साकार रूप दे सकती है। ऐसा ही मैंने किया है। तुमको डरने और घबराने की जरूरत नहीं। तुम मेरे मित्र हो। तुमको किसी भी तरह का नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा मैं, समझे! जब तक मेरा इस दुनिया से सम्पर्क रहेगा तब तक समय समय पर आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारी मदद ही करूँगा मित्र।

यह सुन कर थोड़ा आश्वस्त हुआ मैं।

पटेल अपनी धुन में कहने लगा--तुम्हारी इस दुनिया में सिवाय अभाव घुटन पीड़ा और दुख के और कुछ नहीं है। शान्ति तो बिल्कुल नहीं है। सच पूछो तो अशान्ति का ही नाम जीवन है। लोग मरना नहीं चाहते। मरने से घबराते हैं। मगर जानते हो मृत्यु बड़ी सुन्दर चीज है। शरीर और संसार छोड़ते समय जरूर कष्ट होता है मगर उसके बाद शान्ति ही शान्ति है। सच पूछो तो मृत्यु के संबंध में आवश्यक जानकारी न होने के कारण वह डरावनी लगती है। मनुष्य पूर्ण चेतन प्राणी है। इसलिए उसका एक ही स्थिति में बने रहना सम्भव नहीं है। प्रकृति के सभी रूपों में परिवर्तन होता रहता है। वास्तव में परिवर्तन का ही दूसरा नाम प्रकृति है। जहाँ परिवर्तन होगा, वहाँ प्रकृति होगी। और जहाँ प्रकृति होगी वहाँ परिवर्तन होगा। तो जीवन मात्र में भी गतिशीलता और परिवर्तनशीलता क्यों न रहेगी। मात्र क्रम के इन पड़ावों को ही हम जीवन और मृत्यु कहते हैं। सच पूछो तो मृत्यु के संबंध में लोग विचार ही नहीं करते। जबकि संसार में मृत्यु ही एक मात्र विचार करने योग्य वस्तु है। बाकी सब बेकार की बातें हैं।

मृत्यु की सम्भावनाओं और तैयारी के सन्दर्भ में बराबर उपेक्षा बरतता रहता है मनुष्य। फलत: समय आने पर मरण अविज्ञात रहस्य के रूप में सामने आता है जो भयानक और कष्टदायक होता है। अज्ञात की ओर बढ़ने और विचार करने पर ही महत्व पूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं। तुमको मालूम होना चाहिए शर्मा! पटेल थोड़ा रुक कर दूसरी सिगरेट सुलगाते हुए बोला--इतिहास उन व्यक्तियों और महापुरुषों से भरा है जिन्होंने जन प्रवाह से विपरीत अज्ञात दिशा में बढ़ने का साहस भरा पुरुषार्थ दिखलाया है। मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व को अपनी योग साधनाओं के माध्यम से देख कर आत्मा के अजर-अमर होने की घोषणा की है। इस तथ्य की पुष्टि--जानते हो शर्मा, अब परामनोविज्ञान की नवीन खोजों द्वारा हो रही हैं।

मुझे मर कर पता चला कि मृत्यु न कौतुक है, न कौतूहल जैसी होती है, न कष्ट दायक, जिसे असह्य कहा जा सके। सब कुछ उतनी ही सरलता से सम्पन्न हो जाता है जितना की रात्रि में सोते समय वस्त्रों को उतारना।

एक बात पूछूँ तुमसे।

पूछो! क्या पूछना चाहते हो?

पहले तो तुम ऐसी बातें नहीं करते थे। दार्शनिक कैसे हो गए? ऐसी बातें तो एक अनुभवी दार्शनिक ही करता है।

तुम तो जानते ही हो कि मेरी मृत्यु युद्ध में हुई है। युद्ध में मरने वाला व्यक्ति शरीर छूटने के बाद एक विशिष्ट वातावरण में चला जाता है। मैं उसी विशिष्ट वातावरण में निवास करता हूँ। जिस सत्य और यथार्थ से संसार में रह कर लोग परिचित नहीं हो पाते उस सत्य और यथार्थ से उस वातावरण में रह कर परिचित हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप दार्शनिक हो जाना स्वाभाविक ही है।

उस वातावरण की विशिष्टता क्या है? मेरे यह पूछने पर पटेल ने बतलाया कि वह एक ऐसे लोक का वातावरण हैं जिसमें उन की आत्माएँ निवास करती हैं--जिन्होंने धर्म,

देश, समाज के कल्याण के लिए तथा अनीति, अत्याचार, पापाचार आदि के विरोध में आत्मदाह अथवा शरीर त्याग किया है। प्रकृति के बंधन से मुक्त होने के कारण वहाँ किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं है। शान्ति और आनन्द का साम्राज्य है। सभी प्रसन्न चित्त रहते हैं। लोक इतना सुन्दर और इतना रमणीक है कि तुमको बतला नहीं सकता। जब तक आत्मा शरीर के दायरे में रहती है तब तक उसे अपने स्वरूप और अपनी शक्ति का बोध नहीं होता। मृत्यु एक घटना है। और उस घटना के घटित होते ही शरीर और आत्मा एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। तब आत्मा को अपने स्वरूप का और अपनी शक्ति का बोध होता है। यह सब बात मैं तुमको अपने अनुभव से बतला रहा हूँ शर्मा, समझे न!

जब मुझे गोलियाँ लगीं, उस समय मेरा मन घबराने लगा। दर्द और पीड़ा का खयाल नहीं रहा मुझे। बस उस घबराहट में यही सोचने लगा कि अब नहीं बचूँगा। जीवन के प्रति उत्कट मोह जागृत हो गया मेरे भीतर। कैसे बतलाऊँ मैं तुमको अपनी उस समय की स्थिति को?

फिर क्या हुआ?

होगा क्या? पटेल एक लम्बी साँस लेकर बोला--कुछ ही क्षण बाद ऐसा लगा कि सो रहा हूँ मैं। आँखें झपकने लगीं। और फिर कब सो गया पता नहीं। जैसे सोने का पता नहीं लगता वैसे ही मरने का भी पता नहीं चलता। सोना और मरना दोनों अनजाने में ही घटित होता है। एक निद्रा है तो दूसरा है चिर निद्रा। पहली निद्रा से व्यक्ति इसी संसार में जागता है जबकि दूसरी निद्रा से वह इस संसार से परे अन्य किसी लोक या जगत में जागता है। यही अन्तर है दोनों निद्राओं में। यदि देखा जाए तो मृत्यु सुषुप्ति की ही गहनतम अवस्था है।

जब मैं जागा तो अपने आप को एक नए वातावरण में पाया। वह वातावरण सूक्ष्म जगत का वातावरण था। और जिस शरीर में मैं जागा था वह था सूक्ष्म शरीर। मगर मुझे किसी भी प्रकार का अपने आप में अन्तर अनुभव नहीं हो रहा था। बस यही लगा कि कोई लम्बा सपना देखकर जगा हूँ। जैसे सपने को लोग भूल जाते हैं वैसे ही मरणोपरान्त इस संसार की सारी बातें और सारी घटनाएँ भूल जाता है प्राणी। केवल उन सबके संस्कार और वे स्मृतियाँ रह जाती हैं जो शरीर छोड़ते समय मानस पटल पर उभर आई होती हैं। शरीर से अलग होते समय मुझमें तुम्हारे साथ किए गए वादे की स्मृति जागृत हो गई थी और उसी के साथ तुमसे मिलने की इच्छा भी जागृत हो उठी थी। तुमसे मैंने जो वादा किया था उसे पूरा कर दिया मैंने और अब मैं जाता हूँ। मैंने देखा--अन्तिम शब्द के साथ ही पटेल का स्थूल शरीर विघटित होने लगा धीरे-धीरे और फिर अन्त में कुहरे की शक्ल में बदल गया। फिर एक झटके से तिरोहित हो गया मेरे सामने से। मैं भौंचक्का-सा देखता रहा।

जब वह मर कर जीवित हो उठी

इसके प्रसंग में अब मैं एक ऐसी स्त्री की कथा सुनाऊँगा जिसकी मृत्यु १९५८ में रात दस बजे हो गई थी। प्रातः जब श्मशान में चिता पर रखने के लिए शव को अर्थी से खोला जाने लगा तो सहसा वह स्त्री उठ कर बैठ गई। वह आज भी जीवित है। और उन बारह घंटों में जब वह मृतावस्था में पड़ी थी, उस पर जो कुछ गुजरा था, उसका विस्तृत विवरण ऐसे सुनाती है, जैसे वह कल की ही घटना है।

उसी स्त्री का नाम है राजकुमारी। राजकुमारी का जन्म जबलपुर में हुआ था। उसके पिता का नाम बाँके लाल और पति का नाम था करोड़ी लाल। एक दिन शाम के समय रोज की तरह राजकुमारी ने भोजन बनाया। सबको खिलाकर जब वह स्वयं खाने के लिए बैठी तो उसे कुछ हरारत महसूस हो रही थी। दिल घबरा रहा था। उसने खाना नहीं खाया और खाट पर जाकर लेट गई। थोड़ी देर बाद अचेत हो गई वह। रात के समय उसका पति किसी काम से उसे जगाने आया। कई बार उसने उसका नाम लेकर पुकारा लेकिन कोई जबाब नहीं मिला। उसने करीब आकर राजकुमारी को देखा तो घबरा उठा। राजकुमारी एक टक ऊपर ताक रही थी। उसकी पलकें स्थिर थी। और होंठ खुले हुए थे। उसने राजकुमारी के मुँह में उँगली डालकर देखा तो उसके दाँत बैठ गए थे। फिर उसने उसके मुँहपर पानी का छींटा मारा। राजकुमारी के दाँत नहीं खुले और उसमें कोई हरकत भी नहीं हुई। नाड़ी देखी गई तो वह धीमी गति से चल रही थी।

परिवार के लोग रोने-धोने लगे। पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। सभी आश्चर्य-चकित थे कि अचानक राजकुमारी की मृत्यु कैसे हो गई। अभी तो एक घंटे पहले पूर्ण स्वस्थ थी।

उस समय की अपनी तत्कालीन दशा के बारे में राजकुमारी ने बतलाया कि मेरी हालत विचित्र थी। मैं सब कुछ देख सुन रही थी। पर मेरे कंठ से न बोल फूट रहा था और न तो मैं हाथ पैर हिला पा रही थी। मैं लोगों को कैसे बताती कि मैं जिन्दा थी। घर परिवार के सब लोग रो रहे थे। वे लोग समझते थे कि मैं मर गई थी। वे लोग मेरे अन्तिम संस्कार की बात कर रहे थे। और मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं कैसे बतलाऊँ कि मैं अभी मरी नहीं थी।

इसी तरह काफी देर तक चलता रहा। फिर अचानक चार अजीब मानव आकृतियों ने न जाने कहाँ से आकर मुझे घेर लिया। उनकी आकृति मानवों की तरह थी। लेकिन उनकी नाँक बालिश्त भर लम्बी और चोंच नुमा थी और उनकी आँखें अंगारों की तरह धधक रही थी। उनका शरीर नंगा था। सिर्फ कमर में जांघिया नुमा कोई कपड़ा था। उनका रंग लाल था। सिर काफी बड़ा और गोल था। उनके हाथ जमीन तक लम्बे थे। उन्हें देख कर मेरी घिग्घी बँध गई। लेकिन न मैं चिल्ला पा रही थी और न रो ही पा रही

थी। फिर उन्होंने अपने हाथों पर मुझे उठा लिया। मेरी बची खुची चेतना भी गायब हो गई। वे मुझे उठाए हुए हवा में उड़ने लगे। मैं चाहती थी कि उनकी पकड़ से किसी तरह मुक्त हो जाऊँ। लेकिन मैं हाथ पैर भी हिला नहीं पा रही थी। उन चारों की चोंच नुमा नाकें मेरे बदन पर गड़ी हुई थी। जिससे मुझे बहुत पीड़ा हो रही थी।

काफी देर तक उड़ने के बाद उन चारों ने मुझे एक दरबार में ले जाकर खड़ा कर दिया। वहाँ एक सुन्दर सिंहासन पर सफेद दाढ़ी वाला एक वृद्ध बैठा था। उसने मुझे देखते ही कहा इसका समय अभी नहीं आया है। इसे वापस ले जाओ। इसके पड़ोस मे एक पानबाई नाम की औरत है। उसे ले आओ। वे चारों मुझे उठाकर दरबार से बाहर आए। तभी मुझे भूख लग आई। तो मैंने उनसे खाना माँगा। तब वे मुझे एक ओर ले गए। जहाँ अनाजों, व्यंजनों और सिक्कों के अलग-अलग ढेर लगे थे। उन्होंने पहले कच्चा अनाज खाने को मुझसे कहा। जब मैंने इन्कार किया तो उन्होंने बतलाया तुम ने धरती पर जो दान किया था वही तुमको यहाँ मिलेगा अनाज और सिक्का तुमने दान किया है। अगर अनाज न खा सको तो सिक्के खाओ। पास ही विविध प्रकार के व्यञ्जन रखे थे। मैं ललचाई नजरों से उन्हें देख रही थी। और सोच रही थी कि अगर पका खाना दिया होता दान में तो अवश्य इस समय मुझे ये व्यञ्जन खाने को दिए जाते।

फिर वे मुझे वहाँ से उड़ाकर एक पहाड़ पर ले गए और वहाँ मुझे छोड़ दिया। वहाँ काफी अँधेरा था। मैं अँधेरे में धीरे-धीरे अकेले ही आगे बढ़ने लगी। लेकिन थोड़ी दूर जाने के बाद मेरा सिर चकराने लगा और मैं बेहोश हो कर गिर पड़ी। जब मुझे होश आया तो देखा मैं श्मशान में अर्थी पर पड़ी थी और लोग मुझे चिता पर ले जाने के लिए अर्थी के बंधन खोल रहे थे। अब मुझे लगा कि मेरे शरीर में ताकत आ गई थी और मैं उठकर बैठ गई। मैं परलोक से वापस आ गयी थी। इसमे सन्देह नहीं। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि कुछ लोग एक अन्य अर्थी लिए श्मशान पर चले आ रहे थे। पूछने पर पता चला कि वह पान बाई की अर्थी थी। खैर जैसाकि बतलाया गया है राजकुमारी अभी भी जीवित है। उसकी दो सन्तानें हैं। एक लड़की शकुन्तला और एक लड़का राजू। शकुन्तला जबलपुर के चंचला बाई महा विद्यालय में ग्यारहवीं कक्षा की छात्रा है और राजू भी गन फैक्टरी में काम करता है।

क्या वह यमलोक था?

उपर्युक्त उद्धरणों से परलोक विज्ञान कई रहस्यमय तथ्यों पर प्रकाश डालता है, इसमें सन्देह नहीं। स्पैरो और पटेल का विवरण अस्पष्ट होते हुए भी मरणोत्तर जीवन का ही नहीं एक ऐसे लोक का प्रतिपादन करता है जहाँ स्थूल शरीर की सारी मर्यादाएँ समाप्त हो जाती हैं। मृत्यु को जीवन की अन्तिम घटना मानकर उसके स्वागत की पूर्व तैयारी की जाती रहे और उसके साथ सुखद प्रयोगों के लिए आवश्यक साधन जुटाने में तत्परता बरती जाए तो मरण वैसा ही आनन्द दायक और उत्साह वर्धक होगा जैसे सुरम्य और रमणीक स्थानों के लिए नियोजित पर्यटन।

मेरे एक परिचित थे। नाम था राम स्वरूप चतुर्वेदी। चतुर्वेदी जी पिछले ४-५ सालों से क्षय रोग से पीड़ित थे। उस जमाने मे क्षयरोग असाध्य माना जाता था। अपने सामर्थ्य वश चतुर्वेदी जी ने अपने इलाज में कोई कोर-कसर रहने न दी थी। मगर एक दिन खाँसते-खाँसते दम तोड़ दिया। मृत्यु के समय उन्हें खून की ढेर सारी उल्टियाँ हुई थीं। उस समय मैं भी वहीं उपस्थित था। रात अधिक हो चुकी थी। इसलिये शव दाह सबेरे होना निश्चित हुआ। अत: हम सभी लोग प्रात: काल का इन्तजार करने लगे। सबेरा हुआ। परिवार के लोग शव यात्रा की तैयारी करने लगे। परम्परा के अनुसार पहले शव को नहलाया जाने लगा। उसी समय अविश्वसनीय चमत्कार हुआ। चतुर्वेदी जी की साँस अचानक चलने लगी। सभी लोग आश्चर्य चकित रह गए। डाक्टर बुलाया गया। डाक्टर ने चेकअप कर बतलाया कि जीवन के लक्षण धीरे-धीरे प्रकट हो रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं चतुर्वेदी जी ने कुछ ही क्षणों के बाद आँखें खोली और विस्मय से चारों तरफ देखने लगे और जब उनको यह मालूम हुआ कि वे आठ घण्टा पूर्व मर गए थे और उनकी अन्तयेष्टि की तैयारी की जा रही थी तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। इस घटना के लगभग तीन साल बाद उनकी मृत्यु हुई थी। खैर.....

निशा के बाद मेरे जीवन में यह दूसरी अलौकिक घटना थी। मेरे यह पूछने पर कि आपको मृत्योपरान्त क्या अनुभव हुआ था? इसके उत्तर में चतुर्वेदी जी ने जो कुछ बतलाया वह निस्संदेह कौतूहल पूर्ण और आश्चर्यजनक था। चतुर्वेदी जी ने बतलाया कि जब मुझे खून की उल्टियाँ हो रही थी उस समय मैं पूर्ण चैतन्य था। लेकिन अचानक मेरी साँस बन्द हो गई और उसी के साथ मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

फिर क्या हुआ?

मुझे कुछ पता नहीं। कुछ सोचते हुए चतुर्वेदी जी कहने लगे जब होश आया तो देखा खाट पर मेरा शरीर निश्चेष्ट पड़ा है और मेरे परिवार के लोग मेरी खाट के चारों ओर बैठे हुए हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि आखिर बात क्या है? तभी दो व्यक्ति आए और मुझसे कहने लगे--चलो हमारे साथ, यहाँ अब तुम्हारा कोई काम नही है।

वे दोनों आदमी कैसे थे?

दोनों समान रूप-रंग और आकार-प्रकार के थे। उनके चेहरे पर शान्ति और आँखों में तेज था। काफी लम्बे थे दोनों। मैं बिना कोई प्रतिवाद किए उनके साथ चलने लगा। वे मुझे कहाँ ले जा रहे थे, मेरी समझ में नही आया। काफी दूर जाने के बाद मुझे सामने एक बहुत बड़ा पुराना किला दिखलाई दिया। किले के विशाल फाटक पर काफी भीड़ थी। मगर भीड़ में कोई किसी से बोल नहीं रहा था सभी खामोश और मौन थे। सहसा मेरी नजर नरोत्तम पाण्डेय पर पड़ी।

कौन नरोत्तम पाण्डेय?

मेरा पट्टीदार था। कुछ दिन पहले जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी उसने। मैंने पूछा-'करे नरोत्तमवा तू यहाँ कैसे आ गइले? तैं त जहर खाकर के मर गयल रहले?' --चच्चा! ई बात गलत हौ, नरोत्तम दुखी स्वर मे बोला--हम कहाँ अपने से जहर खईली। हमार मेहररुआ दूधे में जहर मिलाय के दे देले रहल। तबसे यहीं खड़ा बाटी। इतना कह कर नरोत्तम रोने लगा।

थोड़ी देर बाद किले का बन्द दरवाजा अपने आप खुल गया। भीड़ भीतर जाने लगी। मैं और नरोत्तम भी भीड़ के साथ भीतर चले गए। वे दोनों आदमी अभी भी मेरे साथ थे। भीतर काफी लम्बा चौड़ा मैदान था जो चारों ओर से घिरा था। मैदान में दो तरफ जेल के बैरकों की तरह बैरक बने थे और हर बैरक का अपना-अपना फाटक था। जिनके ऊपर कुछ लिखा था। जिसे पढ़ न सका मैं। भीड़ अब लम्बी कतारों में बदल गई थी। मै नरोत्तम भी एक कतार में जाकर खड़े हो गए। एक पहलवान जैसा आदमी एक ऊँचे मंच पर खड़ा हो कर जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा--सुनो! ध्यान से सुनो! जिन लोगों ने जहर खाकर, फाँसी लगाकर ऊपर से कूद कर और पानी मे डूबकर आत्म-हत्या की है वे लोग फलाँ बैरक में चले जाएँ। जिन लोगों की किसी कारण वश हत्या हुई है--वे लोग फलाँ बैरक में चले जाएँ। और जो लोग किसी रोग में मरे है--वे लोग फलाँ बैरक में चले जाएँ। मैंने देखा कतारों से निकल-निकल कर लोग अपने-अपने बैरक में जा रहे थे। रोग से मरने वाले लोगों के साथ मैं भी अपने बैरक में चला गया। मेरे बैरक में तरह-तरह के रोगी भरे हुए थे। अपने-अपने भयानक रोगों और अपनी असाध्य बीमारियों की असहनीय पीड़ा से सभी रोगी कराह रहे थे, रो रहे थे, चिल्ला रहे थे। वातावरण में दवा की गंध फैल रही थी, जिसमें मल-मूत्र की भी दुर्गन्ध शामिल थी। यही हालत अन्य बैरकों की भी थी। विभिन्न तरीके से आत्महत्या कर मरने वाले लोग भी असहनीय पीड़ा से कराह रहे थे।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जिस किसी कारण से मरते समय जो कष्ट पीड़ा और वेदना हुई होती है वह मरने के बाद स्थाई हो जाती है। मैं जब अपने बैरक में गया तो दूसरे लोगों की तरह मैं भी रोने कलपने लगा। तभी वे दोनों व्यक्ति मेरे पास आए और बोले तुम जाओ। फिर आना। उनका इतना कहना था कि मुझे गरमी लगने लगी और मैंने आँखें खोल दी। अन्त में चतुर्वेदी जी बोले--अब वह सब सपना सा लगता है। लेकिन इस बात का मैंने अवश्य पता लगाया कि क्या सचमुच नरोत्तम को जहर दिया गया था? बात सच निकली। उसकी औरत ने ही जहर दिया था दूध में अपने प्रेमी के कारण। इससे यही साबित होता है कि वह सब सपना नहीं यथार्थ था। इतना कह कर चतुर्वेदी जी शून्य में देखने लगे आकाश की ओर नजर उठा कर।

इस उद्धरण से दो बातों की पुष्टि होती है। पहली यह कि यमलोक का अस्तित्व कहीं न कहीं अवश्य है और दूसरी बात यह कि मरने के बाद प्राणी के सामने जीवन का सारा रहस्य और सारा झूठ-सच खुल जाता है। उससे कुछ भी छिपा नहीं रहता।

मरने के बाद भी सब कुछ पूर्ववत्

चतुर्वेदी जी ने जो कुछ बतलाया था उससे इस तथ्यपर प्रकाश पड़ता है कि मृत्यु के समय जो शारीरिक स्थिति रहती है और जो कष्ट वेदना और पीड़ा रहती है मरने के बाद वह स्थाई हो जाती है। उसकी यातना बराबर आत्मा भोगती रहती है। शायद इसी को नर्क यातना कहते हैं। आतमहत्या करने वाला व्यक्ति प्राण निकलते समय जिस पीड़ा और कष्ट का अनुभव करता है। वह शरीर छूटने के बाद समाप्त नहीं हो जाती। बल्कि और अधिक बढ़ कर तब तक बनी रहती है जब तक उसका संस्कार समाप्त नहीं हो जाता। संस्कार के अनुसार कोई-कोई बीमारी, रोग अथवा व्याधि कई जन्मों में जाकर समाप्त होती है। लगभग यही अवस्था उन लोगों की भी हुआ करती है जो आत्महत्या करते हैं अथवा जिनकी हत्या होती है। फाँसी से मरने वाला व्यक्ति अगले जन्म में गूँगा और जहर खाकर मरने वाला व्यक्ति अगले जन्म में चर्म रोगी होता है। इसी प्रकार अस्त्र-शस्त्र से मरने वाला व्यक्ति अपंग या लूला लँगड़ा होता है अगले जन्म में। इस प्रकार मरने वाला व्यक्ति यदि यह समझ ले कि मरने के बाद उसकी सारी समस्याओं का अन्त हो जाएगा और सारे कष्टों का भी निवारण हो जाएगा तो यह उसका भ्रम है। शरीर छोड़ने के बाद आत्मा रोग, व्याधि आदि के संस्कार को भी अन्य संस्कारों की तरह अपने में समेट कर ले जाती है। इसलिए शरीर से अलग होते ही रोग, जन्म, कष्ट, पीड़ा आदि की मात्रा बढ़कर स्थाई हो जाती है। सम्भवत: वही सब नर्क यातना हो जिनका वर्णन हमारे शास्त्रों में किया गया है। निस्संदेह मरने के बाद भी मनुष्य को भौतिक कष्टों से मुक्ति नहीं मिलती, बराबर बना रहता है वह।

अब मैं दो ऐसे व्यक्तियों का विवरण प्रस्तुत करूँगा जिन्होंने यम लोक देखा था और पुनर्जीवित हुए थे। दोनों घटनाएँ फर्रुखाबाद जिले की हैं। अहरौरा गाँव का निवासी पुत्तू काछी काम पर से थका माँदा घर लौटा और चारपायी पर लेट गया और लेटते ही उसने देखा कि उसके सामने काले रंग के आदमी खड़े हैं और उससे चलने को कह रहे हैं। वह उनके साथ-साथ चलने लगा। काफी देर चलने के बाद वह एक विचित्र स्थान पर पहुँचा। वह स्थान काफी सुन्दर था। वैसा स्थान उसने कभी नहीं देखा था। वहाँ एक बहुत बड़ा भवन था। उसका फाटक सुनहला था। उस फाटक के पास उसने अपने गाँव के राधे चमार को देखा जो कुछ दिन पहले मर गया था। भीतर एक चौकी पर एक बाबाजी बैठे थे उसे देखकर उन्होंने एक पुस्तक खोली। खोलते ही उन्होंने दोनों काले आदमियों को डाँटा था और कहा था इसे क्यों ले आए? उसी गाँव का यह पुत्तु नहीं मोहन सिंह है। उसने वहाँ अपने गाँव के कालिका प्रसाद मिश्रा को देखा। उसने उनको प्रणाम किया। उन्होंने उसे आशीर्वाद तो दिया लेकिन उससे कुछ बातें नहीं की। वे भी एक साल पहले मर चुके थे। बाबाजी के कहने पर उन दोनों ने उसे ढकेल दिया और वह यहाँ चला आया। उसे वह स्थान अच्छा लगा था। जीवित होने पर उसने अपनी पत्नी से

कहा कि जरा पता लगाओ कि कोई गाँव में रो रहा है या नहीं। थोड़ी देर बाद पत्नी ने आकर बतलाया कि रामचरन के घर मोहन सिंह मर गया है। रामचरन का लड़का मोहन काफी दिनों से बीमार था। उसकी आयु आठ साल की थी।

दूसरी घटना भी फर्रुखाबाद जिले के अतर्रा गाँव की ही है। गयादीन उसी गाँव का निवासी था। आयु साठ वर्ष थी। एक दिन खाट पर लेटे लेटे ही मर गया वह। उस का एक लड़का तो कफन लेने बाजार गया और दूसरा लड़का अपने मौसा को बुलाने दूसरे गाँव गया। जब दोनों वापस लौटे तो देखा कि पहले जो शरीर बर्फ की तरह ठंडा हो गया था उसमें अब थोड़ी गरमी आ गई थी। फिर धीरे-धीरे नाड़ी भी चलने लगी थी। लोगों ने रोना बन्द कर दिया। सभी लोग शव के पास पहुँच गये। गयादीन तब तक हाँथ पैर हिलाने लगा था और उसका मुँह भी खुल गया था। वह कुछ बोलना चाहता था मगर बोल नहीं पा रहा था। उसके मुँह पर पानी छिड़का गया और उसे उठा कर बिठाया गया। उसने माँग कर पानी पिया। उसके बाद वह अपना मरणोपरान्त अनुभव सुनाने लगा।

गयादीन को भी दो काले आदमी पकड़ कर ले गए थे। पहले तो उन दोनों नें उसे गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे खड़ा कर दिया। वहाँ से फिर उसे एक ऐसे स्थान पर ले गए जो अति सुन्दर था। वहाँ एक सेमर का पेड़ था। उस पेड़ में दो आदमियों को बाँध कर मारा जा रहा था। थोड़ी देर बाद वहाँ एक बाबाजी आए। मुझे देख कर वे बोले इसे क्यों ले आए? गयादीन चमार को ले आओ। उन दोनों ने मुझे फेंक दिया और मै यहाँ चला आया।

जानकारी करने पर पता चला कि उसी गाँव का गयादीन चमार भैंस चराकर घर आया और खाट पर लेट गया। उसके शरीर में उस समय पीड़ा हो रही थी। लेटे ही लेटे उसका एकाएक प्राणान्त हो गया। जब उसके परिवार के लोग रोने लगे तो गयादीन की बात को लोग सही मानने लगे। काफी समय तक गयादीन जीवित रहा।

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि जिस यमलोक और यम दूतों की चर्चा पुराणों में की गई है उनका अस्तित्व अन्तरिक्ष में कहीं न कहीं अवश्य है और उनके भी अपने सिद्धान्त हैं। कभी कदा किसी अज्ञात कारणवश यमलोक के कर्मचारियों से भूल हो जाती है जिससे वे किसी की जगह किसी और को ले जाते हैं।

मृत्यु के समय परानुभव

यह तो निश्चित है कि मर कर वापस लौटने वाले लोगों की पूर्ण रूप से मृत्यु नहीं हुई होती है। वे जीवन और मृत्यु के बीच की स्थिति में रहते हैं। भले ही उनकी श्वास की गति समाप्त हो गई हो। यह निर्विवाद है कि मरणासन्न लोगों को किसी प्रकार अपनी मृत्यु का आभास लग ही जाता है। मरणासन्न व्यक्ति जिस धर्म संस्कार और विचार का होता है--उन्हीं से मिलती जुलती मृतात्माएँ उसे मृत्यु के क्षणों मे घेर लिया करती हैं।

सम्भवत: उन्हीं को देख कर मरणासन्न व्यक्ति यह कल्पना कर लेता है कि वे लोग यम के दूत है। जो उसे लेने आए हैं। अब मैं परानुभव का एक उदाहरण यहाँ दूँगा। वह एक अंग्रेज युवक था नाम था काल्टन। उसे क्षयरोग था। जीवन की अन्तिम श्वास गिन रहा था वह। उसे श्वास लेने मे कष्ट हो रहा था। उसने अपने निकट बैठे लोगों से प्रार्थना करने के लिए अनुरोध किया। प्रार्थना की जाने लगी। जिससे काल्टन की आत्मा को शान्ति मिली। उसके कमरे के बगल से एक सीढ़ी गई थी। जिसपर एक गिलास रखा था। काल्टन ने बिस्तर पर पड़े-पड़े अचानक सीढ़ी की तरफ इशारा कर कहा–वह देखो! सीढ़ी से उतर कर कोई देव पुरुष मुझे अपने साथ ले जाने के लिए आ रहा है। वह देखो, सीढ़ी पर रखा गिलास टूट गया है। लोगों ने आश्चर्य चकित हो कर देखा सचमुच गिलास टूट गया था बिना गिरे। लोगों नें सीढ़ी पर न कोई आकृति देखी और न तो गिलास को गिरते हुए देखा। गिलास अपने आप जैसे टूट गया था। अपने आप उसके काँच भी बिखर गए थे। गिलास के इस प्रकार टूटते ही काल्टन के चेहरे पर शान्ति छा गई। वह शरीर और संसार को छोड़ कर हमेशा के लिए चला गया था। सम्भवत: उसी देव पुरुष के साथ। मृत्यु के बाद काल्टन के चेहरे पर छायी शान्ति और सौम्यता इस बात की सूचक थी कि उसने मृत्यु का सहर्ष वरण किया था।

मृत्यु का भय

सभी लोग चाहे वे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय और जाति के क्यों न हों मृत्यु से भयभीत होते हैं। मरणासन्न अवस्था पें मृत्यु के संकेत मात्र से भयभीत हो उठते हैं वे। और भयभीत होकर मृत्यु से संघर्ष करने लग जाते हैं। वास्तव में वही संघर्ष मृत्यु की अवस्था को कष्ट कारक बना देता है। कभी कभी तो लोगों को उस संघर्ष के फलस्वरूप काफी लम्बे समय तक कष्ट भोगना पड़ जाता है। उस कष्ट से बचने का एक मात्र उपाय है धार्मिक ग्रन्थों का पाठ या भगवान के नाम का जप या कीर्तन।

यदि देखा जाए तो मृत्यु का भय सन्त महात्माओं और दार्शनिकों को भी होता है। उदाहरण के रूप में जैसे मैं अपने एक मित्र को देखने गया था। मित्र का नाम था स्वामी चन्द्रेश्वरानन्द। स्वामी जी विद्वान तो थे ही साथ-साथ आध्यात्मिक प्रवृत्ति के भी थे। पूरा जीवन त्याग, तपस्या और चिंतन मनन में बीता था उनका। अस्वस्थ थे। मृत्यु आसन्न थी। धीरे-धीरे बाह्य चेतना लुप्त हो गई उनकी। मृत्यु के पूर्व की मूर्च्छा थी। लेकिन स्वामी जी अचानक चिहुँक कर उठ बैठे। कम्पित स्वर में बोले–देखो यमदूत मुझे लेने आ रहे हैं। मुझे तुम लोग कहीं छिपा दो ताकि वे मुझे ले न जा सकें। मुझे उनसे भय लग रहा है। मैं अभी मरना नहीं चाहता। मुझे बचा लो। इतना कहने के बाद स्वामी बिस्तर पर लुढ़क गए और उनका प्राणान्त हो गया। उनका प्राणान्त होते ही सामने पीपल के पेड़ पर बैठे बहुत सारे कौवे एक साथ काँव-काँव करते हुए उड़ गए।

ये दोनों विवरण शरीर विज्ञान द्वारा मृत्यु को पारिभाषित करने के इस प्रयास पर एक प्रश्न चिन्ह लगाते हैं कि, हृदय में रक्त का संचालन प्राणों के द्वारा होता है। प्राणों में

शिथिलता आने पर उक्त रक्त संचालन क्रिया में भी शिथिलता आने लगती है। अन्त में जब हृदय वहाँ नाड़ियों में रक्त प्रवाहित करना बन्द कर देता है तो मस्तिष्क को पोषण मिलना बन्द हो जाता है और उसका तीव्र गति से क्षय होने लग जाता है और उसी के साथ व्यक्ति का अस्तित्व भी समाप्त होने लग जाता है।

मृत्यु के समय गिलास का टूटना और कौवों का एक साथ काँव-काँव कर उड़ जाना मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। वास्तव में मृत्यु के पूर्व की ये अनुभूतियाँ मृत्यु की परिकल्पनाओं को और अधिक रहस्यमय बना देती हैं। इस प्रकार की घटना अपने देश की हो या विदेश की, मृत्यु के समय का अनुभव प्राय: समान रूप से होता है। इसका एक मात्र कारण है अवचेतन मन पर पड़ा धार्मिक और वैचारिक प्रभाव। खोज काल मे तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत देश अमरीका से भी मुझे कुछ ऐसे ही विवरण प्राप्त हुए थे।

जब वह मरने के बाद अपनी माँ से मिली

मुझे कुछ ऐसी भी घटनाओं का विवरण उपलब्ध हुआ है जिससे यह सिद्ध होता है कि अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर मरने वाला व्यक्ति शरीर छोड़ने के बाद अपने किसी संबंधी या मित्र से मिला और बातें की। इसी प्रकार की मैं एक अति महत्वपूर्ण घटना का विवरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अमरीका के इदाहो शहर में १२ अप्रैल १९७५ के प्रात: मार्था नामक एक महिला को अचानक दिल का दौरा पड़ा। उसे अस्पताल पहुँचाया गया। डाक्टरों ने उसकी जाँच कर मृत घोषित कर दिया उसे। मगर डाक्टरों ने अपना प्रयास जारी रखा। मार्था को आक्सीजन दिया जाने लगा और पुन: जीवित करने के लिए उसके हृदय की मालिश की जाने लगी। इन सारे प्रयासों को मार्था मरने के बावजूद भी एक स्थान से बराबर देख रही थी। उसे अपनी मृत्यु का दु:ख नहीं था। केवल उसे एक चिन्ता थी कि माँ को उसकी मृत्यु का समाचार मिलेगा तो वह कितनी दुखी होगी। वह चाहती थी कि समाचार मिलने के पहले ही माँ को वह सान्त्वना दे दे। माँ का ख्याल आते ही सैकड़ों मील दूर कर्मोट शहर के अपने मकान में कुर्सी पर बैठी उसकी माँ की आकृति उपस्थित हो गई। पुनर्जीवित होने पर मार्था ने बतलाया कि मैं एक साथ अस्पताल में भी थी और माँ के मकान में भी। बड़ा ही अद्‌भुत अनुभव था वह। एक दूसरे से काफी दूर दो स्थानों पर एक साथ उपस्थिति का एहसास।

मार्था ने अपनी माँ से कहा--माँ! मुझे दिल का दौरा पड़ा है। अगर मैं मर जाऊँ तो दुखी मत होना। लेकिन माँ ने मेरी ओर देखा तक नहीं। शायद उसने मेरी बात भी नहीं सुनी। मैं इसी उधेड़-बुन में थी कि किस प्रकार अपनी बात माँ को बतलाऊँ। अचानक जैसे सब कुछ लुप्त हो गया! और मैं अस्पताल में थी और वह होश में आ गई थी। अपने

सामने अपने भाई को खड़ा देख कर उस आश्चर्य हुआ। उसका भाई न्यूयार्क में रहता था। माँ ने फोन पर उससे कहा था कि वह शीघ्र मार्था को देखने जाए। मार्था की माँ ने भी बतलाया कि उसे ऐसा लगा था कि मार्था के साथ अवश्य कुछ घटा है पर क्या घटा है और उसका एहसास उसे कैसे हुआ? इस संबंध मे वह कुछ न बतला सकी।

इस विवरण से परलोक विज्ञान के दो महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। पहला यह कि मरणासन्न अवस्था में अथवा मरणोपरान्त आत्मा अपने निकट के लोगों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करती है और अपना सन्देश देने का प्रयास करती है और वह सन्देश विचारों और भावों में प्रकट होता है।

दूसरा यह कि आत्मा के लिए स्थान और काल बाधक नहीं है। वह एक ही समय में कई स्थानों में उपस्थित रह सकती है।

आत्मा के लिए समय और स्थान बाधक नहीं !

इस विषय पर विस्तार से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि, आत्मा जिसे चेतना भी कहते हैं--सूक्ष्मतम् तत्व है। उसके लिए समय और स्थान अपना कोई महत्व नहीं रखता। इसका कारण अतिशय महत्व का है। वह यह कि आकाश में सर्वत्र समान रूप से एक विशेष प्रकार की सूक्ष्मतम वायु जिसे 'ईथर' कहा जाता है, विद्यमान है। जिसमें प्रवेश की गई ध्वनि अथवा प्रवेश किए गए शब्द के लिए समय और स्थान बाधक सिद्ध नहीं होते। वायरलेस, टेलीवीजन, रेडियो आदि इसके उदाहरण है। इसी प्रकार आत्मा भी उस सूक्ष्मतम वायु, जिसे योगी गण सूक्ष्म प्राण कहते हैं, से संयुक्त होकर समय और स्थान से शून्य हो जाती है और ऐसी स्थिति में वह एक ही समय में कई स्थानों का दृश्य देख सकती है। हजारों मील की दूरी एक सेकेण्ड के सौंवे हिस्से में तय कर सकती है। अपने भावों और विचारों को अपने संबंधी के मस्तिष्क में प्रकट कर सकती है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। यहाँ तक कि किसी भी व्यक्ति की मति गति और विचारों को तत्काल समझ सकती है।

शरीर से अलग होते ही आत्मा को सूक्ष्मतम वायु अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। जिसके कारण मृत व्यक्ति को हल्कापन का अनुभव होता है और उसे यह लगता है कि वह जैसे हवा में तैर रहा है।

तीन प्रकार की मूर्च्छा

आगे के विषय को समझने के लिए सर्व प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि मूर्च्छा तीन प्रकार की होती है, शारीरिक मूर्च्छा, मानसिक मूर्च्छा और आत्मिक मूर्च्छा। तीसरे प्रकार की मूर्च्छा को मृत्यु की मूर्च्छा कहते है। क्योंकि इसी मूर्च्छा की अवस्था में आत्मा से शरीर का संबंध टूटता है। प्राय: व्यक्ति आत्मिक मूर्च्छा की अवस्था में ही शरीर का त्याग करता है। जैसे सोते समय व्यक्ति को यह नहीं मालूम पड़ता है कि कब वह सो

गया। उसी प्रकार वह कब मर गया उसे इसका ज्ञान नहीं होता। सोना और मरना दोनों अनजाने में अथवा अज्ञान में घटित होता है। संयोग-वश मृत्यु के समय बाह्य चेतना पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुई है तो वह व्यक्ति मार्था की तरह अपने मृत शरीर को, अपने परिवार और भौतिक वस्तुओं को देखता है। बातें करने का प्रयास करता है और अपना सन्देश देने का भी प्रयत्न करता है। लेकिन सफलता नहीं मिलती। इसका कारण क्या है?

परामनोविज्ञान के विशेषज्ञों के अनुसार इसका एक मात्र कारण है--सूक्ष्मतम वायु यानी 'ईथर'! वैसे तो 'ईथर' विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है लेकिन उसकी सर्वाधिक मात्रा उस स्थान पर होती है जहाँ स्थूल वायु का पूर्णतया अभाव होता है। मतलब कि जहाँ वायु शून्य होती है।

आत्मिक मूर्च्छा से जागने पर

परामनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मृतात्माओं का अपना स्वतंत्र लोक है। वह लोक अनजाना और अनदेखा तो अवश्य है लेकिन परामनोवैज्ञानिकों के अनुसार उसका अस्तित्व भूलोक यानि पृथ्वी के समानान्तर ही है। जिसका बोध मानव जाति को प्रागैतिहासिक काल से रहा है। संसार के प्राय: सभी धर्मग्रन्थों में उस अनजाने और अनदेखे लोक का किसी न किसी नाम से वर्णन मिलता है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में उसे वासना लोक और सूक्ष्मलोक कहा गया है। जिनमें वासना शरीर धारी और सूक्ष्म शरीर धारी मृतात्माएँ निवास करती हैं।

शारीरिक और मानसिक मूर्च्छा के भंग होने पर तो व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध स्थूल शरीर और स्थूल जगत में करता है, लेकिन आत्मिक-मूर्च्छा के भंग होने पर वह अपने अस्तित्व का बोध वासना शरीर व (जिसे प्रेत योनि भी कहते हैं) वासना जगत अथवा सूक्ष्म शरीर व सूक्ष्म जगत में करता है। एक प्रकार से इस लोक में उसकी मृत्यु होती है और दूसरे लोक में उसका जन्म होता है। वह अपने आपको सर्वथा एक नए वातावरण और एक नई अवस्था में पाता है। लेकिन इन सबके बावजूद भी समानान्तर लोक में होने के कारण उसे भौतिक जगत का बराबर बोध बना रहता है और उसी बोध के फल स्वरूप ही मृतात्माएँ भौतिक जगत से संबंध स्थापित करने की चेष्टा करती रहती हैं। अपने निकट के संबंधियों से सम्पर्क स्थापित करने का बराबर प्रयत्न करती रहती हैं और बराबर प्रयास करती रहती हैं अपना संदेश देने का। इस चेष्टा, इस सम्पर्क और इस प्रयास का एक मात्र उद्देश्य होता है--अपनी स्थितियों व समस्याओं के अतिरिक्त अपने विचारों, भावों और अनुभवों से अवगत कराना। जिसका वैज्ञानिक प्रमाण भी उपलब्ध हो चुका है।

ध्वनि तरंगे और विचार तरंगे

जैसा कि बतलाया गया है कि परामनोविज्ञान के विशेषज्ञ मृतात्माओं को आवाजों और संदेशों को हम तक न पहुँचने का कारण ईथर की रुकावट मानते है। एक सीमा तक

इस तथ्य को स्वीकार किया जा सकता है। लेकिन इस वैज्ञानिक तथ्य को भी न भूलना चाहिए कि ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु में सिहरन अथवा कम्पन के गुण विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण गतिशील है। हर पल के बाद हर कण, हर वस्तु का स्वभाव और स्वरूप बदल जाता है। यहाँ तक कि हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका प्रत्येक क्षण बदल रही है। पुरानी कोशिकाएँ मर जाती हैं और नई कोशिकाएँ उनका स्थान ले लेती हैं। यही हाल हमारे विचारों का भी है। आप दूर बोध या परामनोविज्ञान में विश्वास करें या न करें। लेकिन यह सत्य है कि हर क्षण आप पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे के विचारों का प्रभाव पड़ रहा है। हम इन विचारों के प्रभावों को पूर्व बोध या संयोग कह कर टाल देते हैं पर वास्तविकता यह है कि ब्रह्माण्ड कारण और परिणाम के नियमानुसार चल रहा है और बिना किसी कारण के कोई परिणाम नहीं होता।

अवरोधक 'ईथर' नहीं अवचेतन 'मन'

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर सूक्ष्मतम वायु का विस्तार है। जबकि उसके भीतर सूक्ष्मतम और स्थूलतम दोनों प्रकार के वायु का असीम सागर है। जिसमें भौतिक जगत की विचार तरंगे तो हैं ही उनके प्रति रिक्त अभौतिक जगत की भी विचार तरंगे विद्यमान हैं। ये दोनों प्रकार की विचार तरंगे हमारे मस्तिष्क को बराबर प्रभावित करती रहती हैं। यदि प्रकृति ने हमारे चेतन मन को ऐसे विचारों का रोधी न बनाया होता तो हम इन विचार तरंगो के सतत् आक्रमण से हमेशा अशान्त उद्विग्न और अस्थिर रहते। जिसके फलस्वरूप जीवन जीने योग्य न रहता। जैसे रेडियो और टेलीवीजन के निष्क्रिय होने पर भी उन्हें सक्रिय करने वाली अदृश्य तरंगे उनके चारों ओर मडराँती रहती है उसी प्रकार अवचेतन मन के रोध के बावजूद भी हमारे चारों तरफ के वातावरण में भौतिक और अभौतिक जगत की विचार तरंगे बराबर चक्कर काटती रहती हैं। जैसे ध्वनि तरंगो के कम्पन होते हैं वैसे ही विचार तरंगो के भी अपने विशिष्ट कम्पन हैं और उन कम्पनों के आधार पर विचार शक्ति की गति के तीन मुख्य स्तर हैं।

विचारशक्ति और उसकी गति के तीन स्तर

विचार की अपनी स्वशक्ति है जिसमें इच्छाशक्ति और मन:शक्ति के अतिरिक्त संकल्प शक्ति का भी मिश्रण होता है। मन:शक्ति और संकल्प शक्ति जितनी दृढ़ होगी, उतनी ही विचारशक्ति में गति होगी। वैसे हम विचार शक्ति के विषय में विस्तार से आगे बतलाएँगे। यहाँ केवल इतना ही बतला देना आवश्यक है कि एक मात्र विचार शक्ति ही ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा हम अन्तर-जगत से संबंध स्थापित कर सकने में समर्थ होते हैं। वास्तव में विचार शक्ति ही अन्तर-जगत और बाह्य जगत को एक दूसरे से मिलाती है। उसी के आधार पर दोनों जगत में तादात्म्य स्थापित होता है।

विचार शक्ति की गति को कोई भी पदार्थ या वस्तु रोक नहीं सकती। केवल सूर्य का प्रकाश उसके कम्पनों को बिखेर दिया करता है। इसी कारण हमारे धर्मग्रन्थों में उषा काल, प्रदोष काल और रात्रि के मध्य काल में योगाभ्यास, ध्यान, जप आदि करना

बतलाया गया है। क्योंकि उस समय विचार कम्पनों के बिखरने की सम्भावना नहीं रहती और वह थोड़े प्रयास से एकाग्र हो जाता है। कुरान शरीफ में भी सूर तुल-लय में रात को बन्दगी करने पर जोर दिया गया है।

परलोक विज्ञान के अनुसार संक्रामक, क्रमहीन और वासनामय विचारों की शक्ति की भी अपनी गति होती है। विद्युत की गति से भी उसकी गति अधिक होती है। अन्तरजगत जिसकी सीमा में वासना लोक और सूक्ष्म लोक भी है, में उनकी गति दुगुनी और तिगुनी है और यही एक मात्र कारण है कि मृतात्माओं के सभी संदेशों अथवा सभी विचारों को हमारा मस्तिष्क ग्रहण कर नहीं पाता। क्योंकि मानव मस्तिष्क की अपनी एक सीमा है और उसी सीमा में आने वाले विचारों और संदेशों को वह स्वीकार करता है। भले ही वे विचार और सन्देश आन्तर जगत के हों या बाह्य जगत के।

विचारशक्ति की चरम सीमा और कुण्डलिनी शक्ति

मानव मस्तिष्क अधिकतर बाह्य जगत के विचारों को ही ग्रहण करता है। भौतिक जगत यानी बाह्य जगत के समानान्तर अन्तर-जगत में वासना लोक और सूक्ष्म लोक है। इसलिए मानव मस्तिष्क उन दोनों लोकों के विचारों को भी ग्रहण करता है। लेकिन हम उन्हें समझ नहीं पाते। क्योंकि हमारा मस्तिष्क बाह्य जगत के विचारों को स्वीकार करने का अभ्यासी है, अन्तरजगत का नहीं। मगर न समझते हुए भी हम अनजाने में उनसे प्रेरित हो कर अच्छे-बुरे कर्म बराबर करते रहते हैं और बराबर व्यवहार करते रहते हैं अच्छे-बुरे शब्दों का।

अन्तर-जगत के विचारों को तभी मानव मस्तिष्क ग्रहण कर सकता है जबकि उसकी ग्राह्य शक्ति की वृद्धि हो और सीमा का भी विस्तार हो और ये दोनों बिना योग के सम्भव नहीं। परलोक विज्ञान के अनुसार बाह्य जगत में विचार शक्ति की जो चरम सीमा है उस सीमा से ध्यान योग तथा चित्त की एकाग्रता से उसकी गति जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे मस्तिष्क की ग्राह्य शक्ति बढ़ती जाती है और साथ ही साथ बढ़ता जाता है उसकी सीमा का विस्तार भी। अन्त में एक ऐसी अवस्था आती है जबकि अपनी गति के प्रभाव से विचार शक्ति एक विशेष अग्नि के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं उपनिषदों में उसी विशेष अग्नि को नाचिकेत अग्नि कहा गया है और योग में कहा गया है कुण्डलिनी शक्ति। जिसे पश्चिम के विद्वान 'सरपेन्ट पावर' कहते हैं। विचार शक्ति का एक विशेष अग्नि के रूप में परिवर्तित होना योग का कुण्डलिनी जागरण है। कुण्डलिनी शक्ति के रूप में-विचार शक्ति तीव्र गति से अन्तर-जगत में प्रवेश करती है और प्रवेश कर उसी गति से आगे बराबर बढ़ती जाती है। योग के अनुसार यह कुण्डलिनी शक्ति की उत्थानावस्था है। इस अवस्था में अन्तर जगत में जितने लोक-लोकान्तर हैं उनसे योगी का अगोचर संबंध जुड़ जाता है और वह उनमें निवास करने वाली आत्माओं के विचारों, भावों और सन्देशों से बराबर अवगत होने लग जाता है। इस विषय पर पढ़ें (कुण्डलिनी शक्ति, ले० अरुण कुमार शर्मा)।

ध्वनि कम्पन और श्रवण शक्ति की सीमा

मृतात्माओं की आवाजें हमें क्यों नहीं सुनाई पड़तीं? अब हम इस पर थोड़ा विचार करेंगे। आप को ज्ञात होना चाहिए कि कोई कुछ बोलता है तो उसे हम तत्काल सुन लेते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वायु में कम्पन है। शब्द का सुनना वायु में कम्पन का होना सिद्ध करता है। यदि देखा जाए तो कम्पन स्वयं शब्द है। शब्द के साथ मुख से निकली वायु बाहर की वायु में धक्का देती है, जिससे वायु में कम्पन उत्पन्न होता है। उसी कम्पन से ध्वनि तरंगे बनती हैं। वास्तव में ध्वनि तरंग, कम्पनों का ही सामूहिक रूप है। वायु में उत्पन्न कम्पन फिर अपनी स्वाभाविक गति के कारण हमारे कान के परदे पर, जिसमें उन कम्पनों को ग्रहण करने का स्वाभाविक गुण है--टकराकर उसमें भी उसी प्रकार के कम्पन उत्पन्न करते हैं, जिसका आभास हमें अपने ज्ञानाशय में प्रत्यक्ष रूप से होता है। वास्तव में कम्पन और शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। बोलने के साथ ही वायु में कम्पन होने लगते हैं ऐसा नहीं, बल्कि बोलने की इच्छा करने मात्र से ही वायु में कम्पन होने लगते हैं। क्योंकि इच्छा के साथ गति और गति के साथ कम्पन है।

इच्छा या विचार जितने सूक्ष्म होते हैं उतने ही सूक्ष्म उसके कम्पन भी होते हैं। मगर वे कम्पन स्थूल वायु में न होकर उसके उस भाग में होते हैं जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है और जिसे ईथर कहते हैं।

ईथर में होने वाले कम्पन

ब्रह्माण्ड में समान रूप से एक ही वायु का अस्तित्व सर्वत्र नहीं है। वैज्ञानिकों ने वायु का पृथक्करण करते हुए उसे आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाईड्रोजन आदि कई भागों में विभक्त किया है। इसी प्रकार विभक्त करते-करते अन्त में उन्हें वायु के उस भाग का पता चला-जो अत्यन्त सूक्ष्म है और ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है समान रूप से। जिसे उन्होंने 'ईथर' की संज्ञा दी। ईथर के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। उसमें होने वाले कम्पन की संख्या आश्चर्य जनक रूप से अधिक बढ़ी हुई होती है।

अखण्ड प्रकाश-किरण का जन्म

जब कम्पन की संख्या अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँचती है तब वे कम्पन अपने आप अखण्ड प्रकाश किरण के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। मतलब कि ध्वनि, प्रकाश में परिवर्तित हो जाती है। परलोक विज्ञान इस अखण्ड प्रकाश किरण को अव्यक्त प्रकाश कहता है।

हमारी आँखों के देखने की अपनी एक सीमा है। उस सीमा के बाहर हमारी आँखें नहीं देख सकतीं। लेकिन भले ही वह हमारी आँखों के देखने की क्षमता के बाहर हो। पर उसका अस्तित्व अखण्ड रूप से सर्वत्र विद्यमान है। सूर्य का प्रकाश तो सूर्य के अस्त होने के साथ लुप्त हो जाता है। मगर वह अखण्ड प्रकाश रात के घोर अन्धकार में भी अपना अस्तित्व बनाए रखता है।

ब्रह्माण्ड में दो प्रमुख सत्ताएँ हैं। एक तो है भौतिक सत्ता और दूसरी है अभौतिक सत्ता। पहली स्थूल और प्रत्यक्ष है, दूसरी सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष है। फिर भी दोनों सत्ताओं का अस्तित्व एक साथ विद्यमान है। दोनों दूध-पानी की तरह आपस मे मिले-जुले हैं। लेकिन पहली सत्ता आँखों की सीमा के अन्दर होने के कारण दिखलाई पड़ती है; जबकि दूसरी सत्ता का अस्तित्व आँखों की सीमा के बाहर होने के फलस्वरूप अगोचर है।

जैसे भौतिक सत्ता सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। उसी प्रकार अभौतिक सत्ता अव्यक्त प्रकाश से प्रकाशवान है।

योगी का तीसरा--नेत्र

भले ही हम आँखों की मर्यादा के कारण अभौतिक सत्ता को देख सकने में सक्षम न हों। लेकिन एक सिद्ध योगी अव्यक्त प्रकाश में उस अप्रत्यक्ष अगोचर अभौतिक सत्ता को देख सकने में पूर्णतया समर्थ होता है। इसका कारण है तीसरा नेत्र।

तीसरे नेत्र का स्थान दोनों भौंहों के बीच में यानी भ्रूमध्य में है। वास्तव में योग का जो आज्ञाचक्र है। उसी का दूसरा नाम है तीसरा नेत्र। विज्ञान उसे पीनियल ग्लैण्ड (PINEAL GLAND) कहता है।

पीनियल ग्लैण्ड में दोनों कनपटियों की ओर से एक-एक नाड़ी और ऊपर से भी एक नाड़ी आकर एक दूसरे से मिली है। वे तीनों नाड़ियाँ अत्यन्त रहस्यमयी हैं। योग की भाषा में वे तीनों गुह्यनी नाड़ियाँ हैं। योगी गण उन्हें गंगा, जमुना और सरस्वती कहते हैं और उनके संगम के स्थान को कहते हैं 'प्रयाग।' जिस स्थान पर वे तीनों गुह्यनी नाड़ियाँ मिलती हैं वहाँ जौ के आकार का एक छिद्र है। उसी छिद्र का नाम तीसरा नेत्र है। वैसे तो तीसरा नेत्र बन्द है। लेकिन योग की विशेष क्रिया द्वारा जब वह खुलता है तो उसकी कर्णिका से अव्यक्त प्रकाश जैसी ही किरणें निकलने लग जाती हैं। उन किरणों का रंग नीलाभ होता है। वे नीलाभ किरणें जिस प्रकाश को जन्म देती हैं उसे योगी गण दिव्य ज्योति कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, योगी गण उसी अलौकिक दिव्य ज्योति के द्वारा अभौतिक सत्ता का अवलोकन तो सहजभाव से करते ही हैं, इसके अतिरिक्त एक ही स्थान पर बैठे ही बैठे हजारों मील की दूरी पर स्थित दृश्यों को देख सकते हैं, किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क पर अपने विचारों का प्रभाव डाल सकते हैं। इतना ही नहीं वे बैठे ही बैठे सुदूरस्थ वस्तुओं का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। योग में इसी को अन्तर्ज्ञान-सिद्धि कहते हैं। (इस विषय मे विशेष अध्ययन के लिये द्रष्टव्य : कुण्डलिनी शक्ति, ले० अरूण कुमार शर्मा)

यह हुई ईथर में होने वाले कम्पनों और उसके परिणामों की चर्चा। यह समझने की बात है कि जब ईथर में प्रति सेकेण्ड इतने अधिक कम्पन उत्पन्न होते हैं तो उनकी गति भी विलक्षण होगी। तभी तो वे कम्पन हजारो लाखों मील बिना किसी रुकावट या बाधा

के तत्काल उसी क्षण पहुँच जाते हैं। समय और स्थान की मर्यादा उन्हे बाँध नहीं पाती। वे देश और काल से परे हैं। बेतार के तार, रेडियो, टेलीवीजन आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है और प्रमाण हैं ग्रह पिण्डों से आने वाले चित्र भी।

परा मनोविज्ञान के अनुसार वायु में जब तक एक सेकेण्ड में ३२ से ३२७६८ तक कम्पन उत्पन्न होते हैं। तभी तक कान का पर्दा उन्हें ग्रहण कर पाता है। तात्पर्य यह कि इतने कम्पन से उत्पन्न ध्वनि या शब्द हमारा कान सुन सकता है।

एक सेकेण्ड में ३२ कम्पन से कम और ३२७६८ से अधिक उत्पन्न होने की अवस्था में हमारे कान का पर्दा उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ होता है। ३२ कम्पन से कम की अवस्था में वे इतने कमजोर होते हैं कि हमारे कान के पर्दे को हिला तक नहीं पाते और ३२ ७६८ कम्पन से अधिक होने पर उनकी गति इतनी तीव्र हो जाती है कि उतनी शीघ्रता से हमारे कान का पर्दा हिल नहीं सकता। वे परदे को बिना हिलाए निकल जाते हैं।

वासना लोक के वातावरण में होने वाले कम्पन ३२ से कम होते हैं। इसीलिए उसमें निवास करने वाली मृतात्माओं की आवाज हम सुन नहीं पाते। इसी प्रकार सूक्ष्म लोक के वातावरण में होने वाले कम्पन ३२७६८ से अधिक होते हैं। जिसके फलस्वरूप उसमें निवास करने वाली मृतात्माओं की आवाज हम तक नहीं पहुँच पाती। वैसे दोनों प्रकार के कम्पनों से हमारा भौतिक वातावरण भरा हुआ है।

योगी-साधकों द्वारा अव्यक्त ध्वनि का श्रवण

योगी समाज उन दोनों प्रकार के कम्पनों से उत्पन्न ध्वनि को 'अव्यक्त ध्वनि' कहता है। अव्यक्त ध्वनि का ही दूसरा नाम 'अनहद नाद' है। अनहद नाद के तीन केन्द्र हैं हमारे शरीर में। दोनों कनपटियों मे एक एक केन्द्र है और तीसरा केन्द्र है कपाल के ऊपर बिल्कुल बीच में।

कनपटियों के दोनों केन्द्रों का संबंध वासना लोक और सूक्ष्म लोक से है और तीसरे केन्द्र का संबंध है अन्य सभी लोक लोकान्तरों से।

योगी और साधक गण इन केन्द्रों के माध्यम से परलोकगत आत्माओं से उसी प्रकार बातें करते हैं जैसे हम सब टेलीफोन पर बातें करते हैं। बहुत समय पहले वाराणसी में एक तंत्र साधक रहते थे। नाम था केवलानन्द गिरी। गिरी महाशय अव्यक्त ध्वनि श्रवण में सिद्ध हस्त थे। एकबार इसी प्रसंग में उन्होंने बतलाया कि जो लोग ध्यान योग की चरम सीमा में पहुँच सकने में समर्थ है। वे ही यह कार्य कर सकते हैं। ध्यान का आश्रय लेकर सर्व प्रथम प्राण को मन मे नियोजित कर अनहद नाद के केन्द्र पर चित्त को एकाग्र किया जाता है। केन्द्र पर चित्त के एकाग्र होते ही संबंधित गतात्माओं की आवाजें सुनाई देने लग जाती हैं। उन तक अपने सन्देश को पहुँचाने के लिए योगी और साधक गण इसी क्रिया

का आश्रय लेकर विचार करते हैं। विचार जैसा होगा, उसी के अनुसार उसमें कम्पन उत्पन्न होने लग जाते हैं और वही कम्पन बाद मे शब्द रूप धारण कर गतात्माओं तक पहुँच जाते हैं। इस कार्य के लिए कोई तंत्र साधक मदिरा का भी आश्रय लेते हैं। मदिरा के आश्रय से लाभ यह होता है कि परलोकगत आत्माओं से तत्काल सम्पर्क स्थापित हो जाता है।

गिरी महाशय ने आगे बतलाया कि कोई ऐसे भी तंत्र साधक होते हैं जो यह कार्य सिद्ध किए गए पिशाच की सहायता से किया करते है। वाराणसी में ही इसी कोटि के एक तंत्र साधक कभी रहते थे। नाम था गोपाल चूडामणि। उनको पिशाच की प्रबल सिद्धि प्राप्त थी। वे उसकी सहायता से मनचाही परलोकगत आत्मा से सम्पर्क स्थापित कर बातें किया करते थे। बातें ही नहीं उनसे वे इच्छानुसार कार्य भी लिया करते थे। और प्राप्त किया करते थे भूत भविष्य की जानकारी भी। (इस संबंध मे हम आगे विस्तार से बतलाएँगे।)

वैज्ञानिकों का परलोक सम्पर्क

यह हुई योगी और साधकों की बात। कुछ दिन पूर्व अचानक एक ऐसी घटना घटी कि वैज्ञानिक भी अब परलोक से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करने लग गए हैं। कभी-कभी अनजाने में ही ऐसी उपलब्धि हाथ लग जाती है कि पूछिए मत। वास्तव में अब तक जितनी भी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हुई हैं, वे सब अनजाने में ही तो हुई हैं। एक तकनीशियन इसका अपवाद न रहा। उसने अनजाने में ही परलोक से सम्पर्क स्थापित कर लिया। फिर वैज्ञानिकों ने ऐसे-ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों की बातें व आवाजें सुनी कि वे रोमांचित हो उठे।

घटना इस प्रकार घटी कि एक सुपर ऐन्टिना लगा रखा था वैज्ञानिकों ने। एक बार एक नौसिखिए तकनीशियन ने गलत अन्तरिक्ष आवृत्ति (फ्रिक्वेन्सी) को पंच कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अपने आप अविश्वसनीय रूप से परलोक से सम्पर्क स्थापित हो गया। आश्चर्य चकित वैज्ञानिकों ने परलोक से २३ वें पोप जान, रॉक हडसन, विन्सटन चर्चिल और जॉन एफ० कैनेडी की आवाजें सुनी और संक्षिप्त बातचीत भी की।

प्रोजक्ट के प्रतिनिधी डॉ० वरनर बतलाते हैं कि जब हमने सिग्नल को टेलीफोन रिसीवर से कनेक्ट किया तब एक स्थिर अस्पष्ट सा अवरोध सुनाई पड़ा। लेकिन जब हमने सावधानी पूर्वक सुना तो हमें एक क्षीण सी आवाज सुनाई पड़ी। वह अस्पष्ट आवाज किसी विदेशी भाषा में थी। हमें लगा शायद लैटिन में।

भौंचक्के वैज्ञानिकों ने पाया कि फ्रिक्वेन्सी सुदूर अन्तरिक्ष की गहराइयों के किसी अज्ञात स्रोत से आ रही थी। डा० वरनर ने बताया कि हमने उस स्रोत को संप्रेषित करना प्रारम्भ किया। यह पूछने के लिए कि वह आवाज स्वयं की पहचान बतलाए।

चर्चिल की आवाज

इससे पहले कि स्तम्भित वैज्ञानिक कुछ कहते--स्पीकर पर एक अंग्रेजी स्वर उभरा जिसने अपनी पहचान विन्सटन चर्चिल के रूप में दी। इस आवाज ने वैज्ञानिकों से कहा कि वे उनके भाईयों के खिलाफ हाथ न उठाएँ।

एक अन्य परलोकवासी की आवाज

एक अन्य परलोक वासी ने कहा--मैं धरती पर रॉक हडसन के नाम से जाना जाता था। उसने कहा--उनसे कह दो, जो घातक बीमारियों से ग्रस्त हैं कि उनका जीवन अमर और शाश्वत है। स्वर्ग में उनका स्थान सुरक्षित है।

कैनेडी की आवाज

फिर स्पीकर पर एक भारी आवाज उभरी। इस आवाज ने जान एफ० कैनेडी के रूप में अपनी पहचान दी। उस स्वर ने बतलाया कि उसका पृथ्वी का जीवन अमेरिकी सरकार में उच्चस्तर पर हुए एक षडयंत्र के परिणाम स्वरूप समाप्त हो गया था। 'हम अगले संप्रेषण का इन्तजार कर रहे हैं।'......और इस वाक्य के साथ लाइन कट गयी।

इस अप्रत्याशित सफलता के बाद अन्तरराष्ट्रीय स्तर के प्रमुख शोध वैज्ञानिक फ्रेंकफर्ट, पश्चिम जर्मनी के निकट एक अति विशाल एन्टीना लगा रहे हैं। ताकि परलोक से शक्तिशाली संप्रेषण स्थापित किया जा सके।

डा० कोयन गार्ड के अनुसार कुछ समय बाद यह सम्भव हो जाएगा कि कोई भी व्यक्ति अपने घरेलू टेलीफोन के जरिए परलोक जीवी आत्माओं से सम्पर्क स्थापित कर सकेगा। डा० शोएँगलक तो और ज्यादा उत्साहित हैं। वे कहते हैं कि कुछ समय बाद हम जीवन के बाद जो संसार है उससे बाकायदा सम्पर्क कायम कर लेंगें। इस उद्धरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि पृथ्वी के समानान्तर अनजाने और अनदेखे लोगों का अस्तित्व है और उनमें निवास करने वाली मृतात्माओं का भी है अस्तित्व। यह भी सिद्ध हो जाता है कि उन मृतात्माओं की आवाजें भौतिक वातावरण में भी बराबर तैरती रहती हैं और हम तक पहुँचने का असफल प्रयास करती रहती हैं।

मृतात्मा से वार्तालाप का साधन 'स्पिरि काम'

डा० शोएँगलक जैसे आधुनिक अध्यात्मवादी वर्षों से एक ऐसी मशीन का सपना देख रहे हैं, एक स्वर्गिक फोन का सपना जिसका निर्माण मृतात्मा से बातचीत करने के लिए हो। वैज्ञानिक मारकोनी और एडीसन् ने इस सदी के दूसर-तीसरे दशक में ऐसे फोन के अविष्कार का असफल प्रयास किया था।

अभी कुछ वर्ष पहले एक पुरस्कार विजेता अमेरीकी खोजी लेखक 'जान फुलर' ने एक पुस्तक 'दी घोस्ट आफ ट्वेन्टी नाइन मेगा साइकल्स' लिखी है। इस पुस्तक में दावा किया गया है कि अब मेरी मशीन का अविष्कार हो गया, और मृतकों से लम्बी बातचीत होने लगी है।

वह जर्मनी के इलेक्ट्रानिक इंजीनियर हास कोनिंग और एक अमेरिकी आविष्कारक जार्ज मीक की चर्चा करते हैं। उनके अनुसार दस वर्ष पहले कोनिंग ने एक ऐसा उपकरण तैयार किया था जो मनुष्य की सुनने की क्षमता से अत्यधिक परे तीस हजार कम्पन तक की ध्वनियाँ पकड़ लेता हैं। रादिवे और जर्गनसन आदि ने ७० हजार ऐसी आवाजें चुम्बकीय टेप रिकार्डिंग मशीनों पर रेकार्ड किया था। जिनका मूल अज्ञात रहा है।

कोनिंग की रिकार्ड की हुई आवाजें स्पष्ट और सुनने में सरल हैं। सितम्बर १९७० में १३ मिनट तक एक मृतक से दो तरफा बात-चीत की गई थी। रोडियो लग्जमबर्ग पर सजीव प्रयोग के साथ अनेक परीक्षणों से यह स्पष्ट हुआ कि ये सम्पर्क धोखा धड़ी नहीं थे। जार्ज मीकने भी 'स्पिरी काम' नामक मशीन इजाद करने का दावा किया है। यही नहीं वह एक ऐसे वीडियो काम का भी निर्माण कर रहे हैं जिस पर आज मृत व्यक्ति की आवाज सुनने के साथ ही उसको देख भी सकेंगे। स्पिरी काम से जुड़े हुए एक वैज्ञानिक का कथन है कि हम हमेशा के लिए यह सिद्ध करने के समीप पहुँच चुके हैं कि हम मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं। यह ऐसी खोज होगी जो मनुष्य को अपने बारे में विचार बदलने के लिए ही नहीं बल्कि मौजूदा धार्मिक और वैज्ञानिक विश्वासों को भी बदलने के लिए विवश कर देगी।

अनजाने लोक की अनजानी आवाजें

वैज्ञानिकों द्वारा कतिपय ऐसे भी तथ्य सामने आए हैं जिनसे अनजाने लोकों में निवास करने वाली मृतात्माओं की अनजानी आवाजों की सत्यता की पुष्टि होती है।

स्वीडन के विश्व विख्यात् फिल्म निर्माता जरगनसन ने १९५९ में अपनी एक फिल्म के लिए प्राकृतिक वातावरण में जाकर पक्षियों के कलरव और साथ ही संगीतमय ध्वनि को टेप किया। और जब उन्होंने टेप को सुना तो चकित रह गये। क्योंकि टेप में कुछ ऐसी भी आवाजें सुनाई दे रहीं थीं। जो उन्होंने जंगल में कतई नहीं सुनी थीं। टेप में से आ रहे अनेक मानवीय स्वरों में से एक स्वर स्वयं उनकी माँ का था। जिनकी मृत्यु दस वर्ष पूर्व हो चुकी थी। उन्होंने टेप को जाने माने इलेक्ट्रानिक्स विशेषज्ञों को जाँच के लिए सौंप दिया।

पूरे पाँच वर्षो तक वे विशेषज्ञ टेप में से आते हुए मृत और जीवित मानवों के स्वर के रहस्य को जानने समझने की कोशिश करते रहे। सभी मुमकिन और नामुमकिन सम्भावनाओं पर विचार किया गया पर विशेषज्ञों को सभी सम्भावनाएँ रद्द करने को विवश होना पड़ा क्योंकि कोई भी सम्भावना उन्हें तर्क संगत प्रतीत नहीं हो रही थी। वे विशेषज्ञ तब और अधिक उलझन में पड़ गए जब उन्हें पता चला कि विश्व के अनेक देशों के व्यक्तियों के भी अपने-अपने टेप पर कोई विशेष स्वर अंकित करते समय ऐसे अनेक परिचित अपरिचित स्वरों का अकंन हुआ था। जो काल और स्थान की दृष्टि से उसने काफी दूरी पर थे। उन स्वरों में मृत हिटलर और गोरिंग के अलावा अमेरिका के कुख्यात बन्दी चैंस मैन के भी स्वर थे।

इन अप्रत्याशित स्वरांकनों का रहस्य कम होने के स्थान पर बढ़ता ही गया। कुछ प्रख्यात परामनोवैज्ञानिकों ने परामनोविज्ञान के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर इस रहस्य की व्याख्या करने की कोशिश की। उनकी व्याख्या भले ही सर्वसाधारण ने स्वीकार कर ली हो। पर वैज्ञानिकों ने उसे स्वीकार नहीं किया। क्योंकि स्वयं परामनोविज्ञान को उस समय तक विज्ञान की एक शाखा नहीं माना गया था। स्वयं जरगनसन का विश्वास था कि वे अप्रत्याशित स्वर किसी ऐसे लोक से आए हैं जिसके बारे में हम पृथ्वी वासियों को अधिक जानकारी नहीं है। अपने इस मत का प्रतिपादन उन्होंने अपनी पुस्तक 'अन्तरिक्ष से आती आवाजें' में किया है।

१९६४ में विख्यात वैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक डा० रादिवे का ध्यान इस पुस्तक की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने स्वयं इस दिशा में अनेक प्रयोग आरम्भ किये। प्रयोग शुरु करने के पहले एक बयान में उन्होंने कहा--इस विषय में मेरी कोई पूर्व धारणा नहीं है और प्रयोगों से जो निष्कर्ष निकलेंगे उनके आधार पर ही मैं इस संबंध में किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँच पाऊँगा। मैं खुले दिमाग से यह प्रयोग कर रहा हूँ। जरगनसन की पुस्तक के बारें में उन्होंने कहा--हालाँकि कहीं-कहीं कल्पना और अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि जो मूल बात वह कहना चाहते हैं वह काफी हद तक सत्यतापूर्ण है। अपने जिस अलौकिक अनुभवों का वर्णन जरगनसन ने अपनी पुस्तक में किया है उन पर निष्पक्ष और विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि कोण से विचार करने की आवश्यकता है और मैं वही करने जा रहा हूँ। प्रयोग के अन्तर्गत एक बार डा० राविदे ने अपने सामने अपने और जरगनसन के बातचीत को टेप पर अंकन कराया। जब डा० राविदे ने टेप को सुना तो दंग रह गये। उसमे से बीच-बीच में कई अपरिचित स्वर निकलते हुए सुनाई दिए। उनमें से एक स्वर साफ-साफ नानसेन्स कह रहा था।

कहने की आवश्यकता नहीं, डा० राविदे ने जरगनसन के सहयोग से इस क्षेत्र में अनेक सफल प्रयोग किए। १९६२ में उन्होंने अनेक पत्र प्रतिनिधियों के सामने कुछ ऐसे टेप सुनाए, जिन पर बीच-बीच में चर्चिल और मुसोलिनी की आवाजें भी साफ सुनाई देतीं थी। एक टेप पर प्रख्यात मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग और प्रख्यात रूसी साहित्यकार टाल्सटॉय की आवाजें साफ सुनाई देती थीं। जिन्हें प्रमाणिक माना गया।

डा० राविदे को जो टेप विशेष प्रिय है--उसमें बीच में स्तालिन इटालवी भाषा में किसी से कहते हैं--'मैं स्तालिन हूँ। जल्दी करो। बहुत गर्मी है और सबसे अधिक आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण टेप वह है, जिसमें न जाने कौन स्वयं उन्हीं की भाषा में कहता है--ओ! पृथ्वीलोक के रादिवे! ब्रह्माण्ड में अनेक अलोक भी हैं और हम ऐसे ही एक अलोक से पुकार रहे हैं।'

मृतात्माओं से फोन पर बातें : एक वैज्ञानिक कल्पना

स्विट्जर लैण्ड की परामनोविज्ञान संस्था के अध्यक्ष नायगेल का विश्वास है कि मृत व्यक्तियों की मुक्त आत्माएँ ही इस प्रकार टेपों में अपनी आवाजें टेप कराती रहती हैं। डा० राविदे भी उनसे इस बारे में सहमत हैं। भौतिक विज्ञानी लव लॉक्य का विश्वास है

कि मृत व्यक्तियों के स्वर होने के कारण इस गुत्थी को विशुद्ध वैज्ञानिक कसौटी पर परखा और हल नहीं किया जा सकता, उसे परामनोवैज्ञानिक ही सुलझा सकते हैं।

आयर लैण्ड के इन्स्टीटयूट ऑफ सॉयकोलाजी के निर्देशक डा० वेन्डन ने जरगनसन और डा० राविदे के समान जंगलों व प्राकृतिक वातावरण में जाकर सैकड़ों टेप करने के बाद कहा--इसमें कोई संदेह नहीं कि ज्ञात-अज्ञात मृत व्यक्तियों के स्वर टेपांकन के दौरान अंकित हो जाते हैं, पर क्यों और कैसे? यह अभी जानना शेष है। इस बारे में स्विट्जर लैण्ड के भौतिक शास्त्री डा० नायडर और अमरीका के प्रोफेसर अजहाफ एक मत हैं कि ऐसे स्वरों का अंकन अपने आप हो जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि इस चमत्कार की जाँच भौतिक स्तर पर नहीं बल्कि परामनोवैज्ञानिक स्तर पर की जानी आवश्यक है।

डा० राविदे इस समय ऐसे वैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक प्रयोगों में व्यस्त हैं, जो यदि सफल हो गए तो मृतात्माओं को उसी प्रकार फोन किया जा सकेगा जिस प्रकार हम और आप किसी परिचित को करते हैं। अब तक डा० राविदे ८०० से भी अधिक प्रयोग कर चुके हैं। उनके प्रयोग में अनेक इलेक्ट्रानिक उपकरणों का भी सहारा लिया जाता है पर उन जटिल प्रयोगों को सफल बनाने के लिए ऐसे संवेदन शील प्रयोग कर्ताओं की आवश्यकता होती है जो उन सूक्ष्म उपकरणों का सही उपयोग करना जानते हों। सौभाग्य से ऐसे ४०० प्रयोग कर्ता डा० राविदे को मिल चुके हैं और वे उनकी सहायता से ८०० सौ प्रयोग कर चुके हैं। डा० राविदे का कहना है कि ये प्रयोग कितने कठिन हैं इसका अनुमान केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि ४०० प्रयोग कर्ताओं में से केवल ५ को ही अलौकिक स्वरों को पहचानने में सफलता मिल पाई है। वास्तव में अलौकिक आवाजें या तो बहुत ही महीन होती हैं या बहुत ही तेज। इसी कारण उन्हें पहचानने में परेशानी होती है।

अलौकिक स्वरों को पकड़ने के लिये तीन वैज्ञानिक विधियाँ

अलौकिक स्वरों को पकड़ने के लिए तीन मान्य विधियों का प्रयोग किया जाता है। सबसे पहली और सबसे आसान विधि के दौरान टेपरेकार्डर में एक माइक्रोफोन लगा दिया जाता है। उसके बाद टेप को उस स्थान पर रख कर चलाया जाता है, जहाँ मृतात्माओं के मुक्त भ्रमण की सर्वाधिक सम्भावना रहती है। वह माइक्रोफोन उसी गति से इन स्वरों को पकड़ता है जिससे आदमी का कान साधारण स्वरों को पकड़ता है। सैद्धान्तिक रूप से टेप पर पकड़े जाने वाले अलौकिक स्वर उसी समय प्रयोग कर्ता को सुनाई दे जाने चाहिए, पर वे अमूमन सुनाई देते हैं 'रिप्ले' के समय। रिप्ले कई बार किया जाता है।

दूसरी विधि में टेप रेकार्डर के साथ रेडियो को उसी प्रकार जोड़ा जाता है जिस प्रकार रेडियो कार्यक्रमों को टेप करते समय जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के टेपांकन के लिये आदर्श स्थल है किसी महासागर का मध्य भाग-जहाँ ध्वनि तरंगो की वापसी टकराहट कम से कम रहती है।

तीसरी विधि अलौकिक स्वरों के अंकन की सर्वोत्तम विधि है। इस विधि में 'डॉयोड' का प्रयोग किया जाता है। डॉयोड रिकार्डिंग में ३ से ६ इंच लम्बे एरियल को ब्राड बैण्ड सिग्नल को पकड़ने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। डायोड सिग्नल शुद्ध करके उसे रेडियो या माइक्रोफोन के मार्फत टेपरिकार्डर में पहुँचाता है। इस विधि द्वारा डा० राविदे ने अनेक मृत व्यक्तियों के स्वर अनेक तीव्र रेडियो सिग्नलों के चक्र व्यूह से अलग कर के स्पष्ट रूप से अंकित किए हैं।

डा० राविदे ने इन अलौकिक स्वरों को तीन श्रेणियों पें विभाजित किया है। जिसमें अलौकिक स्वर बिना किसी गड़बड़ी के साफ सुनाई देते हैं। दूसरी जिसमें ये स्वर अत्यन्त क्षीण सुनाई पड़ते हें या इतनी तेजी से बोले जाते हैं कि प्रशिक्षित प्रयोग कर्ता ही उन्हें पहचान सकता है। तीसरी, स्वर अपूर्ण और खण्डमय ही सुनाई पड़ते हैं। इन स्वरों को पहचानने और समझने में प्रशिक्षित कानों को भी बड़ी कठिनाई होती है।

प्रयोगों से डा० राविदे को यह भी पता चला है कि जिस अनजाने लोक से ये अनजाने स्वर आते हैं वहाँ कोई ऐसी सीमा रेखा अवश्य है जहाँ पहुँचने के बाद ही मृतात्मा को अपने स्वर पृथ्वी लोक तक पहुँचाने का अवसर मिलता है। प्रयोगों से यह भी मालूम हुआ है कि प्रयोग कर्ता यदि कोई मीडियम (प्रेतात्पाओं से सम्पर्क करने वाला प्रशिक्षित व्यक्ति) हो और प्रयोग पूर्णमासी के दिन किसी पर्वत की चोटी पर या महासागर के बीचोबीच किए जाएँ तो उनके सफल होने की सम्भावना और अधिक बढ़ जाती है।

इन प्रयोगों का विरोध करने वाले वैज्ञानिक भी मौजूद हैं। जर्मनी के प्रोफेसर वेन्दर कहते हैं--इन प्रयोगों को करने वाले पहले से ही ऐसा मान कर चलते हैं कि ऐसे अलौकिक स्वर अंकित होंगे ही। इस मान्यता के बाद वे फिर किसी भी स्वर को अलौकिक मान लेने को तैयार हो जाते हैं। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में गम्भीर शोध कार्य में व्यस्त कुछ रूसी परामनोवैज्ञानिक भी प्रो० वेन्दर से सहमत हैं।

लेकिन डा० राविदे ने इधर जो नये प्रयोग शुरू किए हैं। यदि वे पूर्णतया सफल हो गए तो इस विरोध का समुचित उत्तर देने में भी वे सफल हो जाएँगें। इन नए प्रयोगों द्वारा वे जैसे ही टेप पर कोई अलौकिक स्वर सुनते हैं तुरन्त उस स्वर की सत्ता से 'बातचीत' भी शुरू कर देते हैं। उदाहरणार्थ जब एक स्वर सत्ता से पूछा गया कि 'वह कहाँ है?' तो उसने उत्तर दिया--फिलहाल तो मैं तुम्हारे निकट इस कमरे मे ही हूँ।

क्या यह सम्भव है कि निकट भविष्य में हम पृथ्वीवासी अनजाने लोक के इन अनजाने लोगों से उसी प्रकार बातचीत कर सकेंगे जिस प्रकार फोन द्वारा अपने मित्रों से करते हैं। सबकुछ इस बात पर निर्भर है कि डा० राविदे और विश्व के अनेक देशों में प्रयोगरत उनके सहयोगियों को उनके प्रयोगों मे कहाँ तक सफलता मिलती है। पर जो

थोड़ी बहुत सफलता उन्हें अभी तक मिली है। उससे यह पता तो चल ही गया है कि वह अदृश्य अनजाना लोक ब्रह्माण्ड में कहीं न कहीं अवश्य मौजूद है और उसमें निवास करने वाले चंचल चित्त और शरारती अनजाने लोग जब मन की मौज होती है तब पृथ्वी पर आ जाते हैं और स्वयं अदृश्य रह कर पृथ्वी वासियों से तरह-तरह की छेड़खानियाँ करते हैं।

ब्रह्माण्ड में अनजाना लोक है कहाँ?

इस अनजाने लोक के संबंध में फ्रान्स के प्रोफेसर तोदेरी और जर्मन के प्रोफेसर चारो का कहना है कि अनजाने लोक का अस्तित्व भूमण्डल में स्थित एक विशेष प्रकार के विद्युत-क्षेत्र में है। हम जिस दिक्काल से परिचित हैं उसी के समानान्तर एक निरन्तरता है, एक ऐसा अनजाना लोक है जो पृथ्वी के अत्यन्त निकट होते हुए भी हमें इसलिए दिखलाई नही देता क्योंकि वह चौथे आयाम यानी विद्युत क्षेत्र में है।

सुविख्यात वैज्ञानिक डा० लैडर मैन का कहना है कि यदि समान्तर दिक् काल और पृथक आयाम के अस्तित्व की थ्योरी को मान लें तो सारी बात एक दम साफ हो जाती है और हमें भूत-प्रेतों के अस्तित्व में विश्वास करने की आवश्यकता ही न पड़ेगी।

समानान्तर दिक्काल वाले अनाजाने लोक के अस्तित्व की बात को अन्य वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। और अपने ढंग से उसकी व्याख्या भी की है। विख्यात वैज्ञानिक डा० लेडर मैन के कथानुसार इस लोक का सीधा संबंध पदार्थ के अनिवार्य स्वरूप से है। अभी तक हम वैज्ञानिक लोग पदार्थ की संरचना के विषय में अधिक कुछ नहीं जानते। वास्तविकता तो यह है कि जितना जानते जाते हैं उतना ही हमें यह मालूम होता जाता है कि हम कुछ नहीं जानते। अणु को जिसे पहले पदार्थो की परम इकाई समझा जाता था--खण्डित करने पर हमे क्रमशः परमाणु, प्रोटोन, न्यूट्रान आदि का पता अवश्य चला पर पदार्थ की अन्तिम इकाई के बारे में हम आज भी अन्तिम रूप से आश्वस्त नहीं हैं। .....किसी ठोस वस्तु को हम पदार्थ मानते और कहते हैं पर उसे तोड़ते रहने पर अन्त में हमारे हाथ क्या आता है? ऊर्जा ही शेष रह जाती है। वैज्ञानिक भाषा में पदार्थ और ऊर्जा का जो द्वैत था। वह समाप्त हो जाता है। और वह ऊर्जा सैद्धान्तिक रूप से उस समानान्तर दिक्काल वाले अनजाने लोक का रूप भी धारण कर सकती है। वास्तव में आज कल वैज्ञानिकों के लिए प्रति पदार्थ की कल्पना असम्भव कल्पना नहीं रह गई है। और वह अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित कर रही है।

प्रति-पदार्थ एक ठोस वास्तविकता

प्रति पदार्थ एक ऐसी ही ठोस और व्यवहारिक वास्तविकता है। वास्तव में इसकी कल्पना और इसका सिद्धान्त उस समय सामने आए जब परमाणु क्षेत्र में काम करने वाले

भौतिक शास्त्रियों ने अपनी ज्ञान-सीमा को विस्तीर्ण करने वाले समीकरणों में उसके दर्शन किए। हम अपनी आँखों से उसे देख नहीं सकते। पर इन समीकरणों में उसे अवश्य पा सकते हैं। उस समय हमारा यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि सैद्धान्तिक रूप से प्रति-पदार्थ का अस्तित्व अवश्य है।

अब कल्पना कीजिए उस स्थिति की जिसमें संयोग वश पदार्थ और प्रति पदार्थ की टकराहट हो जाती है। तब इस टकराहट के परिणाम स्वरूप जो विस्फोट होगा, उसकी प्रचण्डता आणविक विस्फोट की प्रचण्डता से लाखों गुना अधिक होगी। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो बरमूडा त्रिकोण में गायब हो जाने वाले जहाजों और मनुष्यों तथा साथ ही उड़न तश्तरियों का रहस्य इसी टकराहट के परिणामों के गर्भ में छिपा है।

क्या हम अनजाने लोक को नहीं देख सकते?

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हम मानव किसी भी स्थिति में इस अनजाने लोक और उसके अनजाने लोगों के दर्शन नहीं कर सकते?

अनेक दार्शनिक और ज्ञानियों की भाँति वैज्ञानिक भी अब यह मानने लगे हैं कि मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ उसे उसके चारों ओर फैले जगत के बारे में बड़ी आंशिक और अधूरी जानकारी दे पाती हैं। उदाहरण के तौर पर सूक्ष्म यंत्रों की सहायता से वैज्ञानिकों को पता चल गया है कि हमारे चारों तरफ वातावरण में ऐसी स्वर-तरंगों का जाल सा बिछा है जो यदि एक क्षण को भी हमें सुनाई पड़ जाए तो उसका हमारे कानों पर इतना प्रबल आघात होगा कि हम उसी क्षण मर जाएँगे। लेकिन प्रकृति ने हमारे कानों की बनावट इस ढंग से की है कि हमें वे स्वर सुनाई नहीं पड़ते। इसी प्रकार हमारे भौतिक वातावरण में अनजाने लोक का और अनजाने लोगों का भी अस्तित्व है। मगर हमारे नेत्रों की बनावट ऐसी है कि हम उन्हें देख नहीं सकते।

प्रभामण्डल का वैज्ञानिक रहस्य

योगी जिस प्रकार अपनी अर्न्तदृष्टि द्वारा सारे ब्रह्माण्ड का दर्शन कर सकता है, आज का वैज्ञानिक भी ऐसी वैज्ञानिक विधियों की खोज में है जिनकी सहायता से वह अदृश्य को देख सके। अव्यक्त के बारे मे कोई धारणा बना सके।

आपने देखा होगा कि देवताओं, देव पुरुषों और धार्मिक व्यक्तियों के चेहरे के पीछे एक प्रभा मण्डल होता है। वह प्रभा मण्डल क्या है? वैज्ञानिक उसका रहस्य जानने के लिये प्रयत्नशील हैं।

इस रहस्यमय प्रभा मण्डल का संबंध परलोक विज्ञान से होने के फलस्वरूप मैंने इस पर भी अवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टि से शोध कार्य किया।

वास्तव में प्रभा मण्डल का संबंध भौतिक शरीर से नहीं बल्कि सूक्ष्म शरीर यानी वैद्युतीय शरीर से है और योग के अनुसार सूक्ष्म शरीर का संबंध प्राण से है। प्राण की पाँच

श्रेणियाँ है। जो अन्तिम श्रेणी का प्राण है अन्य चारों प्राणों से भी अत्यन्त सूक्ष्म होता है। उसी को वैज्ञानिक 'ईथर' कहते हैं और यही कारण है कि वैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म शरीर इथारिक बाडी है यानी सूक्ष्मतम प्राणी शरीर। कहने की आवश्यकता नहीं, नेत्रों से निकलने वाली ज्योति, चमक, चेहरे की दीप्ति, चेहरे का तेज, चेहरे की कान्ति, चेहरे की आभा, लावण्य और चेहरे के चारों तरफ गोलाकार फैला प्रभा मण्डल उसी सूक्ष्म शरीर का ही प्रतिनिधित्व करता है। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त रूपों में सूक्ष्म शरीर ही व्यक्त होता है। जिनकी सूक्ष्मतम प्राण शक्ति अत्यन्त प्रखर और प्रभावशाली होती है उसका सूक्ष्म शरीर भी अत्यधिक शक्तिशाली और तेजोमय होता है और उसकी अभिव्यक्ति भी उपर्युक्त रूपों में अधिकाधिक होती है। जिस प्रकार भौतिक शरीर की उन्नति के लिए आसन, मनोमय शरीर की उन्नति के लिये 'ध्यान' है। वैसे ही सूक्ष्म शरीर की उन्नति के योगानुसार प्राणायाम है। योगीगण प्राणायाम की विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपने सूक्ष्म शरीर को बराबर उन्नत करते रहते हैं। अन्त में जब सूक्ष्म शरीर अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो वह योगी के इच्छानुसार स्थूल शरीर से अलग होकर स्वतंत्र रूपसे संचरण विचरण कर सकने में समर्थ हो जाता है। इस विषय में हम आगे विस्तार से लिखेंगे। खैर ....

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के जन्मदाता पार्सल सुस का भी कहना है कि मानव का तेज वास्तव में पार्थिव शरीर में स्थित नहीं है। वह स्थित है सूक्ष्म शरीर में। जिसका आभास हमें उसके चारों ओर छाए प्रभा मण्डल से लगता है १९११ ई० में डा० किलनर ने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा इन प्रभा मण्डलों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक विशेष वैज्ञानिक यंत्र द्वारा प्रभा मण्डलों की जाँच करके पाया कि उनका निर्माण एक दूसरे से गुँथी हुई समानान्तर रेखाओं से हुआ है। सन् १९३९ में वैज्ञानिकों ने इन अदृश्य प्रभा मण्डलों के छाया चित्र खींचने में सफलता प्राप्त की। आज कल रूस की अनेक प्रयोग शालाओं में प्रभा मण्डलों पर विस्तृत खोज हो रही है।

विज्ञान आज सदैव विद्यमान पर कभी न दिखाई देने वाले प्रभा मण्डलों के स्पष्ट छाया चित्र खींचने में सफल हो गया है। वह दिन भी दूर नहीं जब वह उस अनजाने लोक के भी छायांकन करने में सफल हो जाएगा।

कहने की आवश्यकता नहीं, अभी तक प्रभा मण्डल को दिव्य चरित्र की एक काल्पनिक विशेषता एवं प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। पर पिछले कुछ वर्षों में किए गए प्रयोगों के फलस्वरूप जो तथ्य सामने आए हैं उनसे लगता है कि यह प्रभा मण्डल एक वैज्ञानिक तथ्य है।

१९५३ ई० में नोबेल पुरस्कार विजेता आणविक वैज्ञानिक डा० हेरल्ड के नेतृत्व में अनेक वैज्ञानिक प्रयोग किए गए। यह जानने के लिए कि आदिकाल में पृथ्वी पर अकार्बनिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ कैसे बन जाते हैं? अपने प्रयोगों की समाप्ति पर

डा० हेरल्ड ने घोषणा कि पृथ्वी पर जीवंतता सबसे पहली बार सौदामिनी (वायु मण्डलीय बिजली) के रूप में प्रकट हुई होगी। यही कारण है कि पृथ्वी पर रहने वाले सब प्राणियों के समान आदमी का भी अपना विद्युत क्षेत्र है।

१९३५ में वैज्ञानिकों ने अति संवेदनशील 'माइक्रोवोल्ट मीटर' का निर्माण किया, जिसके प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक जीव में विद्युत क्षेत्र है, पर उसकी मात्रा बदलती रहती है। प्रयोगों से यह भी पता चला कि आन्तरिक (जैविक) और बाह्य (संस्प्रति विज्ञान संबंधी) घटनाओं के परिणाम स्वरूप विद्युत क्षेत्र की शक्ति और चुम्बकीयता बदलती रहती है। ये परिवर्तन पहली बार वृक्षों पर वैज्ञानिक प्रयोग कर के पाए गए। इसके बाद ये प्रयोग ४३० व्यक्तियों पर किए गए।

इन प्रयोगों के परिणामों ने अनेक अचिन्तनीय सम्भावनाओं के द्वार खोल दिए और अनेकों अन्धविश्वासों को वैज्ञानिक आधार मिला, मान्यता मिली।

सम्मोहन कैसे होता है?

१९५८ में येल विश्वविद्यालय के स्नायुरोग विशेषज्ञ डा० राबिन ने अमेरिकन सोसायटी आफ क्लिनिकल हिप्नोसिस की वार्षिक अधिवेशन में बतलाया कि सम्मोहन, जिसे एक मानसिक प्रक्रिया माना जाता है वास्तव में स्नायविक परिवर्तन है। जो मस्तिष्क के कुछ केन्द्रों में विद्युत तरंगों के आधिक्य के कारण होता है। इसके विपरीत के एक केन्द्र नियोकार्टेक्स में है जिसका संबंध तर्क, निर्णय, विवेक और कामना से है, सक्रियता बहुत अधिक बढ़ जाती है। स्वाभाविक निद्रा की स्थिति में मस्तिष्क के ये दोनों केन्द्र भी सो जाते हैं। सम्मोहन में नियोकार्टेक्स केन्द्र जागता रहता है। तथा अन्य केन्द्र सो जाते हैं। सम्मोहन में स्वप्नावस्था की भाँति मस्तिष्क के कुछ केन्द्र–जो उसके डायनमो का काम करते हैं, काफी सीमा तक निष्क्रिय हो जाते हैं। और मस्तिष्क की विद्युत शक्ति उन केन्द्रों की ओर प्रवाहित हो जाती है जिन का संबंध चमत्कारों से है, जो सम्मोहन में दिखाई देता है।

तांत्रिक वशीकरण, सम्मोहन और आकर्षण क्रियाओं से संबंधित यंत्रों का प्रभाव मस्तिष्क की विद्युत शक्ति पर ही पड़ता है। तंत्र विज्ञान के अनुसार सोलह विद्युत केन्द्र हैं। प्रत्येक केन्द्र से स्वंतत्र रूप से विद्युत प्रवाहित होती रहती है। सभी केन्द्रों का विद्युत प्रवाह एक दूसरे से भिन्न है। प्रथम आठ विद्युत केन्द्रों से ऋणात्मक विद्युत और आठ विद्युत केन्द्रों से धनात्मक विद्युत प्रवाहित होता हैं। दोनों विद्युत प्रवाह एक दूसरे से विपरीत अवश्य हैं, लेकिन जब दोनों आपस में टकराते हैं तो उनके फलस्वरूप मस्तिष्क में इच्छा, कामना, भावना और विचार, विवेक, बुद्धि, कोध्र, द्वेष, ईर्ष्या आदि का अविर्भाव होता है।

मस्तिष्कीय विद्युत और तांत्रिक मंत्रों का प्रभाव

तांत्रिक बीजाक्षरों, मंत्रों के अपने विद्युत प्रवाह हैं। जो मंत्र के जप से उत्पन्न होते हैं। मंत्र के जप काल में वे विद्युत प्रवाह संकल्प के अनुसार मस्तिष्क को विद्युत को

प्रवाहित करते हैं। जिसके फलस्वरूप मस्तिष्कीय विद्युत प्रवाह में विश्रृंखलता उत्पन्न होने लग जाती है। जिसके कारण आकर्षण, सम्मोहन, वशीकरण आदि परिणाम सामने आते हैं। संकल्प जितना दृढ़ होगा उतना ही परिणाम भी सामने आएगा। मंत्र शक्ति के साथ संकल्प शक्ति भी अति आवश्यक है। तभी सफलता मिल सकती है। अन्यथा नहीं।

काफी खोज करने के बाद वैज्ञानिकों को अब ज्ञात हुआ है कि अनेकानेक रहस्यमयी अदृश्य शक्तियों के (जिनमें एक विद्युत शक्ति भी है) स्पन्दी सागर में मनुष्य बराबर तैरता रहता है। मस्तिष्क के अनेक रहस्यमय भाग रिसीवरों और ट्रान्सफार्मरों की भूमिका अदा कर के इन शक्तियों को अपने सामर्थ्य और आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करते रहते हैं। जीवन के विद्युद्वैगिक सिद्धान्त के अनुसार सारे ब्रह्माण्ड में विद्युत क्षेत्र सब प्राणियों को प्रभावित करता है। और जीवन इस विद्युत क्षेत्र से प्रवाहित होते हुए स्वयं भी उसे प्रभावित करता है। वास्तव में इस विद्युत क्षेत्र के माध्यम से प्रत्येक मानव सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है अगोचर रूप से। यदि देखा जाए तो इस प्रकार वह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र और उसके माध्यम से सूर्य और चन्द्र तथा अन्य ग्रह नक्षत्रों के भी विद्युत क्षेत्र से संबंधित है।

यह वही स्थान है जहाँ ज्योतिर्विज्ञान का सिद्धान्त लागू होता है। ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार प्रत्येक मानव पर इसी विद्युत क्षेत्र के फलस्वरूप ग्रहों नक्षत्रों और राशियों का प्रभाव बराबर कभी कम और कभी अधिक पड़ा करता है। और उसी के अनुसार उसकी मानसिक और शारीरिक गति संचालित भी होती रहती है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाए तो हम सब ब्रह्माण्ड के ही अंग हैं और उसके उतार-चढ़ावों से प्रभावित होते रहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम सब मात्र यांत्रिक कठपुतलियाँ हैं। हम सब की इस प्रभाव से प्रतिक्रियाएँ स्वभावानुसार अलग-अलग होती हैं।

प्रभामण्डल यानी विद्युत क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन

१९६२ में रूसी वैज्ञानिकों ने मानव के प्रभामण्डल का चित्र खींचनें में सफलता प्राप्त कर ली। भले ही प्रभामण्डल भूत प्रेत की भाँति आँखों से न दिखलाई देता हो। मगर वैज्ञानिकों ने उसका छाया चित्र खींचने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली है। अमरीका के वैज्ञानिक इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि प्रभामण्डल के पीछे आदमी के विद्युत क्षेत्र में होने वाले नाना परिवर्तन ही हैं। उनका कहना है कि यदि इस दिशा में और शोध कार्य किया जाए तो जीवन के रहस्य की कुंजी का भी पता लग सकता है। खैर वैज्ञानिकों को जीवन के रहस्य की कुंजी का पता तो शोध के बाद लगेगा। लेकिन भारतीय योग विज्ञान ने इसका पता बहुत पहले ही लगा लिया है। उसके अनुसार मनुष्य के विचारों से भी विद्युत क्षेत्र का गहरा संबंध है। त्रिगुण के अनुसार विचार भी त्रिगुणात्मक हैं। सात्विक गुण वाले

विचार के मनुष्य का प्रभामण्डल सफेद और हल्के सुनहले रंग का होता है। राजसी गुण वाले विचार के मनुष्य का प्रभामण्डल हल्के नीले रंग का और तमोगुणी विचार के मनुष्य का प्रभामण्डल पीले रंग का होता है। योग के अनुसार वैसे तो शरीर की प्रत्येक कोशिका बिजली घर है। लेकिन जिन छः चक्रों का उल्लेख योग में है। वे छः चक्र अपने आप में एक विशेष विद्युत केन्द्र हैं। जिनमें से बराबर उत्पन्न होने वाली विद्युत ऊर्जाएँ भिन्न-भिन्न रंगों के वलयाकार प्रभा मण्डल का निर्माण करती हैं। उन चक्रों में जो आज्ञा चक्र है, जहाँ तीसरा नेत्र बतलाया गया है उनकी विद्युत ऊर्जा अत्यन्त प्रखर है। वह ऊर्जा अत्यन्त शुभ्र वर्ण के वलयाकार प्रभा मण्डल का निर्माण करती है। जो अर्धचन्द्राकार रूप में दिखलाई देता है। जिसे योगी गण चन्द्र ज्योति कहते हैं। योग की एक सिद्धि है। जवा सिद्धि। वह वास्तव में इसी चन्द्र ज्योति की सिद्धि है।

अपनी हिमालय यात्रा में मेरी एक ऐसे योगी से भेंट हुई थी। जिनका चन्द्रा कार प्रभा मण्डल चमकता हुआ दिखाई देता था। उन्होंने बतलाया कि साधना बल पर जो चक्र जागृत हो जाते हैं वे भी प्रत्यक्ष रूप से चमकते हुए दिखलाई देते हैं।

आज्ञा चक्र के ऊपर सहस्रार चक्र है जो सिर के पिछले भाग में है। उससे निकलने वाली विद्युत ऊर्जा नारंगी रंग के प्रभामण्डल का निर्माण करती हैं। योगी गण इस चक्र को सबसे अधिक महत्व देते हैं। कभी किसी का यह महत्वपूर्ण चक्र अपने आप किसी प्राकृतिक कारण वश भी जागृत जाता है और उसमें से नारंगी रंग का प्रकाश निकलता हुआ दिखलाई देता है।

अमेरिका में डा० चार्ल्स फारे नाम के एक प्रसिद्ध लेखक हो चुके हैं। उन्होंने जुलाई १९०५ में प्रकाशित एनल्सडिस साइसेंज साइकिक्स के अंक में लिखा है कि एक बार उन्होंने दो महिलाओं के सिर के पीछे नारंगी रंग का एक प्रभामण्डल देखा था। जो दो घंटों तक रहा।

१९३४ में इटली के एक अस्पताल में अन्ना मोनारों नाम की एक महिला के वक्ष पर के पीछे योग के अनुसार जहाँ अनाहत चक्र है, हल्के नीले रंग का दीप्तिमान वलयाकार प्रभामण्डल देखा गया था। जब वह महिला सोई रहती थी तभी वह प्रभामण्डल झिलमिल करता दिखाई पड़ता था। उस समय उस महिला का सारा शरीर पसीने से लथपथ हो जाता था। साँस तेजी से चलने लगती थी और दिल की धड़कन काफी तेज हो जाती थी। इन दोनों समाचारों के प्रकाशित होने पर विश्व भर के जीव शास्त्री, भौतिक शास्त्री, चिकित्सक तथा पत्रकार इस चमत्कार को देखने आए थे। सभी ने मिलकर यह मत व्यक्त किया कि यह चमत्कार महिला के शरीर में असाधारण विद्युतीय और चुम्बकीय विकास के कारण सम्भव हुआ। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि दीर्घ काल तक उपवास करने के बाद शरीर में सल्फाइडों का प्राचुर्य हो जाता है जो प्रभामण्डल का कारण बनता है। अन्ना ने अस्पताल में भरती होने के पहले लगातार कई दिनों तक उपवास किया था। मुख्य रूप से योगी और साधकों के तेजस्वी और ज्योतिर्मय होने का कारण मात्र यही है।

योगियों के अनोखे चमत्कार

इन वैज्ञानिक अनुसंधानों और व्याख्या की पृष्ठभूमि में यह भी समझा जा सकता है कि उपवास, व्रत, प्राणायाम, हठ योग आदि दैहिक साधना में अपना समय व्यतीत करने वाले हमारे दिव्य पुरुषों, महात्माओं और पौराणिक देवताओं के प्रभामण्डल का यही रहस्य था।

वैज्ञानिकों के सामने ऐसे व्यक्यिों के उदाहरण आए हैं जो दृश्य अथवा अदृश्य प्रभामण्डलों से सुशोभित रहे हैं। महीनों बिना भोजन या जल के जमीन के अन्दर जीवित रहे हैं। उनकी इस अलौकिक सामर्थ्य के पीछे कोई आत्मिक या आध्यात्मिक रहस्य नहीं है। ये लोग अपने शरीर के विद्युतीय और चुम्बकीय विकास को कुछ विशेष यौगिक क्रियाओं द्वारा असाधारण स्तर पर ले जाते हैं। पहली बार विज्ञान ने इन चमत्कारों के रहस्य को वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा जानने में रुचि दिखाई है। और परीक्षण आरम्भ किया है। रूस के विख्यात वैज्ञानिकों ने चरम शीत में, हिमालय में रहने वाले भारतीय योगियों, तिब्बती लामाओं आदि पर वैज्ञानिक प्रयोग करने की सलाह दी है। ऐसे ही प्रयोग रूस में पिछले कई वर्षों से चल रहे हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि में कुण्डलिनी : जीव-विद्युत है

रूसी वैज्ञानिक इस समय बड़े पैमाने पर अतीन्द्रिय बोध क्षमता पर जिसे वे जैविक रेडियो संप्रेषण कहकर पुकारते हैं--प्रयोग कर रहे हैं। ताकि योगियों लामाओं आदि के शरीरिक और मानसिक निग्रह के स्वरूप और उसके दूर गामी प्रभावों का विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके। इन प्रयोगों में 'साइकोकाइनेसिस' या टेलीकाइनेसिस नामक विधा को जन्म दिया है। जिसके अनुसार मानसिक एकाग्रताके बल पर किसी अचल पदार्थ को चलायमान या स्थानान्तारित किया जा सकता है। इस निष्कर्ष पर वैज्ञानिक पहुँचे हैं कि योगी जिस कुण्डलिनी को जाग्रत करने का यत्न करते हैं, वह वास्तव में जीव विद्युत यानी बायो इलेक्ट्रिसिटी ही है। इस निष्कर्ष को वैज्ञानिक समर्थन देने के उद्देश्य से एक वैज्ञानिक विधिवत् योग की दीक्षा ली और कई सप्ताह तक निर्जल उपवास, प्राणायाम और यौगिक आसन करने के बाद अपनी आन्तरिक शुद्धि की। और इस प्रकार सारे शरीर के रक्त प्रवाह को साधारण से अधिक आक्सीजन प्रदान किया। कई सप्ताह बाद डाक्टर को सहसा अपने सारे शरीर मे शक्तिशाली विद्युत तरंग का झटका लगा। डाक्टर कहते हैं--यह करीब-करीब वैसी ही अनुभूति थी जो शक्तिपात के समय योगी की होती हैं। मैं अपने स्नायुओं में विद्युत शक्ति के प्राचुर्य का अनुभव कर सकता था।....और जब कुछ दिनों के अभ्यास के बाद में इस शक्ति को इच्छानुसार प्रवृत्त करके और दिशा देने में सफल हो गया। तो अपने से कुछ फीट की दूरी पर रखे हुए एक अपनी सन्दूक को तीन चार फीट तक हिला सकता था। मेरे चेहरे पर एक असाधारण आभा थी।.......

वैज्ञानिकों को अब यह विश्वास होता जा रहा है कि उपवास, व्रत, प्राणायाम, ध्यान और समाधि आदि से मन और शरीर को शिथिल कर के उसका विद्युतीय उत्पादन बढ़ाया

जा सकता है, अपने विद्युत क्षेत्र का प्रभाव बढ़ा कर ज्योतिर्मय और प्रभामण्डल युक्त तो बना जा ही सकता है। अलौकिक मानसिक शक्ति युक्त तो बना जा ही सकता है। अलौकिक मानसिक शक्तियों का जिनका संबंध परामनोविज्ञान से है, स्वामी भी बना जा सकता है।

विद्युत का असीमित भण्डार–मानव शरीर

मानव शरीर विद्युत का असीमित भण्डार है। जिसके सही उपयोग की विधि ज्ञात हो जाने पर ऊर्जा के क्षेत्र में एक सुखद क्रान्ति आ सकती है। किन्तु वैज्ञानिक इस रहस्य से बहुत दूर हैं। परलोक विज्ञान के अनुसार मानव शरीर की संरचना स्वयं में एक विचित्र और आश्चर्यजनक प्रयोगशाला है जिसमें लगभग एक लाख वोल्ट की विद्युत शक्ति विद्यमान है। इतनी विद्युत शक्ति शरीर के जिस केन्द्र में गुप्त रूप से और रहस्यमय ढंग से विद्यमान है, वह केन्द्र है मूलाधार चक्र। जिन छः चक्रों की चर्चा की गई है--उनमें यह पहला चक्र है। इस चक्र में तीन महत्व पूर्ण नाड़ियों का संगम हैं। जहाँ वे आपस में मिलती हैं उस स्थान पर बाल से भी पतला एक तन्तु है। जिसकी लम्बाई लगभग एक इंच से भी कम है। उसी तन्तु मे वह विद्युत शक्ति अवस्थित है। तन्तु का रूप सर्प की कुण्डली की तरह होने के कारण योग शास्त्र में उसे कुण्डलिनी शक्ति कहा गया है। वह विद्युत शक्ति, कुण्डलिनी शक्ति है योग शास्त्र की।

तन्तु में विद्यमान विद्युत शक्ति तीनों महत्वपूण नाड़ियों द्वारा क्रमशः ऊपर के चक्रों में प्रविष्ट होती है और फिर वहाँ से शरीर की प्रत्येक कोशिकाओं में प्रवेश करती है। लेकिन उतनी ही मात्रा में प्रवेश करती है जितना की जीवन के लिए आवश्यक है।

अब आइए थोड़ा वैज्ञानिक दृष्टि से इस पर विचार करें। एक लाख वोल्ट विद्युत शक्ति से संचालित मानव शरीर कभी-कभी ऐसे विलक्षण क्रिया-कलाप कर गुजरता है जो शरीर विज्ञान की परिधि से मीलों दूर नजर आते हैं। किसी कारण वश यही विद्युत शक्ति अव्यवस्थित हो जाती है तो शरीर में विकराल शोलों के रूप में भड़क उठती है।

२० सितम्बर १९३८ को इग्लैण्ड के एक आलीशान होटल में एक नर्तकी नृत्य कर रही थी। तभी आश्चर्य चकित कर देने वाली घटना घटी। नर्तकी के शरीर में एकाएक नीले रंग की लौ फूटी और देखते ही देखते वह विकराल लपटों में परिवर्तित हो गई और कुछ ही क्षणों में नर्तकी का सारा शरीर जल कर भस्म हो गया।

निश्चय ही उस नर्तकी के शरीर में स्थित विद्युत शक्ति अव्यवस्थित हो गई होगी। जिसके फलस्वरूप उसका शरीर भस्म हो गया देखते ही देखते।

इसी प्रकार जुलाई १९५१ की एक घटना है। सेन्ट पीटर्सबर्ग, फ्लेरिडा में एक अस्सी वर्ष की स्वस्थ महिला के शरीर से भी नीली लौ फूटने लगी और देखते ही देखते उसके चारों ओर लपटों के रूप में फैल गई और कुछ ही क्षणों में वह महिला जल कर भस्म हो गई।

उक्त घटना की जाँच के लिए विश्व विख्यात विशेषज्ञ प्रोफेसर डा० विल्टन क्रोग मैन को नियुक्त किया गया। डाक्टर ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि यह घोर आश्चर्यजनक घटना है। विज्ञान के लिए यह अत्यन्त रहस्यमय है।

उपयुक्त दोनों घटनाएँ तो विदेश की है। अब अपने देश की भी एक घटना सुनिए। बिहार प्रान्त के जिला भागलपुर में घटी एक घटना का विवरण 'स्पांटेनियस ह्यूमन कम्बश्चन' में प्रस्तुत किया गया था। सूर्य ग्रहण के अवसर पर एक युवक चुपचाप बैठा सूर्य की ओर अपलक निहार रहा था और तभी अचानक उसके शरीर से नीली लौ फूट पड़ी और देखते ही देखते वह युवक राख के ढेर में बदल गया।

कभी कदा किसी व्यक्ति की शरीरस्थ उपर्युक्त विद्युत शक्ति, चुम्बकीय विद्युत शक्ति के रूप में परिवर्तित होकर सारे शरीर में फैल जाती है और उस व्यक्ति का सारा शरीर चुम्बक बन जाता है। फ्रान्स निवासी अट्ठावन वर्षीय यूरी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं। उनका सारा शरीर चुम्बकीय शक्ति से भरपूर है। वह पाँच फुट की दूरी से ही किसी भी धातु के सामान को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। इस प्रकार छुरी, काँटे, चम्मच, तवे, कड़ाही ही नहीं, बिजली के सामान तक उनकी देह से चिपक जाते हैं। यूरी की चिकित्सा प्रख्यात चिकित्सक डा० फूमिन की देख रेख में चल रही है। डा० फूमिन का कहना है कि इतना शक्तिशाली चुम्बकत्व अभी तक सामने नहीं आया था।

फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो० फ्रेडब्लेज ने अपनी पुस्तक 'दि बायोलाजिकल कण्डीशन्स क्रियेटेड बाय दी इलेक्ट्रिकल प्रापर्टीज ऑफ दी एटमासफियर' में मानव शरीर को चलते फिरते बिजली घर की संज्ञा देते हुए लिखा है कि यदि इसके विद्युत उत्पादन को प्रयोग में लाया जा सके तो इससे बड़े-बड़े टर्बाइन्स तक चलाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि इसे अन्तरंग प्रयोजनों में उपयोग किया जा सके तो मनुष्य दिव्य मानव बन सकता है।

प्रो० फ्रेंडब्लेजने जिस्मानी विद्युत भण्डार के व्यतिरेक को अत्यंत घातक बताते हुए लिखा है कि वह पलक झपकते ही शरीर को भस्मीभूत कर सकता है।

सुप्रसिद्ध लेखक चार्ल्स फोर्ट ने अपनी पुस्तक में ऐसी ही एक आश्चर्यजनक घटना का ब्योरा दिया है। ५ जनवरी १९२० को लंदन निवासी जान राइट की माँ अपनी नौकरानी के सम्पर्क में आकर बुरी तरह जल गई। ७ जुलाई को ऐसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। जान की माँ नौकरानी के साथ रसोई में काम कर रही थी कि तभी उसके शरीर से लपटें उठने लगी। मदद के लिए नौकरानी रसोई से बाहर भागी और उसके बाहर जाते ही जान की माँ के शरीर से उठती आग स्वत: शान्त हो गई।

कभी-कभी जिस्मानी विद्युत से कुछ ऐसे-ऐसे अजीबो-गरीब कारनामे हो जाते हैं कि लोग उन्हें सीधे-सीधे अदृश्य शक्तियों द्वारा या फिर भूत-प्रेतों द्वारा संचालित मान लेते हैं। सन् १९३२ के जनवरी माह के एक दिन नार्थ कैरोलिना के एक शहर में रहने

वाली एक महिला के कपड़ों में स्वत: आग लग गई। किन्तु आग तब तक न बुझी जब तक कि वह महिला कमरे के बाहर नहीं चली गई। इसी तरह की घटना की कई बार पुनरावृत्ति हुई। कुछ समय बाद उस महिला के कपड़ों में चुन-चुन कर आग लगने लगी। कभी उनकी आलमारी में रखे कपड़ों में तो कभी खूँटी पर टंगे कपड़े जल उठते। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस महिला के कपड़ों के अलावा और किसी भी वस्तु को आग छू तक न पाती भले ही वे उन कपड़ों के एक दम समीप ही क्यों न रखी हो। वह अग्नि काण्ड लगभग चार दिनों तक चला और फिर स्वत: समाप्त हो गया। वैज्ञानिकों ने इस की काफी गहराई से जाँच की। लेकिन वे किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँचे।

शारीरिक विद्युत का वैज्ञानिक रहस्य

शरीर में विद्युत प्रवाह क्यों और कैसे होता है? इस संबंध में गहन अध्ययन के बाद वैज्ञानिकों ने कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। कोलोराडो के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० डब्लू० पी० जेन्स तथा डा० नार्मलोंग ने विस्तृत जाँच के बाद निष्कर्ष निकाला कि मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका एक विद्युत घर है। कोशिका के नाभिक में बिजली प्रचण्ड मात्रा में संचित रहती है जो किसी अज्ञात कारणवश असन्तुलित हो जाने पर फूट कर बाहर निकलने लगती है और आग की लपटों में परिवर्तित हो जाती है। 'सोसायटी ऑफ फिजिकल रिसर्च' की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि शरीर की कोशिकाओं के नाभकीय आवरण ढीले पड़ने पर विद्युत प्रवाह उसे तोड़ता हुआ बाहर निकल आता है।

डा० ब्राउन के मतानुसार शरीर की प्रत्येक कोशिका एक सजीव और सक्षम पावर हाउस है। उनके अनुसार शरीर मे शारीरिक एवं मानसिक शक्ति के संचालन में जितनी बिजली खर्च होती है उससे एक कपड़े की बड़ी मिल चलाई जा सकती है। छोटे बच्चे के जिस्म में संचित विद्युत यदि उपयोग में लाई जा सके तो उससे रेलगाड़ी का एक इंजन चल सकता है।

नीली लौ का यौगिक रहस्य

जैसे एक लाख वोल्ट विद्युत शक्ति के छल्लेदार तन्तु में रहस्यमय ढंग से विद्यमान रहने के कारण योग की भाषा में उसे 'कुण्डलिनी' शक्ति कहते हैं। उसी प्रकार नीली लौ को योग की भाषा में 'नील ज्योति' कहते हैं। वास्तव में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति जब जागृत होती है तो सर्व प्रथम वह आज्ञा चक्र में नील वर्ण ज्योति के रूप में प्रकट होती है। नील ज्योति के अविर्भूत होते ही उसकी प्रचण्ड उष्मा के प्रभाव से योगीगण समाधिस्थ हो जाते हैं और उसी समाधि की अवस्था में वे नील ज्योति के प्रकाश में एक ही समय में विश्व दर्शन करते हैं। उनके सामने उस अवस्था में सम्पूर्ण विश्व बिम्बवत् भासता है।

कुण्डलिनी शक्ति रूपा उस प्रचण्ड विद्युत शक्ति को उपनिषद में नाचिकेत अग्नि कहा गया है। वह नाचिकेत अग्नि ही आत्माग्नि है।

(विस्तृत अध्ययन के लिए देखें--कुण्डलिनी शक्ति)

मरणोपरान्त अनुभूतियों की प्रामाणिकता

मृत्यु के पश्चात् तत्काल होने वाली अनुभूतियों के विषय में मैंने पिछले प्रकरण में प्रसंग वश कुछ चर्चा की थी। उस चर्चा के अन्तर्गत मार्था की कथा तो दूसरों को एक राह दिलाने पर ही समाप्त हो गई थी। पर अमरीका के एक गर्वनर श्री डेविड की ४० वर्षीया पत्नी बारबरा की अनुभूतियों ने तो अपनी प्रामाणिकता तक सिद्ध कर दी।

बारबरा को सन् १९७१ मे फेफड़े में खून जमने के कारण वाशिंगटन के अस्पताल में भर्ती होना पड़ा था। जहाँ उपचार करते समय ही उनकी मृत्यु हो गई। मगर डा० पेन के प्रयासों ने उन्हे पुनर्जीवित कर दिया। मृत्यु के समय हुई अनूभूतियों के संबंध में उन्होंने बतलाया कि अचानक मेरा अस्तित्व हवा में तैरने लगा। मैं शान्त थी। वह अनुभूति अति सुखदाई थी। मैंने अपना शरीर बिस्तर पर पड़ा देखा। पर मैंने उससे अपने आप को बिल्कुल अलग अनुभव किया। मुझे इसकी जरा सी भी परवाह नहीं थी कि लोग मेरे शरीर के साथ क्या कुछ कर रहे थे। मैंने देखा--डा० पेन मेरी छाती की मालिश कर रहे थे। और मैं हैरान थी कि वे इतनी मेहनत क्यों कर रहे हैं। मैं तो पूरी तरह प्रसन्नावस्था में थी। इतने में मैंने देखा--एक अपरिचित व्यक्ति आया और उसने मेरे सीने में एक सूई लगाई। जब उसने सूई निकाली तभी एक नर्स मेरी ओर बढ़ी, कि हड़बड़ी में उसने उस खम्भे को ठोकर मार दी जिस पर खून की बोतल टँगी हुई थी। मैंने देखा वह खम्भा मेरे बिस्तर पर गिरा और बोतल मेरे चेहरे से टकराई। पर मुझे बोतल की ठोकर की परवाह नहीं थी। और न ही मुझे उससे चोट लगने का ही एहसास हुआ। तभी मुझे एक अजीब अनुभूति हुई, मुझे लगा कि मैं अपने भाई के पास पहुँच गई हूँ। जिसकी मृत्यु पिछले साल हुई थी।

बारबरा ने बतलाया कि जैसे ही वह अपने भाई को देखने के लिए मुड़ी कि तभी उसे डा० पेन की आवाज सुनाई दी, वे जोर-जोर से बोल रहे थे--जोर से साँस लो.....बारबरा फिर से साँस लो।

नहीं, नहीं डा० पेन आप मुझे जोर से साँस लेने के लिए विवश मत कीजिए। बारबरा अपने सीने से उठती हुई पीड़ा से कराह उठी। मुझे उस स्वर्ग से अलग मत करिए। मैं पुनर्जीवित नहीं होना चाहती।

बारबरा के इस मामले में उल्लेखनीय बात यह है कि डा० पेन ने ठीक उसी प्रकार उपचार किया था जैसा कि बारबरा ने देखा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बोतल के खम्भे के गिरने से लगी चोट का निशान बारबरा की आँख के पास था। बारबरा ने दूसरे डाक्टर को सीने में सूई लगाते हुए भी देखा था। बारबरा जब अचेत और मृत प्रायः अवस्था में पड़ी थी तो वह क्या था! जिसने बारबरा को चेतना के माध्यम से सारी गति विधियों का अवलोकन कराया।

यदि मृत्यु के बाद व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो बारबरा के अनुभव इतने सच क्यों है? यही वह स्थान है, जहाँ आत्मा के विषय में और उसके अस्तित्व के संबंध में हम सोचने समझने के लिए बाध्य हो जाते हैं। खैर यह तो प्रामाणिक अनुभूतियाँ हैं। लेकिन कुछ अनुभूतियाँ नितान्त व्यक्तिगत होती हैं। जिनका प्रमाण खोजने पर भी नहीं मिलता। इस संबंध में हम यहाँ एक उदाहरण दे रहे हैं।

मरणोपरान्त एक अविश्वसनीय पारलौकिक अनुभव

वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का युवा सदस्य था। नाम था बृज बिहारी। साम्यवादी होने के कारण वह द्वाद्वात्मक भौतिकवाद में विश्वास करता था। अन्धविश्वास में उसे जरा सी भी आस्था न थी। लेकिन एक बार गम्भीर बीमारी के दौरान उसने जो कुछ अनुभव किया उसने उसे काफी परेशान कर दिया। कुछ क्षणों के लिए उसकी हृदय गति बन्द हो गई थी। उसी समय उसे लगा कि जैसे वह आकाश में उड़ रहा है और हवा के समान हल्का हो गया है। उड़ते-उड़ते वह एक बहुत ही सुन्दर और रमणीक स्थान पर पहुँच गया है। वहाँ के वातावरण में उस समय मधुर संगीत लहरी तैर रही थी। उसे सब कुछ इतना सुखद और आनन्द दायक लगा कि वह एक प्रकार से सम्मोहित सा हो गया। पर अचानक ही सब कुछ गायब हो गया। डा० उसे इस संसार में वापस लाने में सफल हो गए थे। पर उसे ये सब गवाँ कर काफी दुख हुआ था।

इस दुनियाँ से कहीं वह दुनियाँ सुन्दर है

इसी सन्दर्भ में हम एक दूसरा उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं। वह एक किसान था। नाम था राम सेवक कुर्मी। उसकी आयु लगभग साठ वर्ष की थी। वह एक लम्बी बीमारी के दौरान कुछ समय के लिए मर गया था। उस अवधि में वह एक भव्य महल में पहुँच गया था। जो सोने चाँदी का बना हुआ था और जिसकी दीवारों पर माणिक जड़े हुए थे। दरवाजों और खिड़कियों पर रेशमी पर्दे झूल रहे थे। महल के सामने एक सुन्दर सा तालाब था। जिसके निर्मल जल में आभूषण पहनी हुई कई सुन्दर कमनीय युवतियाँ स्नान कर रही थीं। तालाब के किनारे एक बड़ा सा मण्डप था। वह आनन्द के सागर में डूबा हुआ ही था कि जैसे किसी ने उसे जमीन पर पटक दिया हो। वह झल्ला उठा था और उसके मुँख से ये शब्द निकल गए थे। तुमने मुझे क्यों बचा लिया?

जैसे मरणोपरान्त अनुभवों के प्रसंग में जिन पात्रों का अब तक उल्लेख किया है। उनमें कुछ भारतीय हैं और कुछ हैं विदेशी। भारतीय पात्रों की मरणोपरान्त अनुभूतियाँ स्वर्ग जैसे किसी परलोक की ओर संकेत करती हैं। इस संबंध में यहाँ यह आलोचना हो सकती है। उन भारतीय पात्रों के अवचेतन में कल्पनामय धार्मिक मिथकों का अवशेष रहा होगा और उसकी ही प्रतिछवि मरणोपरान्त अनुभूतियों के रूप में प्रकट हुई होगी। जिनका कोई प्रमाण नहीं है। पात्र ही उनके एकमात्र साक्षी हैं। सम्भव है उन अनुभूतियों का कारण धार्मिक अथवा वैचारिक मिथक ही हो। मगर इससे आत्मा की सत्ता पर किसी

प्रकार का आक्षेप नहीं होता। आत्मा के अस्तित्व को कहीं न कहीं हमें स्वीकार करना ही होगा। जैसकि मैंने ऊपर संकेत किया है यदि मृत्यु के साथ व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व समाप्त हो जाता तो वह कौन-सी वस्तु थी जिसने मार्था और बारबरा से संबंधित घटनाओं को देखा था और अनुभव किया था और मार्था व बराबरा के मुँह से उनका वर्णन भी किया था। इससे यह सिद्ध होता है और प्रमाणित भी होता है कि कोई अदृश्य सत्ता घटनाओं की एक मात्र द्रष्टा है और है साक्षी। जिसे हम आत्मा की संज्ञा देते हैं (आत्मा के विषय में आगे विस्तृत चर्चा की जाएगी)

मरणोपरान्त अनुभूतियों के संबंध में मैंने जो शोध कार्य किया है। उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि जहाँ तक पारलौकिक जगत का प्रश्न है उसके अस्तित्व को साफ इन्कार नहीं किया जा सकता। उसका अस्तित्व है। उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं, अब तो वैज्ञानिकों ने भी पारलौकिक जगत की सत्ता को स्वीकार कर लिया है। उनका कहना है कि इस दुनियाँ से कहीं वह दुनियाँ सुन्दर, रमणीक और आकर्षक है। मगर वह है कहाँ? यह नहीं बतलाया जा सकता। हाँ, एक बात अवश्य है और वह यह कि मनुष्य की जैसी विचार धारा, व्यक्तिगत धारणा, और जैसा उसका धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार होता है उसी के अनुसार मरणोपरान्त उसे अनुभव होता है और होता है परलौकिक जगत का साक्षात्कार भी। इस प्रसंग में पश्चिम के ही एक भाग के मरणोपरान्त अनुभवों को प्रस्तुत करूँगा।

वह अज्ञातरहस्यमय प्रकाश और वे अपरिचित लोग

अमेरीका की ३६ वर्षीया अध्यापिका श्रीमती आइरिस जेलमैन की तबीयत खराब थी। अचानक उनको दिल का दौरा पड़ा और वे मर गईं। मृतावस्था में उन्होंने सुना डाक्टर कह रहा था--मैंने इसे खो दिया। जेलमैन ने आगे बतलाया कि मुझे लगा जैसे कोहरे जैसी किसी धुन्ध से मेरा सारा शरीर घिर गया है। और मैं छत की तरफ उठ रही हूँ। पहले तो उस अपरिचित धुन्ध के कारण मैं कुछ देख न पाई। फिर मैंने पाया कि मैं बिस्तर पर पड़े अपने शरीर को देख रही हूँ। मैं हैरान थी कि मैं तो होश में हूँ फिर यह सब क्या है? फिर मैंने पाया कि मैं एक लम्बी अन्धकारमयी गुफा जैसे सुरंग के भीतर चली जा रही हूँ। मैं दूर दिख रहे एक उज्जवल प्रकाश की ओर बढ़ रही थी। और कुछ सम्मोहक आवाजें मेरे कानों में पड़ रही थी। उस उज्जवल प्रकाश में एकाकार होने के लिए मैं तेजी से आगे बढ़ी चली जा रही थी। और तभी अचानक मुझे अपने पति का ख्याल आया और उनकी याद मुझे सताने लगी। मैं समझ रही थी कि या तो मैं उस प्रकाश में लीन हो जाऊँगी या फिर वापस लौट जाऊँगी। कुछ अजीब सी आकृतियाँ मेरे चारों ओर चक्कर काट रही थीं। मैं रुक गई। मैंने वापस लौटने का निर्णय कर लिया था। इतने में मेरे कानों में एक गम्भीर आवाज टकराई--तुमने ठीक निर्णय लिया है। तुम लौट जाओगी और मैंने आँखें खोलीं। तो देखा मेरे सामने डाक्टर खड़े थे।

मरणोपरान्त मृत परिचितों और संबंधियों से भेंट

मरने के बाद मनुष्य में विशेष रूप से दो मोह रहते हैं। पहला अपने पार्थिव शरीर के प्रति मोह और दूसरा अपनी किसी खास वासना के प्रति मोह अथवा आकर्षण यदि पहला मोह विशेष रूप से प्रबल है तो मनुष्य तत्काल किसी गर्भ में प्रवेश कर शरीर को उपलब्ध हो जाता है। भले ही वह गर्भ उसके कर्म और संस्कार के अनुकूल न हो इसी प्रकार यदि दूसरा मोह प्रबल है तो वह पारलौकिक सत्ता में तब तक अपना अस्तित्व बनाए रखेगा जब तक कि उसकी वासना क्षय नहीं हो जाती।

वासना लोक में मनुष्य अपने को अकेला और निस्सहाय अनुभव करता है। ऐसी अवस्था में कोई उसका सगा संबंधी मर कर वहाँ पहुँच जाता है और उससे मिलता है तो उसको काफी सुख और राहत मिलती है और वह समझने लगता है कि ऐसी एकाकी स्थिति में उसका कोई संबंधी उसके पास है।

इसी प्रकार मरने वाले किसी मनुष्य के सगे संबधी या परिचित वासना लोक में रहते हैं तो मरने के बाद उस मनुष्य से वे लोग वहाँ मिलते हैं। बातें करते हैं और नई परिस्थितियों से उसे परिचित भी कराते हैं। लीजिए इस सन्दर्भ में दो एक उदाहरण।

और जब वह अपनी माँ की गोद में समा गया

उसका नाम था मुरारी। रक्तदोष की भयानक बीमारी से पीड़ित था वह। मृत्यु शैय्या पर पड़ा था। उसकी माँ काफी साल पहले मर चुकी थी। मुरारी को अपनी माँ से काफी लगाव था। एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरा समय पूरा हो गया है। माँ मुझे बुला रही है। वह देखो सामने खड़ी दोनों हाथ पसारे बुला रही है मुझको। इतना कहते हुए वह एक तरफ लुढ़क गया। निश्चय ही अपनी माँ की गोद में हमेशा के लिए समा गया था।

मरणोपरान्त ऐसी अनुभूतियों के परिणाम लाभदायक भी सिद्ध होते हैं। अमरीका की एक अधेड़ महिला निमोनिया से पीड़ित थी। वह मरणासन्न अवस्था में चेतना शून्य थी। बाद में जब उसकी चेतना वापस लौटी तो उसने बतलाया कि वह स्वर्ग में पहुँच गई थी। वहाँ कई मकान बने थे। मगर एक मकान अधूरा था। जो दूत मुझे वहाँ ले गया था उससे मैंने पूछा कि यह मकान अधूरा क्यों है? उन्होंने जबाब दिया कि यह मकान तुम्हारे लिए है। पर अभी पूरा नहीं बना है। इसलिए कि तुम्हारे दिन अभी पूरे नहीं हुए हैं। तुम्हें अपने बेटे की शादी कर देनी चाहिए। जब तुमको पौत्र होगा तब उसके बाद तुम्हारी मृत्यु होगी। इतने में वह महिला वापस लौट आई और कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गई। उसने अपने बेटे की शादी की । जब पौत्र हुआ तो उसके जन्म के तीन मास बाद मृत्यु हुई।

मरणोपरान्त स्वयं की एक अविश्वसनीय अनुभूति :

इस प्रसंग के अन्त में मैं अपनी एक अविश्वसनीय अनुभूति लिपिबद्ध कर आप के सामने रख रहा हूँ। निश्चय ही उसी अनुभूति से प्रेरित हो कर मैंने जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म और परलोक विज्ञान के जटिल व रहस्यमय विषय में शोध एवं अन्वेषण कार्य का निर्णय किया था और बाद में मरणोत्तर जीवन का रहस्य शीर्षक पुस्तक भी लिखी थी।

आत्मा अमर है। अविनाशी है। सभी अवस्थाओं में उसका अस्तित्व बना रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। आत्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को उपलब्ध होती है। इसमें भी सन्देह नहीं। आत्मा द्वारा परकाया प्रवेश की अद्भुत अविश्वसनीय और रोमान्चकारी घटनाएँ भारतीय योगियों के जीवन में घटी हैं यह भी सर्व विदित है। आत्मा के मुक्त विचरण संबंधी विविध प्रकार के स्वानुभव अनेक तिब्बती और भारतीय योगियों को हुए हैं इसे भी स्वीकार करना पड़ेगा। आत्मा का परकाया प्रवेश और आत्मा के पुनर्जन्म को प्रमाणित करने वाली कई सत्य घटनाएँ भी प्रकाश में आई हैं। पुनर्जन्म को सिद्ध करने वाली और मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की वासना में लिप्त आत्मा को अतृप्त अवस्था में भटकने की बातें भी हिन्दू दर्शन साहित्य में पाई जाती हैं।

सन् १९५० का नवम्बर महीना था। उस महीने की १८ ता० मुझे हमेशा याद रहेगी। वह दिन मेरे जीवन का एक अद्भुत और अलौकिक दिन था। उस दिन मैंने आत्मा की अमरता का अनुभव किया था। और अनुभव किया था मृत्यु के क्षणों का भी। मृत्यु के बाद किन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है उसके अनुभवों ने ही मुझे जीवन को देखने और समझने का नया दृष्टिकोण दिया। उसने ही मेरे सामने जीवन का सारा रहस्य भी खोल दिया। और बाध्य कर दिया जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म के विषय में एक नए तरीके से सोचने समझने के लिए भी मुझे।

उस दिन अचानक मेरे सीने में दर्द होने लगा। सोचा वायु के कारण दर्द हो रहा होगा। दो-चार मिनट में दूर हो जाएगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। दर्द बढ़ता ही गया। जब वह असह्य होने लगा तो अपने एक मित्र से जिनका नाम चन्द्रशेखर स्वामी था, कहा-- शीघ्र किसी डाक्टर को बुलाने का प्रबंध करो। मेरी तबीयत काफी घबड़ा रही है। चन्द्रशेखर स्वामी वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे और उस समय कहीं जाने की तैयारी में थे। उन्होंने मेरी बात सुन कर डाक्टर की व्यवस्था की। मेरा दर्द बढ़ता ही जा रहा था। सारा शरीर पसीने से भींग उठा था। कुछ क्षण बाद मेरे सभी अंग शिथिल पड़ने लगे। ऐसा लगा शरीर में रक्त ही नहीं रह गया है। एका-एक मेरे अन्तर्मन में ऐसा विचार उठा--बस अब चलने की तैयारी है। अब मेरी जीवन यात्रा समाप्त है। आज का दिन मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। ये विचार आते ही मुझे अपने शरीर के प्रति मोह होने लगा। और आकर्षण भी बढ़ गया। बस बार-बार यही सोचने लगा कि अब मुझसे यह शरीर और यह संसार छूट जाएगा। कल का सूरज न देख सकूँगा मैं। मेरी स्थिति देख कर

मेरे मित्र और परिवार के लोग चिन्तित और दुखी हो उठे। मृत्यु की काली छाया ने मुझे घेर लिया था, मैंने बोलना चाहा मगर बोला न गया मुझसे। निकट खड़े लोगों के चेहरे स्याह पड़ गए थे। वे सभी गहरे शोक में डूबे हुए थे। मैं अपने निकट खड़े स्वामी जी से कहना चाहता था कि मेरी अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत कराना, ताकि प्रेत योनि से मुक्ति मिल सके। न जाने कब मैं चेतना शून्य हो गया और न जाने कब मेरी आत्मा शरीर से अलग हो गई। मेरा शरीर चारपाई पर निश्चेष्ट पड़ा था। भावहीन चेहरा काला पड़ गया था। सभी उपस्थित लोगों की आँखें आँसुओं से भींग रही थीं।

मैं सोचने लगा--जो होना था--वह तो हो गया। अब मैं वापस न लौट सकूँगा संसार में। लौटने का बस एक ही रास्ता है और वह है पुनर्जन्म। मैं अपने को काफी थका--थका अनुभव कर रहा था और साथ ही हल्का भी। उसी समय मैंने डाक्टर कपूर को देखा। उन्होंने ३०-३५ मिनट उपचार किया और फिर उन्होंने द्रवित होकर मुझे मृत घोषित कर दिया।

मैं कमरे में एक ओर खड़ा यह सब देख रहा था। मेरा पार्थिव शरीर बिस्तर पर शव के रूप में पड़ा हुआ था। मुझे अपने मृत शरीर को देख कर पहले मोह हुआ लेकिन दूसरे क्षण सोचने लगा कि मुझे इस शरीर की अब क्या आवश्यकता? इसके प्रति अब क्यों मोह? मैं तो अब इसके बिना भी जीवित हूँ। यह भाव उत्पन्न होते ही मेरे सामने से सारे भौतिक दृश्य गायब हो गए। न कमरा था। न मृत शरीर था और न तो थे कोई अपने सगे संबंधी ही। इतना ही नहीं भौतिक जगत और जीवन से संबंधित सारी स्मृति भी लुप्त हो गई मेरी। अब मेरे चारों तरफ कुहरा जैसा छाया हुआ था। लगा जैसे मैं कुहरे के घने बादलों के भीतर तैर सा रहा हूँ। उसी अवस्थामें दो दिव्य पुरुष आए और मेरे अगल-बगल चुपचाप खड़े हो गए। वे दोनों मानवाकृति में थे तो अवश्य, लेकिन उनमें विलक्षणता भी थी। उनके कान काफी बड़े थे। आँखे लम्बी और पलके स्थिर थीं। माथा काफी चौड़ा था। सिर मुड़ा हुआ था। शरीर इकहरा और रंग नीला था। लम्बाई आठ फुट से कम न रही होगी। मैं उनके सामने बौना सा लग रहा था। और उनके शरीर पर पीतवर्ण का रेशमी वस्त्र था। उनके नीलवर्ण शरीर पर पीतवर्ण का रेशमी वस्त्र था। और उनके शरीर से दिव्य गन्ध निकल रही थी।

वे दोनों दिव्य पुरुष मुझे अपने साथ लेकर आकाश में चलने लगे। उनके चलने की गति तीव्र थी। मैं भी उसी गति से चल रहा था। मेरा शरीर कैसा था यह तो बतला नहीं सकता लेकिन मैं अपने आप में काफी हल्कापन और अत्यधिक स्फूर्ति का अनुभव कर रहा था। कुछ ही देर में मैं उन दोनों व्यक्तियों के साथ काफी दूर निकल गया। चारों तरफ नजर घुमाकर मैंने देखा सर्वत्र गहरी नीलिमा फैली हुई थी। दिशाएँ मौन और उदास लग रहीं थी। अब मैं जहाँ था-वहाँ सामने विशाल सागर फैला हुआ था। जिसका पानी सुनहला था। वातावरण में गहरी निस्तब्धता और अपूर्व शान्ति थी। मैंने देखा उस विशाल

सागर के ऊपर कई पाषाण खण्ड तैर रहे थे। वे कितने लम्बे चौड़े और विशाल थे, यह मैं नहीं बतला सकता। सभी पाषाण खण्डों पर काफी ऊँचे लम्बे चौड़े महल बने हुए थे। सभी महल पारदर्शक और प्रकाशवान थे। उनके सामने सुन्दर पुष्पों और फलों के बाग थे। असीम शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था मुझे। उसी समय मैंने देखा कि एक जगमगाता हुआ प्रकाश पुंज मेरे समीप आ रहा है। मेरी आँखे चकाचौंध हो गईं। बाद में स्पष्ट हुआ विविध प्रकार के रत्नों से जीड़ित बहुत ही सुन्दर और आकर्षक विमान था वह, उस विमान का आकार-प्रकार इतना अद्‌भुत था कि उसका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव सा है। मेरे पास वर्णन के लिए शब्द ही नहीं हैं, विमान के भीतर सुनहला प्रकाश फैल रहा था। मैंने देखा--विमान के भीतर रत्न मण्डित सोने का एक सिंहासन था। जिस पर एक लावण्यमयी सुन्दर युवती पद्मासन की मुद्रा में बैठी हुई थी। उस युवती के बगल पाँच छ: सुन्दर षोडशी कन्याएँ खड़ी पुष्पमाला गूँथ रही थीं। वह सम्पूर्ण दृश्य देखकर भाव विभोर हो गया मैं। मेरे साथ वाले एक व्यक्ति ने बतलाया कि यह दिव्यलोक है और सिहांसन पर बैठी देवी इस दिव्यलोक की स्वामिनी है।

सहसा उस देवी ने मेरी ओर देखकर मेरे साथ के व्यक्तियों को कोई संकेत किया और उनका संकेत पाते ही उन दोनों व्यक्तियों ने मुझे कस कर पकड़ लिया और आकाश मे उड़ चले। मैं बीच में था और वे दोनों मेरे अगल-बगल थे। उनके साथ तीव्र गति से उड़ रहा था मैं। उड़ते समय मुझे बार-बार रोमाञ्च हो रहा था। बड़ी ही अद्‌भुत और आनन्द-दायिनी अवस्था थी मेरी उस समय। जब मैं पाषाण खण्डों के ऊपर बने सुन्दर महलों के समीप से गुजर रहा था-उस समय मेरे कानों में वाद्ययंत्रों के मधुर स्वर पड़े। मैंने पूछा--यह कैसी ध्वनि है? यह कैसा स्वर है?

उत्तर मिला देवलोक में संगीतोत्सव हो रहा है। थोड़ी दूर और जाने के बाद सामने एक अद्‌भुत दृश्य दिखाई दिया। मानव सदृश अनगिनत ज्योतिर्मयी आकृतियाँ चारों तरफ घूम रही थीं। मेरे पूछने पर पता चला कि वे स्वर्ग लोक की दिव्य आत्माएँ हैं। जो धरती पर जन्म लेने के लिए अनुकूल गर्भ की प्रतीक्षा में भटक रही हैं।

अब मैं धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा था। थोड़ी देर बाद मैंने देखा अथाह समुद्रों को अपने आँचल में समेटे पृथ्वी तीव्र गति से घूम रही है। उसी क्षण मुझे यह भी अनुभव हुआ कि मैं अपने मृत शरीर में प्रवेश कर रहा हूँ और मेरी सुषुप्त चेतना धीरे-धीरे लौट रही है। मेरी आँखें बन्द थीं। उस समय जब मैं पूर्ण रूप से चैतन्य हुआ तो सब कुछ स्वप्नवत् लग रहा था। जैसे मुझे पुनर्जन्म प्राप्त हो गया हो। मेरी आत्मा की परलोक यात्रा समाप्त हो चुकी थी। अब वह मेरे पार्थिव शरीर में पुन: प्रवेश कर पार्थिव जगत में अवतरित हो गई थी।

मैंने आँखें खोली और चारों तरफ सिर घुमाकर देखा। मेरी अन्तिम क्रिया की तैयारी पूरी हो चुकी थी। कुछ ही देर बाद मेरे शव को श्मशान में ले जाने वाले थे लोग। मगर मुझे पुनर्जीवित होने में थोड़ी सी देर हो गई होती तो आज अपना अनुभव आप को सुनाने के लिए संसार में न रहता।

मृत्यु और चिकित्सा विज्ञान

मृत्यु क्या है? साधारण तौर पर कहा जाए तो जीवन के सभी लक्षणों की समाप्ति। जब चिकित्सा विज्ञान की इतनी प्रगति नहीं हुई थी तब मृत्यु की घोषणा करना अत्यन्त दुखदाई रूप से सरल और सहज होता था। हृदय की धड़कन बन्द हो गई। साँस रुक गई और मनुष्य मृत घोषित। लेकिन अब यह सन्देहास्पद निश्चिन्तता समाप्त हो गई। इसलिए कि चिकित्सा विज्ञान ने हृदय और फेफड़ों को पुन: सक्रिय रखने के निमित्त यांत्रिक तरीकों का अविष्कार कर डाला है। अत: अब मृत्यु की घोषणा के लिए चिकित्सा शास्त्रियों को मस्तिष्क टटोलना पड़ता है।

जब मस्तिष्क काम करना बन्द कर देता है तो मनुष्य कार्यशील नहीं रह जाता है और किसी उद्दीपन के लिए वह कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाता है। मस्तिष्क बौद्धिक कार्यों के अतिरिक्त स्पर्श, गन्ध, दृष्टि, श्रवण तथा प्रेरक प्रक्रिया के साथ साथ चेतना तथा श्वसन जैसे जीवन के अनिवार्य कार्यों का भी नियन्त्रण करता है। चेतना तथा श्वसन से संबंधित भाग मस्तिष्क सेतु में होते हैं–जो मस्तिष्क के पिछले हिस्से में होता है और मस्तिष्क के मुख्य खण्डों को सुषुम्ना से जोड़ता है। चिकित्सा विज्ञान की हाल की प्रगति से गहन देख-रेख इकाईयाँ बनी हैं। और उनकी सहायता से ऐसे रोगियों को भी जीवित रखा जा सकता है जिनका मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो चुका है उसके ठीक होने की कोई सम्भावना नहीं। यह सम्भव हुआ है रेस्पिरेटर नाम यंत्र से । जो रक्त में पर्याप्त आक्सीजन के मिश्रण का (फेफड़ों का काम) कार्य सही ढंग से पूरा करते है। हालाँकि हृदय और फेफड़ों का काम इस तरह हमेशा हमेशा चलाया जा सकता है। लेकिन ऐसे रोगी के उद्दीष्ट होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। उसका मस्तिष्क मर गया है और उसके लिए ऐसा जीवन एक निष्क्रिय अस्तित्व बन कर रह जाता है।

मास्को की पुनर्जीवन प्रयोगशाला में मनुष्य को पुनर्जीवित होने की घटनाएँ प्राय: देखने को मिलती हैं। इस प्रयोगशाला के अध्यक्ष डा० ब्लादीमीर नेगोवस्की पिछले ४० साल से इस तरह के प्रयोग कर रहे हैं कि मरते हुए व्यक्ति को दुबारा जीवित किया जा सके। उनका दावा है कि सामान्य मनुष्य की शरीर रचना ऐसी है कि उसे १५० वर्ष तक बेरोक-टोक चलना चाहिए। नेगोवस्की की प्रयोगशाला १९३६ में स्थापित हुई थी। प्रयोगशाला में मूल्यवान दवाओं, अत्याधुनिक उपकरणों तथा शल्य क्रिया की आधुनिकतम व्यवस्था है। मरणासन्न व्यक्ति को पुनर्जीवन देने वाले विज्ञान को सोवियत संघ के बाहर भी विश्व भर में अत्यन्त अचरज के साथ देखा जाता है। जहाँ भी पुनर्जीवन पर शोध कार्य हो रहे हैं वहाँ के चिकित्सक इस प्रयोगशाला में आकर चकित हो उठते हैं। सोवियत संघ के कई नगरों में अब तक २०० ऐसे पुनर्जीवन केन्द्र खोले जा चुके हैं। जिनमें प्रशिक्षित डाक्टर कार्य करते हैं।

डा० नेगोवस्की मरणासन्न की लाक्षणिक मृत्यु की अवधि को तीन घंटे तक बढ़ाने में सफल हुए हैं। वे मृत्यु का कोई एक क्षण नहीं मानते, बल्कि उनके अनुसार मृत्यु होने

की पूरी प्रक्रिया होती है, पूरी और स्वाभाविक प्रक्रिया। जीवन समाप्त होने और मृत्यु के होने के बीच की अवधि ही लाक्षणिक मृत्यु है। इस अवधि में यह पूरी तरह सम्भव है कि मृत्यु को जीवन में बदला जा सके। यानी मरणासन्न को पुनर्जीवित किया जा सके। अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि मृत्यु होने पर शरीर की अनिवार्य क्रियाएँ एक साथ नहीं रुकती। सबसे पहले प्रमस्तिष्क कांटेक्स का कार्य रुकता है। जिसके फलस्वरूप चेतना, देखने, सुनने, समझने, पहचानने, बोलने आदि की शक्तियाँ जाती रहती हैं। फिर मस्तिष्क सेतु काम करना बन्द करता है उसके बाद श्वास प्रणाली, तदुपरान्त हृदय बाद में दूसरे अंग। उनके अनुसार मृत्यु कोई रहस्यमय चीज नहीं है। यह तो अनेक जैविक घटनाओं की तरह ही एक जैविक घटना है। जिसे पलटा जा सकता है। मृत्यु से जीवन की ओर मरणोपरान्त अनुभवों के संबंध में डा० नेगोवस्की का कहना है कि ये अक्सर रुग्ण मस्तिष्क की उपज हैं। मृगतृष्णा की तरह छलावा है। उनकी व्याख्या है कि मरते समय चेतना धीरे-धीरे लुप्त होती है। इसी प्रकार पुनर्जीवन के समय मस्तिष्क धीरे-धीरे सचेत होता है। ये सब धुँधली मायावी भ्रान्त धारणाएँ और कल्पनाएँ दिमाग के ठीक से काम न करने के कारण होती हैं। इनका कोई ऐसा आधार नहीं है और ये मृत्यु के समय नहीं बल्कि मरने और जीवन में वापस लौटने के दौरान होती हैं। कुछ भी हो डा० नेगोवस्की के ये प्रयोग चिकित्सा के इतिहास में आश्चर्यजनक उपलब्धि हैं और मानव जीवन के लिए नई आशाएँ जगाने वाले भी।

मेरा जीवन दर्शन तो यह है कि प्रत्येक जीवन को मरना है देर-सबेर। इसलिए मृत्यु को एक दार्शनिक रूप में लेना चाहिए। उतनी ही स्वाभाविकता से जितनी कि जीवन को। यदि हम मृत्यु से जुड़े भय को त्यागकर उसे एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में देखें तो जीवन को एक नया अर्थ मिलेगा।

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं

महाकवि विलियम ब्लेक माइकेल एंजिलो और मोजेज आदि की मृतात्माओं से बातचीत किया करते थे। रात की शांत स्तब्ध घड़ियों में, अपनी एकांत शैय्या में अकेले जागते हुए, शताब्दियों पहले गुजरे व्यक्तियों से उनकी निसंदेह भेंट होती थी, क्लीओपेट्रा की मृतात्मा से उनकी बातचीत होती थी, और 'ब्लेक प्रिंस' उनके सामने बैठकर अपनी तस्वीर खिंचवाता था। मध्य रात्रि के प्रहरों में ही प्रसिद्ध महापुरुषों की मृतात्माएँ ब्लैक के पास आया करती थीं। कभी-कभी उनको भेंट अत्यन्त संक्षिप्त होती थी। लेकिन प्राय: ब्लेक जितनी देर चाहते, उतनी देर उन्हें अपने साथ रख सकते थे।

हॉलीवुड के फिल्म-जगत का पचहत्तर साल पहले का जमाना 'रुडोल्फ वेलेन्तीनों-युग' कहा जाता है। वेलेन्तीनों एक महान कलाकार, साहसी अभिनेता और उत्कट महिला-प्रेमी पुरुष था। १९२६ में अचानक उसके जीवन की डोर कट गई। उसके प्रंशसक संसार भर में फैले हैं। उन्हीं में से एक हैं इग्लैंड का लेसली फिंलट। फिंलट ने

वेलेन्तीनों की जीवनी पढ़ी और उससे उसने जाना कि वेलेन्तीनों को मृतात्माओं तथा परा-जगत् की विद्याओं में गहरी रुचि थी। फ्लिंट ने भी प्रेत-विद्या का अभ्यास शुरु कर दिया और वह शीघ्र ही मृतात्माओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने का एक अच्छा माध्यम बन गया। १६४६ के आसपास फ्लिंट हॉलीवुड गया। वहाँ वेलेन्तीनों के अनेक पुराने मित्र अभिनेताओं और अभिनेत्रियों ने फ्लिंट से आग्रह किया कि हमारे साथ वेलेन्तीनों की बातचीत कराओ। वेलेन्तीनों की मृतात्मा ने फ्लिंट के मुँह से बोलना शुरु किया तो वातावरण में सन्नाटा छा गया। यह फ्लिंट की अपनी आवाज न थी, बल्कि वेलेन्तीनों की थी। उस आवाज में आज भी पहले जैसी मस्ती थी। उसकी एक प्रेमिका ने उससे पूछा कि क्या तुम्हें हमारी आखिरी मुलाकात याद है। वेलेन्तीनों ने तपाक से उत्तर दिया, हाँ, हाँ! क्यों नहीं। हम लोग आखिरी बार न्यूयार्क में मिले थे। मैं उस शाम तुम्हारा शो देखने गया था और उसके बाद हम दोनों एक रात्रि-क्लब में गए थे।

एक अन्य अभिनेत्री के साथ चर्चा में वेलेन्तीनों ने उसे हॉलीबुड के सागरतट की उस पार्टी का स्मरण कराया, जिसमें वे दोनों शामिल हुए थे और उन्होंने एक बाड़ पर बैठकर फोटो खिंचवाया था। यह सुनकर वह अभिनेत्री दंग रह गई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह फोटो उसने बहुत सँभाल कर अपने घर में लोहे के संदूक में रख छोड़ा है, स्मृति-चिन्ह के रूप में, वेलेन्तीनों को उसकी याद है, यह सोचकर उसका मन भर आया। वह फोटो उसके लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण धरोहर बन गई।

मृतात्माओं के साथ बात करना फ्लिंट का व्यवसाय नहीं है। दरअसल यह उसका शौक है और वह मरणोत्तर जीवन के रहस्यों को खोजना चाहता है। वेलेन्तीनों के मित्रों ने उसकी आवाज को टेप पर रेकार्ड कर लिया था। फ्लिंट के पास दो सौ से अधिक प्रसिद्ध व्यक्तियों की मृतात्माओं की आवाजों के रेकार्ड हैं, जिनमें प्रसिद्ध नाटक अभिनेता लायोनेल बेरीमोर, प्रख्यात संगीत रचनाकार फ्रेडरिक चोपिन और उन्नीसवीं शताब्दी का प्रसिद्ध अंग्रेज साहित्यकार आस्कर वाइल्ड भी है।

यदि यह मान लें कि मृत्यु से परे भी जीवन है तो सवाल यह उठता है कि मृत्यु के बाद आत्मा जाती कहाँ है। वह कहाँ रहती है, क्या करती है? यानि प्रेतलोक कैसा है? यह कहना तो संभव नहीं है कि प्रेतलोक कहाँ है और वहाँ मरने के सिवाय और किस तरीके से तथा किस रास्ते और सवारी के द्वारा जाया जा सकता है, लेकिन प्रेतलोक कैसा है और वहाँ मृतात्माएँ क्या करती हैं, यह जानकारी फ्लिंट के साथ सम्पर्क स्थापित करने वाली आत्माओं ने कराई है।

६ फरवरी, १६५७ को बड़े तड़के फ्लिंट ब्रिटिश सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी सिडनी बुड्स और एक अन्य मित्र श्रीमती बैटवें ग्रीन के साथ अपने घर के उस अँधियारे कमरे में बैठा था। जिसमें वह मृतात्माओं का आह्वान करता है तथा जिसमें वे स्वयं भी उसके साथ सम्पर्क करने पहुँच जाती थीं। अचानक फ्लिंट के मुँह से कोई अपरिचित स्वर फूटा, "हलो!"

श्रीमती ग्रीन ने अभिवादन किया, ''गुड मार्निंग।''

आवाज आई, ''आप लोगों के साथ बात करने का यह मेरा पहला मौका है। मेरा नाम लायोनेल बेरीमोर है।''

बेरीमोर की मृत्यु नवम्बर १९५४ में ७६ वर्ष की आयु में हुई थी। उसने कहना शुरू किया, ''जब मैं यहाँ यानी प्रेतलोक में आया तो मुझे याद पड़ता है कि मेरी चेतना एक तरह के बाग में लौटी थी। वैसा ही बाग, जिसका मुझे जवानी में बड़ा शौक था। आँख खोलते हीं मैंने अपने माता-पिता को अपने पास पाया। मेरी माँ अपनी जवानी के दिनों की तरह सुन्दर लग रही थी। उसके बाद मुझे अपने पूर्व-परिचित लोग मिले। मैं यहाँ युवावस्था में लौट आया हूँ, वहाँ तो बूढ़ा हो गया था। वहाँ मेरा पाँव खराब हो गया था, यहाँ ठीक है। मेरा कुत्ता भी यहाँ मेरे पास है, वही जो किशोरावस्था में मुझे बहुत प्रिय था। धरती पर मैंने कभी सोचा भी न था कि कुत्ते, बिल्ली और घोड़े में भी आत्मा होती है। और .....यहाँ पर मेरा भाई जान है। वहाँ हम बहुत लड़ते थे, यहाँ नहीं लड़ते। यहाँ कोई लड़ता ही नही है।''

सिडनी वुड्स ने बेरीमोर से पूछा कि वहाँ तुम समय कैसे बिताते हो। उत्तर मिला, ''थिएटर में मेरी रुचि ज्यों की त्यों कायम है। यहाँ हम लोग मनोरंजन करते हैं, लेकिन वह धरती की तरह का नहीं है। यहाँ प्रत्येक नाटक के पीछे कोई प्रयोजन होता है, लेकिन हमारे पास शेक्सपीयर के सभी नाटक हैं, नए नाटक भी हैं, धरती के नाटकों से कहीं अधिक महान नाटक। यहाँ मैं जीग फील्ड तथा अन्य नाटक निर्माताओं से मिला हूँ। शेक्सपीयर भी यहीं है। वह अब भी लिखता है, नाटक-निर्माता हैं और अभिनेता भी। यहाँ अनेक महान संगीत रचनाकार हैं। यहाँ का संगीत धरती के संगीत से बहुत भिन्न प्रकार का है।''

बिना वाद्य-यंत्र के संगीत

बेरीमोर द्वारा दी गई जानकारी १९ सितम्बर १९५९ को महान संगीत-रचनाकार चोपिन की आत्मा के साथ हुई बातचीत से प्रमाणित हुई। चोपिन एक कुशल पियानो-वादक भी था। उसकी मृत्यु अक्टूबर १८४९ में हुई थी।

चोपिन ने कहा, ''मैं बहुत बीमार था। बिस्तर से लग गया था। धीरे-धीरे सब कुछ दूर होता चला गया, और भी दूर, मानों मैं हर चीज से दूर हटता जा रहा हूँ। कुछ भी यथार्थ नहीं लग रहा था। तभी मुझे रोशनी दिखाई दी, पहले तो दिये की पतली लौ जैसी और बाद में खूब उजली। साथ में संगीत की स्वर-लहरी भी बज उठी। ऐसा संगीत मैंने उससे पहले कभी नहीं सुना था। बहुत शानदार संगीत था वह। इतने में मुझे लगा कि मैं एक बड़ी इमारत में आ गया हूँ, जहाँ लोग ही लोग हैं तथा चारों ओर तेज रंगों की चमक है। इसमें से बहुतों को मैं जानता था। कई एक तो मेरी जवानी के घनिष्ठ मित्र थे। मैं लोगों के बीच चलता रहा, मानों मुझे मालूम हो कि मुझे कहाँ जाना है। मैं एक विराट

और शानदार भवन में जा पहुँचा, जिसके एक बड़े कमरे में एक विराट व्यक्ति मंच पर बैठा था। मुझे देखकर वह मंच से उठा और मेरा स्वागत करने के लिए मेरी ओर बढ़ा। उसने मुझसे कहा कि तुम इस विशाल महल के आँगन में बने एक घर में रहोगे तथा अपना अध्ययन और संगीत-रचना का कार्य जारी रखोगे। यहाँ का संगीत बहुत भिन्न प्रकार का है। यहाँ ऐसे वाद्य यंत्र है जैसे पृथ्वी पर नहीं होते और हम लोग उच्चतर स्तरों पर यंत्रों के बिना ही संगीत उत्पन्न कर सकते हैं।''

परलोक में पाप रहित जीवन :

प्रेत लोक का यह वर्णन उस समय और भी पुष्ट हुआ जब २० अगस्त. १६६२ को फ्लिंट के माध्यम से आस्कर वाइल्ड ने बोलना शुरू किया, ''मेरा नाम आस्कर वाइल्ड है और यहाँ आने में मुझे बहुत खुशी हुई है।''

आस्कर वाइल्ड का देहान्त १६०० में हुआ था। वह बोला, ''मैं यहाँ बहुत प्रसन्न हूँ और सन्तुष्ट भी, मैं सुहाने जीवन जीता हूँ। धरती पर प्राकृतिक जीवन पापमय माना जाता है, मगर यहाँ ऐसा नहीं है।''

इतना कहकर वाइल्ड का प्रेत व्यंग्यपूर्वक हँसा, फिर बोला, ''लेकिन मैं गम्भीरता पूर्वक लिखता हूँ और मेरे नाटक यहाँ खेले जाते हैं। हमारा यह जगत कुछ धरती जैसा ही है। हाँ, सुन्दरता में यह धरती से कहीं आगे है और यहाँ धरती जैसी बुराइयाँ नहीं हैं। यहाँ लोग भी वहीं के हैं और मैं मजे से उनके बीच रहता हूँ। यहाँ मेरा घर बहुत सुन्दर है। मेरा मनपसंद घर, शायद इसलिए, क्योंकि इसे मैंने खुद बनाया है, अनजाने में ही, यहाँ आने से भी पहले, अपनी कल्पना में।''

फ्लिंट की इन अनुभूतियों को सही मान लें और टेप पर भरी मृतात्माओं की आवाजों पर विश्वास कर लें तो यह भी मानना होगा कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है, उसकी अनन्त यात्रा का एक पड़ाव मात्र है।

क्या उपनिषद सच्चे हैं?

तो क्या यह मानें कि उपनिषदों में सच्ची बात कही गई है और ''गीता'' में मृत्यु की सही परिभाषा की गई है? क्या सचमुच मृत्यु इस देह का त्याग मात्र है, एक जोड़ी कपड़े बदलने जैसा? क्या आत्मा वह परम-चेतन-तत्व है, जिसे ऋषियों ने स्थानातीत और कालातीत कहा तथा बताया कि वह त्रिकालगामी अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य में अबाध गति से विचरण करने वाला है तथा उसे स्थान की बाधा भी नहीं व्यापती, वह कभी भी कहीं भी पहुँच सकता है, और सच तो यह है कि वह न चलता है, न पहुँचता है, वह तो है, सर्वत्र व्याप्त है, सब कहीं हैं परमात्मा की तरह!

प्राचीन भारतीय ऋषियों (वैज्ञानिकों) ने तो यही कहा था, मगर पश्चिम के नवोदित विज्ञान के ज्वर में डुबकी लगाने वाले भारतीयों ने इस का मजाक उड़ाया और

कहा कि यह तो अंध-विश्वास है। लेकिन खैर, शायद अब वह समय
वे इस सच्चाई को कबूल करेंगे, क्योंकि पाश्चात्य जगत् के प्रमुख वैज्ञा
कर रहे हैं।

आत्मा का अस्तित्व नष्ट नहीं होता

संभवत: गेटे आधुनिक युग का पहला वैज्ञानिक है, जिसने इस स
यथार्थ कहा है। उसने दर्शन के आधार पर रुडोल्फ स्टीनर ने यह सिद्ध कि
जड़-तत्व नहीं, वह एक सजीव अस्तित्व है, सम्पूर्णत: आध्यात्मिक, अ
सम्पन्न। महान गणितशास्त्री ओस्पेंस्की ने अपने शाश्वत ग्रन्थों 'टर्शियम
सर्च आँफ दि मिरेकुलस, तथा 'थ्योरी ऑफ इटरनल लाइफ' में गणित क
भौतिक अस्तित्व को सिद्ध करने की कोशिश की है।

विकासवाद के जन्मदाता चार्ल्स डारविन के परम मित्र आलड
अपनी पुस्तक 'हेवेन एंड हेल' में लिखा है कि यह एक अनुभूत तथ्य है
शाश्वत तत्व उसके प्रत्येक कण में विद्यमान है, हक्सले आत्मा के अ
मरणोत्तर जीवन में विश्वास करते थे, उन्होंने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स
बताया है।

बिजली के बल्ब और फोनोग्राफ आदि के आविष्कर्ता थामस
विषय में कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्यों का रहस्य खोलकर रखा है। व
जीवन की प्रत्येक इकाई (प्राणी या जीव) उन खरबों उच्च कोटि के
झुण्डों से बनी है। जो कोशों में निवास करते हैं, मेरा विश्वास है कि मनुष्
पर यह झुंड शरीर को छोड़कर शून्य में चला जाता है, किन्तु वह वहाँ
तथा समय पाकर पुन: नए जीवन चक्र में प्रवेश करता है। यह झुंड अमर
को भी यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि एक जीवन दूसरे जीवन क
हमारे शरीरों को ही लीजिए मुझे विश्वास है कि प्रत्येक शरीर असंख्य औ
सूक्ष्म व्यक्तियों (जीवाणुओं) से बना है तथा उनमें से प्रत्येक एक इकाई
समूहों और झुंडों के रूप में कार्य करती हैं तथा ये सूक्ष्म और अमर हैं,
तो ये इकाई-झुण्ड मधुमक्खियों की तरह कहीं और चले जाते हैं तथा कि
आकार एवं वातावरण में सक्रिय जीवन व्यतीत करते रहते हैं।

प्रसिद्ध विज्ञानी राबर्ट मायर ने जब उर्जा के अविनाशी होने की खो
पहले आत्मा के अविनाशी स्वरूप का बोध प्राप्त किया जा चुका था। वेदो
अमृतस्य वै पुत्रा: कहा गया है।

दिशा और काल से बहुत परे

जिस तरह पदार्थ अविनाशी है, उसी प्रकार मानसिक और परा-मा
चेतन और अतिचेतन तत्व भी अविनाशी है। यह तत्व ही आत्मा है।

क मनोविज्ञान के प्रणेता मनीषी कार्ल गुस्ताव जुंग (१८७५-१९६१) ने
विस्तार में शोध की है, वह लिखते हैं कि मनुष्य के लिए मूलभूत निर्णायक
क वह किसी परातत्व से संबंधित है या नहीं, जुंग मनुष्य के उपचेतन को
ानते थे। उन्होंने कहा है कि यह उपचेतन ही पराबोध ग्रहण करता है और
स्थान की मर्यादाओं में नहीं बँधता। मृत्यु के बाद जीवन का कोई भौतिक
या जा सकता, लेकिन हमारे अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि वह है।

क मनोवैज्ञानिक डा० जे० बी० राइन ने सिद्ध किया है कि मनुष्य का मन
क और परा-जागतिक यथार्थ है, वह शरीर के साथ नहीं मरता वह कभी
ह इस बात का संकेत है कि मृत्यु के बाद भी सूक्ष्म अथवा परा-चेतन
रहता है। वह सम्भवत: विद्युतीय अथवा चुम्बकीय स्तरों पर जीवित रहता
यह सामर्थ्य रहती है कि वह समय पड़ने पर अपनी शक्तियों का प्रयोग कर
तिक आकार भी ग्रहण कर सके। वेदांत आत्मा और पदार्थ में कोई अन्तर
ोनों एक ही हैं--एक सूक्ष्म तथा जागृत और दूसरा स्थूल तथा सुषुप्त, शरीर
मनुष्य का कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि जीवन का मूल चेतन, उपचेतन और
वस्थाओं में एक ही रहता है।

के साथ प्रयोग (एक्सपेरीमेंट विद टाइम) के लेखक डब्लू. एच. उन कहते
अथवा समय चौथा आयाम है जिसमें हम सतंरण (तैर) कर रहे हैं और
उसके एक छोटे से अंश पर केन्द्रित है जिसे हम वर्तमान कहते हैं। लेकिन
तन मन तनाव से मुक्त होता है, जैसे नींद में तो हम इस काल और आयाम
, यानी पीछे और आगे भूत और भविष्य दोनों आयाम में देख सकते हैं।

धरती पर पुन: वापसी-यानि पुनर्जन्म

हता है कि जिस आत्मा की आसक्ति जगत में नहीं रही है, भोगों में भी नहीं
ोक्ष प्राप्त करती है, जन्म-मरण के बंधन से छूट जाती है, दूसरी कोटि की
ती होती है जो किसी कामना या विषय वासना के कारण पुण्य करती है, वह
है तथा पुण्य क्षीण होने पर धरती के भोगों के प्रति आसक्त होती है, लगता
ाइल्ड स्वर्ग भोग रहा है और शीघ्र ही धरती पर लौट आएगा।

कोटि की आत्मा घोर आसक्त आत्मा होती है, जिसका मन धरती पर ही
, वह धरती के लिए तरसती और भटकती है तथा धरती पर लौट आती है।
ने आप में आत्मा की अमरता का प्रमाण है। पुनर्जन्म एक प्रकार का मरणोत्तर
। संवेदनशील आत्माओं के साथ गया 'सूक्ष्म मन' अपने उपचेतन में पिछले
मृतियाँ लेकर लौटता है, जिन्हें 'सम्मोहन' द्वारा जगाया जा सकता है तथा
ों में वे स्वत: जाग उठती हैं। पिछले जन्म की घटनाओं का स्मरण इस बात

ा किसी को बताई नहीं और
ड़ी हुई तो एक दिनं अचानक
ो वह सन्न रह गई, सारी बातें

नते हैं। पहला तो यह है कि
, वह काल के व्यवधान को
ा स्वयं अपने शरीर की हत्या
सकती है। वह अपनी अनंत
हीं बिगाड़ सकती; वह मृत्यु

कर्णिका-४

मृत्यु की अवस्थाएँ

निश्चय ही मृत्यु की परिकल्पना के चारों ओर लिपटे पर्यावरण ने सदियों से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित किए रखा है। वर्तमान समय में इस रहस्यमय विषय पर काफी खोज बीन हुई है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक कालिंस, ओसिस, एरेलेण्डर, हराल्डसन, कुवरलरांस और भारतीय मनोवैज्ञानिक डा० जमुना प्रसाद और परमेश्वर दयाल के वर्षों के शोध प्रयासों के फलस्वरूप उपरोक्त प्रकार के कई उदाहरण प्रकाश में आए। इन शोध कार्यों के लिए अमरीका तथा भारत के प्रमुख वैज्ञानिकों ने अस्पतालों के मरणासन्न रोगियों की शारीरिक, मानसिक स्थितियों के संबंध में काफी विस्तार से जानकारियाँ प्राप्त की और फिर 'कम्प्यूटर' से उसका विश्लेषण भी किया।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि जन्म और मृत्यु ये दो अति महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं मानव जीवन की। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि वे दोनों घटनाएँ जब घटती हैं उस समय मनुष्य बेहोशी की स्थिति में होता है। और यही कारण है कि मनुष्य को अपने जन्म और अपनी मृत्यु की स्मृति नहीं रहती। जन्म के पहले हम कहाँ थे ? और मृत्यु के बाद कहाँ जाएँगे? 'काल विद्या' जो भारत की सबसे प्राचीन और रहस्यमयी विद्या समझी जाती है, इन दोनों प्रश्नों का समुचित और सप्रमाण उत्तर देने का प्रयास करती है। उस परम और महान विद्या का कहना है--मृत्यु अन्त नहीं है। उसे जीवन का अन्त नहीं समझ लेना चाहिए। उसे केवल एक गहन विश्राम मानना चाहिए। 'मृत्यु' एक गहन विश्राम के सिवाय और कुछ नहीं है। जैसे दिन भर हम परिश्रम करते हैं, मेहनत करते हैं और रात में सो जाते हैं। भारतीय प्रज्ञा शुरू से यह मानती रही है कि नींद भी एक अल्पकालीन मृत्यु ही है। दिन भर जागते हैं, थकते हैं, श्रम करते हैं और रात में सो जाते हैं। जो व्यक्ति सो न सके अथवा उसे सोने का मौका न मिले तो वह व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। अगर मरा नहीं तो पागल अवश्य ही हो जाएगा। इसलिए हर रात मरना आवश्यक है। ताकि प्रात: काल नया जीवन उपलब्ध हो सके। इसलिए रात में जो जितनी गहराई से मरता है वह दूसरे दिन सबेरे उतनी ही गहराई से जागेगा और जीवित होगा भी। रात में हमारी नींद 'मृत्यु' के जितने निकट पहुँचेगी प्रात: हमारा जीवन उतना ही जीवन के

समीप पहुँच जाएगा। अगर रात में हम अधूरे सोए हैं तो सबेरे हम अधूरे ही उठेंगे। सबेरे हमारा उठना मरा-मरा सा होगा, और पूरा दिन हमारा चिड़-चिड़ेपन और झल्लाहट से भरा होगा। सच बात तो यह है कि रात में जो मरने की कला नहीं सीख सकता वह दिन में जीने की कला नहीं जानता। रात में मरने की कला है--बिल्कुल चिन्ता रहित, और निश्चिन्त होकर सोना। रोजाना एक मृत्यु घटित होती है। दिन हमारे लिए जन्म है और रात हमारी मृत्यु है। दिन में जन्म और रात में मृत्यु।

मृत्यु अनिवार्य है जीवन के साथ। मृत्यु विश्राम है। जीवन थकान है। जीवन तनाव है, श्रम है। मृत्यु विराम है। मृत्यु का मतलब है पुन: जीवन-शक्तियों को पा लेना। नई यात्रा के लिए-नई शक्ति और नई उर्जा को पा लेना।

जिस नई जीवन शक्ति और उर्जा को हम 'मृत्यु' की अवस्था में प्राप्त करते हैं, उसे योगी गण समाधि की अवस्था में। समाधि में भी वैसी ही स्थिति होती है। समाधि में प्रवेश करने का मतलब है मृत्यु में प्रवेश करना। समाधि से लौटने का अर्थ है जीवन में लौटना। समाधि के अनुभवों को प्राप्त योगी गण ही ठीक-ठीक बतला सकते हैं कि 'मृत्यु' क्या है? मृत्यु और उसके बाद का अनुभव क्या है? और यह भी बतला सकते हैं कि समाधि अथवा मृत्यु के समय आत्मा किन-किन अनुभूतियों से गुजरती है। खैर....

परामनोविज्ञान के अनुसार परलोक से कोई वापस नहीं लौटता और मृत्यु के बाद पुन: उसी शरीर में भी आत्मा वापस नहीं आती। यदि कहीं परलोक है तो उसका अनुभव एक परम योगी ही बतला सकता है। साधारण लोगों के लिए परलोक का अनुभव केवल कल्पना के ही आधार पर सामने आता है। लेकिन ऐसे भी बहुत सारे उदाहरण हमारे सामने हैं जिसमें क्षणिक मृत्यु की अवस्था में मनुष्य को परलोक के विलक्षण अनुभव हुए हैं। यह तो निश्चय है कि किसी भी कारण से पार्थिव शरीर छोड़कर आत्मा का परलोक जाना और फिर उसी पार्थिव शरीर में वापस लौट आना और साथ ही परलोक के विलक्षण और रहस्यमय अनुभवों से सम्पन्न होना अविश्वसनीय लगता है।

काल विद्या पर अपने अन्वेषण से मैंने जो निष्कर्ष निकाला उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि मृत्यु के संबंध में आवश्यक जानकारी न होने के कारण वह भयानक लगती है। मनुष्य पूर्ण चेतन प्राणी है। इसलिए उसका एक स्थिति में ही बने रहना सम्भव नहीं है। प्रकृति के सभी रूपों में परिवर्तन होता रहता है, तो जीवन यात्रा में भी गतिशीलता क्यों नहीं रहेगी? यात्रा क्रम में इन पड़ावों को ही जन्म और मृत्यु कहते हैं। इसमें न तो कुछ अप्रत्याशित है और न आश्चर्यजनक। फिर मरण में भय किस बात का?

वास्तव में मरण के संबंध में लोग विचार ही नहीं करते। उसकी संभावनाओं और तैयारी के सन्दर्भ में उपेक्षा बरतते है। फलस्वरूप समय आने पर मरण एक अज्ञात रहस्य के रूप में सामने आता है जो भयानक और कष्ट दायक होता है। अज्ञात की ओर बढ़ने और विचार करने पर ही महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते है। इतिहास उन व्यक्तियों और

महापुरुषों से भरा है जिन्होंने जन प्रवाह से विपरीत अज्ञात दिशा में बढ़ने का साहस भरा पुरुषार्थ दिखाया है। मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व को अपनी योग साधनाओं द्वारा देखकर आत्मा के अजर-अमर होने की घोषणा की है। जिसकी पुष्टि परामनोविज्ञान अपने शोधों द्वारा अब कर रहा है।

जीवन अत्यन्त असाधारण है और मनुष्य उससे भी विशिष्ट है। प्रत्येक व्यक्ति को एक न एक दिन मरना अवश्य है। यदि जन्म सत्य है तो मृत्यु उससे भी अधिक सत्य है। इसलिए मृत्यु को एक दार्शनिक रूप में स्वीकार करना चाहिए। उतनी ही स्वाभाविकता से स्वीकार करना चाहिए, जितना की जीवन को। यदि हम मृत्यु से संलग्न भय का त्याग कर दें और उसे एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में देखें तो जीवन का एक नया सत्य हमारे सामने प्रकट होगा।

मैंने अपनी गवेषणा को सुगम्य बनाने के लिए मृत्यु को दो प्रकारों में विभक्त किया है। पहले प्रकार की मृत्यु वह है जो प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक होती है।

पहले प्रकार की मृत्यु का अनुभव अथवा एहसास अचानक होता है। स्पष्ट है तब वह एहसास निश्चय ही एक भंयकर त्रास के रूप में सामने आता होगा। हालाँकि ऐसा होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि मृत्यु को व्यक्ति अपनी मानसिकता के अनुरूप ही ग्रहण करता है। दिल का दौरा पड़ने पर, किसी भयंकर दुर्घटना में फँस जाने पर अथवा किसी दुश्मन को हाथ में पिस्तौल लिए सामने खड़े हो जाने पर-व्यक्ति क्या सोचता है। उसके भीतर क्या प्रतिक्रिया होती है। क्या उस क्षण जीवन की निस्सारता का एहसास होता है? क्या वह उस समय यह सोचता है कि उसकी आत्मा इस लोक से परलोक में सन्तरण कर जाने वाली है?

यह तो निश्चित है कि मृत्यु के साथ अनेक रहस्य, अनेक चमत्कार और अनेक प्रकार के अन्धविश्वास जुड़े हुए है। यह परम सत्य है कि हर प्राणी को मरना है। किसी को मार डालना कोई जटिल काम नहीं है। किसी का किसी दुर्घटना में फँस कर मर जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक मृत्यु अपने आप में बहुत बड़ा रहस्य है। उसकी क्रम से पाँच अवस्थाएँ हैं। रोगी को एक के बाद एक कर के मृत्यु की उन पाँचों अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।

गंभीर और प्राणघातक बीमारी की बात सुनकर सर्वप्रथम रोगी को एक झटका सा लगता है। मगर वह मन से इस बात को स्वीकार नहीं कर पाता कि वह इस भयानक बीमारी में मर जायेगा। वह अस्पतालों का और दवाखानों का चक्कर काटने लगता है। वह निराश नहीं होता। वह इस आशा से अपना इलाज कराता है कि उसकी हालत गम्भीर नहीं है। निश्चय ही वह मरने से बच जाएगा। यह पहली अवस्था है।

शनैः-शनैः वह दूसरी अवस्था में पहुँचता है। जब कि वह अपनी भयंकर बीमारी को गंभीरता से स्वीकार करता है। मगर उसकी यह स्वींकारोक्ति उसके भीतर क्रोध को जन्म दे देती है। वह क्रोधी हो जाता है। वह जीवन शक्ति, उर्जा और गति के प्रति विरोध

प्रकट करने लग जाता है और वह सोचता है कि 'मैं ही क्यों?' और इसी के साथ ईश्वर के प्रति रोष भी व्यक्त करता है कि वह उसकी सुन क्यों नहीं रहा है।

फिर वह तीसरी अवस्था में आता है। जब वह समझ जाता है कि उसके जीवन का अन्त समीप है। अब वह ईश्वर के प्रति रोष व्यक्त नहीं करता। वह अब ईश्वर से प्रार्थना करता है। हे परमात्मा! हे परमेश्वर! थोड़ा सा जीवन और दे दो ताकि मैं अपने अधूरे कामों को पूरा कर लूँ। हालाँकि इस अवस्था में वह मानसिक रूप से शान्त तो नहीं होता। मगर भावात्मक रूप से अवश्य ठीक और सहज होता है।

चौथी अवस्था में रोगी चिन्तामग्न हो जाता है। वह अब निश्चित रूप से यह स्वीकार कर लेता है कि उसकी मृत्यु पूर्ण रूप से निश्चित है। यह सोच-समझ कर वह अधिक से अधिक मौन रहने लग जाता है। वह बाहर से तो अवश्य मौन दिखलाई पड़ता है। मगर भीतर सबसे बिछुड़ने, सब कुछ खो देने, और सबका साथ छुट जाने की गहरी पीड़ा का अनुभव करता है। वह केवल यही चाहता है कि उनके अन्तरंग और निकट के लोग ही उसके समीप रहें, जिसे वह बहुत चाहता है उसी को अपने समीप अधिक से अधिक चाहता है।

और फिर पाँचवीं, अन्तिम अवस्था होती है, जबकि इस संसार से हमेशा-हमेशा के लिये विदा हो जाता है।

मृत्यु क्या शरीर का अन्त है या जीवन का? क्या शरीर के साथ-साथ जीवन का भी अन्त हो जाता है? अगर यह सत्य है कि शरीर के साथ ही जीवन का भी अन्त हो जाता है तो अन्य लोक-लोकान्तरों की बात क्या मात्र कोरी कल्पना है? यदि मान भी लिया जाए कि कोरी कल्पना ही है तो उन अनुभवों की क्या व्याख्या की जाएगी जिनके बीच एक मरणासन्न व्यक्ति गुजरता है। क्या मृत्यु के समय अथवा मृत्यु के बाद के तमाम अनुभव भी कल्पना मात्र समझे जाएँगे और समझे जाएँगे मात्र एक दुस्वप्न।

वैज्ञानिकों का कहना है कि श्वास, प्रश्वास के शिथिल पड़ते ही जब हृदय खून के दौरे को रोक देता है, यानि जब हृदय से खून की गति बन्द हो जाती है तो उसके परिणाम स्वरूप मस्तिष्क को मिलने वाला खून भी स्वभावत: बन्द हो जाता है। खून के अभाव में मस्तिष्क की कोशिकाएँ नष्ट होने लगती हैं। मस्तिष्क के इस विनाश में अधिक से अधिक १० से १५ मिनट का समय लगता है और तब यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति की मृत्यु हो गई है। विनाश की इस दिशा को उल्टा नहीं जा सकता। मस्तिष्क की कोशिकाओं को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। हृदय की बन्द धड़कन को पुन: चालू नहीं किया जा सकता।

औषधि शास्त्र से संबंधित जितनी भी शैक्षणिक सस्थाएँ हैं वे दीर्घकाल से यही तथ्य बतलाती चली आ रहीं हैं। क्या ये तथ्य इतने ठोस और दृढ़ हैं कि उस पर संदेह नहीं किया जा सके? हर हालत में विश्वास ही किया जा सके?

मगर सबसे आश्चर्य की बात यह है कि मरणासन्न अवस्था प्राप्त व्यक्ति के जो अपने अनुभव हैं वे इस ठोस तथ्य का प्रबल विरोध करते दृष्टिगत होते हैं। मरणासन्न व्यक्ति क्या देखता है? क्या सुनता है और क्या अनुभव करता है? उन सबके आधार पर,

क्या हम 'मृत्यु' के साथ ही जीवन का भी अन्त स्वीकार कर सकते हैं? यह सोचने, समझने की कोशिश नहीं कर सकते हैं कि मृत्यु एक पड़ाव मात्र है? एक मोड़ है। आत्मा के एक नए लोक और एक नए जगत में प्रवेश करने अथवा सन्तरित होने की एक प्राकृतिक स्थिति है।

मरणासन्न व्यक्ति जिन अनुभवों से गुजरता है और जो कुछ देखता सुनता है। वे क्यों होते हैं? कुछ समय पूर्व डॉक्टरों के पास अथवा वैज्ञानिकों के पास इस प्रश्न का कोई समाधानात्मक उत्तर नहीं था। उनके पास इस बात का भी कोई जवाब नहीं था कि मृत्यु की अवस्था में व्यक्ति दिवंगत लोगों से साक्षात्कार करने, सुन्दर दृश्यों को देखने और मधुर स्वरों को सुनने के बाद भयंकर से भयंकर यातना सहते हुए भी कैसी बड़ी शान्ति से और कैसे सहज भाव से मृत्यु का वरण कर लेता है।

कहने की आवश्यकता नहीं, वैज्ञानिक इस दिशा में मौन साधे बैठे नहीं रहे। पिछले कुछ बरसों में इस क्षेत्र में पर्याप्त अन्वेषण और शोध कार्य हुआ है और बराबर हो भी रहा है।

उन अन्वेषण और शोध से निकले अब तक के निष्कर्षों ने अब तक चली आ रही मृत्यु संबंधी मान्यताओं पर एक करारा और जबरदस्त प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। सन् १९७५ ई में प्रकाशित होने वाली एलिजावेथ क्यूवलर-रॉस लिखित पुस्तक 'डेथ द फाइनल स्टेज ऑफ ग्रोथ' और आर. डी. मूडी लिखित पुस्तक 'लाइफ आफ्टर लाइफ' ने चिकित्सा के क्षेत्र में हलचल मचा दी। ये दोंनो पुस्तकों का मूल विषय था जीवन के बाद का जीवन, और मृत्यु के बाद जीवन समाप्त नहीं हो जाता।

इस वैज्ञानिक युग में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना और साथ ही वैज्ञानिक खोज के आधार पर प्रतिपादन करना वास्तव में एक क्रांतिकारी कदम ही समझा जाएगा। विशेष कर पश्चिम के देशों में जहाँ आत्माओं और भूत-प्रेतों की चर्चा करना सदैव अन्ध-विश्वास समझा जाता रहा है। आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य प्रभावों के कारण हमारे देश में भी यही स्थिति शनै: शनै: उत्पन्न होती जा रही है।

सन् १९७५ के बाद सन् १९७७ में दो अमरीकी डाक्टरों ने जिनका नाम कार्लिस आसिस और अरलेण्डर हाराल्डसन था, अपनी शोध पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम था--'द पावर आफ डेथ' यह पुस्तक पूरे दो दशकों की खोज और शोध का परिणाम है। उन दोनों डाक्टरों ने अपनी खोज और शोध के सिलसिले में सैकड़ों-हजारों मरणासन्न लोगों के अनुभव एकत्र किए। उन मरणासन्न लोगों के मृत्यु-पूर्व या मृत्यु संबंधी अनुभवों के आधार पर अपने निष्कर्ष इस पुस्तक में लिपिबद्ध किए। कहने की आवश्यकता नहीं इस पुस्तक ने भी मृत्यु के बाद जीवन को एक ज्वलंत प्रश्न बना दिया है।

मैंने अपने गवेषणा काल में जैसे मृत्यु को अस्वाभाविक और स्वाभाविक, यानि अप्राकृतिक और प्राकृतिक ये दो रूप दिया। उसी प्रकार उसको मुख्य रूप से तीन

अवस्थाओं में भी विभक्त किया है। पूरे पाँच घंटे में वे तीनों अवस्थाएँ गुजर जाती हैं। मृत्यु के पूर्व के दो घंटे का समय मृत्यु की पहली अवस्था है और यह पहली अवस्था शारीरिक और मानसिक मंत्रणा की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में मरणासन्न व्यक्ति के सारे शरीर में एक विशेष प्रकार की सनसनाहट होती है। अंग-अंग ऐंटने सा लगता है। और शनैः शनैः क्रम से उन अंगों पर से मस्तिष्क के नियन्त्रण केन्द्र का अधिकार समाप्त होने लग जाता है। सारा शरीर शिथिल हो जाता है अन्त में। मरणासन्न व्यक्ति अपने अंग संचालन की क्रिया में अपने आपको पूर्ण रूप से असमर्थ पाता है और अपने को दीन-हीन समझने लगता है इस दिशा में।

मनुष्य की चेतना के तीन केन्द्र हैं-नाभि, हृदय और मस्तिष्क। सर्वप्रथम नाभि में भयानक पीड़ा होती है। उसके बाद पीड़ा होती है हृदय में जिसके परिणाम स्वरूप श्वास, कण्ठ के नीचे नहीं जा पाता और कण्ठ से खर-खराहट की आवाजें निकलने लगती हैं और साथ ही गला भी सूखने लगता है। मरणासन्न व्यक्ति के चेहरे पर उस समय दोनों केन्द्रों में होने वाली असहनीय पीड़ाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। एकाएक हृदय की पीड़ा तीव्र गति से बढ़ती है और उसी के साथ श्वास प्रश्वास की क्रिया भी हमेशा के लिए बन्द हो जाती है। मरणासन्न व्यक्ति के चेहरे पर उभर आई पीड़ा के भाव समाप्त हो जाते हैं और धीरे-धीरे वहाँ शान्ति छाने लग जाती है। जिसे देखकर यही लगता है कि मानों कोई बड़ा भयानक तूफान गुजर गया हो आत्मा के ऊपर से। इसे हम शरीर की मृत्यु कहते हैं। मस्तिष्क उस मृत्यु के बाद भी अपना काम करता रहता है बराबर। इसे मैं मृत्यु की दूसरी अवस्था कहता हूँ। इस अवस्था में मस्तिष्क की बाह्य चेतना लुप्त अवश्य हो जाती है मगर उसकी आन्तरिक चेतना बराबर बनी रहती है। किसी-किसी मरणासन्न व्यक्ति की यह मरण अवस्था एक से दो घंटे तक बनी रहती है।

कहने की आवश्यकता नहीं मरणासन्न व्यक्ति जो कुछ देखता, सुनता और अनुभव करता है वह सब इसी दूसरी अवस्था में करता है। वास्तव में यह मस्तिष्क की अन्तर चेतना की गहन अवस्था है। जिसे योग शास्त्र 'मृत्यु-मूर्छा' कहता है।

अन्तर चेतना बनी रहने के कारण मुमुर्षु व्यक्ति अपने आपको मृतक नहीं समझता। जबकि परिवार के लोग उसे मृतक समझ कर रोने-धोने और विलाप करने लग जाते है। यह वही समय है जबकि परिवार वालों को रोते-कलपते और विलाप करते हुए देखकर इस बात का आश्चर्य करता है--आखिर ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं?

फिर धीरे-धीरे अन्तर चेतना भी लुप्त होने लग जाती है और दूसरी अवस्था के अन्त में मस्तिष्क की भी मृत्यु हो जाती हैं।

तीसरी अवस्था में मृतात्मा अपने शरीर को अपने से अलग देखती है। उस समय उसे अनिर्वचनीय शक्ति और परम आनन्द का अनुभव होता है। वह अपने को पूर्ण स्वतंत्र भी समझने लग जाता है। फिर यह भी समझने लग जाता है कि वह अब मर चुका है और परिवार और संसार से उसका कोई रिश्ता अथवा संबंध नहीं है। यह समझ कर एक बार

वह निराश और दुखी अवश्य होता है। मगर वह क्षणिक ही होता है। स्वतंत्रता, शान्ति और आनन्द उसकी निराशा और उसके दु:ख को समाप्त कर देते हैं।

मैंने अपनी गवेषणा के आधार पर अन्तिम तीसरी अवस्था के समय को मृतात्मा के मनोबल और आत्मबल के अनुसार दो घंटे से दस दिन, तेरह दिन, पैंतालिस दिन और बारह महीना निर्धारित किया है। यहाँ यह बतला देना अनावश्यक न होगा कि ये समयावधियाँ मैंने विभिन्न प्रकार की मृतात्माओं से विशेष माध्यम द्वारा सम्पर्क साध कर निर्धारित की हैं। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि उन अवधियों में गैर हिन्दू-मृतात्माओं की तीसरी अवस्था उनकी मति, गति, संस्कार और उनकी संस्कृति के अनुसार निर्मित होती है। लेकिन फिर भी गैर हिन्दू मृतात्माओं की तीसरी अवस्था कम से कम दो घंटे की और अधिक से अधिक ४० दिनों की अवधि की होती है। यदि इतने समय के अन्तर्गत उनको किसी गर्भ में प्रवेश मिल गया तो ठीक, वर्ना अनिश्चित काल तक इधर-उधर भटकती ही रहती हैं वे।

तीसरी अवस्था का प्रथम दो घंटे का समय अति महत्वपूर्ण समझा जाता है। जिन मृतात्माओं में शरीर के प्रति आकर्षण अधिक रहता है और जिनमें वासना का वेग प्रबल होता है। उनमें पुनर्जन्म लेने की आकांक्षा अति प्रबल होती है। भले ही वह गर्भ उनके संस्कार के अनुकूल न हो। प्रतिकूल गर्भ की स्थिति में मृतात्माएँ या तो गर्भ का त्याग कर बाहर निकल आती हैं या फिर जन्म ले लेती हैं। कुछ मृतात्माएँ ऐसी भी होती हैं जो शरीर के मोह वश जन्म तो ले लेती हैं मगर कुछ दिन जीवित रह कर फिर शरीर छोड़ देती हैं। इसें ही हम 'गर्भपात' और 'शिशु का अकाल मर जाना' कहते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी मृतात्माएँ होती हैं--जो जन्म लेने के बाद, किसी कारणवश मरती तो नहीं, मगर जीवन भर अपने संस्कार के विपरीत पारिवारिक वातावरण के कारण-दु:ख अवश्य झेलती हैं। यदि हम यह कहें कि पारिवारिक विचार वैषम्य, पारिवारिक मतभेद और पारिवारिक संघर्ष का मूल रहस्य अथवा मूल कारण एक मात्र यही है तो अतिशयोक्ति न होगी।

दूसरी अवधि है १० दिनों की। इस अवधि में मृतात्मा का अपने परिवार से बराबर अगोचर संबंध बना रहता है। शरीर की अन्तिम क्रिया से लेकर उसके निमित्त जितने भी कर्म काण्ड होते हैं उन सब का साक्षी रहता है वह। यदि कर्म काण्ड में कहीं कोई त्रुटि होती हैं तो उसका उसे भारी दु:ख होता है। इतना ही नहीं-वह यह भी समझता है कि उसके प्रति परिवार के किस सदस्य के मन में कौन सा और कैसा भाव अथवा विचार है?

सबसे महत्व पूर्ण बात तो यह है कि जैसे माता के गर्भ में शिंशु के स्थूल शरीर की रचना नौ मास में होती है। उसी प्रकार उन दस दिनों में मृतात्मा के लिये सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। यह कार्य ठीक ढंग से हो, इसी के लिए हिन्दू शास्त्र में 'दशगात' श्राद्ध का विधान है।

अन्वेषण काल में एक प्रबुद्ध आत्मा ने मुझे बतलाया कि मुख्य रूप से आत्मा के तीन ही शरीर हैं--स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर। पदार्थ के कणों से स्थूल शरीर का, प्राण के कणों से सूक्ष्म शरीर का और चेतना के कणों से मनोमय शरीर का निर्माण होता है। जब और जिस समय जिस शरीर में आत्मा रहती है वही शरीर प्रमुख होता है और अन्य शरीर बीज रूप में उसमें विद्यमान रहते हैं। आत्मा बिना शरीर के रह ही नहीं सकती। एक शरीर के छूटने के बाद तत्काल उसको दूसरा शरीर चाहिए।

स्थूल शरीर के बाद आत्मा के लिए जो शरीर है वह है सूक्ष्म शरीर। और मरणोपरान्त सूक्ष्म शरीर के निर्माण में पूरे दस दिनों का समय लगता है। इसलिए जब तक सूक्ष्म शरीर का निर्माण पूरा नहीं हो जाता है तब तक मृतात्माएँ अपने लिए अपनी वासनाओं के कणों से 'वासना शरीर' की रचना स्वयं कर लेती हैं। इसी वासना शरीर को प्रेत शरीर, और उसमें निवास करने वाली मृतात्मा को प्रेत या प्रेतात्मा कहते हैं।

जब दस दिनों में सूक्ष्म शरीर का निर्माण हो जाता है तब मृतात्मा को अपने स्व-निर्मित वासना शरीर से मुक्ति मिल जाती है। वह प्रेत शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसी को कहते हैं 'प्रेत मुक्ति।' मगर एक बात यहाँ अवश्य समझ लेनी चाहिए कि सूक्ष्म शरीर के रचना के जितने भी आधार हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ आधार 'दशगात्र श्राद्ध' ही है। और वह दशगात्र श्राद्ध भी ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए क्योंकि पिता की प्रेतात्मा अपने पुत्र से कहती है कि जैसे तुम्हारी माँ के गर्भ में तेरे लिए स्थूल शरीर का निर्माण मेरे द्वारा हुआ उसी प्रकार अब तू मेरे लिए इस समय 'दशगात्र' द्वारा सूक्ष्म शरीर का निर्माण कर। भारतीय संस्कृति का यह 'श्राद्ध विज्ञान' कितना अपने आप में गंभीर और रहस्यमय है, इसका पता इसी तथ्य से लग जाता है और यही मुख्य कारण है कि जितने भी प्रकार के श्राद्ध हैं, उनमें 'दशगात्र श्राद्ध' अत्यंत महत्वपूर्ण और मुख्य है। इस श्राद्ध के त्रुटि पूर्ण होने की स्थिति में और साथ ही ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा सम्पन्न न होने की स्थिति में मृतात्मा अथवा प्रेतात्मा का प्रेतयोनि से मुक्त होना अत्यन्त कठिन हो जाता है। वैसे तो मृतात्माओं को अन्य कई कारणों से प्रेत योनि प्राप्त होती है। मगर इस प्रकार प्राप्त प्रेत योनि से मृतात्माओं की पीड़ा, यातना और दु:ख क्लेश की कोई सीमा नहीं रहती। वही उनका 'नर्क' है, और उस नर्क के 'क्रोध' को वे अपने परिवार के लोगों को मानसिक और शारीरिक यन्त्रणाएँ देकर शान्त करती हैं। इसे 'प्रेत बाधा' की संज्ञा दी गई है।

दशगात्र श्राद्ध के बाद प्रेत योनि से मुक्त होने का केवल एक ही मार्ग रह जाता है और वह मार्ग है मृतात्मा से संबंध रखने वाले अन्य 'कर्मकाण्ड' और अन्य श्राद्धादि क्रियाएँ। उनसे एक वर्ष में शनै: शनै: वासना का वेग और वासना के कण-क्षीण हो जाते हैं और प्रेतात्मा को प्रेत शरीर यानि प्रेत योनि से मुक्ति मिल जाती है, और मुक्त होते ही वह अपने कर्म, विचार भाव और अपने संस्कार के अनुरूप गर्भ की खोज में निकल पड़ती है। यदि तत्काल अनुरूप गर्भ नहीं मिला तो उस अवस्था में वह उसके लिए प्रतीक्षा करती है। वह प्रतीक्षा कब पूरी होगी यह निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता। वास्तव में प्रतीक्षा की अवधि मृतात्मा के अच्छे, बुरे कर्मों और संस्कारों पर

निर्भर है। बुरे संस्कारों और बुरे कर्मों वाली मृतात्माओं को अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जब कि अच्छे संस्कारों और कर्मों वाली मृतात्माओं को सैकड़ों और हजारों साल का समय लग जाता है, योग्य गर्भ की प्रतीक्षा में।

दोनों प्रकार की प्रतीक्षारत आत्माओं को प्रेत योनि से मुक्ति मिल जाने के बाद जिस शरीर की उपलब्धि होती है वह है सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म शरीर धारण करने के कारण ऐसी ही आत्मा को 'सूक्ष्म आत्मा' कहते हैं।

अन्वेषण काल में एक उच्चतम स्थिति प्राप्त आत्मा से सम्पर्क स्थापित करने पर उसने बतलाया कि वासना और प्राण के कणों से निर्मित एक और शरीर होता है, जिसे पितृ शरीर कहते हैं। यह प्रेत शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच का शरीर है और यह पितृ शरीर उस मृतात्मा को उपलब्ध होता है जिसकी अधोगति हुई होती है। कर्मकाण्ड और वार्षिक श्राद्धादि ठीक ढंग से हुए नहीं होते हैं। ऐसी पितृ शरीर धारी मृतात्मा को ही 'पित्रात्मा' कहते हैं। इनमें भी अच्छी, बुरी पित्रात्माएँ होती हैं-जो अपने कर्म, संस्कार, भाव और विचार के अनुरूप गर्भ की खोज में रहती हैं। इन्हें भी अनुकूल गर्भ मिलेगा यह ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता। मगर कुछ ऐसी पित्रात्माएँ होती है जो अधिक समय तक पितृ शरीर में रहना पसन्द नहीं करती। क्योंकि उनका सबसे बड़ा दु:ख है संसार के प्रति मोह। और उसी मोह के वशीभूत होकर वे गर्भ में प्रविष्ट हो जाती हैं। भले ही वह गर्भ उनके अनुकूल न हो। कुछ ऐसी भी पित्रात्माएँ होती हैं जिनमें संसार के प्रति मोह तो नहीं बल्कि सूक्ष्म शरीर के प्रति आकर्षण अवश्य होता है और वे इसी आकर्षण के वशीभूत होकर सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति के लिए प्रतीक्षारत रहती हैं। इसका कारण अतिशय महत्व का है। आत्मा के लिए सबसे मूल्यवान और सबसे महत्व पूर्ण शरीर 'स्थूल शरीर' है और उसके बाद किसी शरीर का मूल्य व महत्व है तो केवल मात्र 'सूक्ष्म शरीर' का है। इसलिए कि इस शरीर के एक ओर देव-दुर्लभ मानव शरीर है और दूसरी ओर है मनोमय शरीर। देवता जिस शरीर में रहते हैं वही मनोमय शरीर है। मनोमय शरीर का मतलब है देव शरीर। जिन सूक्ष्म शरीर धारी पित्रात्माओं का संस्कार कर्म, भाव और विचार राजसी स्तर के होते हैं, वे मानव योनि में चली जाती है और उच्च कुल और सम्पन्न परिवार में जन्म लेती हैं। मगर जिन पित्रात्माओं का संस्कार, कर्म, भाव और विचार सात्विक स्तर के होते हैं वे देवयोनि में चली जाती हैं और वहाँ से वापस लौटने पर मानव योनि में उनका भी जन्म उच्च कुल, सम्पन्न और अभिजात्य परिवार में होता है। ऐसी पित्रात्माओं, जो सूक्ष्म शरीर और फिर मनोमय शरीर को भोगकर देवयोनि से इस संसार में आई हुई होती हैं, वे विशेष कर के धार्मिक, सात्विक, गुणी, सुन्दर, आकर्षक और उदास होती हैं।

उच्चतम स्थिति प्राप्त उस दिव्य आत्मा ने मुझे आगे यह भी बतलाया कि जो पित्रात्मा पितृ शरीर में रहना पसन्द नहीं करतीं और जिनमें मानव शरीर के प्रति मोह और आकर्षण रहता है वे प्राय: तामसिक स्तर की होती हैं। उनके संस्कार, कर्म, भाव और

विचार तमोगुण प्रधान होते हैं। ऐसी पित्रात्माएँ मानव योनि प्राप्त अवश्य कर लेती हैं। मगर उनका जन्म अधिकतर ऐसे परिवार में होता है जिसमें सुख, शान्ति के बजाय स्वार्थ, कटुता और विरोध आदि की भावनाएँ ही अधिक रहती हैं।

गवेषणात्मक दृष्टि से की गई इस संक्षिप्त विवेचना के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कार, कर्म, विचार और भाव ही प्रमुख हैं और उनसे जो योग्यता प्राप्त होती है, उसी योग्यता के अनुसार मृतात्मएँ स्वयं अपने स्तर, अपने लोक और अपने जीवन का निर्माण कर लिया करती हैं। यही नहीं, उसी योग्यता के अनुसार प्रेत योनि, पितृ योनि, देव योनि और पुनः मानव योनि की भी उपलब्धि होती है।

यह सच है कि मरणोपरान्त जीवन अत्यन्त रहस्यमय है। और उस रहस्यमय जीवन से संबंधित जो विभिन्न लोक-लोकान्तर अथवा जगत हैं वे तो और भी रहस्यमय हैं। परावैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टि से इस दिशा में जो अन्वेषण कार्य हो रहा है उससे एक आश्चर्यजनक बात सामने आई है--वह यह कि किसी भी प्रकार की आत्माओं का पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकलना कठिन है। केवल उच्च कोटि की योगात्माएँ ही गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल सकती हैं। जिन विभिन्न मृतात्माओं की चर्चा की गई है वे और उनसे संबंधित लोक-लोकान्तर अथवा जगत इसी पृथ्वी पर ही अगोचर रूप मे स्थित हैं। खैर!

शुरू से ही यह प्रश्न शाश्वत रहा है। "मृत्यु के बाद क्या होता है?" मगर अब यह शाश्वत प्रश्न धर्म और दर्शन के ग्रन्थों से निकल कर परावैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों की प्रयोगशाला में पहुँच चुका है और अब वह समय दूर नहीं जब पारलौकिक जीवन और जगत का रहस्यावरण अनावृत्त हो जाएगा।

सूक्ष्म शरीर और उसका चमत्कार

मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व में विश्वास करने वाले लोगों का मतिविभ्रम हो गया है। मन की रहस्यमयी शक्तियों के बारे में हमें अभी बहुत कुछ जानना शेष है। शीघ्र ही वह दिन आने वाला है, जब हम मानसिक शक्ति द्वारा सभी पदार्थों का संघटन या विघटन करना सीख कर, शरीर का इच्छानुसार स्वरूप परिवर्तन सुगमतापूर्वक कर सकेंगे, मन को पदार्थों के क्षेत्र में आपाती अनाहूत न मानकर, उसे पदार्थ का नियंत्रण और सृजन मानने वाले भारतीय योगी आज भी ऐसा करके दिखा सकते हैं।

डॉ० यू० ई० बर्नार्ड

(प्रख्यात् भौतिक वैज्ञानिक)

१९५८ यह समाचार सुनकर कि उत्तर-प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिले के रसूलपुर जाटान नाम के गाँव में जसवीर नामक एक लड़के के शरीर पर किसी दूसरे व्यक्ति की आत्मा ने अधिकार कर लिया है, राजस्थान के सोहनलाल मेमोरियल संस्थान के निर्देशक

श्री एच. एन. बनर्जी, जिन्हें यह समाचार केन्द्रीय वाणिज्य विभाग के श्री जे. पी. भारद्वाज से सुनने को मिला था, करीब सौ आदमियों को अपने साथ लेकर इस घटना की वैज्ञानिक जाँच करने के उद्देश्य से उस गाँव में पहुँचे।

गाँव में चौधरी गिरधारी सिंह ने बताया कि जिस आश्चर्यजनक घटना की जाँच करने वे आए हैं, वह बिल्कुल सच है। उन्होंने अपने लड़के जसवीर की कहानी सुनाते हुए कहा, "जसवीर सवा तीन साल का ही रहा होगा कि उसके शरीर में चेचक निकली, जिसके निशान आज तक उसके चेहरे पर मौजूद हैं। इसी रोग में एक रात उसकी मृत्यु हो गई। रात अधिक हो जाने के कारण, हमने उसके शव को ढक कर, उसे सुबह अन्तिम संस्कार के लिए ले जाने का निश्चय किया पर जब सुबह हम उसकी लाश को उठाने लगे, तो यह देखकर चकित और हर्षित रह गए कि मृत जसवीर में धीरे-धीरे प्राण संचार हो रहा है। लेकिन जब वह पूरी तरह स्वस्थ हुआ, तो हमने देखा कि उसके आचार-व्यवहार में एक विचित्र परिवर्तन आ गया है। न वह घर में रहने को तैयार था, न घर के किसी आदमी के हाथ का बना खाना खाने को। वह चूँकि ब्राह्मण के हाथ का बना खाना खाना चाहता था, इसलिए मैंने ऐसी ही व्यवस्था कर दी। यह हमें कुछ समय बाद ही मालूम पड़ा कि उसके मृत शरीर में शोभाराम त्यागी नामक २३-२४ वर्ष के विवाहित युवक की आत्मा प्रवेश कर गई थी, और उसकी सब हरकतों का संचालन कर रही थी।"

यह पूछे जाने पर कि शोभाराम त्यागी की मृत्यु कब हुई थी, चौधरी साहब ने बताया, "उसी रात को लगभग ११ बजे। उसकी आयु २३-२४ वर्ष की थी और वह दो लड़कियों और एक लड़के का पिता था। उस दिन वह एक बारात में गया था और गाड़ी के पहियों के नीचे आकर चल बसा था।"

इस घटना के चार वर्ष बाद, जसवीर एक बार अपनी माँ के साथ उस स्थान से गुजर रहा था, जहाँ शोभाराम की मृत्यु हुई थी। जसवीर ने माँ को बताया था कि जब मैं शोभाराम था, तब मेरी मृत्यु यहीं हुई थी। इसी प्रकार उसने एक बार शोभाराम के एक पुराने मित्र को, जिसे उसने कभी पहले नहीं देखा था, मार्ग में पहचान लिया, और उससे अपने (शोभाराम के) घर ले जाने की प्रार्थना की।

जब उसे शोभाराम के घर ले जाया गया, तो उसने वहाँ रहने वालों को आसानी से पहचान लिया और कहा, मैं कभी यहाँ से नहीं जाऊँगा। आज भी, कभी-कभी उसे अपने पूर्व जीवन की स्मृतियाँ आ जाती हैं, और वह शोभाराम के घर जाकर अपने मित्रों और रिश्तेदारों से मिल आता है

भारतीय सिद्ध विद्या परकाया प्रवेश

परकाया-प्रवेश प्राचीन भारतीय अध्यात्मिक विज्ञान और तांत्रिक परम्परा की एक ऐसी सिद्ध चमत्कारी विद्या है, जिसके कई प्रमाणिक उदाहरण उपलब्ध हैं।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए राजा सुधन्वा की मृत देह में प्रवेश करने की बात प्राय: सबको विदित है। उन्होंने अपने शरीर से अपने प्राण निकाल कर परकाया प्रवेश करके कामशास्त्र की सिद्धि की थी।

अरविन्द आश्रम की पूजनीया माँ मूलत: फ्राँसीसी थीं, बचपन में वे अपना शरीर त्याग कर इधर-उधर विचरण किया करती थीं।

१७७४ की २१ सितम्बर की सुबह को इटली के अलोफोन्स लिगाउरी नामक एक मठाधीश को उनके अनेक साथियों ने एक विचित्र स्थिति में पाया। वह मठ की पोशाक में गहरी निद्रा में लीन थे। उन्हें जगाने के सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। सिर्फ धीरे से चलती हुई उनकी श्वास से ही पता चलता था कि वह जीवित हैं।

कई घंटों के बाद वह होश में आए, और अपने चिंतित साथियों से बोले, "मैं आपको एक अत्यन्त दु:खद समाचार सुना रहा हूँ। हमारे पूजनीय पोप का अभी-अभी देहान्त हो गया है।"

"पर आप घंटो से अचेत हैं, आपको कैसे पता लगा?"

"मैं इस देह को छोड़कर रोम गया था, और अभी-अभी वहीं से लौटा हूँ।"

उसके साथियों ने समझा कि वह कोई सपना देखकर उठा है और पोप की मृत्यु उसने स्वप्न में ही देखी होगी। पर, जब चार दिन बाद उन्हें यह समाचार मिला कि पोप का देहान्त उसी समय हुआ था, जब लिगाउरी अचेत थे, तो वे चकित रह गए।

भूतकाल से लेकर आज तक इस प्रकार की अनेक घटनाएँ विभिन्न देशों में घट चुकी हैं, पुनर्जन्म के विषय में अब तक काफी वैज्ञानिक अनुसंधान हो चुके हैं और आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में पुर्नजन्म की कोई-न कोई घटना छपती ही रहती है।

ये घटनाएँ गीता की इस उक्ति की याद दिलाती हैं; 'मरने के बाद भी आत्मा के गुण, धर्म, स्वभाव' इत्यादि वही रहते हैं, जो जीवित अवस्था में थे। ऐसी अनेक घटनाओं का सचित्र वर्णन 'जर्नीज आउट ऑफ दि बाडी' (सूबेदार प्रेस, लंदन) 'दि अदर वर्ल्ड' (डब्लू स्पेन्सर) तथा 'स्प्रिचुअल होलिंग,' (ऋशीराम) आदि पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है। रणजीत सिंह के समय में एक योगी को सात दिनों के लिए सशस्त्र पहरे में जमीन में गाड़ दिया गया था। सात दिन बाद वह जीवित और प्रसन्न-चित्तावस्था में जमीन से बाहर निकले। कुछ वर्ष पूर्व, राजधानी में भी एक योगी ने ऐसा प्रदर्शन कर दिखाया था।

आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए कर्नल हाउंशेड नामक एक आधुनिक योगी का वह प्रदर्शन आज तक समस्या बना हुआ है, जिसमें उन्होंने तीन सुप्रसिद्ध डॉक्टरों के सामने

अपनी इच्छा से अपने प्राण को शरीर से बाहर निकाल लिया था। तीनों डॉक्टरों ने उनकी शारीरिक जाँच करके निर्णय दिया था कि उनकी मृत्यु हो चुकी है।

श्रीमद्भागवत में जिन दस गौण सिद्धियों का उल्लेख है, उनमें से एक सिद्धि है परकाया-प्रवेश-सिद्धि। परकाया-प्रवेश जिन विधियों से किया जाता है, उनका सविस्तार वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ने को मिलता है। ऐसी कुछ विधियों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

विभिन्न विधियाँ

दृश्य शरीर के अलावा चार अदृश्य (सूक्ष्म) शरीर भी होते हैं, जो वायव्यलोक, दिव्यलोक, मानसिक लोक तथा आध्यात्मिक लोक से संबंधित हैं। प्राणमय शरीर (एस्ट्रल बाडी) का आकार प्रकार आकाश शरीर (एथेरियल बाडी) और भौतिक शरीर के आकार-प्रकार के समान ही होता है, पर भौतिक शरीर से अलग होकर असाधारण रूप से प्रभावशाली हो जाता है।

स्वरोदय विज्ञान के अनुसार, मणिपूरचक्र (एपीगेस्ट्रिक प्लेक्सस) में अग्नितत्व स्थित है। इस चक्र पर सदा ध्यान करने वाला व्यक्ति सब दुखों से छुटकारा पाकर अपनी सब कामनाओं की यहाँ तक कि पर-देह में प्रवेश करने की कामना की भी सिद्धि कर लेता हैं।

निद्रावृत्ति निरोध से भी परकाया-प्रवेश संभव है। चन्द्रनाड़ी मनोमय शरीर की प्राणतत्व वाहिनी नाड़ी है। इसके निरोध से निद्रावृत्ति का भी निरोध हो जाता है, और तब मनोमय (सूक्ष्म) शरीर भौतिक शरीर से बाहर जाकर पर-देह में प्रवेश कर सकता है।

प्राणतत्व वाहिनी नाड़ी से भी अधिक सूक्ष्म है चित्तवहा नाड़ी, जिसमें 'बन्धकारण शैथिल्यात्' (योगसूत्र : पतंजली) के द्वारा प्रवेश कर, किसी की देह में प्रवेश किया जा सकता है।

योगसूत्र के एक अन्य सूत्र 'यथाभिमत ध्यानाब्दा' के अनुसार भी परकाया-प्रवेश की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। कुछ मंत्रों के नित्य सहस्त्र बार पाठ करने से भी यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

पाश्चात्य विधियाँ

पश्चिम में भी परकाया-प्रवेश की कुछ विधियों का आविष्कार हुआ है। मौंशिये डुराबेल नामक फ्राँसीसी ने एक सचित्र पुस्तक इस विषय पर लिखी है, जिसे इस विषय की सर्वाधिक प्रामाणिक पुस्तक माना जाता है। मुलडोन नामक एक ख्यातनामा परा-मनोवैज्ञानिक की इस विषय पर 'दि प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रेल बाडी' नाम की एक सचित्र पुस्तक भी इस विषय का पर्याप्त ज्ञान कराती है। वह स्वप्न-नियंत्रण द्वारा परकाया-प्रवेश

की क्रिया के समर्थक हैं और उनकी पुस्तक में इस प्रभावशाली क्रिया का विस्तृत वर्णन है। रजत रज्जु (सिल्वर कार्ड) का उल्लेख उन्होंने भी किया है। पर अपनी पुस्तक के अंत में उन्होंने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात कही है, पुस्तकों में या सिद्धान्त के रूप में कुछ भी पढ़कर हमें उतना संतोष नहीं होता, जितना स्वयं प्रयोग कर लेने के बाद, वह क्रिया या विद्या उसे प्रयोगसिद्ध बना देती है, तब हम अपनी अमरता का अनुभव करते हैं।

आकाश-गमन

जो अतीद्रिंय शक्ति सूक्ष्म शरीरों का कारण बनती है, वही सूक्ष्म शरीरों के अनेकानेक चमत्कारों का कारण भी बनती हैं। हमारे पूर्वजों को, हजारों वर्ष पूर्व भी, इस अतीद्रिंय शक्ति के बारे में पता था, और वे इन्द्रियों की शक्ति-मर्यादा से भी परिचित थे, कृष्ण कहते हैं-

अति दूरात् सामीप्यात् इन्द्रियआतात्। मनोडन व स्थानात्॥
सौक्ष्मायात् व्यवधानत् अभिभवात्। समानभिहारात् च॥

(बहुत दूर, बहुत समीप, बहुत सूक्ष्म अथवा सामने न रहने पर वस्तुओं को इन्द्रियों द्वारा पहचान पाना संभव नहीं है।)

इसी अतीन्द्रिय शक्ति के बल पर योगी का आसन भूतल से आकाश में उत्थित हो जाता है, और वे आकाश-गमन भी कर सकते हैं और यह चमत्कार केवल भारतीय योगी ही कर सकते हैं, ऐसा भी नही है। पश्चिम के प्रसिद्ध संत अगास्टिन ने अपनी 'जीवन स्मृति' में सेंट मणिका नामक एक साध्वी की कथा कही है कि प्रार्थनाा के समय वह तीन फुट तक आकाश में उत्थित हो जाती थी, यह चौथी सदी की घटना है।

प्रसिद्ध नव-प्लातनिक दार्शनिक जाम ब्लियास भी प्रार्थना करते समय भूमि से प्राय: दस फुट ऊपर उठ जाया करते थे। सेंट मेरी नामक भिक्षुणी के जीवन में भी यह अलौकिक घटना देखने में आई थी। वह पैलेस्टाइन की मरुभूमि में अकेले प्रार्थना करती थी और उस समय उसकी देह भूमि से पाँच फुट ऊपर उठ जाती थी।

स्पेन की सुविख्यात महिला--संत टेरेसा, जिसे 'स्पेन की मीराबाई' कहा जा सकता है, प्रार्थना काल में आकाश में उठ जाती थी और इस प्रकार उत्थित रहकर बहुत समय तक शून्य में रहती थी, और फिर उसकी देह नीचे उतरती थी।

भारत में देह-उत्थान और इच्छा से आकाश-मार्ग में गमन का विवरण महायोगी श्री विशुद्धानन्द परमहंस, श्री श्रीलोकनाथ ब्रह्मचारी, श्री श्री काठिया बाबा और महात्मा राम ठाकुर तथा अन्य आधुनिक योगियों के जीवन में मिलता है। योगवशिष्ठ रामायण के अनुसार वीतहव्य, चुडाला प्रभृति आकाश गमन करते रहते थे। दत्तात्रेय की आकाश गमन की कथाएँ भी प्रचलित हैं।

दाराशिकोह ने औलियों के जीवन-वृत्तांतो में मियाँ मीर का उल्लेख किया है, जो लाहौर से आकाश-मार्ग द्वारा हिजाद जाते थे। शेख अब्दुल कादिर जिलानी एक बार व्याख्यान देते-देते शून्य में अर्न्तध्यान होकर कुछ देर बाद लौटे, और कहने लगे कि मैं खिदिर से मिलकर आ रहा हूँ।

प्रसिद्ध है कि गेब्रियल नामक देवदूत एक रात मोहम्मद साहब को बिस्तर से उठाकर सात स्वर्गों और नरक के दृश्य दिखाकर यथा स्थान छोड़ गया था। इसमें इतना कम समय लगा था कि लौटने पर मुहम्मद साहब ने अपने बिस्तर को गरम पाया।

सूक्ष्म शरीर द्वारा क्या चोरी संभव है?

क्या कोई सूक्ष्म शरीर चोरी भी कर सकता है? १६२६ में पेरिस में हुए एक काण्ड से प्रतीत होता है कि ऐसा संभव है।

अप्रैल, १६२६ में पेरिस के एक धनी व्यापारी पियरे टुबो ने पुलिस में रिपोर्ट की कि उनके घर से लगभग दस लाख रुपये मूल्य की एक अद्वितीय कलाकृति सहसा गायब हो गयी है। पुलिस कमिश्नर टुबों के अच्छे मित्र थे इसलिए उन्होंने शिकायत मिलते ही अपने सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिए।

पर कई दिन लगातार खोज करने के बाद भी पुलिस कलाकृति को खोजने में असफल रही, जिस कमरे में कलाकृति टँगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या उँगलियों के निशान नहीं मिले। कमरे के बाहर चौबीसों घंटे पहरा रहता था और उसके दरवाजे और खिड़कियाँ हमेशा मजबूती से बन्द रहते थे। पाँच फुट लम्बी और सवा तीन फुट चौड़ी कलाकृति को कोई छिपाकर भी नहीं ले जा सकता था। आखिर वह कलाकृति गई तो गई कहाँ, और कैसे? यह प्रश्न पुलिस के सामने एक समस्या और रहस्य बनता जा रहा था।

कुछ दिन पश्चात् इस रहस्य पर कुछ प्रकाश पड़ा। पियरे टुबों के पुत्र कैप्टेन मार्शल टुबों ने अल्जीरिया से एक तार भेजकर अपने पिता से पूछा था, 'क्या यह कलाकृति घर में है?' कैप्टेन मार्शल टुबो प्रख्यात चिकित्सक थे, और फ्रेंच सरकार की सहायता से अल्जीरिया में फैले डिप्थीरिया रोग को रोकने की कोशिश कर रहे थे।

तार पाकर पियरे टुबों को आश्चर्य हुआ कि उनके पुत्र को कैसे मालूम हुआ कि वह कलाकृति घर में नहीं है। स्थानीय पुलिस के अलावा, किसी को इसकी सूचना नहीं थी। पुलिस को सख्त ताकीद थी कि वह यह सूचना किसी को भी न दें। पुलिस कमिश्नर को भी तार पढ़कर बड़ी हैरानी हुई।

पियरे टुबों ने अपने पुत्र को तार द्वारा सूचित किया, कलाकृति चोरी हो गई है। पुलिस तहकीकात कर रही है, और उसे पूरी आशा है कि कलाकृति शीघ्र ही मिल जाएगी।

पर अल्जीरिया के छोटे से गाँव में कैप्टन टुबों को जब अपने पिता का तार मिला, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हाँ, क्योंकि उस समय वह कलाकृति उनकी आँखों के सामने मौजूद थी। उन्होंने फौरन गाँव के पोस्ट मास्टर, पुलिस इन्सपेक्टर, मुखिया और एक अन्य डॉक्टर को फोन करके अपने घर बुलाया, और उनके आने पर पूछा, ''सज्जनों, आप सामने दीवार पर क्या देख रहे हैं?'' सबने कहा कि वे अपने सामने एक असाधारण कलाकृति के दर्शन कर रहे हैं।

''कृपया इसे दीवार से उतार कर, अपने हाथों में लीजिए, और बतलाइए कि यह कलाकृति ही है? और कुछ नहीं? मैं यह प्रश्न एक विशेष उद्देश्य से आपसे पूछ रहा हूँ।'' मार्शल टुबों ने सबसे कहा।

सबने कलाकृति को दीवार से उतार बारी-बारी से उसका अच्छी तरह निरीक्षण किया, और बताया कि कलाकृति के असली होने तथा मौजूद होने के बारे में उन्हें कोई संदेह नहीं है।

अब मार्शल टुबों ने उन्हें बताया कि स्थिति क्या है, और उसने उन्हें क्यों बुलाया था। उसने उन सबको एक विचित्र घटना के बारे में भी बताया, ''जब मैं पास के एक गाँव से डिप्थीरिया का उन्मूलन करके लौट रहा था तो गाँव का मुखिया अब्दुल मेरा शुक्रिया अदा करने आया। बातों-बातों में उसने आस्था-चिकित्सा (फेथ हीलिंग) और सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख किया। मैंने उसकी इन बातों में न कोई रुचि दिखाई और न यही कहा कि मैं उनमें विश्वास करता हूँ। इस पर उसने कहा कि वह अपनी बातों को प्रमाणित कर सकता है। पर, जब मैंने उसकी इस बात को सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया, तो उसने कहा कि मैं पीछे मुड़कर देखूँ। जैसे ही मैंने पीछे मुड़कर देखा, अपनी इस प्रिय कलाकृति को दीवार पर टँगे पाया। मैं यह जानकर चकित था कि वह कलाकृति पेरिस से यहाँ कैसे आ गई?''

कमरे में उपस्थित गाँव के सब लोग, जो मार्शल की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे, मार्शल की भाँति ही, इस चमत्कार को देखकर आश्चर्य-स्तब्ध थे।

मार्शल ने आगे कहा, ''पिछले कुछ दिनों से मुझे मेरा घर बहुत याद आ रहा था, और घर के साथ याद आ रही थी वह मूल्यवान कलाकृति जिसे मैंने बड़े चाव से खरीदा था। अब्दुल ने मेरे मन की बात कैसे भाँप ली, मैं कह नही सकता, पर उसके कलाकृति को पेरिस से अल्जीरिया लाने के चमत्कार को देखकर मैं सचमुच आश्चर्य चकित हूँ।''

चारों के चले जाने के बाद, मार्शल ने अब्दुल को फिर बुलाया, और उससे प्रार्थना की, ''अब कृपया इस कलाकृति को वापस पेरिस भिजवा दीजिए, मेरे पिता काफी चिंतित हैं।''

"आप के ख्याल से मैं इसे वापस भिजवा सकता हूँ?" अब्दुल ने मुस्कराकर पूछा।

"हाँ, अब मैं कायल हो गया हूँ कि आप अपने सूक्ष्म शरीर के जरिए उसे वापस पेरिस भिजवा सकते है।"

अब्दुल ने हाथ हिलाया और दीवार से कलाकृति गायब होकर पेरिस पहुँच गई।

अगले दिन मार्शल को अपने पिता का यह तार मिला, "कलाकृति पुनः अपने स्थान पर, रहस्यमय ढंग से उसी प्रकार वापस आ गई है, जिस प्रकार चली गई थी, पुलिस को सूचित कर दिया गया है।"

प्रक्षेपण सूक्ष्म शरीर का

इस प्रकार की सच्ची घटनाओं के आधार पर परा-मनोवैज्ञानिकों ने 'सूक्ष्म शरीर के प्रक्षेपण' नामक सिद्धान्त को जन्म दिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार निद्रा, अचेतनावस्था या रुग्णावस्था में सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर से पृथक होकर कहीं भी विचरण कर सकता है, और ऐसे चमत्कार कर सकता है, जो भौतिक शरीर के लिए संभव नहीं है। सूक्ष्म शरीर के ऐसे कार्यकलाप या तो उस शरीरधारी के अवचेतन मन की 'इच्छा' के परिणाम स्वरूप होते हैं, या चेतन मन के किसी अडिग और दृढ़ संकल्प के अनुसार। इन कार्यकलापों पर दिक्काल के बंधन लागू नहीं होते।

सूक्ष्म शरीर का उल्लेख हमारे पौराणिक ग्रन्थों के अलावा, बाइबिल में भी आया है। बाइबिल के अनुसार, भौतिक और सूक्ष्म शरीर, पृथक होने पर भी एक अदृश्य (या सफेद चमकीली) रजत-रज्जु से बँधे रहते हैं। अनेक ईसाई संतों को यह अनुभव हो चुका है कि उनका भौतिक शरीर पृथ्वी पर पड़ा है और रजत-रज्जू से बँधा उनका सूक्ष्म शरीर अन्यत्र निर्बाध गति से विचरण कर रहा है। ईसाई धर्म के इतिहास में ऐसी अनेक सच्ची घटनाओं के बारे में पढ़ने को मिल सकता है।

ईसा के सूक्ष्म शरीर के चमत्कार

मत्ती और मर्कुस आदि द्वारा लिपिबद्ध ईसा के जीवन चरित में वर्णित ईसा के कब्र से उठने के बाद की घटनाओं को यदि ऐतिहासिक मान लिया जाए, तो इसकी तर्कयुक्त व्याख्या यही होगी कि अपने देहावसान के बाद ईसा ने स्वयं को अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अभिव्यक्त किया।

ईसा के देहावसान के बाद का उनका शरीर मूर्त्त होते हुए भी इतना सूक्ष्म था कि दीवारों में से गुजर सकता था, और सहसा प्रकट होकर, सहसा लुप्त भी हो जाता था, यह सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर से अधिक तेजोमय भी था। यदि इस अलौकिक घटना पर विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही विचार किया जाए तो यही कहा जाएगा कि कब्र में गाड़े जाने के तुरंत बाद, उनका भौतिक शरीर अपने भौतिक गुण तजकर, सूक्ष्म बन गया था।

यदि ईसा के त्यूरिन के शव-परिधान को प्रामाणिक मान लिया जाए, तो पेरिस के जीव शास्त्री डा० पॉल विग्नॉन आदि वैज्ञानिकों द्वारा उस पर किए गए प्रयोगों से भी यही प्रकट होता है कि त्यूरिन में गिरजाघर में रखे १५ फुट लम्बे और ४ फुट चौड़े इस शव परिधान में रखा ईसा का मृत शरीर विगलन से पूर्व ही लुप्त हो गया था।

पुरावृत्त के अनुसार, ईसा को इसी शव परिधान में लपेट कर कब्र में रखा गया था, और उस पर अंकित किसी सुविकसित पुरुष के अग्र और पृष्ठ भागों का असामान्य प्रतिरूप, ईसा की देह का ही प्रतिरूप है। उसके छाया चित्रों का अध्ययन करने वालों का अनुमान है कि वर्तमान असामान्य प्रतिरूप उस रासायनिक अभिक्रिया का परिणाम है, जो शव से उठने वाली एमोनिया पर भारी मात्रा में बिखेरे गए अगरु तथा अन्य मसालों के मिश्रण के कारण हुई होगी।

पर, यहाँ एक प्रश्न उठता है। यदि शव-परिधान वास्तविक है, तो प्रतिरूप इतना सुस्पष्ट क्यों है? इससे केवल इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि शव का विगलन नहीं हुआ था, और मृत शरीर तुरन्त सूक्ष्म बन गया था। यदि ऐसा न होता, तो शव को हिलाते-हटाते समय हिलाने-हटाने वालों की उँगलियों के निशान शव-परिधान पर अवश्य अंकित रह जाते। त्यूरिन स्थित ईसा का शव-परिधान, जिसे प्रमाणिक माना जाता है, इस तथ्य को निर्विवाद रूप से सिद्ध करता है कि कब्र में रखे जाने के तुरन्त बाद, ईसा का भौतिक शरीर सूक्ष्म शरीर में परिवर्तित हो गया था।

क्या मानव अनंत शक्तियों का स्वामी है?

ऊपर दी हुई सत्य घटनाएँ, प्रमाणित करती हैं कि हमारी इस देह का स्वामी 'मैं' इस देह के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता, मरण के बाद, इस देह के विसर्जित हो जाने पर भी, यह अपने सम्पूर्ण पूर्वार्जित ज्ञान और स्मृतियों के साथ जीवित रहता है। आज के वैज्ञानिकों के सम्मुख यह चुनौती है कि वह उस अपर आत्म तत्व का अन्वेषण कर मानव को उसकी अनन्त शक्तियों का स्वामी बनाए। पुराकाल के आध्यात्म योगियों ने जिन सत्यों को अपनी आंतर-समाधि में साक्षात् किया था, आज का वैज्ञानिक उन्हीं को भौतिक विज्ञान से तथ्यों और सिद्धान्तों के रूप में प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहा है। योगियों ने शक्ति के चरम--परम सूक्ष्म स्वरूप और गतिविधि को जिस प्रकार प्रत्याशित किया था, वैज्ञानिकों द्वारा किया गया शक्ति का आँकलन उससे बहुत भिन्न नहीं है।

योग की उच्चतम उपलब्धियों की ओर अग्रसर होते-होते हमें पता चलता है कि जीवन का यज्ञ ऋत, सत्य और यम इन तीन तत्वों पर चलता है। तब हम जीवन को 'जड़' और 'चेतन', इन दोनों क्षेत्रों में फैला देखते हैं। इन दोनों क्षेत्रों की सीमा पर राजस तत्व का अधिकार है। सत् (चेतन) और तम (जड़) क्षेत्रों की सीमाओं पर रजोगुण का साम्राज्य है, जिसके शिथिल होने पर प्रकृति क्रमशः जीवाणु, शक्ति और विचार में स्खलन को प्राप्त होती है, क्रमशः स्वप्न की शक्लों के जागृत होने पर विलीन होने के समान।

सारा दृश्य और अदृश्य जगत् सूक्ष्म रश्मियों से बना है, और इस रश्मि-जाल में तीन तत्व सिमटे हैं, जीवाणु, शक्ति और विचार। इसे बुनने वाली आत्मा अपने स्वभाव और स्वकर्मानुसार अनेक रूप प्रदान करती है, और उसमें लिप्त हो जाती है। पर जागृत आत्मा स्वकीय प्रेरणानुसार किसी भी देह, पदार्थ या स्वरूप का निर्माण या विलय कर सकती है।

गुह्य विद्या की सर्वाधिक आश्चर्यकारी देन है यह सिद्धान्त, कि श्रेष्ठतम मानव शरीर 'थ्री डाइमेनशंस ऑफ स्पेस' और 'वन डाइमेन्शन ऑफ टाइम' के समानुपातिक विप्रत्यय से आकार ग्रहण करता है। इस सिद्धान्त को भली-भाँति समझ कर, आचरण में लेने की स्थिति प्राप्त होने पर मानव अपने शरीर को किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण में प्रकट व पुनर्लय कर सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार, अखिल तथा दीर्घकालीन मेडीटेशन (ध्यान) द्वारा स्वदेह की रक्षा हेतु ब्रह्माण्ड रश्मियों का उपयोग किया जा सकता है। तब उस ब्रह्माण्ड क्षेत्र संयुक्त-स्थिति में वह जो भी संयत विचार करेगा, वही ब्रह्माण्ड रश्मियों द्वारा 'कण्डेन्स' होकर आकार, सूक्ष्म अथवा स्थूल, ग्रहण कर सकेगा, और उसे मालूम होगा कि उसका सूक्ष्म शरीर ब्रह्म का एक अनन्त शक्तिमय आविष्कार है, इस सर्वयोग के आचरण में आने पर सूक्ष्म शरीर के सब चमत्कार बच्चों का खेल प्रतीत होंगे।

मृत्यु और पुनर्जन्म

मृत्यु; या तो भविष्य में या फिर अतीत में। वर्तमान में उसका अस्तित्व नहीं है। वर्तमान में केवल जीवन है। इसलिए जीवन को जाना, समझा-जा सकता है और उसे जीया जा सकता है। जीवन के संबंध में विचार करने वाले लोग उसे गवाँ बैठते हैं। इसलिए कि विचार की गति भूत और भविष्य में है। 'विचार' वर्तमान में नहीं होता। वर्तमान में वह मृत है और यही कारण है कि वर्तमान में जीवन का विचार नहीं होता, होती है अनुभूति। अनुभूति है निर्विकार, नि:शब्द, मौन, शून्य इसीलिए निर्विकार चैतन्य को जीवनानुभूति कहते हैं। जीवन को जान लेने वाले लोग मृत्यु को भी जान लेते हैं। क्योंकि 'मृत्यु' जीवन को न जानने से पैदा हुआ भ्रम मात्र है। जो जीवन को नहीं जानता वह स्वभावत: शरीर को ही स्वयं मान लेता है। चूँकि शरीर मरता है, मिटता है और उसकी इकाई विसर्जित होती है। इसके भय से पीड़ित व्यक्ति 'आत्मा अमर है' कहता है। लेकिन ये दोनों धारणाएँ एक ही भ्रम से पैदा होती हैं। एक ही भ्रान्ति के दो रूप हैं और दो प्रकार के व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ है।

यह हुई जीवन की सूक्ष्म आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक व्याख्या। लेकिन आज के वैज्ञानिक के लिए इस व्याख्या का कोई महत्व नहीं है। उनके शब्दो में 'जीवन' निर्जीव पदार्थों के मिलन का एक सुखद परिणाम है। जर्मन दार्शनिक नीत्से ने जीवन की परिभाषा करते हुए कहा था--''जीवन वृद्धि और शक्ति संचय की प्रेरणा है।''

नीत्से की यह परिभाषा है तो सुन्दर! लेकिन उफनते सागर और भयंकर तूफान भी इसमें शामिल हैं। खैर...

आदि काल से मानव यह प्रश्न करता रहा है कि मानव क्या है? कहाँ से आता है? और कहाँ जाता है? उसका प्रारम्भ इस जन्म से होता है, अथवा जन्म से पूर्व भी उसका अस्तित्व था? यदि उसका अस्तित्व था तो किस रूप में था? क्या मृत्यु ही जीवन की अन्तिम परिणति है? जहाँ संसार के कुछ धर्मावलम्बी मृत्यु को ही जीवन का अन्त मानते हैं, वहीं समस्त संसार को इस नए विज्ञान का ज्ञान देते हुए भारतीय संस्कृति मानती है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है।

मृत्यु के पूर्व जन्म है और बाद में है पुनर्जन्म। मृत्यु के एक ओर जन्म है तो दूसरी है पुनर्जन्म। पुनर्जन्म भारतीय संस्कृति के और तत्व ज्ञान का एक भौतिक अंग है। देहान्त के साथ शरीरगत आत्मा की मृत्यु न होकर वह आत्मा उस देह में प्राप्त संस्कारों के साथ दूसरी देह में चली जाती है। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं।

मनुष्य का जन्म, मृत्यु के पश्चात तुरन्त इसी लोक में होता है या परलोक जाकर उसे लौटना पड़ता है? यह प्रश्न भी कभी-कभी उपस्थित होता है।

परलौकिक विद्या के विद्वानों का कहना है कि मृत्यु के बाद जीवात्मा तुरन्त ही इसी लोक में दूसरे शरीर में जन्म लेती है। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि यदि जीवात्मा का जो कि अमर है परलोक जा सकने योग्य विकास न हुआ हो तो भूलोक में उसका तुरन्त जन्म होगा। मरने वालों का भूलोक की ओर अत्याकर्षण भी मरणोत्तर तुरन्त पुनर्जन्म का कारण हो सकता है। इस संबंध में हम आगे चर्चा करेंगे।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दुओं में वैदिक काल से ही चला आ रहा है। यह भारतीय संस्कृति के तत्व ज्ञान का सिद्धान्त है। भारत के धार्मिक ग्रन्थों में इसकी अधिकाधिक सप्रमाण चर्चा मिलती है। अनेक घटनाएँ, कहानियाँ, शास्त्रीय प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीव का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। वरन् वह पुन: दूसरा शरीर धारण कर लेता है। फिर भी चार्वाक् जैसे भारतीय दार्शनिक ने जो कि पूर्णतया भौतिकवादी थे, और ईश्वर की सत्ता में बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे, पुनर्जन्म को कुछ भी महत्व नहीं दिया। उनका कहना था कि जब तक जीए सुख से जीए, कौन जाने जलकर राख हो जाने के बाद यह शरीर वापस आता है या नहीं। यहूदी, ईसाई, तथा मुसलमान पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। आज की नितान्त भौतिकवादी और यथार्थवादी पीढ़ी भी पुनर्जन्म को संशय की दृष्टि से देखती है। वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रगति के साथ-साथ व्यक्ति की आस्था आत्मा तथा परमात्मा पर कम होती जा रही है। वह प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी विचारधारा का पुजारी हो गई है। वह आत्मा को पदार्थ या भौतिक तत्व के अधीन मानने लगी है, तथा जगत की जीवनोत्तर सत्ताओं में विश्वास खो बैठी है। वह उन्हीं विचारों एवं सिद्धान्तों को ठीक मानती है जो विज्ञान की कसौटी

पर सही उतरते हैं। प्रत्येक कार्य की प्रामाणिकता उसकी वस्तुनिष्ठा पर आधारित है। ऐसी परिस्थिति में पुनर्जन्म के विचार को सरलता से उनके गले के नीचे उतारा नहीं जा सकता। लेकिन इधर कुछ समय से मानसिक तनाव और अशान्ति से पीड़ित भौतिक वादियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। वे भी कर्मवाद पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त का अध्ययन कर रहे हैं और उसकी प्रमाणिकता को वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध करने का प्रयास करने में लगे हैं।

पुनर्जन्म क्यों होता है और कैसे होता है, इस पर प्रकाश तो प्रसंगवश डाला ही जाएगा, लेकिन इसके पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि पुनर्जन्म का क्या अर्थ है? पुनर्जन्म का मतलब है नवीन स्थूल शरीर को धारण करना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक शरीर के विघटित या नष्ट हो जाने पर आत्मा दूसरा शरीर धारण कर लेती है। आत्मा का एक शरीर का त्यागकर दूसरा शरीर प्राप्त करना पुनर्जन्म का द्योतक है। यह जन्म-मरण की परम्परा ही जन्मान्तर या पुनर्जन्म है। संसार परिवर्तनशील है। उसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें परिवर्तन न होता हो। जब तक पदार्थ की सत्ता है तब तक परिवर्तन अनिवार्य है और इस परिवर्तन की ही एक संज्ञा जन्म-मरण है जो निरन्तर चलती रहती है।

जन्म और पुनर्जन्म का कारण 'संस्कार'

पुनर्जन्म का यह अभिप्राय बिल्कुल नहीं है कि हमें अपने आगामी जीवन में फिर नए सिरे से चलना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति उस स्थान से पुन: चलेगा जहाँ तक वह अपनी पूर्व मृत्यु तक पहुँच चुका था और प्रत्येक जन्म में वह अपनी पूर्व जन्म की संकलित स्मृतियों को लेकर पृथ्वी पर लौटेगा। व्यक्ति अपनी कामनाओं स्मृतियों और शक्तियों के अनुरूप ही शरीर प्राप्त करता है। जन्म और पुनर्जन्म का एक मात्र कारण संस्कार है। अवचेतन मन की कल्पना करने वाले 'फ्रायड' और 'जुंग' जैसे महान मनोवैज्ञानिकों ने भी संस्कारों के अस्तित्व पर बल दिया है। उनका कहना है कि अवचेतनमन अथवा अचेतन मन हमारे संस्कारों और अनुभवों का भण्डार है जो अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन को प्रभावित करते रहते हैं। ये संस्कार तब तक सुस्त पड़े रहते हैं जब तक कि अनुकूल स्थितियाँ उन्हें जागृत करके चेतना के धरातल पर बाहर नहीं खींच लाती। इस सिद्धान्त के आधार पर यह कहना उचित मालूम होता है कि हमारे पूर्व अस्तित्वों का स्मरण हो सकना संभव है। फ्रायड का मनोविश्लेषण इसी सिद्धान्त पर आधारित है और इस प्रकार मानसिक रोगी की पूर्व स्मृतियों को चेतना-पटल पर लाकर उसके रोग का उपचार करते हैं। बहुत से मानसिक रोगों का संबंध पूर्व जन्म से होता है। उनमें से 'फोबिया' एक है। अत: यह असम्भाव्य नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को, गत अनुभूतियों को जो सुप्तावस्था में अचेतन मन में पड़ी हैं, चेतना के धरातल पर लाकर पूर्वजन्म की याद दिलाई जा सकती है।

राजयोग एक ऐसी यौगिक क्रिया है-जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व जन्म को प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है और यह जान सकता है कि पूर्व जन्म में वह क्या था, भारत में ऐसे कितने ही राजयोगी हुए हैं जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त था। उच्चतम चेतना में एकाकार हो जाने पर महान ऋषियों तथा मुनियों ने देशकाल तथा कार्यकारण भाव की सीमाओं का अतिक्रमण किया था और तीनों काल को देख सकने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी भव्य और महान् अनुभूतियों से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि की थी। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तो इसका प्रबल प्रमाण है।

पुनर्जन्म की पुष्टि इस बात से भी होती है कि मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं जिसकी व्याख्या इस जन्म के कर्मों द्वारा नहीं की जा सकती। हम जैसे कर्म करते हैं। वैसे ही संस्कार भी बनते हैं और उसी संस्कार के अनुसार आगामी जीवन प्राप्त होता है और सुख-दु:ख का अनुभव भी होता है।

भारतीय तत्ववेत्ताओं का 'कर्म सिद्धान्त' मानव जीवन के कर्म में असीम सम्भावनाओं का उद्‌घाटन करता है। वास्तव में हिन्दू धर्म ने पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त की स्थापना करके न केवल हमारे बीच पाई जाने वाली व्यापक विषमताओं की एक न्याय युक्त व्याख्या हमारे सामने प्रस्तुत की है, वरन् आगे हमारे विकास और उन्नति का मार्ग भी खुला रखा है। आज की स्थिति पूर्व जन्मों की क्रिया-कलापों और कर्मों का परिणाम हैं, किन्तु भावी स्थिति का निर्माण हमारे अपने कर्मों पर निर्भर करता है। हिन्दू धर्म का कहना बहुत सीमा तक उपयुक्त है कि अनात्यवादियों, प्रकृतिवादियों और विकासवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। पुनर्जन्म में विश्वास करने के साथ-साथ हमें यह भी मानना अनिवार्य है कि 'आत्मा' अमर है और 'जीव' प्राण, मन, बुद्धि के साथ दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। भारतीय दार्शनिक इसे 'सूक्ष्म शरीर' कहते हैं। जो संस्कारों का पुतला है। (सूक्ष्म शरीर के विषय में पीछे विस्तृत चर्चा की जा चुकी है) और अपने संस्कारों के अनुसार बराबर बदलता रहता है। ज्ञान और प्राण के समूह का नाम 'सूक्ष्म शरीर' है। प्राण की अधिकता के कारण इसे 'प्राणमय शरीर' भी कहते हैं। इसका व्यापार किसी न किसी प्रकार के स्थूल शरीर के द्वारा होता है और इसी कारण पुनर्जन्म होता है।

सूक्ष्म शरीर होता है, इसकी सत्यता निम्न लिखित बात से स्पष्ट हो जाती है। प्राय: पूर्वजन्म की घटनाएँ उनलोगों को अधिक याद रहती हैं जिनकी अकाल मृत्यु हुई होती है। जैसे मोटर या रेल दुर्घटना में मृत्यु, छत से कहीं ऊँचे से गिरकर मृत्यु, किसी के द्वारा कत्ल किए जाना, आत्महत्या करना आदि। बन्दूक की गोली या गड़ासे से मृत्यु के घाट उतारे गए कतिपय व्यक्तियों के शरीर पर इस जन्म में गोली या गड़ासे के निशान बने हुए पाए जाते हैं। मैंने स्वयं कुछ ऐसे पुनर्जन्म से संबंधित व्यक्तियों का अध्ययन किया है जिनके शरीर पर गोली इत्यादि के चिन्ह पाए गए और जिन्हे पूर्व जन्म की बातें याद हैं और यह भी याद है कि उन्हें किस प्रकार मारा गया और किसने मारा। इन चिन्हों की प्रामाणिकता को पोस्टमार्टम रिपोर्ट आदि की सहायता से अध्ययन किया गया और सही

पाया गया। जब पूर्व पार्थिव शरीर जला दिया गया या नष्ट कर दिया गया तब इस जन्म में पूर्व जन्म के कत्ल इत्यादि के चिन्ह क्यों? यह इस बात की पुष्टि करता है कि पार्थिव शरीर के अतिरिक्त एक और शरीर होता है जिसे हमारे दार्शनिक सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

भारतीय धर्म और दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म की धारणा केवल एक सिद्धान्त या एक स्थापित विश्वास ही नहीं है, बल्कि इससे पूर्वोत्तर जन्मों की उपलब्धियों की स्मृति की सम्भावनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। एक वैज्ञानिक जो केवल भौतिक विज्ञानानुक्रम पर ही विश्वास करता है, कभी अपने आपसे यह पूछने का प्रयास भी नहीं करता कि वंशानुक्रम के सिद्धान्त का वास्तविक अर्थ क्या है? यह एक अर्जित विशेषताओं की सुरक्षा और निरन्तरता का सिद्धान्त है।

पुनर्जन्म की सत्यता को प्रमाणित करने में हमारे स्वप्न भी सहायक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को निद्रा की अवस्था में स्वप्न दिखाई देते हैं जिनकी अभिव्यक्ति नाना रूपों में होती है। कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जो स्पष्ट होते हैं और जिनकी व्याख्या सुगमता से की जाती है। पर कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जिनका संबंध किसी घटना से नहीं जोड़ा जा सकता, और न वे इस जीवन में कभी देखे गए और जो मन की कल्पना शक्ति की सीमा से बाहर हैं। फिर उन स्वप्नों का जो हमारे विचारों की प्रतिक्रिया और वासनाओं की तृप्ति से संबंध नहीं रखते, उद्गम कहाँ है? और क्यों है? आज का फ्रायडियन मनोविज्ञान इन स्वप्नों को अतृप्त वासनाओं की पूर्ति कह कर सन्तोष कर लेता है। पर यह हमारे प्रश्नों का समुचित तथा पूर्ण उत्तर नहीं है। क्योंकि उन स्वप्नों की व्याख्या का क्या स्वरूप होगा, जिनका अस्तित्व ही वर्तमान जीवन से संबंधित नहीं है। तभी तो यह कहना पड़ता है कि इस जन्म से पूर्व भी कोई जन्म अवश्य रहा होगा, जिसकी घटनाएँ स्वप्नों में प्रगट होती हैं। इसका उत्तर भारतीय योग शास्त्र देता है। योग शास्त्र का कहना है कि सुषुम्ना नाड़ी में व्यक्ति के जन्म-जन्मान्तरों का पूरा इतिहास भरा होता है। और इस प्रकार के विचित्र स्वप्न देखते समय मन उस विगत जीवन की स्मरणीय घटनाओं के खण्ड में चला जाता है और वह उस पूर्व घटनाओं को सजीव तथा यथार्थ रूप में स्वप्नों में देखता है। ऐसे लोगों को पूर्व जन्म की याद दिलाना कठिन नहीं है। (स्वप्न के विषय में आगे विस्तृत चर्चा की जाएगी)

पुनर्जन्म के संबंध मे एक और ध्यान देने योग्य बात है और वह है इस सिद्धान्त की विश्वव्यापी मान्यता। यद्यपि ईसाई, यहूदी और इस्लाम धार्मिक विचार वाले व्यक्तियों को पूर्व जन्म में विश्वास नहीं है फिर भी इस धर्म के अनुयायियों मे से कुछ लोग ऐसे हैं जो पूर्व जन्म की स्मृति तथा पुनर्जन्म में आस्था रखते है। उनमें प्लेटो, पाइथागोरस, ह्विटमैन, वर्ड स्वर्थ, टेनीसन, प्रोफेसर हक्सले आदि-आदि हैं। ह्विटमैन ने अपनी एक कविता में लिखा है कि जीवन अनेक अवसानों का अवशेष है। प्रो० हक्सले ने कहा है कि देहान्तरवाद का सिद्धान्त विकासवाद के सिद्धान्त की तरह वास्तविक है। बाइबिल और कुरान में ऐसे वर्णन हैं, जिनमें इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। ईसाई मत के समुदाय

वेसिलियन, साइमेनिस्ट आदि पुनर्जन्म को मानते हैं। इसी प्रकार इस्लाम धर्म के अनुयायियों में लेबनान के रहने वाले सिया लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते है। अफ्रिका और अमेरिका के आदि निवासी लोग भी पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। जहाँ तक बौद्धों और जैनियों का संबंध है-वह पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दोनों में आस्था रखते हैं। यद्यपि उनकी व्याख्या का स्वरूप हिन्दू धर्म वालों से कुछ भिन्न हो सकता है। भारतवर्ष के आर्य इसे अनादि काल से मानते चले आ रहे हैं। साधारण से भी साधारण हिन्दू इस पर विश्वास करता है। हमारे देश के ऋषियों तथा मुनियों ने अपनी भव्य तथा महान अनुभूतियों से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि की और उसकी स्थापना की। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि--हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। परन्तु हे परन्तप! उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।

यह तो निश्चित है कि प्रत्येक बार आत्मा जन्म लेती है और प्रत्येक बार विश्व प्रकृति के उपादानों से एक मन, प्राण और शरीर की रचना होती है। यह रचना आत्मा के भूतकाल के विकास और उसके भविष्य की आवश्यकता के अनुसार होती है। शरीर छोड़ने के बाद जीव अपने मनोमय और प्राणमय व्यक्तित्व के साथ अपने भूतकाल के सारतत्व को आत्ममय करने तथा नए जोवन की तैयारी के लिए विश्राम में चला जाता है। यह तैयारी ही नए जन्म की परिस्थितियाँ निश्चित करती है। एक नए भौतिक व्यक्तित्व के गठन में और उसके उपादानों के चुनाव में उसका पथ प्रदर्शन करती है।

मृत्यु के बाद अन्तरात्मा सूक्ष्म शरीर के साथ निकल जाती है। जब जीव किसी विगत व्यक्तित्व या व्यक्तियों को अपने वर्तमान विकास के अंग के रूप में साथ लाता है, केवल तभी विगत जन्म की बातों को स्मरण रखने की सम्भावना रहती है। अन्यथा स्मृतियाँ पुनर्जन्म तक नहीं, कुछ ही समय तक ठहरती हैं। अगर ऐसा न होता तो विगत जन्मों की स्मृति-नया शरीर लेने के बाद अपवाद न होकर नियम होती। यह सम्भव है कि एक जन्म के संबंध बाद के जन्मों में आसक्ति के बल पर टिके रहें। किन्तु यह नियम नहीं है।

पुनर्जन्म के लिए वापस आने वाली अन्तरात्मा नए शरीर में कब प्रवेश करती है इसका कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। व्यक्ति-व्यक्ति की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। भावी जन्म या देहान्तरण का मूलभूत निर्धारण मृत्यु के समय होता है। उस समय चैत्य पुरुष यह चुनाव करता है कि अगले पार्थिव प्राकट्य में उसे क्या करना है और परिस्थितियाँ उसी के अनुरूप संयोजित हो जाती हैं।

आधुनिक मानसिकता के लिए पुनर्जन्म मात्र केवल कल्पना है, एक मत है जो कभी भी आधुनिक विज्ञान की पद्धतियों से प्रमाणित नहीं हुआ। फिर भी आधुनिक आलोचक के पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे पुनर्जन्म की असत्यता को प्रमाणित

कर सके। यह तो सर्व विदित है कि पूर्व के सभी धर्म, सभी धर्मावलम्बी पुनर्जन्म में गहरा विश्वास और गहरी आस्था रखते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व के सभी धर्म ग्रन्थों में पुनर्जन्म के रहस्यों का सविस्तार विवेचन किया गया है। लेकिन हम यहाँ यह जानना चाहते हैं कि पश्चिम के आधुनिक विचारधारा के लोगों का पुनर्जन्म के विषय में क्या विचार, क्या दृष्टिकोण और क्या धारणा है?

विश्वविख्यात् मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग पुनर्जन्म के संबंध में कहते हैं--पुनर्जन्म की कल्पना प्रागैतिहासिक काल के मानव के मन में तब आई होगी, जब उन्होंने अपने सपनों में अपने आपको अपने पूर्वजों के साथ सर्वथा अज्ञात परिवेशों में देखा होगा।

प्रख्यात् यूनानी दार्शनिक प्लेटो का कहना है कि "आत्मा अमर है" और विभिन्न प्राणियों के शरीरों में प्रवेश कर के वह बार-बार जन्म लेती है।

इसी प्रकार ए० स्मिथ का भी कहना है कि जैसे ही प्रागैतिहासिक काल के मानव की आत्मा किसी सर्वोच्च शक्ति को उपलब्ध हुई, उसने अमरत्व और पुनर्जन्म की समस्या से जूझना शुरू कर दिया। उसके भीतर इस सिद्धान्त ने जन्म लिया कि देह की मृत्यु हो जाने पर भी उसमें स्थित उसका अस्तित्व कभी भी नष्ट नहीं होता और नया शरीर धारण कर नया जीवन शुरू कर देती है वह। मृत्यु के बाद जीवन के प्रति मानव की सहस बोधनीय स्पृहा हमें सबसे अधिक ईसाई धर्म में देखने को मिलती है।

यह तो हुआ पश्चिम के इने-गिने प्रसिद्ध विद्वान दार्शनिकों का विचार। अब हमें यह जानना है कि पश्चिम के निवासियों में विशेष रूप से किसी को अपने पूर्व जन्म की घटनाएँ याद भी हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटेन के अंग्रेजी दैनिक 'डेली एक्सप्रेस' ने अपने पाठकों से उनके पूर्वजन्म की प्रामाणिक स्मृतियाँ भेजने का आग्रह किया था। अकेले ब्रिटेन से ही डेली एक्सप्रेस को एक हजार से अधिक घटनाएँ प्राप्त हुईं। उनमें से जिन घटनाओं को अपनी जानकारी के बाद विश्वास योग्य मान कर प्रकाशित किया गया, उनमें से कई तो काल्पनिक कहानियों से भी अधिक चमत्कार पूर्ण थीं।

यह सब कहने के बावजूद भी हम यह महसूस करते हैं कि एक वैज्ञानिक चिन्तन का व्यक्ति इस प्रकार के तर्कों से सन्तुष्ट नहीं होगा और जब तक उसे पूर्व जन्म के वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलेगे वह पुनर्जन्म की धारणा में विश्वास नहीं कर सकेगा। भारत व अन्य देशों में विशेष कर अमरीका में इस संबंध मे बहुत से शोध किए जा रहे हैं। शोध कर्ता लोग इस प्रकार के बच्चों की केस हिस्ट्री का संकलन कर रहे हैं, जो अपने पूर्व जन्म की घटनाओं का वर्णन करते हैं। उन घटनाओं की सत्यता का सत्यापन भी किया गया है।

प्राच्य विश्वास के अनुसार यह विश्व अनादि काल से अस्तित्व में है। अनन्त काल से चली आ रही सृष्टि में असंख्य हिम धाराएँ, नक्षत्र, तारा मण्डल एवं आकाश निहित हैं।

ये सभी अनन्त जीवों, पदार्थों और अन्तरात्मा से परिपूर्ण हैं। प्रत्येक अपने-अपने निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार परिक्रमा करते हुए विकसित हो रहे हैं। इस समूची सृष्टि को ब्रह्माण्ड की संज्ञा दी गई है। प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य उसके वर्तमान और पूर्वजन्मों के आधार पर भिन्न है। इसलिए हममें से प्रत्येक प्राणी अन्य सभी से भिन्न है। चाहे वह हमारे निकट के सगे संबंधी ही क्यों न हों। प्रत्येक व्यक्ति के विकास व प्रकाश की अलग-अलग दिशा और दशा होती है। इसलिए हम एक दूसरे का अनुकरण नहीं कर सकते। इसलिए एक विशिष्ट मार्ग जो एक के लिए अनुंकूल है वही दूसरे के लिए वैसा नहीं है। प्रत्येक प्राणी अपने विकास के भिन्न-भिन्न चरण में है। किसी व्यक्ति को किसी विशिष्ट वस्तु की प्राप्ति न होने से इसलिए दुखी न होना चाहिए कि उसके किसी साथी या अन्य व्यक्ति को वह वस्तु प्राप्त हो चुकी है। इसी प्रकार किसी को इसलिए अपने को महान् नहीं समझ लेना चाहिए कि उसे अन्यों से अपेक्षाकृत अधिक उपलब्धि मिल चुकी है। क्योंकि हममें से हर एक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक अंग है और वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अपने संबंध के आधार पर ही गतिशील है। कोई दूसरे के बराबर नहीं हो सकता, प्रत्येक के विकास का मार्ग वैयक्तिक है। जो उसके विकास के चरणों के अनुकूल है। इसलिए आध्यात्मिकता व्यक्तिवादी है। प्रत्येक का अपना धर्म है, जो उसके क्रिया कलाप और आचार-व्यवहार में झलकता है। उसे बिना किसी लगाव अथवा विलगाव के पूरा करना चाहिए। व्यक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्ति द्वारा भेजा गया है। न कि स्वेच्छा से उत्पन्न हुआ है। इसलिए वह तात्कालिक दृष्टि से अपना स्वामी नहीं है। निस्सन्देह चरम विकास की दृष्टि से वह विकसित होता रहता है और अन्ततः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्ति में विलीन हो जाता है। तब वह परमानन्द का अनुभव करता है और उसके बाद उसका पुर्नजन्म नहीं होता।

पुनर्जन्म क्यों और कैसे

हमारे संकलन में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सिद्ध करने वाली सैकड़ों प्रमाणिक घटनाएँ हैं। जिन्हें हमने ''परलोक विज्ञान'' शीर्षक पुस्तक में प्रस्तुत की है। उन संकलित घटनाओं में बहुत सी ऐसी घटनाएँ है जो भारत व पश्चिमी देशों में घट चुकी हैं। उन सच्ची घटनाओं के कारण आज भारत ही नहीं वरन् पश्चिम में विख्यात परामनोवैज्ञानिक भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास कर उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

पुनर्जन्म की बातें बतलाने वाले बालक यह नहीं बतला सके कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच क्या होता है। कौन सी स्थिति रहती है। यह अभी रहस्यमय है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की आत्मा या चेतना कहाँ चली जाती है। क्या शरीर के अन्त के साथ साथ जीवन का भी अन्त हो जाता है? या देह के नष्ट हो जाने के उपरान्त आत्मा नई देह धारण करती है? ये प्रश्न आदि काल से मानव मस्तिष्क में कौंधते रहे हैं, जिनका वैज्ञानिक

उत्तर आज तक नहीं मिला है। अमेरिका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डॉ० स्टीवेन्सन इसी अनुसंधान हेतु भारत आए थे।

गीता के अनुसार जिस प्रकार मनुष्य पुराना वस्त्र उतार कर नया वस्त्र धारण करता है। उसी प्रकार जीवात्मा जीर्ण-शीर्ण शरीर को त्याग कर मृत्यु के पश्चात नई देह धारण करती है। गीता पुनर्जन्मवाद का बुनियादी आधार है। मुसलमानों में भी सूफी सम्प्रदाय वाले पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। सन्त मौलाना जलालुद्दीन ने कहा था--मैं हजारों बार इस धरती पर जन्म ले चुका हूँ। यद्यपि ईसाई धर्म पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करता। परन्तु पश्चिमी देशों के कई दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व, अनादित्व तथा अमरत्व को इन शब्दो में व्यक्त किया है--आत्मा अजन्मा और अमर है। कोई ऐसा समय नहीं था जब यह नहीं थी। इसका अन्त और आरम्भ स्वप्न मात्र है। मृत्यु ने इसे कभी स्पर्श नहीं किया। यदि हम आत्मा की अमरता पर विश्वास कर लेते हैं तो पुनर्जन्म के बारे में अनास्था का प्रश्न ही नहीं उठता है।

मृत्यु के उस पार

वास्तव में मृत्यु के पार क्या होता है? इस पर भी वैज्ञानिक जीव विज्ञान की प्रयोगशालाओं में वर्षों से अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। अमेरिका के 'विलसा ब्लाउड चेम्बर' के शोध से बड़े ही आश्चर्यजनक तथ्य सामने आए हैं। इससे यह प्रगट होता है कि मृत्यु के बाद भी प्राणी का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

इस प्रयोग के अन्तर्गत एक ऐसा बड़ा सिलेण्डर लिया जाता है जिसकी भीतरी परतें विशेष चमकदार होती हैं फिर उसमें कुछ रासायनिक घोल डाले जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप विशेष प्रकार की चमकदार और हल्की प्रकाशकीय गैस भीतर फैल जाती है। इस गैस की यह विशेषता है कि यदि कोई सूक्ष्म से सूक्ष्मतम वस्तु इसके भीतर प्रवेश करे तो शक्ति शाली कैमरे द्वारा उसका चित्र उतार लिया जाता है। प्रयोग के लिए इसमें एक चूहा रखा गया। बिजली का करेन्ट लगाकर चूहे को मार डाला गया। चूहे के मरणोपरान्त उस सिलेण्डर का चित्र उतारा गया। वैज्ञानिक यह देखकर विस्मित हुए बिना नहीं रहे कि मृत्यु के पश्चात् गैस के कुहरें मे भी मृत चूहे की धुँधली आकृति तैर रही थी। वह आकृति वैसी ही हरकतें भी कर रही थी जैसी जीवित अवस्था में चूहा करता था। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि मृत्यु के पश्चात् प्राणी की सत्ता किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। अपनी सुविख्यात कृति 'मेमोरीज़ ड्रीम्स रिफ्लेक्संस' में विश्व विख्यात तत्वदर्शी, चिन्तक और मनोवैज्ञानिक 'कार्ल जुंग' ने अपना एक विचित्र अनुभव इन शब्दों में लिपिबद्ध किया है। सन् १६४४ में एक साधारण सी दुर्घटना के पश्चात् मुझे दिल का दौरा पड़ गया था और डाक्टरों के अनुसार मैं मौत के कगार पर था। जब मुझे आक्सीजन दिया जा रहा था और कैसेमीन के इन्जेक्शन दिए जा रहे थे, तब मुझे अनेक विचित्र अनुभव हुए। मैं कह नहीं सकता कि मैं उस समय अचेतावस्था में था या

स्वप्नावस्था में। पर मुझे यह स्पष्ट अनुभूति हो रही थी कि मैं अन्तरिक्ष में लटका हुआ हूँ और अपने से लगभग एक हजार मील नीचे अपने शलम नगर को देख रहा हूँ। फिर मुझे लगा कि मेरा सूक्ष्म शरीर एक पूजा गृह के प्रकाश युक्त कक्ष में प्रवेश करने लगा है। मुझे लग रहा था, मैं निस्सीम इतिहास का एक खण्ड हूँ और अन्तरिक्ष में कहीं भी विचरण करने की क्षमता रखता हूँ। तभी मुझे अपने ऊपर मँडराती एक छायाकृति दिखलाई दी, जो वास्तव में मेरे डाक्टर की थी। मुझे लगा डाक्टर मुझसे कह रहा था, कि मुझे शीघ्र ही भौतिक शरीर में लौट आना है। जैसे ही मैंने इस आदेश का पालन किया मुझे लगा कि अब मैं स्वतंत्र नहीं हूँ और बन्दी जीवन पुनः प्रारम्भ हो गया है। इस अलौकिक अनुभव के कारण जो अन्तदृष्टि मुझे प्राप्त हुई उसने मेरे सब संशयों का अन्त कर दिया और मैंने जान लिया कि जीवन की समाप्ति पर क्या होता है?

इसका तात्पर्य यह है कि हमारे जगत में अवश्य ही एक चौथा आयाम है जो अनोखे रहस्यों से भरा हुआ है।

पूर्वजन्म की स्मृति रहने का कारण

पूर्वजन्म के संबंध में अनेक शंकाएँ भी मस्तिष्क में उत्पन्न होती हैं। सबसे बड़ा रहस्यमय पहलू यह है कि जिन बालकों के मस्तिष्क में पिछले जन्म की स्मृति उभर कर आती है वह किस प्रकार आती है? साथ ही यदि पूर्वजन्म है तो उसकी स्मृति सबको क्यों नहीं रहती। इसका कारण यह है कि स्मृति मस्तिष्क में रहती है, और मस्तिष्क भौतिक शरीर के साथ नष्ट हो जाता है। आत्मा पर तो उस जन्म में किए हुए अच्छे बुरे कर्मों का संस्कार मात्र ही रहता है। जैसे नन्हें शिशु के नेत्रों के कोमल ज्ञान तन्तु सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश को सहन नहीं कर सकते और उससे हानि होने की आशंका अधिक रहती है उसी प्रकार शिशु के कोमल स्मृति तन्तुओं पर पूर्व जन्मों की स्मृति का व्यापक भार सहसा आ पड़ने से उसे हानि होने का भारी भय रहता है। वैसे इस स्मृति से आत्मा को कुछ लाभ नहीं, जो लाभ हो सकता है वह उस पर पड़े संस्कारों से ही हो सकता है। यदा-कदा जो बालक पिछले जन्म की बातें बतलाते हैं उनकी आत्मा पर विशेषतः पूर्व जन्म में मरते समय किसी दुर्घटना से बड़ा गहरा संस्कार बैठ जाता है और अनुकूल परिस्थिति में उस गहरे संस्कार के कारण पूर्वजन्म की स्मृति ताजा हो उठती है। साफ चमकते हुए छुरे पर यदि आप रूई का छोटा सा फाहा रख कर उसे फूंककर हटाएँ तो आपको छुरे पर उसका निशान दिखाई पड़ेगा, यद्यपि जब वहाँ रूई का फाहा नहीं है। इसी प्रकार किसी के द्वारा निर्दयता पूर्वक वध किए जाने, पानी में डूबने या आग से जलने अथवा किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण मृत्यु हो जाने पर उस दर्दनाक घटना का आत्मा पर गहरा संस्कार पड़ जाता है और ऐसे संस्कार वाली आत्मा अगले जन्म में पिछले जन्म की बातें बतलाने लगती हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार--जो मनुष्य अकस्मात् मर जाते हैं उनके पूर्व जन्म का भाव यानी संस्कार कुछ समय तक बना रहता है।

अपने पूर्व जन्म की घटनाओं का वृत्तांत बताने वाले बालक आयु बढ़ने के साथ ही उन बातों को विस्मृत कर बैठते हैं। ठीक वैसे ही जैसे स्वप्न का बोध। कुछ समय पश्चात् की घटनाओं को बतलाने का एक निश्चित काल देखा गया है और उस काल के पश्चात् घटनाएँ बताने वाला व्यक्ति अपनी वर्णित यादगारों, पहचाने गए व्यक्तियों तथा स्थानों को बिल्कुल भूल जाता है। यहाँ एक प्रश्न यह भी उठ खड़ा होता है कि क्या आत्मा का पुनर्जन्म न होकर महज उस जन्म की भटकती हुई आत्मा का किसी के शरीर में क्षणिक प्रवेश होता है तो फिर क्या वह आत्मा उस शरीर में स्थित आत्मा को प्रभावित करके उस पर हावी हो जाती है और कुछ समय बाद स्वत: ही पलायन कर जाती है।

विज्ञान की कसौटी पर

कई मनोवैज्ञानिक पूर्व जन्म की स्मृति का कारण व्यक्ति या बालक की इन्द्रियातीत शक्तियों को मानते हैं। जिस बालक में इस अति-मस्तिष्क शक्ति का बाहुल्य होता है उसे अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो उठता है।

आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने लिखा है--'जन्म के समय की वेदना और यत्रंणा इतनी तीव्र और दु:खद होती है कि मानस पट सदा लिए अवसन्न हो जाता है। जन्म के समय की यह पीड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में प्राय: उभर आती है।' इसी तरह युवावस्था से प्रौढ़ावस्था में पदार्पण बड़ा पेंचीदा होताहै। कई झटके ऐसे लगते हैं। कि पहले की कई बातें स्मृति से गायब हो जाती हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार समस्त दृश्य और अदृश्य जगत सूक्ष्म तरंगों से बना है। इन तरंगो में तीन मुख्य तत्व हैं--जीवाणु, शक्ति और विचार।

आत्मा इन तीनों का ही एक विशिष्ट स्वरूप है। मृत्यु के उपरान्त वह इन तरंगों का निर्माण या विलय कर सकती हैं। आत्मा का स्वशरीर सूक्ष्म शरीर के नाम से जाना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर न्यूट्रिनों कणों से निर्मित होता है। ये कण अदृश्य आवेश रहित और इतने हल्के होते हैं कि इनमें मात्रा और भार लगभग नहीं के बराबर होता है। वे भी स्थिर नहीं रह सकते और प्रकाश की तीव्र गति से सदा चलते रहते हैं। इन कणों को पुन: भौतिक वस्तु के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। परामनोविज्ञान के अनुसार यह सूक्ष्म शरीर किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण में अपने को प्रकट एवं पुनर्लय कर सकता है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भी सूक्ष्म शरीर का कल्पना को दर्शन होते हैं।

प्राचीन मिश्र के समाधि भवनों में ऐसे अनेक, आलेख अंकित हैं, जिनमें विभिन्न सूक्ष्म शरीर को प्राकृतिक शरीर से पृथक विभिन्न स्थानों में जाते हुए दिखाया गया है।

यूनान के प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी विधियों का उल्लेख है जिनके द्वारा सूक्ष्म शरीर को भौतिक शरीर से पृथक करवा कर उससे इच्छानुसार कार्य कराए जा सकते हैं।

एक विशेषज्ञ डा० कैथ वालर का कथन है--प्राणी बार-बार जन्म लेता है। पुनर्जन्म से इन्कार नहीं किया जा सकता। परन्तु मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की जो शृंखला है-उसका रहस्य जब तक विज्ञान नहीं जान लेता तब तक पुनर्जन्म के सारे पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ सकता। पुनर्जन्म अन्धविश्वास मात्र नहीं, वरन तथ्य है। आत्मा और पुनर्जन्म के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिक इस पर विशद अनुसंधान कार्य करते आए हैं और अभी वर्षों तक करते रहेंगे।

आत्मा का कभी पतन या विनाश नहीं होता। वह कभी समीप और कभी नाना योनियों में भ्रमण करता है। वह कभी अनेक गुण धारण करता है और कभी बीच योनियों में दो-एक अल्प गुण धारण करता है। इस प्रकार वह बार-बार संसार में आता हैं।

●

कर्णिका-५

परलोकगत आत्माओं से रहस्यमय सम्पर्क

विशाल विमान १०१ को ध्वस्त हुए अभी दो ही दिन बीते थे कि लन्दन की एक असाधारण अध्यात्म सभा में एक महिला इलीन मारेट ने ध्यान लगाते ही बोलना शुरू किया। भर्रायी हुई अटकती आवाज में मृत्यु का प्रत्यक्ष भय स्पष्ट था- -मुझे कुछ करना चाहिए इतने भारी जहाज का बोझ ढोना इसके इंजनों के वश की बात नहीं। इंजन भी ज्यादा वजनी है। जहाज बहुत नीचे उड़ रहा है। कोशिश करने पर भी ऊपर नहीं उठ पाया। लम्बी उड़ान के लिए भार बहुत अधिक है। मौसम भी खराब है। जहाज की नाक नीचे की ओर है। उपर उठना नामुमकिन है।

यह आवाज थी ब्रिटेन के विमान १०१ के कप्तान एच. कामिकल इरविन की। वास्तव में अध्यात्म सभा की इस ऐतिहासिक बैठक में माध्यम इलीन को प्रसिद्ध लेखक आर्थर कानन डायल की आत्मा से सम्पर्क करना था जिनकी मृत्यु कुछ ही समय पहले हुई थी। लेकिन माध्यम इलीन जैसे ही आवेश (ट्रान्स) में आई, उक्त विमान के कप्तान की आत्मा ने स्वयं उससे संपर्क कर लिया। विमान ५ अक्टूबर १९३० को बुवोया, फ्रांस के एक पहाड़ी भागमें धराशायी होकर जल गया था। ४८ मृतकों में विमान का कप्तान भी था।

'शर्लाक होम्स' जैसे महान जासूस पात्र की रचना करने वाले सर 'आर्थर कानन डायल' की आत्मा से सम्पर्क करने के लिए जो सभा बुलाई गई थी, उसका पूरा विवरण मार्निंग पोस्ट अखबार में छपना था। इसलिए उस बैठक में अखबार का रिपोर्टर भी उपस्थित था। उसने मीडियम इलीन का सम्पर्क विवरण शार्ट हैण्ड में नोट कर लिया। अगले दिन वह सारा विवरण अखबार में छपा। विमान आर १०१ के निर्माण में शामिल रहे मिस्टर चार्लटन ने उक्त विवरण पढ़ा। उन्होंने अध्यात्म सभा की पूरी रिपोर्ट मँगाई। रिपोर्ट का अध्ययन करने पर वे घोर आश्चर्य में पड़ गए। उन्होंने इस रिपोर्ट को ऐसा रहस्यमय दस्तावेज बताया जिसमें विमान की उड़ान और दुर्घटना के सम्बंध में ४० ऐसे तकनीकी तथा गोपनीय विवरण थे, जिन्हें अध्यात्म सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति

के लिए उस समय जान पाना असम्भव था। चार्लटन इस रहस्यमय साक्ष्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वयं भी आत्मा सम्बन्धी खोज शुरू कर दी। विमान के कप्तान इरविन ने अपनी शारीरिक मृत्यु के दो दिन बाद माध्यम इलीन से सम्पर्क किया था। विमान दुर्घटना की सरकारी जाँच से पहले नागरिक उड्डयन मन्त्रालय के अधिकारी मेजर ओलिवर विलियर्स ने माध्यम इलीन के साथ एक अध्यात्म-सभा में भाग लिया। इलीन के जरिए उन्होंने उस विमान के अन्य मृत कर्मचारी स्काट की आत्मा से जानकारी प्राप्त की। इस तरह उन्हें दुर्घटना सम्बन्धी जो विवरण प्राप्त हुआ, वह बाद में जाँच समिति की रिपोर्ट से अक्षरश: मेल खा गया। माध्यम इलीन के कार्य का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह रहा है कि उसने अपनी मनोवैज्ञानिक जाँच करने वालों को सक्रिय प्रोत्साहन दिया। उसने न्यूयार्क के परामनोवैज्ञानिक संस्थान की स्थापना की जिसे ओहायो की एक धनी राजनीतिक महिला फ्रांसेस पाया ने आर्थिक सहायता दी थी। १९७० में ७७ वर्ष की आयु में इलीन की मृत्यु होने के बाद उसकी रहस्यमयी शक्ति के खोजी आर्को जर्मन ने साइकिक न्यूज पत्रिका के कालमों में यह भेद भी खोला कि इलीन ने उसे विमान आर १०१ की दुर्घटना के बारे में गहरी छानबीन करने को कहा था। इस छानबीन में छ: मास लगे थे और रिपोर्ट के ४५५ पृष्ठों का अध्ययन किया गया था। यही नहीं, फ्रांस में दुर्घटना-स्थल की दो बार यात्रा भी की और वैज्ञानिकी विशेषज्ञों के सम्मेलन भी आयोजित किए गए।

परा विज्ञान की हर कड़ी की शुरुआत तो अलौकिक से ही होता है। आज जो असम्भव लगता है, कल वही विज्ञान की सहायता से सम्भव हो जाता है। मोटर, रेल हवाई जहाज, तार, टेलीफोन, टी. वी., एक्सरे, रेडियो सभी तो एक समय में मनुष्य की समझ के बाहर की चीज थे। मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही सम्मोहन शक्ति के द्वारा रोगों के निदान को पहले कौन सत्य मान सकता था।

आत्मा से सम्पर्क

शुरू-शुरू में हर एक नई खोज का जबर्दस्त विरोध होता है। वे तथ्य, जो मान्य सिद्धान्तों से मेल नहीं खाते हैं, उन्हें लोग शक-सन्देह की दृष्टि से ही नहीं देखते हैं, बल्कि झूठ और फरेब की श्रेणी में भी डाल देते हैं। वैसे यह है भी ठीक क्योंकि हर अविश्वसनीय चीज को यदि आसानी से मान लिया जाए तो अन्धविश्वास, झूठ और धोखाधड़ी का बाजार गर्म हो जाएगा। जैसा कि प्राय: हो भी जाता है। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में भी कुछ ऐसा ही हुआ।

यह विषय वैज्ञानिक क्षेत्र से बाहर होने के कारण अवांछनीय व्यक्तियों के हाथों में रहा और उन्होंने कितने ही लोगों को गुमराह किया। भूत-प्रेत तथा अध्यात्मवाद सम्बन्धी तथ्यों में अधिकतर धूर्त लोग पैठ गए, जिनके बहकाने के असर से लोगों में

अन्धविश्वास फैल गया। यद्यपि अनेक विद्वानों ने काफी समय से इस ओर ध्यान देने का प्रयत्न किया, पर विषय के अति गूढ़ होने के कारण उन्हें इसका कोई सन्तोषजनक हल नहीं मिल पाया।

इसी सिलसिले में कुछ विद्वानों ने इस विषय पर खोज करने के लिए सन् १८८२ में लन्दन में एक परामनोविज्ञान शोध संस्थान (सोसायटी फार साइकिकल रिसर्च) की स्थापना की। इस संस्थान ने आरम्भ में इस प्रकार के अनैतिक तथ्यों को एकत्रित करके, उनका पुष्टीकरण तथा प्रमाणीकरण करके उनके कारणों को समझने की चेष्टा की, ताकि उनकी वैज्ञानिक रूप से जाँच करके सचाई को जाना जा सके और इस क्षेत्र की धोखाधड़ी तथा फरेब का पर्दाफाश किया जा सके।

जिन लोगों ने इस बारे में काम किया, वे बड़े जाने-माने तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनमें से जिनके नाम आज भी लिए जाते हैं--वे थे सर आर्थर कोनन डायल, सर अलिवर लाज, एफ. डब्ल्यू. एच. मायर्स, विलियम कुक्स तथा डेनियल डगलस होम। और भी अनेक नाम हैं। सन् १८८५ में अमेरिका में एक संस्थान 'अमेरिकन सोसायटी फार साइकिकल रिसर्च' बनी। इस विषय पर काफी काम हुआ और बहुत सी पुस्तकें भी लिखी गईं। इन्हीं लोगों के कार्य का फल है कि सन्१९६९ में इस विषय को 'अमेरिकन असोसियेशन फार एडवान्समेण्ट आफ साइंसेज' ने वैज्ञानिक मान्यता प्रदान कर दी तथा आज परामनोविज्ञान की ओर लोगों में काफी रुचि बढ़ी है।

परामनोविज्ञान के क्षेत्र में 'आत्मा' का अध्ययन विशेष स्थान रखता है। इस कारण साइकिक रिसर्च में लगे विद्वानों ने आत्मा से सम्पर्क करने के विभिन्न तरीकों का अध्ययन और उन्हें समझने का प्रयास किया है। इसमें प्लेंचेट पर आत्माओं से वार्तालाप आदि भी सम्मिलित है। इन्हीं प्रयोगों में उन्होंने देखा कि कुछ व्यक्ति विशेष इस दिशा में आसानी से माध्यम बन जाते हैं। उस जमाने के कुछ नाम बहुचर्चित है। उनमें सर्वप्रथम मिसेज पाइपर का नाम आता है। मिसेज पाइपर २७जून १८५९ को अमेरिका में न्यू हैम्पशायर के नेशुम नामक स्थान में पैदा हुई थीं। उनको अपने माध्यम होन के बारे में सन् १८८४ में अकस्मात ही तब पता चला, जब वह अपने ट्यूमर के इलाज के सम्बन्ध में एक परामानसिक चिकित्सक के पास गई हुई थीं। उसके यहाँ दूसरी ही भेंट में वह सम्मोहन की मूर्छित अवस्था में अतीन्द्रिय दृष्टि से अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों की सहायता करने लगीं। सन् १८८५ में विख्यात दार्शनिक विलियम जेम्स उनकी शक्ति से प्रभावित हो गए। मिसेज पाइपर ने लगभग ३० वर्षतक अपनी इस अद्‌भुत शक्ति का प्रदर्शन किया। उनकी हर प्रकार से जाँच की गई। उनके पीछे गुप्तचर छोड़े गए। फिर भी यह पता नहीं चल पाया कि किस प्रकार उनको अज्ञेय सूचना प्राप्त हो जाती थी। कितने ही कट्टर से कट्टर संशयवादी उनके पास आकर आश्चर्यचकित रह जाते थे तथा इस बात के कायल हो जाते थे कि अवश्य ही उनके पास कोई अतीन्द्रिय अदृश्य शक्ति है और इसमें किसी प्रकार की धोखाधड़ी नहीं।

इसी प्रकार एक महिला युसोमिया पैलेडिमो भी थीं जिनका जन्म २१ फरवरी १८५४ को इटली के एक किसान परिवार में हुआ था। १२ वर्ष की उम्र में अनाथ हो जाने से वह धोबिन का काम करने के लिए नेपल्स चली गईं। वहाँ उनको एक ऐसे परिवार में शरण मिली जो कि प्रेतात्मावाद तथा रहस्यवाद में रुचि रखता था। वह उनकी बैठकों में भाग लेने लगीं और इस दौरान कुछ ऐसे तथ्य उजागर हुए, जिससे रहस्यवाद का एक छात्र एरकोल छाजर युसोमिया को अपने साथ पेरिस ले गया और वहाँ उसकी मानसिक क्षमता पर उसने एक शोध पत्र तैयार किया।

जिस मीटिंग में यह शोधपत्र पढ़ा गया, उसमें युसोपिया ने उत्थापन शक्ति का भी प्रदर्शन किया और बिना किसी आधार के हवा में ऊपर उठकर दिखाया। इस प्रदर्शन से उसकी ख्याति काफी बढ़ी। उसकी हर प्रकार के वैज्ञानिकों ने परीक्षा की तथा सन् १८९३ में मिलान में एक वैज्ञानिक आयोग ने उसकी जाँच की। उसके जगह-जगह पर प्रदर्शन हुए। कहीं-कहीं इसे धोखाधड़ी भी कहा गया पर अधिकतर जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने इसकी मान्यता में विश्वास प्रकट किया। परामनोविज्ञान शोध संस्थान ने १९०६ में अपनी रिपोर्ट में कहा है कि अवश्य ही कोई विलक्षण शक्ति है उसमें जिसे साधारण जादूगरी या बाजीगरी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। एक जर्मन वैज्ञानिक नारजिंग द्वारा लिखित पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद 'फिनामिना आफ मैटिरियलाइजेशन' (प्रत्यक्षीकरण के तथ्य) को पढ़ने से कुछ अत्यन्त ही आश्चर्य जनक तथ्य लेखक के सामने आए हैं।

नारजिंग ने अपनी पुस्तक में इवा कैरियर का जिक्र किया है जिसके प्रदर्शन अपूर्व कहे जा सकते हैं।

प्रत्यक्षीकरण की क्रिया

प्रत्यक्षीकरण वह क्रिया है जिसमें माध्यम अपने चारों ओर ऐसा वातावरण बना लेता है कि वह कुछ छायाएँ प्रत्यक्ष दिखा सकता है, कभी वे छायाएँ दिव्य प्रकाश के रूप में होती हैं, तो कभी कुछ चेहरे दिखाई पड़ते हैं औ कभी माध्यम के आसपास हाथ इत्यादि प्रगट होने लगते हैं। कभी-कभी तो उनका स्पर्श भी किया जा सकता है।

इवा मध्यम वर्ग के परिवार में १८९० में पैदा हुई थी। माध्यम बनने की उसकी शक्ति का पता भी अकस्मात ही चला था। उसका एक सम्बन्धी उसकी उपस्थिति में एक अन्य व्यक्तिपर प्रयोग कर उसे सम्मोहित कर रहा था कि उसे इवा में भी अतीन्द्रिय विलक्षण शक्ति दृष्टिगोचर हुई। यह देखकर परिवारवालों ने चार-पाँच बार जाँच निजी तौरपर की और वे सब पूर्ण रूप से आश्वस्त हो गए कि इवा में इस प्रकार की अद्‌भुत शक्ति है, तो वे उसे प्रदर्शन के लिए सन १९०८ में पेरिस ले गए। उस समय वह लगभग १८ वर्ष की थी। इस बीच उसने पढ़ाई छोड़ दी थी। पेरिस में उसका सम्पर्क विसन परिवार से हुआ। विसन परिवार ने उसके प्रदर्शन में सहायता की और अन्त में इवा उसी

परिवार के साथ रहने भी लगी। सन् १६०६ में जब भी उसने अपनी विलक्षण शक्ति का प्रदर्शन किया, बाकायदा उसका रिकार्ड रखा गया तथा उसके फोटो भी लिए गए। अपनी पुस्तक में नारजिंग ने उन प्रदर्शनों का रिकार्ड भी प्रस्तुत किया है। इवा को प्रदर्शन के समय सम्मोहित किया गया था। आरम्भ में उसको प्रदर्शन के समय जाली के पीछे रखा जाता था पर बाद में प्रदर्शन में सम्मोहित करने वाला व्यक्ति उस जाली के अन्दर भी जा सकता था। प्रकाश के लिए हल्की रोशनी का बल्ब जलाया जाता था जिसके चारों ओर लाल रंग का कागज लपेट दिया जाता था। कागज की परतों को घटा-बढ़ाकर रोशनी कम या अधिक की जा सकती थी। प्रदर्शन से पहले इवा को अपने सारे कपड़े उतार देने पड़ते थे और अलग से दी हुई बदन से सटी हुई पोशाक पहननी पड़ती थी ताकि इस बात का आश्वासन हो जाए कि उसने कोई ऐसा पदार्थ तो नहीं छिपाया गया है जिससे वह अपना करतब दिखाने में सहायता लेती हो। प्रदर्शन कक्ष की भी पूरी जाँच होती थी। प्रदर्शन के बाद भी इवा की तथा कक्ष की पूरी जाँच की जाती थी। पर उसमें कुछ भी सन्देहास्पद बातें नहीं पाई गईं। इवा के उन प्रदर्शनों में ४६ प्रतिशत प्रयोग सफल हुए थे।

उन प्रदर्शनों के दो वृत्तान्त जो यहाँ दिए जा रहे हैं उसके सफल प्रयोग के नमूने हैं। उनमें से एक प्रयोग से पता चलता है कि वे आकृतियाँ केवल मनकी उड़ान ही नहीं थीं बल्कि ठोस सत्य थीं और उनको अलग करने से इवा को भारी कष्ट होता था। यही नहीं, उस आकृति का बाल भी तोड़ा जा सकता था जो बाद में भी गायब नहीं हुआ। हाँ, बैठक में नारजिंग स्वयं उपस्थित थे, इस प्रकार की कई घटनाएँ हुईं जिससे उनकी सत्यता प्रामाणित होती है।

२६ सितम्बर १६११ की पहली बैठक का विवरण मैडम बिसन ने सेण्ट जोन डि लुज को लिखे एक पत्र में इस प्रकार दिया है।.....'परसों २८ सितम्बर १६११ को मैंने इवा को सम्मोहित किया। वह कक्ष में पूरी तरह नग्न बैठी थी। उसके यह कहने पर कि वह सुन्न महसूस कर रही है, मैंने वह बैठक अकेले में ही की। उसके सम्मोहित मूर्छा में आ जाने के तुरन्त बाद ही काफी संख्या में आकृति बनने की घटनाएँ घटने लगी। आकृतियाँ उसके गर्दन तथा उसके सिर से आरम्भ हुई थीं। शीघ्र ही एक चेहरा उभर आया, जो इवा के सिर पर झुका हुआ था।

जब मैंने उसको मूर्तिवत् देखा तो मैंने माध्यम से कहा कि वह अपनी सारी शक्ति को इस प्रकार केन्द्रित करे कि मैं उस आकृति का कुछ पदार्थ स्वयं ले सकूँ। पर इसके लिए मनाही हो गई क्योंकि वह आकृति शरीर के बहुत पास थी और वहाँ से कुछ लेने से इवा को चोट लग सकती थी। पर मुझे प्रत्यक्ष हुई छाया के सिर के बाल लेने की अनुमति मिल गयी। मैंने बालों का एक गुच्छा पकड़कर खींचा। मैं अपने प्रयास में सफल हो गया। रोशनी जलाई तो मुझे आश्चर्य हुआ कि इवा के बालों से एकदम भिन्न ढंग के बालों का गुच्छा मेरे हाथ में था और उसकी नमी से मेरे हाथ चिपचिपा रहे थे।

यदि यह सब मेरा निजी अनुभव न होता तो मैं कभी भी इसकी सत्यता पर विश्वास न कर पाती। घण्टों मैं इसके बारे में सोचती रहती हूँ पर रहस्य का कोई भी तो सूत्र मिल नहीं पा रहा है मुझे।'

इसी तरह की दूसरी बैठक ८ मई १६१२ को हुई थी। बैठक में मीडियम 'इवा' के साथ मैडम विसन, लेखक नारजिंग और उनकी पत्नी उपस्थित थी। समय रात्रि का था। पहले २० मिनट तक गहरी साँस लेने की आवाज आती रही। पर्दा खुलने पर माध्यम के काले बालों से जुड़ा नकाब लगा एक चेहरा दिखाई पड़ा। वह एक नरम गूदे की तरह लग रहा था जिससे आकृतियाँ बनायी जा रही हों। केवल माथा और आँखें पहचानी जा सकती थीं और उससे एक स्त्री का चेहरा लग रहा था। वह चेहरा कभी माध्यम के कन्धे पर दाहिनी ओर दिखाई पड़ता था और कभी बायीं ओर। कभी-कभी वह शरीर से अलग होकर हवा में लटका हुआ प्रतीत होने लगता था। नारजिंग ने यह भी देखा कि आकृति तीन बार आगे की ओर झुकी। यद्यपि वह यह नहीं देख पाया कि उस समय इवा का सिर हिला था कि नहीं। वह छाया आगे की ओर बढ़कर पर्दे तक आ गई। एक बार वह इवा के सिर से नीचे तक उतर आई। नारजिंग इस दृश्य का एक चित्र लेने में सफल हो गए पर उस चित्र के बाद ही उसे यह प्रदर्शन समाप्त कर देना पड़ा।

विख्यात कलाकारों की आत्माओं से सम्पर्क

विश्व की विख्यात कलाकारों की आत्माओं से सम्पर्क की बात और भी रहस्यमय लगती है। एक उदाहरण लन्दन की महिला श्रीमती रोजवेरी ब्राउन को ही लीजिए। विधवा श्रीमती ब्राउन अपने एक बेटे और एक बेटी के पालन-पोषण के लिए बड़ी गरीबी से संघर्ष कर रही थीं। मनोवैज्ञानिक क्षमता उनमें बचपन से ही थी। एकाग्रता की अवस्था में उन्हें बहुत बार एक बूढ़े सज्जन की छाया का दर्शन होता था, जो उन्हें बताते थे कि एक दिन वह स्वयं और दूसरे संगीतकार भी उनके माध्यम से अत्यन्त सुन्दर संगीत प्रस्तुत करेगें और इसे बजाना भी सिखाएँगें।

विधवा होने के कुछ वर्षों बाद श्रीमती ब्राउन को एक चित्र देखने को मिला, जो शास्त्रीय संगीतकार फ्रान्ज लिज का था। चित्र देखते ही श्रीमती ब्राउन को याद आ गया कि जो रहस्यमय बूढ़े सज्जन उन्हें दर्शन देते थे, वे यही थे। इसी के बाद सन् १६६४ में श्रीमती ब्राउन ने संगीत की धुनें लिखना शुरू कर दिया। वे धुनें साधारण न होकर, फ्रांज लिज, शोयां, देबुसी, ब्राहम दाख और बिथोवेन जैसे महान संगीतकारों की शैली में नई से नई मौलिक धुनें थी। ज्यादातर धुनें पियानो की थीं और कुछ आर्केस्ट्रा की थीं। १६७० में श्रीमती ब्राउन की धुनें प्रसारित हुईं। उनमें से सरल धुनें तो श्रीमती ब्राउन स्वयं बजाती थीं और कठिन धुनें प्रसिद्ध पियानोवादक पीटर कातिन बजाते थे।

श्रीमती ब्राउन को ट्रान्स की दशा में शास्त्रीय संगीत लिखने का अवसर मिलता था। लिखते हुए जिन लोगों ने देखा था वे सब उनकी लिखने की गति से विस्मयविमुग्ध रह

गए थे। श्रीमती ब्राउन के अनुसार संगीत तो पहले से ही तैयार होता था, मेरे लिखने के लिए केवल बोला जाता था और मैं सिर्फ लिखती जाती थी।

श्रीमती ब्राउन ने इस तरह काफी मात्रा में संगीत प्रस्तुत किया है। फ्रांज लिज के अलावा बिथोवेन की आत्मा ने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित किया है। बिथोवेन ने अपने जीवन-काल में विश्वप्रसिद्ध नौवीं सिंफनी तैयार की थी। उनकी आत्मा ने श्रीमती ब्राउन के जरिए दशवीं सिंफनी भी प्रस्तुत की है जो एक विशाल संगीत रचना है। श्रीमती ब्राउन के अनुसार बिथोवेन का बहरापन अब दूर हो गया है। भौतिक जीवन में भौतिक यानि स्थूल शरीर के साथ जो भी दु:ख, कष्ट आदि लगे रहते हैं, वे सब शारीरिक मृत्यु के साथ समाप्त हो जाते हैं और आत्मा उन सबसे मुक्त हो जाती है।

अध्यात्मवादी माध्यम श्रीमती ब्राउन को लेकर बी. बी. सी. लन्दन ने एक फिल्म भी बनाई है। फिल्म में वह अपने कमरे में ट्रान्स की अवस्था में होती हैं और शास्त्रीय संगीतकार फ्रांज लिज की आत्मा से सम्पर्क करके म्यूजिक लिखती हैं। वह लिज को सुनने के साथ देखती भी हैं। संगीत के कई विद्वानों ने श्रीमती ब्राउन के कार्य को प्रामाणिक माना है। फिल्म के दृश्यों में श्रीमती ब्राउन ने जो संगीत लिखा था, उसे महान पियानोवादक पीटर कातिन ने भी टी. वी. में प्रस्तुत किया है और पिछले १० वर्षों में अनेक प्रतिष्ठित शास्त्रीय पियानोवादकों ने उसे बजाया है।

मृत्यु के बाद आत्मा के साथ चेतनामय जीवन परलोक में रहता है और आत्मा अपने पूर्व शरीर को सूक्ष्म शरीर के रूप में इच्छानुसार धारण कर सकती है। लोक-परलोक में कहीं भी विचरण कर सकती है। इन सबको सच साबित करने के लिए परामनोविज्ञान और अध्यात्मवाद के इतिहास में असंख्य उदाहरण हैं। संसार के कुछ महान वैज्ञानिकों ने इस विषय को वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र में मान्यता दी है। आज भी अनेक वैज्ञानिक और जाँचकर्ता इस रहस्यमय विषय पर बराबर खोज एवं प्रयोग कर रहे हैं। एक प्रमुख माध्यम कार्मेन रोजर्स का अपना अनुभव है, 'जो आत्माएँ सम्पर्क करना चाहती हैं, वे मुझे रिसीवर के रूप में उपयोग करती हैं, जैसा रेडियो और टेलीविजन के साथ होता है। मैं आत्मा के सही चैनल में अपने मानसिक संवेग को लयबद्ध कर देता हूँ। तब सम्पर्क स्थापित हो जाता है और सूचनाएँ अत्यन्त मन्द ध्वनि में आने लगती हैं जिन्हें मेरे सिवाय दूसरा कोई सुन नहीं पाता है।'

नाटिंघम यूनिवर्सिटी में मनोविज्ञान के वरिष्ठ प्रवक्ता डाक्टर एलन गल ने मीडियमशिप पर एक पुस्तक लिखी है। उनका कथन है--'अच्छे और सशक्त माध्यमों की सम्पर्कशीलता के महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए हैं। मृत्यु के बाद जीवन के सम्बन्ध में उनके साक्ष्य रहस्यमय हैं और उनकी व्याख्या करना भी कठिन है।'

महान दार्शनिक और बुद्धिवादी बर्ट्रेण्ड रसेल की आत्मा श्रीमती ब्राउन से नियमित रूप से सम्पर्क करती है। श्रीमती ब्राउन के माध्यम से वह अपनी मृत्यु के बारे में बतलाते

हैं--'मैं अपने नए शरीर को पुराने शरीर की भाँति ही पाता हूँ लेकिन यह एकदम भारहीन है और किसी भी दिशा में आसानी से घूम सकता है। सोचने-समझने की मेरी क्षमता अत्यन्त तीव्र हो गई है और पृथ्वी का जीवन बहुत ही मिथ्या और अस्वाभाविक लगता है। मुझे आश्चर्य होता है कि मैं यह कैसे सोच पाया था कि भौतिक जीवन ही मनुष्य की रचना का अन्तिम अध्याय है। मैं कहाँ हूँ, यह तो बतलाया नहीं जा सकता, लेकिन जहाँ और जिस वातावरण में हूँ, वहाँ गहरी शान्ति है। ऐसी शान्ति पृथ्वी पर कहीं नहीं होगी शायद।'

आत्माओं से सम्पर्क के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने यन्त्रों का भी प्रयोग किया है। स्वीडेन के फिल्म निर्माता जर्गसन ने एक दिन अपने टेप रेकार्डर को चिड़ियों की आवाजें सुनने के लिए आन किया। उन आवाजों को उन्होंने जंगल में रिकार्ड किया था। लेकिन यह क्या? अचानक उन्हें अपनी दिवगंत माँ की आवाज सुनाई पड़ी, 'जर्गसन, मेरे बच्चे जर्गसन, क्या तुम मुझे सुन रहे हो।' आश्चर्यचकित जर्गसन को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पुन: वही 'टेप' बजाया था..... सचमुच आश्चर्य कि वही अपनी माँ की आवाज उन्हें फिर सुनाई पड़ी थी। इस रहस्यमय घटना से प्रेरित होकर एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर रादिवे ने अपने प्रयोग के लिए एक इलेक्ट्रानिक इंजीनियर से रेकार्डिंग उपकरण बनवाया। फिर डाक्टर रादिवे ने विभिन्न प्रकार के मानव-स्वर एवं शब्दों को रेकार्ड किया जो जीवित मनुष्यों के नहीं थे। डाक्टर रादिवे के अनुसार उनके टेप में चर्चिल, नीत्शे, टाल्सटाय, केनेडी, हिटलर तथा स्टालिन तक के सन्देश रिकार्ड हुए थे।

इस प्रकार के प्रयोग महान वैज्ञानिक एडिसन और मार्कोनी ने भी किए थे। सन् १९२० में एडिसन ने मृत मनुष्यों से सम्पर्क करने के लिए एक यन्त्र बनाया था। उनका विश्वास था कि लांग और शार्ट वेव्ज के बीच ऐसी रेडियो फ्रिक्वेन्सी जरूर होगी, जिसपर परलोक से टेलीपैथी स्थापित की जा सके। सन् १९३७ में अपनी मृत्यु के पहले तक मार्कोनी गोपनीय ढंग से एक ऐसे उच्च क्षमता वाले उपकरण पर कार्य कर रहे थे, जो अलौकिक आवाजों को पकड़ सके। वे समर्पित रोमन कैथलिक थे और उन शब्दों को रेकार्ड करना चाहते थे, जिन्हें सलीब पर ईसा मसीह ने बोला होगा। हालाँकि इन वैज्ञानिकों को अपने प्रयोगों में सफलता नहीं मिली थी, फिर भी इससे पता चलता है कि वैज्ञानिक होने के बावजूद उन्हें परलोक और मृत्यु के बाद जीवन पर विश्वास था।

इससे भी सदियों पहले यूनानी गणितज्ञ एवं दार्शनिक पाइथागोरस ने भी परलोकजीवी आत्माओं से सम्पर्क का प्रयास किया था। उसने अपने शिष्यों के साथ ऐसी अनेक बैठकें की थी, जिनमें घूमते हुए पहियों वाली एक रहस्यमयी मेज का प्रयोग किया जाता था। वह मेज कुछ ऐसे चिह्नों की ओर स्वयमेव घूमती थी जिन्हें पाइथागोरस ने विभिन्न सन्देशों के लिए निश्चित कर रखा था। पाइथागोरस की वह घूमती हुई मेज आज के ऊर्जा बोर्ड का ही प्राचीन रूप थी, इसमें सन्देह नहीं। फ्रेञ्च शब्द 'वो' और जर्मन शब्द 'जा'

दोनों का अर्थ 'हाँ' (यस) होता है। ऊर्जा रोलरों पर मढ़ा हुआ लकड़ी का एक बोर्ड होता है जिस पर 'यस' और 'नो' के साथ वर्णमाला के अक्षर अंकित होते हैं। आत्मा से ऐसे सम्पर्क में निपुण एक माध्यम के अनुसार शब्द इतनी तेजी से सामने आते जाते हैं कि उन्हें लिखने के लिए शार्टहैण्ड की जरूरत पड़ती है।

परलोक-सम्पर्क के लिए माध्यम

परलोक एवं रहस्यमयी अलौकिक घटनाओं को लेकर विश्वास और विज्ञान का द्वन्द्व आज भी समाप्त नहीं हुआ है। विज्ञान की मिट्टी में अध्यात्मवाद के बीज से ही आधुनिक परलोक विज्ञान का पौधा अंकुरित हुआ है। सर्वप्रथम उल्लेखनीय है दिसम्बर १८४७ की एक घटना। न्यूयार्क के एक मेथोडिस्ट के घर में फाक्स परिवार की दो किशोरियों को केन्द्र बनाकर 'घात ध्वनि' सुनाई पड़ी थी। उस अलौकिक ध्वनि को सुनने के लिए उस विशाल भवन के चारों तरफ जनता की भीड़ लग गई थी। वास्तव में उसी घटना को लेकर आधुनिक परलोक विज्ञान का जन्म हुआ और तभी से 'परलोक विज्ञान' वैज्ञानिक शोध का विषय बना।

सन् १८७३ में 'ब्रिटिश नेशनल एसोसियेशन आफ स्पिरिटिस्टस्' की स्थापना हुई और प्रख्यात पत्रकार मि. स्ट्रीड कई वर्षों तक आत्माओं से सम्पर्क करते रहे। देश-विदेश में धीरे-धीरे 'सियांस' यानी प्रेत बैठकों का आयोजन होने लगा। मिसेज नियर और वैज्ञानिक प्रेत सम्बन्धी अनेक रहस्यमयी क्रियाकलाप दिखाने लगे।

उसके पश्चात् सन् १८८६ में सर विलियम वैरेट और एडवर्ड गार्नें आदि वैज्ञानिकों ने 'साइकिकल रिचर्स सोसायटी' की स्थापना की। हिल्सप और वयव्रासों आदि वैज्ञानिक इस संसार से परे अदृश्य शक्ति में आस्था रखते थे। इंग्लैण्ड के बकिंघम राजप्रासाद के प्रधान द्वार के ऊपर की खिड़की से, जो जमीन से पचासी फुट की ऊँचाई पर है, निकलकर डी. डी. होम का कई बार हवा में तैरना और वैज्ञानिक विलियम कुक्स के घर में के. टी. किंग नामक स्पिरिट का अनेक बार आविर्भाव आदि घटनाएँ देखकर अनेक वैज्ञानिकों ने स्पिरिट के अस्तित्व को मान लेने की सलाह दी है।

पाश्चात्य 'माध्यम' प्लानचेट

परलोक विज्ञान की चर्चा करने के लिए प्लानचेट, जिसका शुद्ध नाम प्लानशेट है, और मीडियम के सम्बन्ध में ज्ञान होना आवश्यक है। वास्तव में 'प्लानचेट' एक प्रकार का यन्त्र है जिसकी सहायता से 'प्रेतलिपी' प्रकट होती है। मीडियम यानी 'माध्यम' व्यक्ति विशेष होता है। स्त्री या पुरुष कोई भी माध्यम हो सकता है। इसमें बच्चे, बूढ़े का भी भेद नहीं है। तन्त्र-मन्त्र या टोना-टोटका की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ, चक्र में बैठने के पश्चात् एकाग्र होकर किसी खास आत्मा के स्वरूप का स्मरण करना अवश्य पड़ेगा। इसके लिए आँखें बन्द करनी होगी और परिवेश यानी वातावरण शान्त होगा। अत्यन्त एकान्त, शान्त स्थान सर्वोपरि है इसके लिए।

ऐसी स्थिति में आत्मा का पार्थिव रूप माध्यम के लिए परिचित होना आवश्यक है। कमरे में बहुत लोग हों तो कोई हर्ज नहीं है। अविश्वासी व्यक्ति भी वहाँ उपस्थित रह सकता है। लेकिन वहाँ उस कमरे में कोई बात नहीं कर सकता। बात करना, फुसफुसाना या किसी भी प्रकार की आवाज करना मना है। कमरे में अगरबत्ती जलाना आवश्यक है। कमरे में हल्का सा प्रकाश होना चाहिए। एक से अधिक माध्यम होने पर उनमें से कोई नेता होगा। दूसरे माध्यम या व्यक्ति, जो वहाँ उपस्थित हो, माध्यम से प्रश्न करेंगे। बोलकर प्रश्न पूछने से लिखकर पूछना अच्छा है।

प्लानचेट के कई ढंग

प्लानचेट कई प्रकार से किया जा सकता है। इसका एक ढंग यह है जिसमें माध्यम के हाथ में दो स्लेटें होती है। दोनों स्लेटों के बीच पेंसिल होती है। चक्र में बैठे दो लोग स्लेटों को दोनों छोर हाथ से पकड़े रहते हैं। कभी-कभी एक स्लेट से भी काम चल सकता है। इस अवस्था में स्लेट काफी बड़ी और स्वच्छ होनी चाहिए। फिर स्लेट को किसी वस्तु या किसी ढक्कन से ढँक दिया जाता है। ऐसे चक्र में माध्यम अकेला भी बैठ सकता है।

दूसरे प्रकार का प्लानचेट भी देखने को मिलता है जिसमें स्लेट के बदले पटरी होती है और जिसका रूप पान की तरह होता है। उस पान जैसी लकड़ी की पटरी के नुकीले हिस्से में छेद करके उसमें छोटी सी पेंसिल डाल दी जाती है। इस पटरी के दूसरे हिस्से में पीतल के दो छोटे-छोटे पहिए लगे होते हैं।

गतात्मा और प्रेतात्मा

टेबुल पर रखने पर पेंसिल की नोंक और दोनों पहिए एक तल पर होने चाहिए। स्पिरिट आने पर प्लानचेट चलना शुरू करता है। प्लानचेट चलाकर स्पिरिट टेबुल पर बिछे कागज पर प्रश्न का उत्तर लिख देती है। इस प्रक्रिया में एक या दो व्यक्ति बैठ सकते हैं, इससे अधिक नहीं। जो लोग चक्र में बैठेंगे, उनके दोनों हाथों की उँगलियाँ हल्के से प्लानचेट की पटरी से लगी रहेंगी।

प्लानचेट करने का एक और ढंग है। बन्द कमरे में टेबुल पर एक गोला खींचना पड़ेगा। उस गोले में जवाब 'हाँ' या 'नहीं' में लिखे रहेंगे। उस टेबल पर किसी शीशी का ढक्कन 'हाँ' या 'ना' पर सरक जाएगा। वही उस प्रश्न का उत्तर होगा। हाँ, टेबुल पर एक मोमबत्ती जलाकर रखनी होगी।

आत्मा को बुलाने का एक और तरीका है। इसका नाम है 'टेबुल टर्निंग!' इसमें तीन पहिए वाली टेबुल की आवश्यकता पड़ती है। टेबुल के ऊपर का पटरा गोल होना चाहिए। टेबुल का व्यास २०-२२ इंच और उसकी ऊँचाई २७ से ३० इंच तक हो तो ठीक है। इस टेबुल को घेरकर तीन लोग तीन कुर्सियों पर बैठेंगे। तीनों लोगों के छः हाथों

की तीसों उंगलियों के सिरे हल्के से टेबुल पर लगे रहेंगे लेकिन टेबुल पर किसी प्रकार दबाव नहीं पड़ना चाहिए। टेबुल से लगी उँगलियों के माध्यम से तीन लोगों के शरीर एक दूसरे के सम्पर्क में रहेंगे। लेकिन तीनों अलग-अलग कुर्सी पर बैठें रहेंगे। उस कमरे में और भी लोग रह सकते हैं। लेकिन वे एकदम शान्त, मौन रहेंगे। इसी प्रकार बैठकर आँखे बन्द किए आत्मा का स्मरण करना पड़ेगा। वह आत्मा तीनों की परिचित होनी चाहिए। एकाग्रचित्त से आत्मा के आगमन की प्रतीक्षा करनी होगी। इस प्रक्रिया में स्पिरिट टेबुल का पाया ठक-ठक ठोंककर 'हाँ' या 'ना' में प्रश्न का उत्तर देती है। टेबुल का पाया कितनी बार ठोंकने पर 'हाँ' या 'ना' समझा जाय, यह माध्यम के नेता को तय करना पड़ता है।

प्रेतग्रस्त व्यक्ति भी एक 'माध्यम'

पाठकगण प्रेतबाधाग्रस्त व्यक्तियों से अवश्य किसी न किसी रूप में परिचित होंगे। वास्तव में ऐसे व्यक्ति को रोगी नहीं कहा जा सकता। वह प्रेतात्मा के माध्यम होते हैं। प्रेतात्मा की वासना-कामना जिस व्यक्ति से मिलती-जुलती है, उसे वह अपना माध्यम बना लेती है और उसके माध्यम से अपनी अतृप्त कामना आदि की बराबर पूर्ति करती रहती है। किसी--किसी व्यक्ति पर हर समय प्रेतात्मा रहती है। प्रेतात्मा उसे कहते हैं जिसकी वासना और कामना पूरी नहीं हुई है। वे अपनी अधूरी वासना-कामना और इच्छा की पूर्ति के लिए भटकती रहती हैं। कहीं कोई ऐसा व्यक्ति उन्हें मिल जाता है जिससे उसकी प्रकृति मिलती-जुलती है तो वह तुरन्त उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। उस अवस्था में शरीर तो रहता है जीवित व्यक्ति का लेकिन उसकी प्रकृति और उसकी कामना, वासना, इच्छा, विचार, भाव आदि रहता है प्रविष्ट प्रेतात्मा का।

आगे के विषय को समझने के लिए गतात्मा और प्रेतात्मा में अन्तर क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। गतात्मा उसे कहते हैं, जिनकी किसी भी प्रकार की वासना-कामना या इच्छा शेष नहीं रह गयी है संसार में और वह किसी लोक में निवास कर रही है। ऐसी ही गतात्मा किसी भी माध्यम से प्रकट हुआ करती है। इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि जिस गतात्मा का जन्म हो गया है वह किसी भी माध्यम से उपस्थित नहीं हो सकती। हाँ, एक बात अवश्य है कि यदि किसी गतात्मा ने कहीं जन्म ले लिया है और उसकी उम्र ५-६ मास से अधिक नहीं है, यदि उसे बुलाया जाएगा तो वह आते ही कहेगी--मुझे परेशान मत करिए। मैंने फलाँ जगह जन्म ले लिया है। अन्तरिक्ष में गतात्माओं का स्थान निश्चित है। कुछ गतात्माएँ अपने परिवार के निकट रहती हैं। कुछ ऐसी भी गतात्माएँ होती हैं जो इसी संसार में अपना एक स्थान बनाकर वहाँ निवास करती हैं।

गतात्माओं के कई वर्ग हैं। कई श्रेणी भी हैं। वैसे मैंने प्रेतशास्त्र पर पूरे १५ वर्ष शोध

कार्य किया है। लगभग २०० प्रेतों से सम्पर्क साधा मैंने अपने शोध-काल में और सम्पर्क साधकर उनकी मति-गति को समझा। उनके क्रियाकलाप को देखा और उसके बाद लिखी मैंने एक पुस्तक जिसका नाम है 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य।' उसी पुस्तक का एक लघु अंश यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम आप मन के बारे में जानें। आपका शरीर हर जन्म में कब्र में दफन हो जाता है। मतलब कि नष्ट हो जाता है। लेकिन आपका मन?

आपका मन नहीं मरता। समझ गए न आप। आपका मन कभी किसी अवस्था में नहीं मरता। आपका मन एक जन्म से दूसरे जन्म में और दूसरे जन्म से तीसरे जन्म में चला जाता है। जन्म-जन्मान्तर की उसकी यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। जब आप मरते हैं तो आपका शरीर छूटता है। मन तो तब छूटता है जब आप 'मुक्त' होते हैं अथवा कैवल्य को उपलब्ध होते हैं। मन को नष्ट करने का, मन को मारने का और मन का अन्त करने की शक्ति-सामर्थ्य मृत्यु को भी नहीं है। मृत्यु तो शरीर को मिटा पाती है, मन को नहीं। मन तो मृत्यु के भी पार चला जाता है। मन को मिटाने की शक्ति केवल समाधि में ही है। समाधि में मन नष्ट हो जाता है। उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसलिए समाधि को महामृत्यु कहा गया है क्योंकि मृत्यु में तो मरता है केवल शरीर, लेकिन समाधि में मर जाते हैं शरीर और मन दोनों। शेष रह जाती है केवल आत्मा। कभी जो मर नहीं सकती। मिट नहीं सकती। जो अभूत है यानी कभी न मरने वाली।

यही है जीव-संसारी भाव और है हमारा-आपका जगत। इसे ही कहते हैं माया और बन्धन। इस भाव, इस जगत, इस माया अथवा बन्धन से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि हम थोड़ी देर के लिए बिना मन के हो जाएँ। बीच में से मन को हटा दें। और एक झलक मिल जाए हमें बिना मन के जगत की, संसार की, तो हमें यह स्मरण स्पष्ट हो जाएगा कि भीतर कुछ भी प्रवेश नहीं किया है। भीतर सब स्वच्छ है, निर्मल है। अपने आप में जो यह स्वच्छता और निर्मलता का अनुभव है--वह ब्रह्म है। ब्रह्म जब मन के साथ बँधता है तो संसार हो जाता है। ब्रह्म जब मन से अलग होता है तो परब्रह्म हो जाता है और आत्मा मन के साथ बँधती है तो शरीर ग्रहण करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि मन की वासनाओं की तुष्टि बिना शरीर के नहीं हो सकती। मन तो वासनाओं को उठाता है जिसकी तृप्ति बिना शरीर के नहीं हो सकती। इसलिए आपने सुना होगा कोई प्रेत किसी व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर गया। कोई कुछ कहता होगा, लेकिन आपने कभी यह शायद सोचा होगा कि प्रेत अगर होते हैं तो आदमियों के शरीर में प्रवेश क्यों कर जाते हैं?

शायद आप सोचते होंगे शत्रु होगा इसलिए सताने आ गया। शायद आप यह भी सोचते होंगे कि कोई बदला, कोई कर्मफल, कोई पुराना चुकतारा होगा।

प्रेतात्मा की बाधा

प्रेत-बाधा बाधा का कारण यह सब नहीं है। वास्तव में प्रेत कहते हैं उस चेतना को जिसका शरीर तो छूटा है और मन शरीर की माँग करता है क्योंकि मन की जितनी वासनाएँ हैं वे सभी शरीर के द्वारा ही तृप्त हो सकती हैं। मन स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास हाथ नहीं है। मन स्वाद लेना चाहता है किसी स्वादिष्ट वस्तु का पर ले नहीं सकता है क्योंकि उसके पास जीभ नहीं है। वह मन है प्रेत के पास। इसलिए प्रेत को जो कष्ट है, वह यही है कि मन तो है उसके पास लेकिन इन्द्रिय रूपी उपकरण नहीं है उसके पास। पूर्ण अभाव है उपकरण का जिनसे वह अपनी वासना के लिए तलाश कर सके। कोई भी साधन उसके पास नहीं है और वासना पूरी की पूरी है उसके पास और साधन सब खो गए हैं।

प्रेतात्मा बस इतना ही अर्थ है कि जिसको अभी शरीर नहीं मिला। आपको मालूम होना चाहिए कि दो तरह की आत्माओं को शरीर बड़ी कठिनाई से मिलता है। सामान्य आदमी को शरीर आसानी से मिल जाता है। इधर मरे उधर जन्मे, कोई फर्क नहीं पड़ता। कभी-कभी तो मिनट-दो मिनट, पाँच मिनट का फर्क मुश्किल से होता है। इधर मरे कि उधर जन्मे। लेकिन दो छोरवाली आत्माओं को, बहुत बुरी आत्माओं को या बहुत भली आत्माओं को जन्म आसानी से नहीं मिलता क्योंकि उनके योग्य गर्भ चाहिए। हिटलर को जन्म देने के लिए उतने ही दुष्ट प्रकृति के माँ-बाप भी चाहिए। तो ऐसी दुष्ट प्रेतात्माएँ सदियों तक जन्म लेने की प्रतीक्षा रहती हैं। कोई भली चेतना मर जाए तो यही कठिनाई फिर खड़ी हो जाती है। उसे भी माँ-बाप वैसे ही चाहिए जैसी उसकी प्रकृति है। भली चेतना भी जन्म को प्रतीक्षा में इधर-उधर भटकती है बुरी चेतना की ही तरह।

बिना शरीर के भटकने वाली भली चेतना को हम 'देवात्मा' कहते हैं और बिना शरीर के भटकने बुरी वाली चेतना को हम कहते हैं प्रेतात्मा।

प्रेतबाधा मुख्य रूप से बारह अवस्थाओं में होती है-(१) यदि आप शरीर से अस्वस्थ और दुर्बल हैं, (२) यदि आप संकल्पहीन हैं और आपकी इच्छा शक्ति कमजोर है, (३) यदि आप व्यसनी हैं, व्यभिचारी हैं और किसी कुण्ठा से ग्रस्त हैं, (४) यदि आपकी कोई कामना, वासना, इच्छा या अभिलाषा अपूर्ण है और अवचेतन में चली गई है, (५) यदि आप किसी भयंकर रोग से ग्रस्त हैं, (६) यदि किसी व्यक्ति से कोई वादा किया है और उसे पूरा नहीं किया और वह व्यक्ति मर गया, (७) यदि आपने किसी मृत व्यक्ति को गाली दी है या उसका अपमान किया है, (८) यदि आपने किसी प्रेतग्रस्त व्यक्ति का अपमान किया है, (९) यदि आपने श्मशान में, कब्रिस्तान में या किसी काँटेदार पेड़ के नीचे मल-मूत्र का त्याग किया है, (१०) यदि आप किसी ऐसे स्थान या मकान में निवास करते हैं जहाँ प्रेत निवास करते हों, (११) यदि आपने किसी प्रेतबाधाग्रस्त के साथ सम्भोग किया है और (१२) यदि आपके परिवार में किसी की अकाल मृत्यु हुई है।

हाथ–पैर की उँगलियों के नाखूनों का काला पड़ जाना, आँखें बराबर लाल रहना, नींद न आना, बेचैनी बनी रहना, बराबर अस्थिर चित्तका रहना, अधिक बोलना या मौन रहना, अधिक भोजन करना या बिल्कुल न करना, वाणी और स्वभाव का बदल जाना, मारपीट करना और गाली–गलौज करना आदि प्रेतबाधा के मुख्य लक्षण हैं। शरीर का ताप बढ़ जाना भी एक विशेष लक्षण है। जिस व्यक्ति के शरीर में आत्मा प्रवेश करती है, उसका सारा शरीर काँपने लगता है। उसमें अनेक प्रकार के विकार पैदा होते हैं। मुँह से झाग निकलने लगता है। एक प्रकार से प्रेतग्रस्त व्यक्ति मीडियम होता है। यदि कोई उससे प्रश्न करता है तो प्रविष्ट प्रेतात्मा मीडियम के मुँह से उसी की भाषा में उत्तर देती है। स्वर तो मीडियम का होता है लेकिन भाषा उसकी नहीं भी हो सकती है। भाषा प्रेतात्मा की होती है इसलिए मीडियम ऐसी भाषा बोल सकता है जिसे वह समझता ही नहीं।

जो स्वयं माध्यम होते हैं

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, प्रेतात्मा के पास केवल मन होता है, इन्द्रियाँ नहीं। इसलिए प्रेतात्मा अपनी इच्छा और वासना की पूर्ति जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर उसकी इन्द्रियों के माध्यम से करती है। उसको किसी को छूना होगा तो आपके हाथ से छू लेगी। किसी को देखना होगा तो आपकी आँखों से देख लेगी। भोजन करना होगा तो आपके मुँह से कर लेगी। किसी पदार्थ का स्वाद लेना होगा तो आपकी जीभ से ले लेगी। संगीत को सुनना होगा तो आपके कानों से सुन लेगी। इन सबके लिए ही प्रेतात्मा आपको अपना माध्यम बनाती है। लेकिन यह निश्चित है कि जब कोई दो आत्माएँ एक शरीर में प्रवेश कर जाएँ तो पीड़ा और परेशानी का होना तो सम्भव ही है।

अभ्यास के बल पर अथवा किसी क्रिया द्वारा बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो स्वयं अपने शरीर को 'मीडियम' बना लेते हैं। अभ्यास अथवा क्रिया के बलपर 'आत्मा' उनके शरीर में मुँह के द्वारा प्रवेश कर जाती है इस स्थिति में मीडियम (माध्यम) गहन सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश कर जाते हैं जिसे 'कोमा' कहा जा सकता है। प्रविष्ट आत्मा शरीर में प्रविष्ट होकर सक्रिय हो जाती है और मीडियम के शरीर और उसकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का प्रयोग अपने लिए करने लग जाती है। 'आत्मा' मीडियम के शरीर में कब तक रहेगी, इसका निश्चय स्वयं 'मीडियम' पहले से ही कर रखता है। मीडियम से जो भी प्रश्न पूछा जाता है उसका उत्तर प्रविष्ट आत्मा देती है। ऐसे 'मीडियम' में किसी भी प्रकार का मानसिक या शारीरिक विकार नहीं देखा गया है। वे स्वच्छ, स्वस्थ और स्वाभाविक रहते हैं। वे आत्मा से दु:साध्य कार्य कराते हैं। आदेश देते हैं और आदेश के अनुसार आत्मा काम भी किया करती है।

'माध्यम' शशिभूषण गोस्वामी

अपने खोज-काल में अपने आपको 'माध्यम' बनाने वाले जिन सज्जनों से मैं मिला, उनमें एक थे शशिभूषण गोस्वामी। शशिभूषण गोस्वामी कलकत्ता के हाजरा रोड के अपने निजी मकान में रहते थे। सन् १९६२ में मैं उनसे मिला था।

आत्माओं से सम्पर्क के माध्यम

गोस्वामी जी महाशय प्रेतविद्या में पारंगत थे, इसमें सन्देह नहीं। वे महाशय ऐसे थे कि काली घाट या बाँदा घाट के श्मशान में भटकने वाली किसी गतात्मा का आवाहन कर उसे अपने शरीर में प्रविष्ट कर लेते थे। उसके बदले में गतात्मा उनसे जो चाहती थी, उसे वह पूरा करते थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे 'कोमा' में नहीं जाते थे। उनकी आत्मा ही गतात्मा से सम्पर्क स्थापित कर लेती थी। फिर वे मन अथवा चित्त को एकाग्र कर गतात्मा से काम लेने लग जाते थे और उनसे ऐसे बातें करते थे जैसे वे कोई जीवित व्यक्ति हों और उनके सामने खड़ी हों।

मैं उनके इस कौतुक से काफी प्रभावित हुआ था तो अवश्य मगर विश्वास जम नहीं रहा था उनपर। लेकिन एक बार इसका अवसर आ ही गया। बात यह हुई कि मेरे मित्र का ५-६ वर्ष का एक पुत्र गायब हो गया। मित्र महाशय सेन्ट्रल एवेन्यू में रहते थे। धनी व्यक्ति थे। उस जमाने में उन्होंने एक लाख रुपया पुरस्कार घोषित किया था पुत्र के लिए। इस सम्बंध में मैं गोस्वामी जी से मिला। उन्होंने पूछा- 'क्या मुझे पुरस्कार की राशि मिलेगी?'

मैंने कहा--'हाँ क्यों नहीं।'

यह सुनकर गोस्वामी जी अपने शरीर में किसी आत्मा का आवाहन किया। लगभग १०-१५ मिनट बाद अचानक बोले--'बालक को लेकर एक महिला पूर्वी पाकिस्तान जाने की तैयारी में स्यालदह स्टेशन पर बैठी हुई है। गाड़ी आने वाली है। जल्दी करो। लड़का मिल जाएगा, वर्ना.......'

मैं मित्र महोदय को लेकर तत्काल कार से स्यालदह स्टेशन पहुँचा। वास्तव में एक मुस्लिम महिला बालक को साथ लिए बैठी मिली स्टेशन पर। कहने की आवश्यकता नहीं इस घटना के बाद से तो मैं गोस्वामीजी का परम भक्त हो गया।

'माध्यम' रामशरण चैतन्य

गोस्वामीजी की ही तरह एक और महाशय कलकत्ता में रहते थे। नाम था रामशरण चैतन्य। कलकत्ता के डलहौजी क्षेत्र में रहते थे महाशय। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे कोमा जैसी स्थिति में नहीं जाते थे और किसी भी स्तर की आत्मा के माध्यम बन जाते थे। एक बार किसी अंग्रेज महिला का पति अपने देश चला गया था। काफी समय व्यतीत होने के पश्चात् भी उसका कोई समाचार नहीं आया था। उसकी पत्नी काफी दुखी और चिन्तित थी। वह चैतन्य महाशय के पास आई। चैतन्य महाशय की एक आत्मा खास सेविका थी। उन्होंने पहले अपनी उसी सेविका का आवाहन किया और उससे पूछा उक्त अंग्रेज महिला के पति के सम्बन्ध में। सेविका ने क्या उत्तर दिया यह तो मैं सुन न सका, लेकिन दूसरे ही क्षण चैतन्य महाशय धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने लगे जबकि अंग्रेजी का एक अक्षर भी नहीं जानते थे महाशय। मैं भी वहाँ उस समय उपस्थित था। वह

महिला भी वहाँ उपस्थित थी। वह बड़े ध्यान से सब सुन रही थी। अचानक रोने लगी वह। पूछने पर उसने बतलाया कि चैतन्य महाशय के मुँख से उसका पति ही बोल रहा है। वह मर चुका है। संसार में नहीं है वह। उसकी आत्मा अपनी मृत्यु के विषय में बतला रही है।

कहने की आवश्यकता नहीं, उस अंग्रेज महिला का पति मर चुका था और उसकी आत्मा ने चैतन्य महाशय को माध्यम बनाकर अपनी मृत्यु का विवरण दिया था। कलकत्ता से लन्दन कितनी दूर है और उतनी लम्बी दूरी तय कर उस अंग्रेज महिला के पति की आत्मा कैसे आई इतनी जल्दी, समझ में नहीं आ रहा था मुझे। मैं इसकी खोज में जुट गया। काश! मैं न जुटा होता तो आज मेरी इतनी दुर्दशा न हुई होती। उस खोज के चक्कर में पड़कर मैं स्वयं आत्माओं के अदृश्य संसार और समाज का एक सदस्य बन गया।

अपनी खोज के सिलसिले में मुझे ज्ञात हुआ कि आत्माएँ अपने आने की सूचना अनेक प्रकार से देती हैं जिसे संकेत कहते हैं लेकिन कभी-कभी प्रश्न करके भी आत्मा का आगमन मालूम करना पड़ता है। कभी-कभी माध्यम में भावान्तर देखकर भी समझा जा सकता है। थोड़ी देर ध्यान करने के पश्चात् माध्यम आत्मा से कहता है अगर आप आ गए हैं तो कृपया बतला दीजिए! 'आत्मा' आई होगी तो वह स्लेटपर ठक-ठक आवाज करेगी या अपना नाम लिख देगी। पटरी का प्लानचेट होने पर वह चलने लगेगा। प्लानचेट के जरिए इतनी तेजी से लिखा जा सकता है-जो किसी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं। कभी-कभी प्लानचेट चलने लगता है, लेकिन कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खिंचती जाती है। इससे समझना चाहिए कि आत्मा को यह सब पसन्द नहीं है। इस अवस्था में प्रश्न करना बन्द कर देना चाहिए। लेकिन आत्मा को समझा-बुझाकर उससे अनुरोध किया जा सकता है।

आत्मा को अपने आवाहन का पता कैसे चलता है?

यहाँ यह कुतूहल पैदा होना स्वाभाविक है कि 'माध्यम' तो आत्मा को बुलाता है, लेकिन आत्मा को कैसे पता चलता है कि उसे कोई बुला रहा है?

इस प्रश्न के उत्तर में हम परलोक विज्ञान, परामनोविज्ञान और भौतिक विज्ञान के मिले-जुले आधार पर समाधान करेंगे। हमने ऊपर 'अभ्यास' और 'क्रिया' इन दो शब्दों की चर्चा की थी। अभ्यास का मतलब 'योग' और क्रिया का मतलब 'तन्त्र' है। 'योग' के कितने ही अंग हैं उनमें 'ध्यान' सबसे महत्वपूर्ण और मुख्य है। चित्त की एकाग्रता और मन की एकाग्रता में भिन्नता है मगर वह है अति सूक्ष्म। पाश्चात्य पद्धति में जैसे प्लानचेट आदि हैं, लेकिन प्राच्य पद्धति में मनकी एकाग्रता की, जिसे 'ध्यान' कहा जाता है, प्रमुखता है।

जो आत्माएँ मनुष्य के आसपास विचरण करती हैं अथवा मानवीय वातावरण में रहती हैं वे चित्त की एकाग्रता से प्रभावित होती हैं और जो आत्माएँ मानवीय वातावरण

से अलग अन्तरिक्ष में निवास करती हैं, वे मन की एकाग्रता से प्रभावित होती हैं। चित्त जब एकाग्र होता है तो उसमें से कुछ खास तरंगे विकीर्ण होती हैं और मन जब एकाग्र होता है तो उसमें से भी खास तरंगे विकीर्ण होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये दोनों तरंगे अति महत्वपूर्ण हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो योग और तन्त्र की यावत् साधना की सफलता के मूल में ये ही दोनों तरंगें हैं। (इस विषय पर विशेष अध्ययन के लिए पढ़ें, 'मारणपात्र'--लेखक अरुण कुमार शर्मा) खैर कुछ खास तरंगों की सीमा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण तक सीमित है लेकिन कुछ तरंगें पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की सीमा पार कर अन्तरिक्ष में फैल जाती है।

आध्यात्मिक इच्छा शक्ति

हमारा शरीर पंचतत्वों के सूक्ष्म अणुओं से बना है। सम्पूर्ण विश्व भी पंचतत्वमय है। चित्त के एकाग्र होने पर हमारी आत्मा शरीर के पंचतत्वों के अनुशासन से मुक्त हो जाती है। इसी प्रकार मन के एकाग्र होने पर हमारी आत्मा विश्व के पंचतत्वों के अनुशासन से मुक्त हो जाती है।

दोनों प्रकार के अनुशासनों से मुक्त होने का मतलब है, मानवीय आत्मा से विदेही आत्मा का सम्बन्ध स्थापित होना। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो आत्मा का आवाहन एक प्रकार से 'टेलीपैथी' के सिद्धान्त पर आधारित है। हम चित्त अथवा मनको एकाग्र कर जिस आत्मा के स्वरूप का ध्यान करते हैं, उसके पास कुछ खास तरंगें धीरे-धीरे पहुँच जाती हैं और उसी के साथ पहुँच जाती है आवाहन के मूल में काम करने वाली इच्छा शक्ति भी। उस इच्छा शक्ति के गर्भ में तीन वस्तुएँ भी रहती हैं-आत्मा का रूप, आकार और नाम। दोनों तरंगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर पुन: वापस लौट आती हैं। और जब वे वापस लौटती हैं तो उनके साथ आत्मा भी खिंची चली आती है, क्योंकि वे तरंगें उसी आत्मा से टकराती है, जिनके नाम रूप और आकार का चिन्तन किया गया होता है। भले ही वह आत्मा समीप हो या हजारों मील पर हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। तरंग का स्पर्श होते ही आत्मा तुरन्त समझ पाती है कि कौन उसे याद कर रहा है या कौन किसलिए उसे बुला रहा है। तरंगें वापसी के समय अत्यन्त तीव्रगामी होती है। इसलिए आत्मा को आने में देर नहीं लगती। हमारे शरीर में विशेष प्रकार की विद्युत ऊर्जाएँ हैं जिनका मूल उद्‌गम हमारे शरीर में क्रियाशील पंच प्राण हैं। उन्हीं पंच प्राणों के सम्मिश्रण से विशेष प्रकार की वह शारीरिक विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसका निस्सरण विशेष कर आँखों और हाथ की उँगलियों की शिराओं से होता है। आने वाली आत्मा की भी अपनी एक विशेष ऊर्जा होती है जो शारीरिक विद्युत ऊर्जा में मिल जाती है, जिसके फलस्वरूप आवाहन करने वाले की आत्मा से उस अशरीरी आत्मा से अपने आप तादात्म्य स्थापित हो जाता है और वह उँगलियों की शिराओं से प्रवाहित होने वाली विद्युत ऊर्जा के माध्यम से अपना मन्तव्य प्रकट करने लग

जाती है अथवा 'माध्यम' के मुँह से बोलने लग जाती है और उसके आदेशों का पालन करने लग जाती है, जिसका उदाहरण शशिभूषण गोस्वामी और रामशरण चैतन्य हैं।

यह है यौगिक पद्धति, जिसके अन्तर्गत प्लानचेट भी आ जाता है। दूसरी पद्धति है तान्त्रिक पद्धति। यह पद्धति यावत् तान्त्रिक साधना की मूल भित्ति है। इसमें चित्त शक्ति और मन शक्ति के अतिरिक्त मन्त्र शक्ति का भी प्रयोग होता है। मन्त्र ध्वनि की अपनी विशेष तरंगें है। 'मन्त्र शक्ति' के साथ संकल्प शक्ति और विचार शक्ति का भी संयोजन रहता है। इसलिए यौगिक पद्धति से तान्त्रिक पद्धति का महत्व अधिक है। इसकी महत्ता इस बात में निहित है कि इसके द्वारा लोक-लोकान्तर की किसी भी स्तर अथवा किसी भी श्रेणी की आत्मा का आवाहन किया जा सकता है। उनसे सभी प्रकार की सहायता ली जा सकती है। आदेश देकर कोई भी कार्य कराया जा सकता है। इस पद्धति की अपनी विशेष साधना है। सभी के लिए वह साधना सम्भव नहीं है। इसमें पग-पग पर खतरा बना रहता है। तन्त्र शास्त्र में इस पद्धति की साधना को 'पीठ साधना' अथवा 'पीठ सिद्धि' कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आध्यात्मिक इच्छाशक्ति बहुत प्रबल होती है। आध्यात्मिक इच्छा है मतलब है इच्छाशक्ति, संकल्प शक्ति, विचार शक्ति, चित् शक्ति और मन:शक्ति का समन्वय। इन सभी शक्तियों का जो समन्वय रूप है, उसका नाम है--''आध्यात्मिक शक्ति''। कहने की आवश्यकता नहीं, इस शक्ति की तरंगें अत्यन्त शक्तिशालिनी होती हैं और तीव्र गति से ब्रह्माण्ड के कोने-कोने में पहुँच जाती हैं। खैर विज्ञान चाँद तक पहुँच चुका है। अन्य ग्रहों में भी मनुष्य को भेजने का प्रयास चल रहा है। वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष यान के निर्माण में बड़ी प्रगति की है। लेकिन 'नील आर्मस्ट्रांग' चाँद से जो शब्द तरंग रिकार्ड करके लाए हैं, विज्ञान अब भी उसकी सन्तोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सका है। आम आदमी में चाँद या मंगल ग्रह पर जीने की इच्छा नहीं है क्योंकि उसमें सामर्थ्यवान व्यक्ति इस मामले में विज्ञान को अपनी प्रबल आध्यात्मिक इच्छा शक्ति के बल पर बहुत पीछे छोड़ सकता है।

परलोक विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक जब से रुचि लेने लगे हैं, इसके अनुशीलन से बड़ी प्रगति आई है। हाल में पश्चिम के परलोक वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि वे सुरक्षित रूप में फिर से विदेही आत्मा स्थापित कर सकते हैं। पता नहीं उनको सफलता मिलेगी या नहीं, हालाँकि ऐसा बहुत जल्दी नहीं होने जा रहा है, क्योंकि उन परलोक वैज्ञानिकों को इसके लिए सौ वर्ष का समय चाहिए, लेकिन परलोक और इहलोक के बीच पत्राचार सेवा चालू करने का प्रयास अभी से शुरू हो गया है।

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी जीवन स्मृति में लिखा है--'ऐसा सुनने में आता है कि एक बार मेरे गुरुजनों ने प्लानचेट की सहायता से परलोक से, 'डाक सेवा' चालू करने का प्रयास किया था। एक दिन उनके प्लानचेट की पेन्सिल से कैलास मुखर्जी का नाम

लिखा गया। फिर कैलाश मुखर्जी से पूछा गया-- 'आप जहाँ हैं, वहाँ की व्यवस्था कैसी है? बताइए'। उत्तर आया--'मैं मरकर जिसे जान सका हूँ, आप लोग जिन्दा रहकर उसी को जानना चाहते हैं। सौदा इतना सस्ता नहीं है? ऐसा नहीं हो सकता।'

रविन्द्रनाथ के गुरुजनों ने अचानक यह काम शुरू नहीं किया था। यह बात सर्वप्रथम मिसेज पियर के दिमाग में आई थी। उन्होंने कई आत्माओं को इस काम में लगाने की कोशिश की थी। उसके बाद डब्ल्यू. टी. स्टीड को इस दिशा में काफी सफलता मिली। आत्माओं की सहायता से वे सन्देशों का आदान-प्रदान किया करते थे लेकिन अचानक वह दुर्घटना घट गई।

सन् १८१२ ई. में स्टीड 'कांग्रेस आफ मिलियन' में भाषण देने के लिए मशहूर टाइटेनिक जहाज से अमेरिका जा रहे थे। हिमशैल से टकराकर वह जहाज डूब गया और लोगों के साथ स्टीड की भी जलसमाधि हो गई। इससे उनका परलोक से डाक सेवा चालू करने का प्रयास अधूरा रह गया।

बुलाने पर आत्मा उत्तर देती है। वह मनुष्य के पास आती है और अपना मनोभाव व्यक्त करती है। वह मनुष्य को सहयोग देना चाहती है। वह एक सेकेण्ड में हजारों मील दूर से समाचार लाती है। एक आत्मा दूसरी आत्मा को बुला भी देती है। फिर आत्मा को डाकिए का काम सौंपने में कौन सी बाधा है? परलोक से फिर विलियम वैरेट, एडवर्ड गोर्न, मिसेज पियर और स्टीड जैसे विशिष्ट व्यक्तियों की आत्माओं से सहायता मिल सकती है। इन लोगों ने इस लोक में भी लगन से इसी की साधना की थी। प्लानचेट के चक्र में बैठकर हम अपने सुख-दुःख और हर्ष-विषाद के भावों को व्यक्त करेंगे और आत्मा उनको हमारे दिवंगत प्रियजनों के पास पहुँचा देगी। फिर आत्मा ही उनका जवाब लाकर प्लानचेट के स्लेट पर या सीधे माध्यम के मुख से उसे व्यक्त करेगी। इस तरह जब भी मन होगा, विदेही प्रिय जनों से सम्पर्क किया जा सकेगा। इससे विरहाकुल हृदय शान्त होगा और डाक-व्यय का झमेला भी नहीं रहेगा। इन सुविधाओं को ध्यान में रखकर क्या परलोक से डाकसेवा चालू नहीं की जा सकती? खैर......

प्रेतात्माओं से सम्पर्क

मेरे पास अनेक ऐसे पाठकों के पत्र आते रहते हैं जिनमें प्रेतों के अस्तित्व और उनसे सम्पर्क साधने के संबन्ध में प्रश्न किया गया होता है। जहाँ तक प्रेतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने का प्रश्न है, इस विषय में मैं पहले बतला चुका हूँ। उस पर यहाँ और प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा। रही बात प्रेतात्माओं के अस्तित्व की, उसे तो किसी भी अवस्था में अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रेतात्माओं के अस्तित्व को समझने के लिए सर्वप्रथम सृष्टि-संरचना को समझ पा लेना आवश्यक है। हम सबलोग अपनी सृष्टि को लेकर बहुत बड़े भ्रम में जीते है, वह यह कि हमारी इन्द्रियों की पकड़ में जो पदार्थ या तरंगें आती हैं, मानों वही अस्तित्व है। शेष कहीं

कोई अस्तित्व नहीं है किन्तु इस लोक का जो अंश आंखों से दिखलाई पड़ता है,हमें कानों से सुनाई पड़ता है, वह पूर्ण अस्तित्व का कदाचित् सहस्रांश या लक्षांश भी नहीं है। हमने इस लेखमाला के प्रारम्भ में सात लोकों का उल्लेख किया है। भौतिक लोक से प्रारम्भ होकर वे क्रमश: सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते चले जाते हैं। ये समस्त लोक परस्पर प्रविष्ट हैं। उन सात लोकों की संरचना जिन सूक्ष्म पदार्थों या तरंगों से हुई, उन्हीं पदार्थों अथवा तरंगों से मनुष्य के सात शरीरों की भी संरचना हुई है। सात लोक और मनुष्य के सात शरीर सात लोकों की तरह समग्र रूप से एक साथ अभी और यहीं परस्पर प्रविष्ट रूप से उपस्थित हैं।

हमारे इस भौतिक लोक के ठीक पश्चात जो अन्य सूक्ष्म लोक हैं, वह इच्छा लोक अथवा भावनालोक है, जिसे मृत्यु लोक भी कह सकते हैं। उसी प्रकार हमारे बाह्य भौतिक शरीर के पश्चात इच्छा या भावना शरीर के भी तत्सम्बन्धी पदार्थ की सघनता और सूक्ष्मता के आधार पर सात उपलोक और सात उपशरीर हैं। इस सम्पूर्ण पृष्ठभूमि में सोचने पर ही हमें मृत्यु के वास्तविक स्वरूप को समझने में सुविधा होगी। अभी तक सामूहिक संस्कार के कारण 'मृत्यु' के सम्बन्ध में हमारी धारणा भय, आतंक, दु:ख और शोक की ही रही है। किन्तु यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जिसे हम अपना जीवन कहते हैं,वह वास्तव में जीवन के साथ-साथ मृत्यु भी है। जन्म हमें दीखता है, मगर मृत्यु नहीं। मृत्यु जीवन के पीछे-पीछे बराबर चलती ही रहती है। और यह मृत्यु जो घटित होती है, वह किसकी है। वह मात्र बाह्य शरीर के अणु-परमाणुओं का विघटन ही है। इस बाह्य शरीर के विघटन तथा समाप्ति के पश्चात हमारा इच्छा शरीर स्वत: सक्रिय हो जाता है और इस शरीर में हमें उतने समय तक रहना पड़ता है जितना कि भौतिक शरीर में रहते हुए हमने इच्छाओं और वासनाओं के जोर को उत्पन्न किया है। समय आने पर यह इच्छा शरीर भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वैचारिक विकास या विन्यास के अनुसार व्यक्ति या तो उच्चतर लोक यानी वैचारिक लोक में अपने वैचारिक शरीर के द्वारा जीने लगता है या उसका भौतिक लोक में भौतिक शरीर में जन्म हो जाता है।

आत्मा और विकासवाद

एक बात जो हमारे पूर्वजों ने स्पष्टतया नहीं कही, वह है आत्मा के विकासवाद के सिद्धान्त की। जीवन के पहले यह कहना संगत भी नहीं होता। जब डार्विन ने शरीर की विकास की बात कही, तभी यह अब कह पाना संगत हो सका कि शरीर के साथ-साथ आत्मा का विकास हो रहा है। स्पष्ट है कि विकास के क्रम में प्रति गति नहीं, प्रगति होती है। विभिन्न योनियों और रूपों में लाखों और हजारों वर्षों तक बार-बार जन्म ले चुकने के बाद एक बार जब हम मानव योनि में जन्म ले चुके हैं तो अब हमारे कर्म कैसे भी क्यों न हों, हम निम्न योनि में वापस नहीं जा सकते। हमारे पूर्वजों ने नर्क और २४ लाख योनियों की बात या तो केवल जनसामान्य को सही रास्ते पर बनाए रखने के सदुद्देश्य से कही या फिर उनका तात्पर्य भावना लोक में भावना शरीर की क्षमताओं और सम्भावनाओं से होगा। भावना लोक भावना में या इच्छा करने मात्र से इच्छित परिस्थितियाँ उपलब्ध हो

जाती हैं। प्रकट है कि प्रत्येक मनुष्य उस लोक में अपने स्वभावानुसार परिस्थितियाँ निर्मित करता होगा। मनुष्य इन परिस्थितियों की रचना करके विभिन्न योनियों की अनुभूतियों को प्राप्त होता रहता होगा। मनुष्य अपनी सारी अकांक्षाओं, इच्छाओं और वासनाओं को साथ लेकर मरता है। इच्छा लोक में ये इच्छाएँ और भी क्षणिक प्रबल हो जाती हैं और मनुष्य उनकी प्राप्ति या पूर्ति के लिए व्यग्र हो उठता है। दूसरी ओर भौतिक शरीर के अभाव में वह इन इच्छाओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है। अपनी ऐसी ही प्रबल आकांक्षा की पूर्ति की अभिलाषा में मृत व्यक्तियों की अधिकांश आत्माएँ भौतिक लोक के आसपास ही भटकती फिरती रहती हैं।

गतात्माओं से सम्पर्क-साधन

अपनी प्रबल अभिलाषा की पूर्ति के लिए भटकती ये आत्माएँ इस खोज में रहते हैं कि व्यक्तियों को अधिकृत करके या अभिप्रेरित करके उनके शरीर के माध्यम से अपनी इच्छापूर्ति कर लें।

गतात्माओं से प्रेरित कार्य और सम्पर्क

कभी आपने सोचा है कि अपने जीवन में कभी-कभी हम ऐसे कार्य कर बैठते हैं जो हम कभी भी करना नहीं चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह कार्य किसी अन्य ने हमसे बलपूर्वक करा लिया हो। जब कभी विज्ञान इतना विकसित हो सकेगा तब शायद पता चल सके कि हमारे अनेक कार्यों के लिए हम उत्तरदायी नहीं हैं। भौतिक लोक की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी को माध्यम बना लेने वाली आत्मा को हम प्रेत की संज्ञा देते हैं।

इन आत्माओं से साधारणतया हमारा कोई सम्पर्क नहीं होता। इस लोक से हम अथवा उस लोक से वे चाहें तभी परस्पर सम्भव सम्पर्क होता है। जहाँ तक उनके पक्ष का प्रश्न है, वे प्रेरणा देकर, स्वप्नावस्था में सन्देश देकर अथवा किसी के भौतिक शरीर को कुछ समय के लिए अधिकृत करके, उसे माध्यम बनाकर सम्पर्क करते हैं। जीवित और मृतक, हम सब 'ट्रान्समीटर' भी हैं और रेडियो या रिसीवर भी हैं। जब वे प्रेरणा दे रहे होते हैं, उस समय यदि हमारे ध्यान का 'रिसीवर सेट' आन नहीं है तो संवाद नहीं हो सकेगा। प्राय: हमारी चेतना 'रिसीवर' आफ ही हुआ करते हैं कि न हमें पता है हमारे पास 'रिसीवर' है और न हमें यह पता है कि कहीं जीवन्त 'ट्रान्समीटर' भी है।

हम अपने लोक में रहकर गतात्माओं अथवा प्रेतात्माओं से जिन साधनों द्वारा सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ साधन 'ध्यान' (ध्यान के विषय में हम आगे चर्चा करेंगे) अथवा योग हैं जो यथेष्ट श्रम एवं साधना साध्य हैं। प्लानचेट, उइजा बोर्ड, आटोमेटिक राइटिंग (स्वत: लेखन) आदि भी गतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की सामग्री हैं। वास्तव में इन सब साधनों में माध्यम कोई जीवित व्यक्ति ही होता है। अच्छा माध्यम वह होता है जो इच्छाशक्ति की सूक्ष्म तरंगों या कम्पनों को ग्रहण कर पाने के लिए

यथेष्ट संवदेनशील हो। ऐसे सक्षम व्यक्ति को प्लानचेट आदि की आवश्यकता भी नहीं रहती। वह स्वयं ही माध्यम बन जाता है और कोई आत्मा उसकी भौतिक देह को थोड़े समय के लिए अधिकृत कर लेती है। आत्माओं से सम्पर्क साधने के लिए मद्धिम प्रकाश और नि:स्तब्ध वातावरण आवश्यक है। ऐसा लगता है कि तेज प्रकाश उनके ऐच्छिक शरीर की संरचना को सह्य नहीं।

प्लानचेट के सम्बन्ध में हम विस्तार से पहले बतला चुके हैं। यहाँ इतना बतला देना आवश्यक है कि प्लानचेट पर आमंत्रित की जाने वाली आत्मा का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है। यदि पढ़ी-लिखी न हो तो फिर उससे संकेत तय किए जाते हैं, जैसे कि आप यदि अमुक हैं तो कृपया तीन बार प्लानचेट घुमा दीजिए अथवा यदि आपने अमुक कार्य किया हो तो 'हाँ' का संकेत एक बार प्लानचेट को घुमाकर दे दें और यदि 'न' कहना हो तो दो बार घुमाकर दें। यदि दो तीन महिलाएँ सम्मिलित हों तो सफलता की सम्भावना अधिक है। कारण कि महिलाएँ सूक्ष्म तरंगों को ग्रहण कर पाने के लिए अधिक संवेदनशील होती हैं। सामूहिक रूप से चार-पाँच व्यक्तियों को प्रयोग करने की आवश्यकता इसलिए है कि उन्हीं में से कोई जो अच्छा माध्यम होगा, आत्मा उसका उपयोग कर लेगी। प्राय: महिलाएँ अच्छी माध्यम होती हैं।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि दुष्ट आत्मा हो बार-बार विभिन्न नामों से आ-आकर आपको धोखा दे सकती है। यदि कोई अच्छी और सूक्ष्म आत्मा आती है तो उससे निवेदन किया जाता है कि ऐसे प्रयोग में वह आपको गाइड करे या पथ-प्रदर्शक अथवा सहायक बन जाए। इन आत्माओं से प्रश्न पूछते समय यह न सोच लें कि मर जाने के कारण वे कोई परिवर्तित या पहुँचे हुए महापुरुष हो गए हैं और न यह समझें कि सर्वज्ञ हो गए हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान सब जानने लगे हैं। वास्तव में मृतक व्यक्ति उस लोक में रूप एवं स्वाभावादि में बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा कि वह जीवनकाल में था। हाँ, यह सम्भावना अवश्य है कि वहाँ प्राप्त संगति में या तो धीरे-धीरे सुधर जाए या अधिक बिगड़ जाए। उस लोक में अपने पूर्वजों से भी प्राय: भेंट हो जाती है। अन्य नए-पुराने साथी मिल जाते हैं। अवश्य ही यह क्षमता उनमें हो जाती है कि यदि वे चाहें तो वर्तमान में कहीं किसी भी देश-देशान्तर में किसी जाने-पहचाने व्यक्ति की भावनाओं के बारे में कोई सूचना दे सकते हैं। वे मन में आए विचार को इस तरह पढ़ सकते हैं जैसे हम किताब को पढ़ सकते हैं। इसलिए कभी-कभी वे उसके प्रश्न का उत्तर आपके ही मन में तत्काल सोचे हुए उत्तर में दे देते हैं। न जानते हुए भी मात्र शेखी बघारने के लिए या महज उत्तर देने के लिए वे कई बातें गलत भी बतला देते हैं। इन सब बातों के सम्बन्ध में प्रयोगकर्ताओं के लिए सावधानी आवश्यक है। सदैव ध्यान रखें कि वे आत्माएँ, जो मनुष्य से सम्पर्क साधने के लिए तैयार रहती हैं, उनकी अपनी कुछ न कुछ परेशानी या समस्या रहती है। प्राय: ऐसी आत्माएँ मनुष्य को प्रेरणा देकर या स्वप्न में सन्देश देकर

अपनी बात कहने का प्रयास करती हैं किन्तु हमारा ध्यान उस ओर केन्द्रित न होने के कारण हम उनके संकेतों को पकड़ नहीं पाते।

वास्तव में प्लानचेट अपने आपमें एक साधन है। केवल उपकरण मात्र है। दरअसल व्यक्ति माध्यम होता है। आत्मा किसी व्यक्ति को 'माध्यम' के रूप में अपनाकर सम्पर्क करती है। यदि कोई प्रयास करे तो स्वयं सीधे ही माध्यम हो सकता है। इस विधि को स्वत: लेखन (आटोमेटिक राइटिंग) कहते हैं। वैसे ही एकान्त परिस्थिति में, मन्द प्रकाश में, एकान्त कमरे में एक कागज पर पेन्सिल रखकर उसे हाथ से पकड़कर बैठ जाएँ और अपने को बिल्कुल शिथिल और शून्य खाली छोड़ दें। किसी आत्मा का आवाहन करना चाहें तो करें, न करना चाहें तो न करें। आपकी पेन्सिल स्वयमेव गतिशील हो जाएगी बशर्ते आप अच्छे माध्यम हैं। इस विधि से आप अपनी परीक्षा भी ले सकते हैं कि आप माध्यम हैं या नहीं।

इस विषय में मेरे सहयोगी रामानाथ गांगुली ने बतलाया था कि सभी लोग 'माध्यम' नहीं बन सकते। किसी-किसी व्यक्ति के शरीर के भीतर एक खास प्रकार का तरल पदार्थ होता है, जो सूक्ष्म आत्माओं को उसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करता है जैसे चुम्बक लोहे को। यही नहीं, उस पदार्थ का सहारा लेकर वायु रूप आत्मा अपना पुराना रूप धारण कर सकती है, लिख सकती है तथा सूक्ष्म वस्तुओं को स्थूल बना सकती है। माध्यम की यही उपयोगिता है तथा जिसके शरीर में जितनी अधिक मात्रा में वह तरल पदार्थ होता है, वह उतना ही शक्तिशाली माध्यम होता है। खैर.......

बहुत से लोग पूछते हैं क्या हम किसी की भी आत्मा को बुला सकते हैं? इसके उत्तर में मेरा कहना यह है कि आप किसी को बुलाएँ, यह आपकी इच्छा है।

क्या प्रेतात्माओं का अस्तित्व है?

यह आवश्यक नहीं है कि जिसे आप बुलाएँ, वह आए ही। किसी का अपने पास आना उभयपक्षीय मार्ग है। जिसे हम बुलाते हैं, वह भी उत्सुक है या नहीं, इस पर उसका आगमन निर्भर है। जिसे आप बुलाते हैं, यह देख लें कि उसका आपसे ऐसा कोई लगाव है कि वह आपके आवाहन पर आए। यदि नहीं है तो वह नहीं आएगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। यदि वह गतात्मा इच्छालोक में है, वह निम्न स्तर पर है तभी वह आपके आवाहन पर आ सकती है। यदि उसका पुनर्जन्म हो गया या अपने विकास-क्रम में वह और भी उच्चतर लोक में पहुँच गई होगी तो उससे इन साधनों द्वारा सम्पर्क सम्भव नहीं। जिन आत्माओं को हम बुलाते हैं, वे हमारे वश में हो सकती हैं या नहीं, ये सारी बातें दोनों के व्यक्तित्वों, स्वभावों, इच्छाशक्तियों, क्षमताओं और आकांक्षाओं पर निर्भर करती हैं। प्रेतात्माएँ इच्छा तथा विचारों की तरंगें निरन्तर विकीर्ण करती रहती हैं। हम जीवित व्यक्ति भी निरन्तर अपनी इच्छाओं और विचारों के कम्पन उत्पन्न करते रहते हैं। स्वाभाविक है कि हमारे सबके कम्पन या तरंगें एक दूसरे को

प्रभावित करेंगे। इन सारी जिज्ञासाओं का एक सीधा सा उत्तर इस तथ्य से समझ लें कि प्रेतात्मा और हममें कोई अन्तर नहीं है सिवाय इसके कि हमारे भौतिक शरीर हैं और उनके पास भौतिक शरीर नहीं है। अन्यथा मृत व्यक्ति जैसा अपने जीवनकाल में था, वही मृत हो जाने पर भी रहता है। सच कहा जाए तो हम सब प्रतीक्षा करती हुई भावी प्रेतात्माएँ ही हैं।

भूत-प्रेत अथवा प्रेतात्माओं की चर्चा होने पर सर्वप्रथम लोगों के मन में यही प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में भूत-प्रेत जैसे देहातीत प्राणियों का अस्तित्व है।

इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व मैं आपको भूत-प्रेत से सम्बन्धित कुछ ऐसी रोचक कथाएँ सुनाऊँगा भले ही भूत-प्रेत पर आपको विश्वास हो या न हो मगर उन कथाओं को सुनकर निस्सन्देह आप मन ही मन उनके अस्तित्व को स्वीकार कर लेंगे क्योंकि वे कथाएँ प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं।

लगभग बीस वर्ष पूर्व अंग्रेजी साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' में प्रकाशित एक विवरण के अनुसार उत्तर प्रदेश के खुफिया पुलिस विभाग के इन्सपेक्टर श्री गुरुशरण लाल श्रीवास्तव की ३५ वर्षीया धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिदेवी की रहस्यमय ढंग से मृत्यु हो गई थी जिसका विस्तृत रूप से समाचार उस समय प्राय: सभी समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। समझा जाता है कि इस मृत्यु के पीछे भूत-प्रेतों का हाथ था।

श्रीवास्तव जी ने अपने लिए एक मकान बनवाया था। जिस प्लाट पर मकान बना था, वहाँ एक हरिजन की हत्या हुई थी और तभी से वह प्लाट भूत-प्रेतों का बसेरा बन गया था। यह बात श्रीवास्तव जी को मालूम नहीं थी।

भूत-प्रेतों का उत्पात श्रीवास्तव जी के घर में अक्टूबर १९६९ से आरम्भ हुआ जब न जाने कहाँ से, न जाने कौन घर के अन्दर ईंट-पत्थर फेंकने लगा। दरवाजे अपने आप खुलने और बन्द होने लगे। ऐसा तभी होता जब श्रीवास्तव जी घर में न होते। उनकी अनुपस्थिति में पुलिस घर के आसपास उपस्थित रहती पर वह यह पता लगाने में असमर्थ रही कि ये उत्पात कौन और कहाँ से करता है?

जून १९७० तक इस उत्पात ने उग्र रूप धारण कर लिया। अब फर्श पर रखी कुर्सियाँ अपने आप उछल कर हवा में तैरने लगीं और रसोईघर में रखे बर्तन अपने आप अपने स्थान से उठकर तेजी से घर में रहने वाले लोगों को लगने लगे। एक दिन श्रीवास्तव जी की तलवार म्यान से निकल कर हवा में काफी देरतक अधर में लटकी रहीं। बाद में वह बिस्तर के नीचे छिपी मिली। इसके बाद किन्हीं अज्ञात हाथों ने उसे खून से सानकर बाहर जामुन के वृक्ष पर फेंक दिया था। एक दिन बिस्तर पर सोती हुई श्रीवास्तव जी डेढ़ वर्षीया लड़की अचानक गायब हो गयी और छ: घण्टों की खोज के बाद अचानक वह एक बक्से पर पड़ी मिली। एक अन्य अवसर पर उसी लड़की को भूतों

ने एक सूटकेस में बन्द कर दिया था। उसके बड़े भाई को एक अवसर पर एक अजीब आदमी पीछा करते दिखाई दिया था, जो उसके घर पहुँचने पर सहसा गायब हो गया।

१ जुलाई को तो भूत-प्रेतों ने अपनी जघन्यतम लीला की। श्रीवास्तव जी को उनके कार्यालय में सूचना मिली कि उनकी पत्नी श्रीमती शान्तिदेवी रहस्यपूर्ण ढंग से बुरी तरह जल गई हैं। वह तुरन्त घर आए और पत्नी को अस्पताल ले गए जहाँ कुछ समय बाद शान्तिदेवी ने दम तोड़ दिया।

भूत-प्रेतों का उत्पात श्रीमती शान्तिदेवी की मृत्यु के बाद भी जारी रहा और कब तक जारी रहा, इस समय नहीं बतलाया जा सकता।

भूत-प्रेतों का उत्पात ब्राजील में

पिछली घटना से मिलती-जुलती एक घटना सन् १९५९ में ब्राजील के साओ पावलो राज्य के इटपिरा नगर में रहने वाले जमींदार स्विड काण्टों के घर में घटी थी। इस घटना की निष्पक्ष और युक्तिसंगत जाँच करके ब्राजील के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और विश्वसनीय दैनिक 'ओ कुजीरो' ने उसे प्रकाशित किया था।

अप्रैल १९५९ की एक सुबह को रसोईघर में बैठे काण्टो ने देखा कि दो बड़े-बड़े पत्थर न जाने कहाँ से आकर रसोईघर में गिरे जिसकी चोट से वहाँ कई लोग घायल हो गए। वैसे पत्थर घर में कई बार गिरे। काण्टो साहब ने कई लोगों के साथ घर का निरीक्षण किया पर पथराव के रहस्य का पता न लग सका। दो-तीन दिनों तक बराबर पथराव होता रहा। फिर उसके बाद बर्तनों, आलू, प्याज, शलजम आदि की वर्षा भी हुई। काण्टो ने भूतों के इस उपद्रव को शान्त करने के लिए अपने एक पादरी मित्र को बुलाया। भूतों ने उन पर भी हमला बोल दिया। वे भाग खड़े हुए। काण्टो ने गौर किया कि उपद्रव सदा उनकी नौकरानी फेसिस्का के आसपास ही होता था। उनके एक भूत-विशेषज्ञ मित्र ने उन्हें बतलाया कि भूत फेसिस्का की आड़ में उपद्रव कर रहे हैं।

काण्टो के काफी प्रयास करने पर भी इस उपद्रव का समाचार सारे नगर में फैल गया। अब तो पुलिस अधिकारी भी आए। 'ओ कुजीरो' के प्रतिनिधि भी आए और ऐसे अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आए जिनकी रुचि इन रहस्यपूर्ण उपद्रवों की तह में जाने की थी। पर कोई किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा हाँ, एक बात पर सभी ने गौर किया कि इन तमाम उपद्रवों के बीच भी फेसिस्का शान्त रहती थी, लेकिन धार्मिक स्वभाव वाली सीधी-सादी फेसिस्का का भूतों और उनके उपद्रवों से क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह कोई नहीं जान पाया। 'ओ कुजीरो' ने सारी घटना का वर्णन प्रस्तुत करने के बाद अन्त में लिखा 'इन विचित्र घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी काफी समझदार और दुनियादार लोग हैं। उनमें से एक नामी मनोवैज्ञानिक भी हैं। पर इन घटनाओं का कारण जितना उनके लिए अज्ञेय रहा, उतना हमारे लिए भी रहा।'

सी. ई. एम. जोड की गिनती इंगलैण्ड ही नहीं विश्व के अग्रणी चिन्तकों मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों और लेखकों में होती है। १६४४ में बी. बी. सी. पर आयोजित एक परिसंवाद में भाग लेते हुए उन्होंने कहा था--'मै पहले भूतों में विश्वास नहीं करता था पर उस दिन से करने लगा, जिस दिन से मेरी प्रयोगशाला में न जाने किसने न जाने कहाँ से मुझपर साबुन की टिकिया बरसानी आरम्भ कर दी।'

इंगलैण्ड के एक और विश्वविख्यात लेखक, नाटककार तथा अभिनेता तोराल कोवर्ड ने अपनी कृति उस भूत की मैत्री के फलस्वरूप लिखी थी, जो उनका सबसे प्यारा और सच्चा साथी था। मृत्युपर्यन्त वह उनके साथ छाया की भाँति रहा और उनके साथ इंगलैण्ड से अमेरिका भी आया।

रहस्यमयी प्रेत-लीलाएं

सन् १६४४ की वसन्त ऋतु की एक सुहानी सुबह। अमेरिका के उत्तरी डकोटा क्षेत्र के रिचडैटन नामक नगर में वाइल्ड प्लम स्कूल की शिक्षिका श्रीमती पालिन रेवेल अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ा रही थीं। सहसा कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे कक्षा की शान्ति और मर्यादा भंग हो गई जैसा कि बाद में प्रत्यक्षदर्शी फायर मार्शल चार्ल्स स्नार्ज ने पत्रकारों को बताया--'ये घटनाएँ सचमुच अविश्वसनीय थीं।'

अचानक घटने वाली घटना इस प्रकार थी--कमरे में रखी हुई अँगीठी के कोयले अपने आप बड़ी तेजी से जलने लगे। कुछ क्षण बाद वे कोयले अँगीठी से निकलकर दीवारों तक आने लगे और फिर दीवारों से टकर खाकर अँगीठी में वापस जाने लगे। एक जलता हुआ कोयला एक विद्यार्थी के सिर पर जोर से लगा जिससे उसके बालों में आग लगते-लगते रह गई लेकिन सिर झुलस गया। फिर कोई विस्फोट सा हुआ और अँगीठी उलट गई। किताबों का एक शेल्फ नीचे उतर आया। कमरे की खिड़कियाँ अपने आप झुलसने लगीं।

अद्भुत प्रेत-लीला

श्रीमती रेवेल ने तुरन्त हेडमास्टर को फोन किया और अपने सहायकों के साथ भागे-भागे वे घटनास्थल पर आए। जलते-सुलगते कोयलों का ताण्डव नृत्य उस समय भी चल रहा था।

जब तक फायर ब्रिगेड आया, तब तक वह ताण्डव नृत्य जिस प्रकार सहसा आरम्भ हुआ था, उसी प्रकार समाप्त हो चुका था पर जलते हुए कोयले कमरे में अभी तक इधर-उधर बिखरे हुए दिखाई दे रहे थे।

कुछ कोयलों की जाँच स्कूल के विज्ञान शिक्षकों ने की और कुछ को अमेरिकी खुफिया पुलिस के वैज्ञानिकों ने। प्रयोगों से किसी असाधारण बात का पता न चला। श्रीमती पालिन रेवेल और उनके आठों विद्यार्थियों से अलग-अलग काफी देर तक पूछताछ की गई। सबने घटनाओं का यथातथ्य वर्णन किया।

सुविख्यात समाचार साप्ताहिक 'टाइम' ने, जो ऐसी अन्धविश्वासपूर्ण घटनाएँ कभी प्रकाशित नहीं करता, इस घटना का पूरा विवरण बिना किसी टिप्पणी के अपने २४ अप्रैल १९४४ के अंक में प्रकाशित किया।

इसी प्रसंग में एक विचित्र घटना का उल्लेख और कर देना आवश्यक है। ५ जुलाई १९७३ की है यह घटना। होशंगाबाद शहर में एक मध्यवित्त लिपिक सुमेरचन्द्र जैन माता, पिता, पत्नी और एक मास की छोटी सी बच्ची के साथ एक विचित्र चमत्कार के प्रकोप के शिकार हो गए।

५ जुलाई सन् १९७३ को श्री जैन की माँ की चारपाई में अचानक आग लग गयी। रजाई, चादर, गद्दा, साड़ी जलने के बावजूद शरीर पर आँच या झुलसने का एक भी चिह्न नहीं था। इसी प्रकार दो-तीन बार घर में आग लगने के कारण लोगों ने मकान बदल दिया लेकिन दूसरे मकान में भी आग ने पीछा नहीं छोड़ा। जिसके भी मकान में गए, उसी के मकान में आग लग गई। आग का प्रकोप शान्त होने के बजाय बढ़ता ही गया। लोगों ने इन्हें अपने मकान में शरण देने से भी इनकार कर दिया। इस स्थिति में परिवार जैन मन्दिर के प्रांगण में चला गया। कई प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार देखते-देखते आग लग जाती है, बुझाने पर बुझ भी जाती है। लेकिन फिर किसी अन्य वस्तु में आग लगती है। दिन में तीन-तीन, चार-चार बार तक यह घटना हुई है और लगातार होती रही। गरीब परिवार का हजारों रुपये का सामान अग्नि की लपटों में स्वाहा हो गया। कपड़ों या लकड़ी को छोड़ भी दें, गीले कपड़ों, दीवारों, अचार और दाल-चावल के डिब्बों, अटैचियों में आग लगी थी और दो-दो, तीन-तीन फुट की लपटें तक देखी गई थीं। धीरे-धीरे परिवार के लोगों के सभी कपड़े आग में भस्म होते चले गए थे। कारण लोगों की समझ के परे था। एक विद्वान पण्डित को बुलाया गया उन्होंने भागवत का एक पन्ना पढ़ा था कि दूसरे पन्ने में देखते ही देखते आग लग गई और पूरी पोथी जल गए।

कहने की आवश्यकता नहीं, मेरे संग्रह में भूतों के इस प्रकार के उत्पातों के कई उदाहरण हैं जिन्हें पढ़कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है।

वास्तव में चमत्कारी विश्व के कई रहस्य ऐसे हैं जिन्हें ज्ञान, विज्ञान के माध्यम से भी हल नहीं किया जा सकता है।

भूत-प्रेत में ऐतिहासिक दृष्टि

इंगलैण्ड में ही जन्मे शेक्सपियर के नाटकों में आपको भूत ही भूत दिखाई देंगे। इंग्लैण्ड के एक अन्य विश्वविख्यात कवि सर वाल्टर स्काट ने तो भूतों के बारे में अपनी आपबीती भेजने को कहा तो भूत के मारे हजारों ब्रिटेन वासियों ने अपनी-अपनी आपबीती 'सर' को भेजी।

इंग्लैण्ड में जन्मी इतिहास-प्रसिद्ध 'जान ऑफ आर्क' को स्वयं उनकी आत्म-स्वीकृति के अनुसार भूतों के सन्देश प्राप्त होते थे। इंग्लैण्ड में जितने भुतहा घर हैं, उतने

अमेरिका को छोड़कर अन्य किसी देश में नहीं। जहाँ तक अमेरिका का प्रश्न है, वहाँ के लोगों को राष्ट्रपति लिंकन तथा मे वेस्ट जैसी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के सैकड़ों कलाकारों से लेकर लाखों साधारण व्यक्तियों तक, जितने अधिक भूत दिखाई देते हैं, उतने विश्व के अन्य किसी देश में नहीं दिखाई देते।

यह स्थिति है उन दोनों देशों की जिन्हें हम अत्याधुनिक, प्रगतिशील और अन्धसंस्कारों से सर्वथा मुक्त लोगों का देश मानते हैं।

बात अविश्वसनीय भले ही लगे पर सच है कि भूतों से मनुष्य का परिचय तबसे है जब उसका जन्म हुआ और ऐसी कोई प्राचीन सभ्यता नहीं जिसका सामना भूतों से न हुआ हो। भूतों को वैज्ञानिक और भोगे हुए यथार्थ की दृष्टि से देखने से पहले आइए उन्हें कुछ देर तक इतिहास की दृष्टि से देखें।

प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक भूतों में मनुष्यों का विश्वास अत्यन्त सहज और अन्तःप्रेरणात्मक रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता फ्रांसीसी लेखक जेक्यु मोनोद के अनुसार आदिमानव ने अपनी सीमित ज्ञान परिधियों में अपने परिवेश की प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या प्रेतात्माओं के सन्दर्भ में करके भूतों को जन्म दिया।

पर भूत कौन हैं? यह बात न मोनोद के कथन से स्पष्ट होती है, न शब्दकोश में भूत शब्द के इस अर्थ से--मृत्युलोक में मृत व्यक्तियों की आत्मा, प्रेत, प्रतिच्छाया। वे कौन हैं? इसका सबसे सच्चा उत्तर है। 'सूक्ष्म शरीर में स्वयं आप' और चूँकि सूक्ष्म शरीर पार्थिव शरीर की भाँति कभी नष्ट नहीं होता इसलिए 'कार्यालाक' का यह कथन सच प्रतीत होता है। अरबों भूत हो चुके हैं, अरबों है और अरबों आएँगे।

सूक्ष्म शरीर क्या है? मेरी 'मारणपात्र' पुस्तक के अनुसार आत्मा दो शरीर के भीतर वास कर रही है-एक सूक्ष्म शरीर, एक स्थूल शरीर। मृत्यु के समय स्थूल शरीर गिर जाता है, यानी आत्मा से अलग हो जाता है और अत्यन्त सूक्ष्म विचारों, सूक्ष्म संवेदनाओं, सूक्ष्म कम्पनों तथा सूक्ष्म तन्तुओं का सूक्ष्म शरीर शेष रह जाता है।

विश्व के प्राय: सभी प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों जैसे ऋग्वेद, महाभारत, बाइबिल, कुरान, अवेस्ता आदि में प्रेतात्माओं पितरों तथा जीवों के पुनर्जन्म का बार-बार उल्लेख है और आज से हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य जान चुका था, कि जीवात्मा अपने-अपने कर्मानुसार भिन्न योनियों में जन्म लेता है। ८४ लाख योनियों में भटकने की बात मात्र कल्पना नहीं है।

परलोकगत पितरों (भूतों) का श्राद्ध करने की प्रथा हजारों वर्षों से भारत के अतिरिक्त दक्षिण अमेरिका, मंगोलिया, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य एशिया में भी प्रचलित है।

कुछ वर्ष पूर्व बेबीलोन में हुए एक उत्खनन में मिट्टी के फलक प्राप्त हुए थे। उन फलकों से तत्कालीन जीवन की झाँकियाँ मिलती हैं। ऐसे बारह फलकों में एक पर भूत

कथा सुनाई गई है जिससे सिद्ध होता है कि भूतों में आदमी का विश्वास सर्वव्यापी होने के अलावा हजारों वर्ष पुराना भी है।

विज्ञान की दृष्टि में प्राणी के दो शरीर

भूतों में विश्वास करने के बाद आदमी उनसे डरने लगा। भूतों को शान्त करने की विधियों का आविष्कार कर उसने वर्णन अपने ग्रन्थों में किया। विश्व की किसी भी भाषा का शायद ही कोई क्लैसिक लेखक ऐसा मिले, जिसने अपनी रचनाओं में भूतों का उल्लेख न किया हो। विश्व की प्रत्येक भाषा की दन्तकथाओं और लोक कथाओं में भी भूत अवश्य मिलते हैं। गेटे, रास्किन, एच. जी. वेल्स आदि विश्वविख्यात लेखकों ने भी अपने पाठकों को भूतों की कहानियाँ सुनाई हैं।

भूतों से रक्षा करने की विधि ऋग्वेद और आयुर्वेद से लेकर बाइबिल तक में पढ़ने को मिलती हैं। प्राचीन यूरोप में ऐसा विश्वास था कि भूत, भविष्य दर्शन भी कर सकते हैं। कैसी विडम्बना है। वर्तमान वासी भूत द्वारा भविष्य को देख रहा है।

सोवियत संघ के एक इलेक्ट्रानिक विशेषज्ञ वैज्ञानिक सेमयोन किर्लियान ने फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार कर सजीव अंगियों, प्राणियों, पौधों के सान्निध्य में होने वाले सूक्ष्म विद्युत सम्बन्धी कार्यकलापों का सफल छायाँकन किया है जो इस बात की पुष्टि करता है कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं पहला भौतिक शरीर, जो आँखों से दिखाई देता है और दूसरा सूक्ष्म शरीर, जिसकी सारी विशेषताएँ प्राकृतिक शरीर जैसी ही होती हैं पर जो आँखों से दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिकों के अनुसार सूक्ष्म शरीर अस्थाई तौर पर भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हम भूत बनकर कहीं भी विचरण कर सकते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि भूतों के बारे में जिन नई-नई बातों का पता आज वैज्ञानिकों और भूत-विशेषज्ञों को नए सिरे से लग रहा है, वे सब हमारे पूर्वजों को ज्ञात थीं। इतना ही नहीं, उन्होंने अलग-अलग देशों के भूतों का अलग-अलग विशद् अध्ययन किया था।

प्राचीन बेबीलोन और मिस्र में भूतों को नक्षत्रों के धृष्टतापूर्ण विपरीत अंश माना जाता था और यह भी माना जाता था कि वे अदृश्य होते हैं और सदा आदमी को खाने को तैयार रहते हैं। पाँचवी सदी में यूरोप में भूतों को अग्नि, वायु, जल, भूमि और भूमिगत रहने वाले इन पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया। ग्यारहवीं सदी में छठीं श्रेणी भी बनी--अँधेरे में रहने वाले भूतों की। सन् १०० से सन् ४०० के बीच लिखे 'टेस्टामेण्ट आफ सोलोमन' में भारत, यूनान, मिस्र, ईरान, सीरिया, बेबीलोन आदि के भूतों की विशेषताओं का वर्णन है।

यूरोप में आगे चलकर भूतों का जो और वर्गीकरण हुआ उसके अनुसार लूसीफर, बील्जेबब आदि भूतों को सर्वाधिक दुष्ट और नारकीय माना गया। यहूदी लोग भी आरम्भ से ही भूतों में विश्वास करते आए हैं और बील्जेबब नामक भूत को उनका राजकुमार

मानते थे। प्राचीन रोमवासी प्लूटो तथा प्राचीन ग्रीसवासी यूनीमाउस नामक भूत को भूत प्रमुख मानते थे। प्राचीन अफ्रीका में मान्यता थी कि ईश्वर के रोष ने भूतों को जन्म दिया। अन्य देशों में साधारण मान्यता यही थी कि भूतों का जन्म ब्रह्माण्ड की रचना के समय बचे मैल से हुआ।

यूरोप के प्राय: हर किले के साथ एकाधिक भूत की कहानी जुड़ी है। स्काटलैण्ड के राजा जेम्स चतुर्थ को युद्धभूमि में सिर्फ इसलिए पराजय का मुँह देखना पड़ा कि उसने एक भूत की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया था। भूतों को कभी-कभी लेखक बनने का शौक भी सवार हो जाता है।

भूतों का लेखन कार्य

चूँकि भूत स्वयं नहीं लिख सकते इसलिए औरों से लिखवाते हैं। 'भूत लेखन' शब्द की कल्पना शायद भूतों के लेखन के उदाहरणों को देखकर ही किसी ने की होगी। टेल्का नामक ऐतिहासिक उपन्यास अंग्रेजी के कथा-साहित्य की अनुपम कृति के रूप में विख्यात है।

उसकी लेखिका श्रीमती जान कूरन अमेरिका में रहती थीं फिर भी उन्होंने अपने इस तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में मध्यकालीन ब्रिटेन के राज्य वंशों की गुप्त बातों तथा तत्कालीन सामाजिक स्थिति का ऐसा सजीव और यथार्थवादी वर्णन किया कि आलोचक उन्हें पढ़कर दंग रह गए। पूछने पर श्रीमती कूरन ने बतयाला कि मेरे सब उपन्यास एक भूत के निर्देशानुसार लिखे गए हैं। एक बार वार्तालाप के प्रसंग में डाक्टर गोपीनाथ कविराज जी ने मुझे बतलाया था कि माँ आनन्दमयी किसी अशरीरी प्राणी की प्रेरणा से अरबी तथा अन्य भाषाओं में लिखे गए ग्रन्थों के उद्धरण श्रोताओं को सुनाया करती थीं। वे स्वयं उन भाषाओं से अपरिचित थीं।

अमेरिका की श्रीमती रूथ माण्टगुमरीने स्वर्गीय आर्थर फोर्ड के भूत द्वारा बोली गयी एक पुस्तक 'द वर्ल्ड बियोंड' लिखी है। चार्ल्स डिकेन्स के भूत ने डिकेन्स की मृत्यु के दो वर्ष बाद थामस जेम्स को अपने अधूरे उपन्यास 'मिस्ट्री आफ एडविन ड्रूड' के अन्तिम अध्याय लिखवाए थे। उपन्यास के प्रथम बीस अध्याय वे जीवितावस्था में लिख चुके थे। ऐसे दर्जनों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

स्वर्गीय दीवान बहादुर काजी ने 'मृत्यु से जीवन का हाल' नाम की एक संस्मरणात्मक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने लिखा है कि एक बार उन्हें भूत जगत से शरलाक होम्स नामक कल्पित जासूस के सर्जक सर आर्थर कानन डायल का एक सन्देश मिला था कि वह तथा भूत-जगत में रहने वाले अन्य भूत अपनी दुनिया के अनुभव पृथ्वी के कुछ ऐसे लोगों को सुनाना चाहते हैं, जिनका भूतों में विश्वास हो और चूँकि दीवान साहब ऐसे व्यक्ति हैं, इसलिए वे उनके पास आए हैं। काजी साहब के उन अनुभवों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रस्तुत पाकर उन्होंने अपने तथा अपने साथियों के अनुभव सुनाए। सारी

पुस्तक इन्हीं अनुभवों पर आधारित है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात भूतों तथा परलोकगत लोगों के प्रति ब्रिटेन में काफी रुचि ली जाने लगी थी। सर आर्थर कानन डायल ने स्वयं कुछ परलोकगत ब्रितानियों से सम्पर्क स्थापित कर उनके परलोक के अनुभव पाठकों को सुनवाए। द्वितीय महायुद्ध के बाद भूतों में लोगों की दिलचस्पी पहले से अधिक बढ़ जाती है। आर्थर कानन डायल के पुत्र डेनिस कानन डायल ने ब्रिटेन के साधारण व्यक्तियों के प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित भूत-कथाएँ प्रकाशित करवाई।

प्रश्न उठता है कि कानन डायल ने भूतों-प्रेतात्माओं से किस प्रकार सम्पर्क स्थापित किया था, इसके प्रति या तो 'प्लानचेट' का प्रयोग किया जाता है या मीडियमों का। मीडियम ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपनी असाधारण संवेदनशीलता के कारण पृथ्वी के लोगों और गतात्माओं के बीच सेतु बन जाते हैं। वे भूतों के सन्देश पृथ्वीवासियों तक और पृथ्वीवासियों के सन्देश भूतों तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

इस सदी के आरम्भ में हालैण्ड के दो डाक्टरों ने 'द डायना मिस्टोग्राफ' नामक एक यन्त्र का आविष्कार किया था जो बिना किसी मीडियम या प्लानचेट की सहायता के सीधे पृथ्वीवासियों का सम्पर्क भूतों से करा सकता है। इतना ही नहीं, वह भूतों की बातों की व्याख्या भी करता है और पृथ्वीवासियों की बातों को उन्हें समझाता है।

इससे पहले कि आप मन में यह धारणा पाल लें कि प्रेतात्माओं से सम्पर्क करने वाले मीडियम धोखेबाज होते है, यह बताना आवश्यक है कि अनेक प्रतिष्ठित भारतीय और विदेशी सफल मीडियम की भूमिका अदा कर चुके हैं और कर रहे हैं। कोयम्बटूर की 'द स्प्रिचुअल हीलिंग सेन्टर' के संस्थापक ऋषिराम प्रायः कहा करते थे कि हजारों वर्ष पूर्व मैं सम्राट अशोक का राजवैद्य था। अपने जीवन में उन्होंने अनेक प्रेतात्माओं से सम्पर्क किया था और अपनी मृत्यु के बाद अपनी जीवनी लिखी थी जो आज भी उपलब्ध है।

परलोक विद्या केन्द्र

अठारहवीं सदी के मध्य में पश्चिम में एमेनुअल स्वेडेन बोर्ग नाम एक प्रकाण्ड पण्डित हुए थे जो बीजगणित, खगोल विद्या, शरीरशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा अन्य विषयों में पारंगत थे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उनकी रुचि परलोक विद्या में भी हो गई। शीघ्र ही वे इस विद्या में भी पारंगत हो गए, एक बार उनके देश स्वीडेन में स्थित हालैण्ड के भूतपूर्व राजदूत की विधवा पत्नी ने उनसे प्रार्थना की कि वे उनके मृत पति की आत्मा से सम्पर्क करके इतना जानने का कष्ट करें कि उन्होंने एक विशेष रसीद कहाँ रखी थी।

स्वेडेन बोर्ग ने भूतपूर्व राजदूत की आत्मा से सम्पर्क स्थापित कर उस रसीद के बारे में जानना चाहा। आत्मा ने बतलाया कि रसीद उनके डेस्क की एक गुप्त ड्रावर में रखी है। रसीद खोजने पर वहीं मिली।

बीसवीं सदी की सर्वाधिक ख्यातनामा मीडियम हैं श्रीमती रूथ, जिन्होंने अमेरिका के दो राष्ट्रपतियों रूजवेल्ट और कैनेडी के अन्त की भविष्यवाणी भूत जगत से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर बहुत पहले ही कर दी थी। किस प्रकार उन्होंने एक भूतपूर्व मीडियम के भूत से सुनकर एक पुस्तक लिखी, यह हम पीछे बतला आए हैं।

आधुनिक परलोकवाद का जन्म उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमेरिका में हुआ था। आज विश्व के सैकड़ों केन्द्रों में परलोक विद्या का अध्ययन होता है। और परलोकगत प्रेतात्माओं से सम्पर्क किया जाता है। इनमें सर्वाधिक विख्यात और विशाल केन्द्र है अमेरिका परलोक समिति का लिलिडेल स्थित केन्द्र। यहाँ एक विशेष विधि से प्रेतात्माओं के छायाचित्र भी खींचे जाते हैं। भूतों के छायाचित्र भी खींचे जा सकते हैं, इसके सबसे बड़े साक्षी हैं विश्वविख्यात् वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स, इनको प्रेत जगत से अपनी मृत पत्नी के छायाचित्र प्राप्त हुए थे। इलाहाबाद से प्रकाशित एक हिन्दी साप्ताहिक में वर्षों पूर्व भूतों द्वारा प्राप्त पत्र और चित्र प्रकाशित हुए थे।

सन् १६३४ में सर आलीवर लाज ने भूतों-प्रेतों तथा अन्य अलौकिक रहस्यों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ वैज्ञानिकों की सहायता से वैज्ञानिक शोधकार्य आरम्भ किया।

सर लाज की अपील पर ब्रिटेन के १३०० प्रतिष्ठित नागरिकों ने भूतों सम्बन्धी अपने अनुभव उन्हें भेजे। इनमें से पचास को चुनकर पुस्तकाकार प्रकाशित कराया गया। पुस्तक की भूमिका ईसाई धर्म के एक जगद्‌गुरु सेण्ट पाल्स कैथड्रल के डीन ने लिखी थी।

ईसाइयों के 'नियमवाद' के संस्थापक जान वेस्ले का 'भूत आश्रम स्थल' भूतों का सर्वाधिक विख्यात और चर्चित भूत आश्रम स्थल है जहाँ संसारभर के नटखट, शान्त, रंगीले, कमीने, कलाकार और प्रेमी भूत रहते हैं। अमेरिका के अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक 'साइकिकल रिचर्स फाउण्डेशन' के तत्वावधान में भूतों के वैज्ञानिक अध्ययन में व्यस्त हैं। भूतों और उनकी आदतों का इतना विस्तृत और गहरा अध्ययन पहली बार हो रहा है। यह दल जिन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास कर रहा है, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न ये हैं, क्या भूत सचमूच होते हैं? उनका आकार और रूप? वे कहाँ रहते हैं? क्या वे हमारी-आपकी भावनाओं से प्रभावित होते हैं? वे ज्यादातर अच्छे काम करते हैं या बुरे? आत्मा और प्रेतात्मा में क्या कोई अन्तर है?

भूत-प्रेत वैज्ञानिक प्रयोगशाला में

इस दल की परेशानी यह है कि उन्हें भूतों का सहयोग इच्छानुसार प्राप्त नहीं होता। वैसे दल के सदस्यों ने भूतों पर वैज्ञानिक दृष्टिपात करके अनेक प्रश्नों के उत्तर जान लिए हैं।

भूतों के बारे में शोध करने वाले भौतिक शास्त्रियों, वैज्ञानिकों और परामनोवैज्ञानिकों, सबका यह मत है कि वे प्रभावित व्यक्ति के मन में ही जन्म लेते हैं और उनके सारे कार्यकलाप उस व्यक्ति की भावनाओं के अनुसार ही होते हैं। बाह्य जगत की किसी घटना के फलस्वरूप न भूतों का जन्म होता है और न ही वे उससे प्रभावित होते हैं।

भूत कहाँ रहते हैं? इस बारे में शोध करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि वे अधिकांश उस व्यक्ति के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं जिसके कारण उस भूत का जन्म होता है पर हताश और निराश लोगों के भूत प्राय: खण्डहरों, पुराने मकानों, मरघटों, कब्रिस्तानों और उजाड़ स्थानों में रहना पसन्द करते हैं। जहाँ तक भूतों के आकार और रूप का प्रश्न है चूँकि वे सूक्ष्म शरीरधारी होते हैं, इसलिए उनका आकार और रूप उन व्यक्तियों के भौतिक शरीर के ही अनुरूप होता है जिनके भूत होते हैं। इन व्यक्तियों की भावनाओं के अनुसार वे अच्छे-बुरे कार्य करते हैं। भूत आत्मा नहीं है। हो भी नहीं सकते। आत्मा अमर है और वह अस्थायी रूप से भौतिक शरीर में वास करती है। भौतिक शरीर की समाप्ति पर वह सूक्ष्म शरीर में निवास करती है। ये दोनों प्रकार के शरीर आत्मा के लिए एक प्रकार से घर हैं। वैज्ञानिक यह मानते हैं कि मानव एक विद्युगद्वैगिक प्राणी है और सदा अदृश्य ऊर्जाओं के सागर में तैरता रहता है। प्रत्येक मानव अपने विचारों के अनुसार अपनी इन्द्रयों द्वारा इन ऊर्जाओं को ग्रहण करता है और उनमें इच्छानुसार परिवर्तन करके बाह्य जगत पर उनका प्रक्षेपण करता रहता है। भूतों का जन्म ऐसे ही प्रक्षेपणों के अनुसार होता है। वैज्ञानिक इस चौंका देने वाले निष्कर्ष पर भी पहुँचे हैं कि इस प्रकार के प्रक्षेपणों के दौरान 'भूत शापित' व्यक्ति के शरीर से जो अदृश्य ऊर्जा विसर्जित होती है, वह परमाणवीय विस्फोट से विसर्जित ऊर्जा के समान प्रचण्ड और विनाशकारी होती है। शायद यही कारण है कि अधिकांश भूत विनाशकारी कार्यों में ही रुचि रखते हैं। इस दल के एक वैज्ञानिक का कहना है कि भूतों के प्रत्येक कौतुक के पीछे एक और शक्ति भी है, जो येतोपशीय केन्द्रों की कोशिकाओं से प्राप्त होकर शरीर के ताप को विद्युत शक्ति में परिवर्तित कर देती हैं। जब इस मानसिक शक्ति के सहारे बाह्य जगत पर कोई प्रक्षेपण किया जाता है तो मस्तिष्क इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटिंग यन्त्र के समान सक्रिय हो जाता है।

सन् १९४४ में विश्वविख्यात अमेरिकी भौतिक शास्त्री जार्ज गैमो ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था जिसके अनुसार यह सम्भव है कि परमाणुओं के कोई वर्ग के समाधान के अन्तर्वर्तित प्रतिरूप धारण करने पर सारी शक्ति एक ही स्थल पर केन्द्रित हो जाए। ऐसी स्थिति में जो कौतुक होंगे, जैसे कमरे में रखी अँगीठी के कोयले अपने आप जलने लगे, गिलास में रखा पानी अपने आप उबलने लगे या कोई विस्फोट सहसा हो जाए। वे भूतों के कौतुक जैसे ही होंगे, मात्र संयोग से परमाणुओं की ऐसी सक्रियता की सम्भावना बहुत कम है। पर इरादी कोशिशों से ऐसा कभी भी किया जा सकता है। भूतों के कारण हुई अलौकिक और असामान्य घटनाएँ चंचल मन के व्यक्ति की ऐसी ही इरादी कोशिशों के परिणामस्वरूप होती हैं।

मनुष्य का अवचेतन मन सम्मोहन के प्रभाव में स्वयं उसे ही (अर्थात् उसके चेतन मनको) किस प्रकार चकमा दे सकता है, इसका एक उदाहरण कुछ समय पहले सामने आया था।

स्वीडेन की एक महिला को सम्मोहन में यह सुझाव दिया गया कि उसे रोज समय पर अपने कमरे के दरवाजे पर खटखटाहट सुनाई देगी जो करीब एक मिनट तक चलेगी। इस सुझाव के बाद उस महिला को रोज उसी समय अपने दरवाजे पर खटखटाहट सुनाई देने लगी, एक मिनट तक। जब दूसरे लोग, जिन्हें यह खटखटाहट नहीं सुनाई देती थी, उससे पूछते थे तो वह महिला दृढ़तापूर्वक कहती थी कि उसे खटखटाहट स्पष्ट सुनाई देती है। अब ये लोग अगर उस महिला को भूतों के वश में मान लें तो क्या आश्चर्य!

भूतों का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि जब तक मनुष्य को मात्र एक रासायनिक यन्त्र समझा जाता रहेगा, तब तक भूत क्या किसी भी पारलौकिक रहस्य को नहीं समझा जा सकता। हाँ, यदि मान लिया जाए (और यह एक वैज्ञानिक तथ्य को ही मान्यता देने के बराबर होगा) कि मनुष्य एक विद्युद्वैगिक प्राणी भी है तो इन रहस्यों को, विशेष कर भूतों के रहस्य को, समझने में काफी आसानी हो सकती है। जीवन के विद्युद्वैगिक सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मानव अदृश्य शक्तियों के सागर में तैरता रहता है और उसकी इन्द्रियाँ उन शक्तियों को ग्रहण करके और इनमें आवश्यक परिवर्तन करके उनका प्रक्षेपण करती रहती हैं।

विद्युत शक्ति ऐसी भौतिक शक्ति है जो सर्वत्र उपलब्ध है और उसकी प्रकटता, प्रकाश, माप, गति तथा रासायनिक पुनर्मिश्रण आदि रूपों में होती है। पर अभीतक वैज्ञानिकों को ज्ञात न हो सका कि उसका आदिस्रोत और आदिस्वरूप क्या है? वे केवल इतना जानते है कि कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें विद्युत शक्तिका अल्पांश मौजूद न हो। आधुनिक इलेक्ट्रान सिद्धान्त भी इस बात की पुष्टि करता है।

जिसे भूत-लीला की संज्ञा दी जाती है, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या इस प्रकार है-- जब चित्त यानी मन को एकाधिक स्थानों पर एकाग्र किया जाता है तो देह से एक अदृश्य शक्ति विसर्जित होती है, जो आणविक प्रस्फोट से विसर्जित शक्ति के समान होती है।

वैज्ञानिक अब यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि इस अदृश्य शक्ति का उद्गम और स्वरूप क्या है? कुछ भौतिकशास्त्रियों का अनुमान है कि देह-ताप जब गतिमूलक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब इस अदृश्य शक्ति का जन्म होता है। भूतों से सम्पर्क का दावा करनेवाले माध्यमों के शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है। पर भूत-बाधित लोगों के साथ हमेशा ऐसा नहीं होता।

भूतों के बारे में जिन मनोवैज्ञानिकों ने शोधकार्य किया है, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उनका जन्म मनुष्य के अर्न्तजगत में ही होता है बाह्य जगत के कारण नहीं। भूतों

के बारे में शोध करनेवाले भौतिकशास्त्री भी ऐसा ही मानते हैं। उनका कहना है कि यदि कोई बाहरी कारण होता तो भूत-लीला से प्रभावित व्यक्ति के शरीर का तापमान कम न होता, हर प्रकार की भूत लीला पीछे सक्रिय शक्ति वास्तव में वह शक्ति है जो चेतापेशीय (न्यूरो मस्कूलर) केन्द्र कोशिकाओं से प्राप्त करते हैं। किसी अज्ञात विधि से शरीर की गर्मी विद्युत शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यही शक्ति अन्तिम लक्ष्यपर परमाणुओं के सतत प्रवाह के रूप में प्रक्षेपित की जाती है।

ऊपर से देखने पर यह शक्ति सतत धारा के रूप में प्रवाहित लगती है, पर वैज्ञानिक प्रयोगों से पता चला है का इस शक्ति का प्रवाह विद्युत की चरम सीमा से फूटनेवाली विद्युत चिनगारियों के समान अनियन्त्रित होता है। वोल्टेज और एम्पियरेज अलग-अलग चीजें हैं। यदि एम्पियर अपेक्षाकृत कम हो तो कोई भी वस्तु कितना भी वोल्टेज सहन कर सकती है। विद्युत शक्ति के शरीर से युक्त होते ही या उसके लक्ष्य से सम्पर्क करते ही एम्पियरेज काफी तेजी से बढ़ जाता है।

इस बात का प्रमाण तभी देखने को मिलता है जब यह शक्ति किसी स्थान विशेष पर केन्द्रित होकर अत्यन्त तीव्र और मुखर हो जाती है। आग लगने पर ऊँचे वोल्टेज के दर्शन होते हैं पर न जलने वाले पदार्थ पर कम एम्पियरेज रहता है। एम्पियरेज बढ़ने पर वह पदार्थ जलने लगता है और उसमें से लपटें निकलने लगती हैं। जब मानसिक शक्ति के बल पर छोटी-छोटी वस्तुओं को स्थानान्तरित किया जाता है तो परमाणुओं की हलचल के कारण ये वस्तुएँ गर्म हो जाती हैं।

मस्तिष्क एक जटिल संयन्त्र

ऐसी हालत में मस्तिष्क में जो हलचल होती है वह इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटिंग मशीन की क्रियाशीलता से काफी मिलती है। मुझको ऐसे अशिक्षित, मूर्ख और मानसिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों का पता है जो वेदमन्त्रों का सस्वर उच्चारण करते हैं, अध्यात्म के कठिन प्रश्नों का उत्तर देते हैं और गणित के भी जटिल से जटिल प्रश्नों का तत्काल उत्तर देते हैं।

पिछले ६०-७० वर्षों से मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दोनों मस्तिष्क रहस्यों को जानने-समझने का अथक प्रयास कर रहे हैं। अमेरिका की ब्रेन रिसर्च इन्स्टीट्यूट की स्पेस बायलोजीकल लेबोरेटरी में डाक्टर डब्ल्यूरांस आदि ने अपने सहयोगियों की सहायता से आश्चर्यजनक प्रयोग किए थे। डाक्टर आदि ने अपने प्रयोगों के लिए एक विशाल कम्प्यूटर से मस्तिष्क की कोशिकाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया तो पाया कि ये कोशिकाएँ नाचती-थिरकती और बराबर स्फुरण करती रहती हैं और गतिशून्य नहीं हैं, जैसा कि पहले समझा जाता था। इससे डाक्टर आदि और उनके सहयोगियों को यह विश्वास हो चला है कि मस्तिष्क की संवेदनशीलता, कार्य-क्षमता और बाह्य वस्तुओं और व्यक्तियों को प्रभावित करने की शक्ति असीम है और प्रत्येक मस्तिष्क असीमित

सम्भावनाओं का केन्द्र है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि मस्तिष्क सर्व विद्यमान और अपनी पेंचीदा प्रणाली से सब कल्पनीय और अकल्पनीय कार्य करने में सक्षम है। डाक्टर आदि के अनुसार मस्तिष्क किसी भी इच्छित वस्तु या व्यक्ति के परमाणुओं की व्यवस्था को अनियमित कर सकता है, निहित विद्युत शक्ति को उस वस्तु या व्यक्ति पर केन्द्रित करके। जब-जब ऐसा होता है तब-तब वह वस्तु या व्यक्ति काफी गर्म हो जाता है। शक्ति का केन्द्रीकरण अधिक होता है तो वह वस्तु या व्यक्ति जलने लगते हैं या अजीब तरीके से पेश आने लगते हैं।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक ए. आर. पी. ओवन भी मस्तिष्क की रहस्यमयी शक्तियों के बारे में काफी दिनों से वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मस्तिष्क की नाचती-थिरकती कोशिकाओं में जो विद्युत शक्ति छिपकर अपना काम करती है, वह अपने लक्ष्य को गर्म करने के अलावा उससे अजीब आवाजें भी पैदा करा सकती है। उसे गतिशील कर सकती है और उससे अजीब-अजीब हरकतें भी करा सकती है। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस लक्ष्य के परमाणुओं को इस शक्ति ने किस सीमा तक प्रभावित किया है।

इस क्षेत्र में शोधरत वैज्ञानिकों का कहना है कि अभी इस दिशा में काफी प्रयोग करने बाँकी हैं पर अभी तक जो प्रयोग किए गए हैं, उनके परिणामों से स्पष्ट है कि जिसे भूत-लीला की संज्ञा दी जाती है, वह मस्तिष्क की कोशिकाओं में निहित विद्युत शक्ति के कौतुक ही हैं और यह भी कि इस विद्युत का बाह्य वस्तुओं या व्यक्तियों पर इच्छानुसार प्रक्षेपण करके ऐसे कौतुकों को जन्म दिया जा सकता है।

इस प्रसंग के अंत में यह भी बतला देना आवश्यक है कि विभिन्न धर्मों की दृष्टि में भूत-प्रेत क्या हैं? सबसे पहले हिन्दू धर्म को ही लीजिए। इस परम धर्म का आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि जीवात्मा का कभी पतन या विनाश नहीं होता। वह कभी समीप और कभी दूर नाना मार्गों यानी नाना योनियों में भ्रमण करता रहता है और कभी नीच योनियों में पृथक्-पृथक् (एक दो अल्प गुण) पहनता (धारण करता) है। इस प्रकार वह बार-बार संसार में आता है। एक अन्य मन्त्र में ऋषि कहते हैं श्मशान घाट के पिशाचादि को यहाँ से दूर हटो जाओ।

वेद के बाद कुरान है। कुरआने-मजीद में जिन्नों यानी भूत-प्रतों की उत्पत्ति आग से मानी गई है। 'वलजिन्न खलकनाहु मिन कवलु मिन मारस्म मूमे' (कुरआने मजीद सूरते हजर, आयत २५)। (और जिन्नों को उत्पन्न किया, हमने उनसे पहले गए लूसे आग ली) 'सूरते आराफ' में उसे नीच कहा गया है-फलरुज इन्नाकय मिनस सागीरीन' (पास निकल तू निश्चय ही तू नीचों में से है)।

कुरान के बाद बाइबिल है। बाइबिल में भूतों-प्रेतों से रक्षा करने के लिए जिन पंक्तियों का पाठ करने को कहा गया है वे ९१ वें पसलम में कही गई हैं। उसमें वालम

नामक भूत का भी उल्लेख है। कैथालिक विश्वकोश के अनुसार भूत न होते तो भूत सिद्धि नाम विद्या का जन्म और विकास कैसे होता?

ईरानियों और पारसियों की धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता' में कहा गया है कि भूत-प्रेत यमपुरी में रहते हैं। यहूदी धर्म के अनुसार मेमन नामक भूत धन लोलुपता का प्रतीक माना जाता है। यूनान के प्राचीन धर्म में 'यूरोनिमाउस' को भूतों का प्रमुख माना गया है। उसे मूर्तियों और कलाकृतियों में गीध की त्वचापर शवों का मांस चबाते हुए दिखाया गया है खैर।

भारत में कर्म के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार, परलोक आदि काल से मान्यता प्राप्त है। इसी से पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी प्रमाणित होता है। परलोकों में आत्माओं के अस्तित्व की मान्यता के अनुसार ही हिन्दू धर्म में पितरों को लेकर विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों का विधान है। श्राद्धविधि के पीछे भी यही विश्वास रहा है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य के जीवन और उसकी आत्मा का अस्तित्व रहता है।

हम इसी अपने लौकिक जगत को ही अथाह रहस्यों से भरा हुआ पाते हैं, फिर अदृश्य, अगोचर और अलौकिक जगत यानी परलोकों और अतीन्द्रिय जगत के अनन्त रहस्यों की तो कल्पना मात्र से ही मस्तिष्क चकरा जाता है। यह मनुष्य की अन्तहीन जिज्ञासा ही है, जो निरन्तर रहस्य भेदने के लिए संघर्षरत है। वास्तव में परलोक विज्ञान के विषय अत्यन्त विस्तृत और साथ ही अत्यन्त रहस्यमय हैं। परलोक विज्ञान और उनसे सम्बन्धित सभी रहस्यमय विषयों का चिन्तन-मनन और अध्ययन तो किया ही, इनके अतिरिक्त विशेष साधन बलपर विभिन्न स्तर और विभिन्न प्रकार की परलोकगत आत्माओं से सम्पर्क स्थापित कर अगम्य-अगोचर पारलौकिक जगत का अनुभव भी प्राप्त किया, जो अपने आप में रोमांचकारी और अविश्वसनीय है। फिर भी परलोक विज्ञान के गूढ़ रहस्यों का भेदन बस एक विशेष सीमातक ही कर सका मैं! खैर, यह कहना अनुचित न होगा कि तिमिराच्छन्न परलोक विज्ञान और उसके रहस्यमय विषयों से सम्बन्धित पुस्तकों का सर्वथा अभाव है इस समय। यदि कभी कहीं इस विषय की सामग्री पढ़ने को प्राप्त होती भी है तो अंग्रेजी भाषा में जिसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि परलोक विज्ञान पर जितना पश्चिम देश के विद्वानों ने खोज और शोधकार्य किया, उतना अपने देश के विद्वानों ने नहीं! जबकि यह अपने देश की मूल विद्या है। इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा। लेकिन यह निश्चित है कि निकट भविष्य में जब भी 'परलोक विज्ञान' पुस्तक रूप में प्रकाशित होगा, इस अभाव की पूर्ति अवश्य हो जाएगी, इसमें सन्देह नहीं।

●

कर्णिका–६

क्या वह प्रेत लीला थी?

मानव-मन कितना अद्‌भुत है और कितना है रहस्यमय? असीम गति, असीम दिशा और असीम रूप। विश्व का कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ उसकी पहुँच न हो और ऐसा कोई विषय नहीं जो परिधि में न आता हो और न कोई ऐसा समय ही है जो उसकी गति से परे हो।

मानव-मन की इन समस्त भूमिकाओं को 'मनोविज्ञान' की संज्ञा दी गई है। मनोविज्ञान के तीन मुख्य रूप हैं–स्वाभाविक, अस्वाभाविक और परा-स्वाभाविक।

इनमें से प्रथम दो रूपों को वैज्ञानिक अध्ययन स्थान प्राप्त हो चुका है। किन्तु 'परा-स्वाभाविक रूप' अपने मूल रूप में अभी तक वैज्ञानिकों के लिए माथापच्ची का विषय बना हुआ है। और यही है परा-स्वाभाविक रूप का विषय, वास्तव में मनोविज्ञान की सीमा जहाँ अस्पष्ट होती है, वहीं से परा-मनोविज्ञान प्रारम्भ होता है।

परा-मनोविज्ञान को वैज्ञानिक मान्यता प्राप्त होने की अपनी एक अलग कथा है। पिछले तीन दशकों में अन्तरिक्ष यात्राओं की काफी धूम रही। यह सत्य है कि मनुष्य के चन्द्रमा पर पैर रखने से अनेक प्राचीन मान्याताओं पर कुठाराघात हुआ है लेकिन साथ ही सत्य यह भी है कि कुछ प्राचीन मान्यताएँ पुष्ट भी हुई हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं, इस समय विश्व के सभी प्रमुख देशों में परा-मनोविज्ञान पर जोर-शोर से अनुसन्धान कार्य हो रहा है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, वह प्राचीन काल से इस पर विश्वास रखता आया है। इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भारतीय गुह्य साधना की मूल भित्ति तीन महाविद्याएँ हैं। परा-परा विद्या, परा विद्या और परमा विद्या। इन तीनों विद्याओं के क्रमशः तीन विज्ञान हैं––परलोक विज्ञान, योग विज्ञान और तन्त्र विज्ञान।

परलोक विज्ञान के दो मुख्य विषय हैं––मनस्तत्व से सम्बन्धित विषय और आत्मतत्व से सम्बन्धित विषय। इन दोनों विषयों का जो विज्ञान है, वह है 'परा-मनोविज्ञान।' जैसे मनोविज्ञान मन के चेतन रूप से सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार 'परा-मनोविज्ञान' मन के अचेतन रूप से सम्बन्धित है।

परा-मनोविज्ञान के तीन मुख्य विषय हैं--(१) इन्द्रियातीत अनुभव (२) मानसिक शक्ति का बाह्य प्रकाश (३) देहातीत यानी देहहीन व्यक्तित्व। परा-मनोविज्ञान की भाषा में इन तीनों को कहते हैं--एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन, साइको काइनोसिस और इन्कोरपोरल पर्सनल एजेन्सी।

देहहीन व्यक्तित्व से मतलब है स्थूल शरीर रहित व्यक्तित्व। यह व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है--वासना शरीर यानी प्रेत शरीर से सम्बन्धित और सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित। मृत्यु के समय मनुष्य स्थूल शरीर का त्याग कर सर्वप्रथम जिस व्यक्तित्व को स्वीकार करता है वह है वासना शरीर से सम्बन्धित व्यक्तित्व। वासना का वेग समाप्त होने पर मनुष्य उसका भी स्थूल शरीर की तरह त्याग कर सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित व्यक्तित्व को स्वीकार कर लेता है। जैसे अन्न तत्व से स्थूल शरीर का निर्माण होता है, उस प्रकार वासना तत्व से वासना शरीर का और प्राण तत्व से सूक्ष्म शरीर की रचना होती है। इसीलिए सूक्ष्म शरीर को प्राणमय शरीर भी कहा जाता है। कुछ काल तक सूक्ष्म शरीर में निवास करने के बाद मनुष्य पुनः पार्थिव शरीर को ग्रहण कर लेता है। इससे स्पष्ट है कि मृत्यु भौतिक शरीर यानी पार्थिव शरीर की ही नहीं होती, वासना शरीर और सूक्ष्म शरीर की भी होती है। मनुष्य एक शरीर को छोड़ता है तो दूसरा शरीर स्वीकार कर लेता है और इसी प्रकार दूसरा शरीर छोड़ता है तो तीसरे शरीर को ग्रहण कर लेता है। इसी को भवचक्र की संज्ञा दी गई है। जब तक मुक्ति नहीं हो जाती, तब तक आत्मा इसी भवचक्र में बराबर घूमती रहती है।

स्थूल शरीर, वासना शरीर और सूक्ष्म शरीर, इन तीनों शरीर में 'सूक्ष्म शरीर' मुख्य है। इसलिए कि इसी शरीर के आधार पर अथवा उसके कारण मनुष्य स्थूल शरीर को उपलब्ध होता है। पुनर्जन्म का वही एकमात्र कारण है।

यह बतला देना आवश्यक है कि पार्थिव शरीर में इच्छा, वासना शरीर में भाव अथवा भावना और सूक्ष्म शरीर में विचार की प्रधानता होती है। विचार की अपनी स्वशक्ति है जिसके फलस्वरूप सूक्ष्म शरीरधारी आत्मा में अन्तर्चेतना अत्यधिक प्रबल होती है।

चेतना के दो रूप हैं--पहले को बहिर्चेतना कहते हैं और दूसरे को कहते हैं अन्तर्चेतना। पार्थिव जीवन में पहली चेतना काम करती है जबकि अपार्थिव जीवन में काम करती है अन्तर्चेतना। अपनी अन्तर्चेतना के बल पर सूक्ष्म शरीर धारी आत्मा कभी-कभी अपनी किसी विशिष्ट कामना, किसी प्रबल इच्छा अथवा किसी प्रबल वासना की पूर्ति के लिए अपने पूर्व-पार्थिव शरीर की रचना कर लिया करती है। मगर वह शरीर अधिक समय तक नहीं ठहरता। अन्तर्चेतना की शक्ति जब तक सक्रिय रहती है, तभी तक वह शरीर ठहरा रहता है। सक्रियता समाप्त होते ही वह भी लुप्त हो जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं, प्रस्तुत कथा, जिसे मैं लिपिबद्ध कर आपको सुनाने जा रहा हूँ, वह एक ऐसी सूक्ष्म शरीर धारी आत्मा से सम्बन्धित है जिसने अपनी कामना की पूर्ति के लिए मेरे सम्मुख अपने पूर्व पार्थिव शरीर की रचना की थी।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि जीवन का जैसा प्रारम्भ होता है वैसा उसका अन्त नहीं होता। अन्त हमेशा अनिर्णीत है।

और लोगों की तरह मैंने भी अपने जीवन के प्रारम्भ में न जाने कितनी कल्पनाएँ की थीं और न जाने कितने रंगीन सपने देखे थे। और उस समय मैंने जिसको लेकर इतनी कल्पनाएँ की थीं और इतने सपने देखे थे, वह थी मेरी सहपाठिनी पुष्पा।

मझोला कद, गोरा रंग, सुनहले घने बाल, झील जैसी गहरी नीली आँखें और गुलाब के फूल जैसे रक्ताभ होंठ। जो कोई भी देखता तो देखता ही रह जाता पुष्पा को।

पुष्पा एम. ए. की छात्रा थी। हम दोनों में कब परिचय हुआ और वह परिचय कब किस क्षण प्रेम में बदल गया यह तो ठीक-ठीक बतलाया नहीं जा सकता किन्तु हम दोनों के प्रेम का एक मात्र मूक दर्शक और मूक साक्षी कदम्ब का वह पेड़ आज भी विश्वविद्यालय में मौजूद है जिसकी शीतल छाया तले घण्टों बैठे हम दोनों एक दूसरे में खोए रहते थे। दोनों ने शादी करने के निश्चय किया था। मगर पुष्पा के सामने कई प्रकार की रुकावटें आई थीं। आखिर एक दिन उन्हीं रुकावटों ने हम दोनों को हमेशा-हमेशा के लिए एक दूसरे से अलग कर दिया। उसी कदम्ब के तले पुष्पा के आँसुओं को पोंछते हुए मैंने कहा था--'दुनिया बड़ी विचित्र है पुष्पा। वह न मेरी भावनाओं को समझेगी और न तेरी। उसकी अपनी दृष्टि है जो हमेशा दोष ही खोजती है। दोषी मत बनो पुष्पा। जैसे सब लड़कियाँ रहती हैं, दम साधे, सब दबाए, छिपाए--उसी तरह तुम भी जिन्दा रहो। मेरे प्रति सारा आकर्षण, प्रेम और सारी भावुकता कहीं मिट्टी में दफना दो और हमेशा-हमेशा के लिए मुझे भूल जाओ।'

अद्भुत प्रेतलीला

पुष्पा ने आँसुओं में डूबी आँखें ऊपर उठाकर मेरी ओर देखा मानो मूक भाषा में कह रही हो--'कोई भी सुनने-समझने वाला नहीं है। अगर तुम भी नहीं सुनोगे तो मैं घुट-घुट कर मर जाऊँगी। क्या तुम इतने निष्ठुर हो? इतने आत्मलीन हो कि किसी के मन का दर्द भी न सुन सको? ऐसे निर्दयी न होओ। मेरी पुकार सुन लो।'

इतनी पावन प्रीति और नेह भरी पुकार का तिरस्कार करने की सामर्थ्य मैं अपने में पैदा न कर सका। मन विगलित हो उठा, किन्तु विवश था। समाज के बन्धन को भला कैसे तोड़ सकता था। मेरे कष्ट और मेरी व्यथा को उस समय अन्तर्यामी के सिवाय भला और कौन समझ सकता था। असीम पीड़ा और अश्रुपूरित दृष्टि से मैंने एक बार पुष्पा की ओर देखा, फिर उसके रास्ते से हमेशा के लिए हट गया।

फिर यह जिन्दगी कैसे कटी, किसी ने न जाना। कभी मैंने किसी से न कोई सहायता माँगी और न तो दया करुणा ही चाही। किसी ने भी न देखा मेरे जीवन का सफर।

बीच में एक लम्बा अरसा और फिर आज का दिन। पुष्पा, उसकी पावन प्रीति और उन सबके साक्षी उस कदम्ब के पेड़ को एकदम भूल चुका था मैं। मगर तीस वर्षों के दीर्घ अन्तराल के बाद जब सहसा पुष्पा का पत्र मिला तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं।

सारी स्मृतियाँ सजीव हो उठीं मानस-पलट पर। पत्र डाक से आया था और उसे भेजा गया था दार्जिलिंग से। कई बार उलट-पलट कर मैंने पत्र को देखा। भ्रम या सन्देह की कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी। पुष्पा की ही लिखावट थी। हे भगवान! इस उम्र में.... इस अवस्था में.... जबकि मैं पके हुए फल की तरह लटक रहा हूँ और मौत की पगध्वनि साफ सुनाई दे रही है ऐसे समय में न जाने कब का दफन-छुपा यह प्रेम-प्रसंग फिर कहाँ से उभर आया। पाती के एक-एक शब्द ने मेरे कलेजे को छू लिया। वह पाती मानो किसी अनन्त मरुभूमि के बीच कल-कल बहती निर्झरिणी का संवाद लेकर आयी थी। वह पाती मानो सकुचाकर बोली--'कुछ कहना चाहती हूँ! सुनोगे? और थका-हारा मैं बोला जरूर सुनूँगा। कहो क्या कहना चाहती हो?'

उसी दिन से उद्विग्न रहने लगा मैं रात को श्रान्त-क्लान्त होकर लेटता तो लगता जैसे पुष्पा सिरहाने आकर खड़ी हो गई है और मेरे ऊपर झुककर मोहभरे स्वर में कह रही है-'काफी थक गए हो लाओ सिर दबा दूँ। कितना काम करते हो तुम? देखकर कलेजा फट जाता है मेरा। इतना श्रम मत किया करो। लाओ तुम्हारा पैर दबा दूँ......' उस समय अस्फुट स्वर में भावाविष्ट होकर मैं भी उस अदृश्य छाया से कह बैठता--'तुम आ गई हो तो जिन्दगी का सारा क्लेश, सारी व्यथा, सारी पीड़ा और सारी थकान भूल गया। कितना सन्तुष्ट हूँ? कितना सुखी हूँ मैं तुम्हारे सान्निध्य में। तुम मेरे साथ रहोगी न?' छाया भी मानों अस्फुट स्वर में कहती--'मैं तुम्हारी हूँ। हमेशा तुम्हारी ही रहूँगी।'

एक दिन दूसरा पत्र आया। लिखा था--'मैं एक भटकती हुई आत्मा हूँ। मुझे तुम्हारी सहायता चाहिए। तुम्हारे अलावा संसार में और कोई मेरा उद्धार करने वाला नहीं है। एक बार दार्जिलिंग आओ। मुझसे मिलो। अब तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ मैं? मेरे लिए सारे बन्धन टूट चुके हैं अब। मैं रोज तुम्हारी राह देखूँगी। आओगे न? मुझे अपने साथ ले चलोगे न?'

दीर्घ अन्तराल के बाद मिलने वाले इस विश्वास और प्रीति का भला कैसे तिरस्कार कर पाता मैं। दार्जिलिंग का पता तो था ही मेरे पास। पहले कलकत्ता गया और फिर वहाँ से दार्जिलिंग मेल से रवाना हुआ। रास्ते में अनेक प्रश्न उभरते रहे मन में। सोचने लगा हम एक दूसरे को कैसे पहचानेंगे? अब तो वह बूढ़ी हो गई होगी। बाल सफेद हो गए होंगे। आँखें भी कमजोर हो गई होंगी। मुझसे दो-तीन वर्ष ही तो छोटी थी पुष्पा।

इन्हीं बातों के साथ मन में एक विचार यह भी आया कि वह अब विधवा होगी तभी तो मुझे याद किया है उसने।

ट्रेन जब स्टेशन पर पहुँची तो धरती और पहाड़ों पर साँझ की स्याह कालिमा फैल चुकी थी। आकाश में काले, भूरे बादल घिरे हुए थे। हवा में ठण्डक थी। निस्तब्ध वातावरण साँय-साँय कर रहा था। ऐसी स्थिति में दस मील का पहाड़ी रास्ता अकेले पूरा करना निरापद नहीं था। अत: मैंने रात स्टेशन पर ही बिताने का निश्चय कर लिया। तभी किसी ने पीछे से पुकारा--'बाबूजी।' पलटकर देखा तो एक व्यक्ति लपकता हुआ मेरी ओर बढ़ा आ रहा था। वह भोटिया जाति का था। उसके शरीर पर खाकी वर्दी थी। सिर पर पगड़ी बाँधे था। पास आकर उसने पूछा--'आप शर्मा जी हैं न? बनारस से आना हुआ है न?'

मैंने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा तो उसने बतलाया कि वह पुष्पाजी का ड्राइवर है। उन्होंने कार भेजी है। सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। पुष्पा को कैसे मालूम हुआ कि मैं आज आने वाला हूँ।

ड्राइवर का नाम बहादुर सिंह था। वह बड़ी तन्मयता से कार चला रहा था। थोड़ी देर बाद कार एक विशाल फाटक के भीतर घुसी। दूज का चाँद निकल आया था। उसकी पीली रोशनी में चारों ओर आँखें घुमाकर देखा, मकान काफी पुराना मगर बहुत बड़ा था। वह ऐसी जगह पर बना था जिसके चारों ओर सुनसान घाटी थी। आसपास कोई दूसरा मकान भी नहीं था। सबसे नजदीक का गाँव भी तीन-चार मील पर था।

वातावरण में न जाने कैसी घुटन थी। एक विशेष प्रकार की निस्तब्धता भी छाई हुई थी। ऐसा लगा कि मैं अनजाने ही किसी प्रेतपुरी में पहुँच गया हूँ।

बहादूर सिंह मेरा सामान बरामदे में रखकर न जाने कहाँ गायब हो गया था। मकान के भीतर गहरी खामोशी छाई हुई थी। सहसा बगल वाले कमरे में रोशनी हुई। फिर धीरे-धीरे दरवाजा खुला। मेरे सामने एक युवती खड़ी मुस्करा रही थी। उसके शरीर पर कीमती साड़ी और जेवर थे। ऐसा लगा जैसे वह अभी-अभी श्रृंगार करके चली आ रही है। हठात् मेरे मुँह से निकल गया--'पुष्पा।'

कमरा काफी आलीशान था। मैं पलंग पर बैठकर सोचने लगा अजमेर की रहने वाली साधारण परिवार की पुष्पा अजमेर से दार्जिलिंग कैसे पहुँच गई? फिर वह इतने ऐश्वर्य की स्वामिनी कैसे बन गई? मेरे मन में उथल-पुथल मची हुई थी। मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। तभी चाँदी के गिलास में दूध और चाँदी की ही तश्तरी में नमकीन और मिठाई लेकर पुष्पा आ गई। टेबल पर नाश्ता रखती हुई बोली--'कितने साल बाद हम दोनों मिले हैं.... तुमने शादी नहीं की न?'

पुष्पा की हत्या

बर्फी का टुकड़ा मुँह में रखते हुए मैंने धीरे से कहा--'नहीं, प्यार तुमसे किया और शादी किसी दूसरे से करूँ, यह कैसे हो सकता है?'

'मैंने भी नहीं की।' एक दीर्घ नि:श्वास लेकर पुष्पा ने कहा।

'तुमने भी नहीं की? क्यों?'

'यदि यही प्रश्न मैं तुमसे करूँ तो।'

मैं मौन साध गया। कुछ बोला ही नहीं गया मुझसे। थोड़ी देर बाद पुष्पा स्वयं कहने लगी--'हिन्दू नारी एक बार जिसे अपना देवता मान लेती है, जिसे एक अपना सर्वस्व मान लेती है तो भला उसके जीवन में दूसरा व्यक्ति कैसे आ सकता है? मैंने शादी के लिए साफ इनकार कर दिया। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी। संयोग से मुझे एक स्कूल में नौकरी मिल गई। अकेली जिन्दगी गुजारने के लिए यह नौकरी मेरे लिए काफी थी। मगर अचानक एक दिन मेरी शान्त और सरल जिन्दगी में जहर घुल गया। जिस मकान में मैं रहती थी, वह मेरे दूर के रिश्ते के भाई का था। उसीने मुझे नौकरी दिलवाई थी। एक रात शराब के नशे में मेरे साथ उसने जबर्दस्ती मुँह काला कर लिया। मैं बहुत रोई, गिड़गिड़ाई पर वह नराधम मेरा सर्वस्व लूटकर ही माना। मैं लाचार थी। विवश थी। भला क्या कर सकती थी। उसने मेरी लाचारी और विवशता का नाजायज फायदा उठाया। फिर तो वह रोज ही मेरे साथ वासना का खेल खेलने लगा। पाप के परिणाम को सामने आते देर न लगी। मैं गर्भवती हो गई। मेरे सामने अन्धकार छा गया। समाज और परिवार के सामने मुँह दिखाने लायक भी नहीं रह गई थी मैं। आखिर में आत्महत्या करने का निश्चय किया और एक रात मैं अपनी पाप की गठरी लिए नदी की ओर चल पड़ी। मगर मौत ने भी मुझे सहारा नहीं दिया। पाप से तो छुटकारा मिल गया मगर जिन्दगी से मुक्ति नहीं मिली।' इतना कहते-कहते पुष्पा का गला भर आया और उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। मेरा भी मन न जाने कैसा हो गया उस समय।

थोड़ी देर बाद स्वस्थ होने पर विगलित स्वर में पुष्पा ने आगे कहना शुरू किया-'मुझे एक सज्जन ने बचा लिया था। वही अपने साथ मुझे यहाँ ले आए। परिवार में उनके अलावा और कोई नहीं था। चायबागान और इस मकान के अलावा भी उनके पास सम्पत्ति थी। वे मुझे अपनी पुत्री के समान मानते थे और मैं भी उन्हें अपने पिता तुल्य समझती थी। मेरे लिए वही सब कुछ थे माता, पिता, भाई, बन्धु, हितैषी। मगर शीतल छत्रछाया अधिक दिनों तक न रह सकी मुझ पर। दो वर्ष बाद उनका हार्ट फेल हो गया। मृत्यु के बाद पता चला कि वे अपनी सारी सम्पत्ति मेरे नाम लिख गए हैं। मगर सम्पत्ति से मेरा एकाकीपन भला जा सकता था? आज तीस वर्षों से उसी शून्य में मेरी आत्मा भटक रही है। मगर अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं किसी कोमल शीतल छाया

मैं खड़ी हूँ। अब अपनी कोई चिन्ता न रही। अब तुम आ गए हो तो मेरे सारे क्लेश दूर हो जाएँगे और दूर हो जाएगी सारी व्यथा और पीड़ा भी।' बोलते-बोलते पुष्पा ने मेरे हाथों को अपने हाथों में ले लिया। और आँखों में आँखें डालकर बोली--'अब तो कोई व्यवधान नहीं है। किसी तरह की रुकावट भी नहीं है। आज इस सूनी कलाइयों में सुहाग की चूड़ियाँ पहना दो मेरे देवता। मैं तुम्हारी हूँ और हमेशा तुम्हारी ही रहूँगी मेरे आराध्य।'

अन्तिम शब्द के साथ पुष्पा मुझसे लिपट गई और फफक-फफक रोने लगी। किसी प्रकार पुष्पा को अपने से अलग करके मैं धीरे-धीरे चलकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। सारी सृष्टि जैसे गहन अन्धकार में डूबी हुई थी। बादलों से ढँके आकाश में जब-तब बिजली चमक उठती थी। सहसा कमरे का बन्द दरवाजा फटाक से खुला और कन्धे पर बन्दूक रखे और कमर से तलवार लटकाए कई आदमी कमरे में घुस आए। मैं कुछ समझू, इसके पहले ही एक लम्बा-तगड़ा आदमी लपककर पुष्पा के नजदीक पहुँचा और बन्दूक की नली उसकी छाती पर सटाता हुआ कर्कश स्वर में बोला--'अब तुम नहीं बच सकती। बतला माल कहाँ है?'

उसी समय बहादुर सिंह न जाने कहाँ से आ गया। वह हाथ में लोहे का मोटा सा राड लिए हुए था। मगर अकेला बेचारा क्या कर सकता था? अपनी मालकिन की कोई सहायता करता, इसके पहले ही धाँय की आवाज हुई और एक गोली सनसनाती हुई उसके सीने को चीरकर उस पार निकल गई। दूसरे ही क्षण उसका निर्जीव शरीर लड़खड़ा कर गिर पड़ा। पुष्पा के सामने यमराज जैसा वह व्यक्ति अभी भी बन्दूक ताने खड़ा था। पुष्पा भय और आतंक से बुरी तरह काँप रही थी। अन्य आतताई पूरे मकान में घूम रहे थे। समझते देर न लगी, वे सब पहाड़ी डाकू थे। मगर आश्चर्य की बात यह थी कि मुझपर किसी की नजर नहीं पड़ी। मैं खिड़की के पास दुबका खड़ा काँप रहा था।

अचानक फिर गोली छूटने की आवाज हुई और वातावरण में एक मर्मभेदी चीत्कार गूज उठी। मैंने देखा-पुष्पा दोनों हाथों से छाती दबाए जमीन पर छटपटा रही थी। उसका सारा शरीर खून से लथपथ था। कुछ क्षण बाद उसने भी दम तोड़ दिया।

हत्या और लूटपाट करके डाकू चले गए तब मेरी चेतना लौटी। मेरे सामने जमीन पर दो-दो लाशें पड़ी थीं, खून से लथपथ! हे भगवान! यह सब क्या है? कहाँ आकर फँस गया मैं? इसके बाद मैं अपने आप पर नियन्त्रण न रख सका। आप ही अनुमान लगाइए, उस समय आप यदि होते तो कैसी होती आपकी मानसिक स्थिति? इतनी दूर से क्या सोच-समझकर आया था और हो क्या गया?

वह पुष्पा की आत्मा थी!

मैं बेहताशा भागता हुआ सड़क पर आया। धीरे-धीरे वह अन्धेरी कालरात्रि सिमटने लगी थी और पूरब का आसमान सफेद हो चला था। सबेरा होने वाला था।

भागता हुआ पूछता-पूछता पुलिस स्टेशन पर पहुँचा और एक ही साँस में रात की सारी घटना इन्स्पेक्टर को सुना दी मैंने। मगर उस पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह बस अपलक मेरी ओर निहारता रहा। मैंने सोचा, शायद मेरी बातों पर उसे यकीन नहीं हो रहा है।

मैंने दृढ़ स्वर में पूछा--'जो कुछ मैंने बतलाया है इन्स्पेक्टर क्या आपको उसपर विश्वास नहीं हो रहा है?'

'पूरा विश्वास है' इन्स्पेक्टर बोला--'लेकिन जिस घटना को आप सुना रहे हैं, वह कल नहीं बल्कि इसी महीने में और इसी तारीख को आज से लगभग तीस वर्ष पहले घटी थी।'

'आप क्या कह रहे हैं?' मैं व्यग्र होकर बोला--'अपनी आँखों से मैंने सब कुछ देखा है।'

'मैं कब कह रहा हूँ कि आपने नहीं देखा। पर जो कुछ देखा वह सब भयंकर प्रेतलीला थी।'

'प्रेतलीला?'

'जी हाँ! प्रेतलीला! काफी अरसे से यह मकान वीरान पड़ा हुआ है। आज भी कभी-कभी काली अन्धेरी रात में लोगों को पुष्पा देवी की करुण-कातर चीख सुनाई पड़ जाती है। बहादुर सिंह और पुष्पा देवी की आत्मा न जाने कब तक भटकती रहेगी, बतलाया नहीं जा सकता।'

मेरी अटैची उसी कमरे में थी। मगर अब वहाँ अकेले जाने का साहस नहीं हुआ मुझे। अत: मैंने इन्स्पेक्टर को भी साथ ले लिया। जब मैं मकान के भीतर घुसा तो एक अजीब सी दुर्गन्ध भर गई नाक में। पूरे मकान में कब्रिस्तान जैसी खामोशी छाई हुई थी। मेरी अटैची एक टूटी हुई मेज पर पड़ी थी।

पास ही एक टूटा हुआ पुराना पलंग पड़ा था। जब मैं अटैची उठाकर चलने लगा तो अचानक मेरी नजर एक पैकट पर पड़ी। लाल रेशमी कपड़े में लिपटा हुआ था वह। जब मैंने उसे खोलकर देखा तो एकबारगी दंग रह गया। पैकेट में सिन्दूर की डिबिया और काँच की लाल चूड़ियाँ थीं।

मुझे याद आया--रात में मैंने उसी पैकेट को पुष्पा के हाथों में देखा था। उसी को लिए हुए वह मुझसे विगलित स्वर में कह रही थी-'आज इस सूनी माँग में तुम सिन्दूर भर दो..... इन सूनी कलाइयों में सुहाग की चूड़ियाँ पहना दो....।' कुछ क्षण तक मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा न जाने क्या सोचता रहा। फिर भारी कदमों से बाहर निकल आया। इस घटना को घटित हुए लम्बा अरसा गुजर गया। मगर सिन्दूर की वह डिबिया

और काँच की वे लाल चूड़ियाँ आज भी मेरे पास सुरक्षित पड़ी हुई हैं। हाँ, एक वात बतलाना भूल ही गया मैं। उस मकान को कलकत्ता के किसी सेठ ने खरीद लिया है और उसमें होटल खुल गया है। कभी किसी समय वीरान-सुनसान रहने वाला वह मकान अब हमेशा गुलजार रहता है।

अविश्वसनीय सत्य

सन् १९५० ई. की बात है। मैं उन दिनों परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेत-विधा पर शोध और अन्वेषण-कार्य कर रहा था। भुतहे मकानों में पूरी रात गुजारना, प्रेत-बाधा के मूल कारणों का पता लगाना, प्रेतबाधित स्त्री-पुरुषों की गतिविधि को समझना आदि भी मेरे शोध और अन्वेषण का एक प्रमुख अंग था। इस दिशा में मेरे सहयोगी थे भुवनमोहन गांगुली। वाराणसी के शिवाला घाट मुहल्ले में रहते थे गांगुली महाशय। उच्च कोटि के तन्त्र-साधक थे वे मगर अपनी साधना-शक्ति को कभी किसी के सामने प्रकट नहीं करते थे। उनके एक परम मित्र थे राखाल बाबू। दस वर्ष पूर्व काशीवास के विचार से जब वे आये तो वाराणसी में सर्वप्रथम उनका परिचय गांगुली महाशय से ही हुआ। धीरे-धीरे वह साधारण परिचय मित्रता में बदल गया।

राखाल बाबू विधुर थे। केवल एक लड़का था शशांक। असम में किसी चाय बागान में नौकरी करता था वह। हर मास पिता के पास जो रुपया भेजता, उसी से राखाल बाबू अपना खर्च चलाते थे। उनकी अपनी जो जमा-पूँजी थी, उसे राखाल बाबू ने बैंक में रख छोड़ा था। शशांक का विवाह तीन साल पूर्व हुआ था। पत्नी का नाम नमिता। असम की जलवायु उसके प्रतिकूल थी और इसके अलावा शशांक को रहने के लिए ढंग का मकान भी नहीं मिल पाया था इसलिए नमिता ससुर के साथ ही रहती थी। शशांक तीन वर्ष के भीतर केवल दो बार ही वाराणसी आया था।

शशांक साधारण सा युवक था मगर नमिता असाधारण सुन्दरी थी। बीस वर्षीया उस गौरांग युवती में मानों बंगाल का सारा सौन्दर्य सिमट गया था। शान्त, सौम्य और सरल स्वभाव, इसके अलावा वह धर्मपरायणा भी थी। व्रत-उपवास रखना, तुलसी के पेड़ के नीचे दीप जलाना और राधा-कृष्ण की तन्मय होकर घण्टों पूजा करना उसकी सामान्य दिनचर्या थी। लोगों से वह कम ही मिलती-जुलती। स्वभाव से गम्भीर होने के कारण उसके पास-पड़ोस की स्त्रियाँ भी स्वयं ही कतराती रहती थीं। घर के बाहर कभी-कभार ही निकलती थी वह।

राखाल बाबू पहले किराए के मकान में रहते थे मगर नमिता के आग्रह पर उन्होंने बैंक से सारा रुपया निकालकर उसी मकान को खरीद लिया जिसमें वे किराए पर रहते थे। इकतल्ला था वह मकान। कुल चार ही कमरे थे--दो सामने और दो पीछे। बीच में बड़ा सा आँगन था।

मकान पहले किसी मुसलमान का था। भारत का बँटवारा होने के बाद वह मकान बेचकर पाकिस्तान चला गया था। राखाल बाबू ने जिससे मकान खरीदा था, वह एक बनिया था। बनिए को किसी ने बतलाया था कि उस मकान में काफी सम्पत्ति भूमि में गड़ी हुई है। शायद इसी लालच से उसने मकान खरीदा था और सम्पत्ति के लिए तमाम पूजा-पाठ तथा हवन भी करवाया था। मकान में कई जगह खुदाई भी करवाई थी मगर जब सफलता नहीं मिली तो उसने मकान बेचने का इरादा कर लिया।

मकान खरीदने के बाद जब ये सारी बातें राखाल बाबू को मालूम हुई तो इसकी चर्चा उन्होंने गांगुली महाशय से की। गांगुली महाशय ने मकान की मिट्टी की जाँच की। ज्योतिष की गणना की। एक मन्त्रपूत घी का दीप मकान में जलवाया। इन सारी क्रियाओं के बाद यह निष्कर्ष निकला कि मकान में सचमुच सम्पत्ति है।

राखाल बाबू बेचैन हो उठे। धन का लालच बुरा होता है। उन्होंने गांगुली महाशय से सम्पत्ति निकलवाने का अनुरोध किया। गांगुली महाशय जैसे सिद्ध तान्त्रिक कहाँ मिलते उनको। पहले तो वे राखाल बाबू की बात टालते रहे मगर जब राखाल बाबू ने नमिता से कहलवाया तो गांगुली महाशय तैयार हो गए। नमिता को वे बहुत ही मानते थे। पुत्रीवत् स्नेह करते थे। भला उसकी बात को कैसे टालते?

अमावास्या की रात्रि में अनुष्ठान करने का निश्चय हुआ। आवश्यक तान्त्रिक पूजा और अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गई। अन्त में भूमिशोधन के लिए काले बकरे की बलि भी दी गई।

राखाल बाबू प्रसन्न थे लेकिन गांगुली महाशय ने कोई उत्साह नहीं दिखलाया। वे बराबर गम्भीर बने रहे। बलि के बाद अचानक नमिता असाधारण हो उठी। राख जैसा रंग पुत गया उसके लावण्यमय चेहरे पर। आँखे दहकते हुए अंगारे की तरह लाल हो उठीं।

एक सप्ताह तक नियमित रूप से तान्त्रिक क्रियाएँ होती रहीं। आँगन में जिस स्थान पर सम्पत्ति होने का संकेत मिला था, वहाँ खुदाई शुरू की गयी। लगभग दस-बारह फुट गहराई तक खोदे जाने के बाद पुरानी ईटों की बनी सीढ़ियाँ दिखलाई पड़ीं। वह सीढ़ी जहाँ खत्म होती थी, वहाँ पत्थर के चौकोर चबूतरे पर एक कब्र बनी थी। जिस समय लोग उस कब्र की ओर देख रहे थे, उसी समय सहसा एक विचित्र सी सुगन्ध वातावरण में फैल गई। ऐसा लगा मानों कहीं इत्र और फूलों का ढेर लगा हो। सहसा गांगुली महाशय की निगाह बाईं ओर घूम गई। चौंक पड़े वह। अचकचाकर बोले--'वह देखो! कोई गुप्त दरवाजा है यह।'

रहस्यमय सन्दूक

उनका कहना ठीक ही था। लगभग तीन-चार फुट ऊँचे दरवाजे को कीलों और पेंचों से कसकर बन्द कर दिया था। उन्हें उखड़वाकर लोग भीतर घुसे। सामने एक छोटा सा कमरा मिला जिसके अस्तित्व का किसी को आभास तक नहीं था।

वह कमरा लगभग पाँच फुट लम्बा-चौड़ा था और नमिता के कमरे के ठीक नीचे बना था। टार्च और मोमबत्तियों के प्रकाश में सारा कमरा देखा गया। कमरे के एक कोने में लोहे का बड़ा भारी सन्दूक रखा था। उसका ताला भी भारी और मजबूत था जिसे तोड़ने में काफी परेशानी का सामना करना पड़ा।

सन्दूक देखकर लोगों की आंखों में चमक आ गई थी। सभी ने सोचा सम्पत्ति अवश्य इसी सन्दूक में होगी मगर जब उसे खोला गया तो उसमें बड़ी ही विचित्र और आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखने को मिलीं। जादू-टोने के काम आने वाली कितनी ही वस्तुएँ, जैसे बन्दर का पंजा, मुर्दे की खोपड़ी, काठ के बने डरावने पुतले, तांबे--पीतल की कुछ ताबीजें वगैरह।

सन्दूक के एक दराज में एक छोटी सी तस्वीर भी मिली जो सुनहरे फ्रेम में जड़ी हुई थी। देखने में वह काफी पुरानी मालूम पड़ती थी। वह तस्वीर तीस-पैंतीस वर्ष के किसी व्यक्ति की थी। उसका चेहरा अजीब सा था पर था काफी प्रभावशाली। यदि किसी विषधर सर्प को मनुष्य की शक्ल में बदल दिया जाए तो वह बहुत कुछ इसी व्यक्ति जैसा लगेगा। उसका जबड़ा चौड़ा और काफी भयानक था। आँखें खूब लम्बी और क्रूर थीं। उनमें नीलम जैसी चमक थी जिसे देखकर ऐसा लगता था मानों उसे अपनी शक्ति पर घोर विश्वास हो। उस व्यक्ति की वेशभूषा नवाबों जैसी थी। गले में कीमती मोतियों की माला झूल रही थी और उसके साथ ही हीरे का एक लाकेट भी झूल रहा था। दाहिने हाथ की उँगलियों में कीमती रत्नों की अंगूठियाँ थी।

उस रहस्यमय सन्दूक के दूसरे दराज में चाँदी की एक डिबिया भी मिली। उसके भीतर एक भोजपत्र था जिसपर उर्दू भाषा में कुछ लिखा था। उसका भाषार्थ था--जब तक कब्र में मेरी लाश आखिरी कतरा तक सड़-गल कर मिट्टी में नहीं मिल जाएगी, तब तक मेरी प्रबल इच्छाशक्ति का प्रभाव इस मकान में रहेगा। मुझे पूरा भरोसा है कि मेरी प्रबल इच्छाशक्ति के प्रभाव से आकर्षित होकर शकीला इस मकान में किसी न किसी तरह और किसी न किसी रूप में अवश्य आएगी और तब मैं अपनी हत्या का बदला उससे ले लूँगा। उस पर साठ वर्ष पहले की तारीख पड़ी थी। भोजपत्र पर लिखा यह विवरण बड़ा ही विचित्र और रहस्यमय था मगर उस पर न किसी व्यक्ति का नाम था और न तो था किसी का हस्ताक्षर ही।

गांगुली महाशय ने अनुमान लगाया कि सम्भव है जिस व्यक्ति की तस्वीर है, उसी से यह विवरण भी सम्बन्धित हो।

मगर वह व्यक्ति था कौन? और वह शकीला कौन थी? क्या शकीला ने ही उसकी हत्या की थी? अगर शकीला कहीं जीवित भी हो तो आखिर वह इस मकान में अब आएगी कैसे? मकान तो अब राखाल बाबू के अधिकार में है।

कोई समाधान न सूझा। सारी बातें रहस्यमय ही बनी रह गईं। सभी आश्चर्य, भय और आतंक से ग्रस्त हो गए। गांगुली महाशय के आदेश से कमरा बन्द कर दिया गया और कब्र पर मिट्टी डालकर सारे रहस्य को दुबारा दफन कर दिया गया।

मगर छः महीने बाद ही भयंकर वज्रपात हुआ। इस तान्त्रिक अनुष्ठान की दक्षिणा किसी की मृत्यु के रूप में चुकानी पड़ेगी, किसी ने स्वप्न में इसकी कल्पना नहीं की थी।

इस अनुष्ठान के बाद से ही नमिता अत्यधिक गम्भीर रहने लगी थी। उसके लावण्यमय चेहरे पर विचित्र सा भाव उतर आया था। कभी की कजरारी आँखें अब हमेशा जलती रहती थीं। एक दिन वह अपने कमरे में मृत पाई गई। गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी उसने।

सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। स्वस्थ सुडौल सुन्दर धर्मभीरु कर्तव्यपरायण और पढ़ी-लिखी युवती थी नमिता। आखिर कौन सा दु:ख था उसे? कौन सा कष्ट था उसे? कौन की पीड़ा और व्यथा थी उसे जिसके कारण आत्महत्या कर ली पगली ने? वह माँ भी बनने वाली थी, यह सुनकर तो मुझे घोर आश्चर्य हुआ। मन खिन्न हो उठा। दौड़ा-दौड़ा गांगुली महाशय के घर पहुँचा।

वह मौन साधे अपलक शून्य में निहार रहे थे। चेहरे पर वेदना और व्यथा के भाव तैर रहे थे। मैंने उनका मौन भंग नहीं किया। चुपचाप एक कोने में चटाई बिछाकर बैठ गया।

विचित्र सुगन्ध

कुछ क्षण बाद गांगुली महाशय की निगाह घूमकर मुझ पर टिकी। बोले--'नमिता की मृत्यु का रहस्य जानना चाहते हो न? लो पढ़ो' यह कहकर उन्होंने मेरी ओर एक लिफाफा सरका दिया।

मैं काँपते हाथों लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगा...... मैं जानती हूँ जो कुछ मैं लिखने जा रही हूँ उस पर कोई भी व्यक्ति विश्वास नहीं करेगा। इसी भय से आज तक यह बात किसी से भी नहीं कही। यदि मैं कह भी देती तो शायद सभी लोग मुझे सन्देह और उपेक्षा की दृष्टि से देखते। पर जो कुछ मैं लिख रही हूँ वह अपने आप में अक्षरश: सत्य है। अब जबकि मैंने इस शरीर को छोड़ देने का निर्णय कर ही लिया है और अपना मानापमान देखने को जीवित रहूँगी ही नहीं तो फिर भला असत्य लिखूँगी ही क्यों?

.......छ: मास पहले की बात है, जब धन-सम्पत्ति के लिए इस मकान को खोदा जा रहा था। मार्च का महीना होते हुए भी वर्षा हो जाने के कारण ठण्ड काफी बढ़ चुकी थी। मैं अपने कमरे में दरवाजा-खिड़की बन्द करके नित्य की तरह सोई पड़ी थी। रात का कौन सा प्रहर था, बतला नहीं सकती। अचानक मेरी नींद टूट गई। कमरे में अन्धेरा था। मैंने अपने आप को विचित्र स्थिति में पाया जैसे मैंने शराब पी ली हो, नशे में धुत थी। मुझ पर एक विचित्र अवर्णनीय मस्ती छाई हुई थी। तभी अचानक कमरे में गुलाब के फूलों जैसी सुगन्ध फैल गई और उसी के साथ कमरे की बत्ती भी जल उठी। मैं यह देखकर हैरान रह गई कि मेरे पति सामने खड़े मुस्करा रहे हैं। इसके पहले मैं कुछ कहती या पूछती, कमरे की बत्ती एकाएक बुझ गई और वे मेरे बिस्तर पर जा पहुँचे और मेरे

अंगों पर हाथ फेरने लगे। उसके बाद जो होना चाहिए था, वह हुआ। सारी रात एक मधुर सुख और नशे में गुजर गई। भोर हो चली थी, तब उसी नशे की स्थिति में मेरी आँख लग गई। और जब नींद टूटी तो काफी दिन चढ़ आया था। सहसा मुझे रात वाली सारा घटना एक-एक कर याद हो आई और मेरा सारा शरीर भय और आतंक से काँप उठा। कमरे के दरवाजे की सिटकनी को देखा--वह ज्यों की त्यों बन्द थी। भला अन्दर कोई कैसे आ सकता था? और फिर मेरे पति सहसा ही कैसे इतनी दूर आ सकते थे? उनके आने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

फिर मैं मन ही मन मुस्करा उठी। सोचा कि यह सब कुछ सुखद स्वप्न से अधिक और कुछ न था। लेकिन मेरा ध्यान जब अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों और खुले बालों की ओर गया तो मन एकबारगी डूब सा गया। तभी पास की तिपाई पर पड़े एक लिफाफे पर मेरी नजर गई। मैंने तुरन्त अपने कपड़े ठीक किए, बालों को सँवारा और बिस्तर से उठकर वह लिफाफा देखा--उसमें फल और मिठाइयाँ थी। अब तो मेरे होश उड़ गए। ये सब कहाँ से आ गए ? उस लिफाफे को देखने के बाद रातवाली घटना को केवल स्वप्न मानने के लिए अब मेरा मन तैयार नहीं था।

पहले तो जी में आया कि मैं वह लिफाफा अपने ससुर जी के पास ले जाऊँ और रात वाली सारी बात सच-सच कह दूँ। फिर शंका हुई--कौन करेगा मुझपर विश्वास? उल्टे मुझे ही चरित्रहीन समझा जाएगा। मेरे ससुर मुझे देवी समान समझते हैं। इस घटना से गहरा आघात लगेगा उनकी आत्मा को। मैंने तुरन्त लिफाफे को आलमारी में बन्द कर दिया और शीशे के सामने खड़ी होकर एक बार फिर अपने बालों को अच्छी तरह सँवारा, फिर दरवाजा खोलकर बाहर निकली।

मुझे परेशान देखकर मेरे ससुर जी ने पूछा--'क्या बात है बेटी, तबीयत तो ठीक है न?'

मेरे मन में आया कि ससुर जी के चरणों पर अपना सिर रखकर फूट-फूट कर रोऊँ और सारी बात सच-सच कह दूँ। पर जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। अपने को सम्हालकर मैं बोली--'नहीं बाबा, कोई बात नहीं है।' यह कहकर मैं चाय बनाने के लिए रसोईघर में घुस गई।

खैर, रातवाली घटना रह-रहकर मेरे मन और मस्तिष्क को बुरी तरह झिंझोड़ रही थी। फिर भी दिन का सारा काम पूरा किया मैंने। साँझ हुई। नित्य की भाँति तुलसी के नीचे दीप जलाया। भगवान की पूजा की। भोग लगाया। मन कुछ हल्का हुआ। रात फिर सिर पर आ पहुँची। ससुर जी को भोजन कराया मैंने। फिर स्वयं भोजन किया। उस समय रात के करीब दस बजे गए होंगे।

मैं अपने कमरे में पहुँची। सावधानी से दरवाजा और खिडकियों को वन्द किया।

उन्हें फिर दो बार देखा कि खुले तो नहीं रह गए हैं? पूरी तसल्ली कर लेने के बाद मैंने बत्ती बुझा दी और पलंग पर लेटकर सिरतक रजाई ओढ़ ली। पर मेरी मन:स्थिति सबेरे की अपेक्षा और भी खराब थी। आशंका और आतंक से मन काँप उठता था। नींद तो क्या आती, एक-दो क्षण बाद मैं आँखें कमरे में घुमा-घुमाकर चारों ओर देखती रही।

पास के शिव मन्दिर में टन-टन कर बारह का घण्टा बचा। अचानक पलकें भारी होने लगीं। मैं सोने को ही थी कि कमरे में वही विचित्र सुगन्ध भर गई और साथ ही किसी की पदचाप सुनाई दी। मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। ऐसा लगा मानों शरीर का सारा खून मस्तिष्क में एकत्र होकर शिराओं को फाड़ देगा। फिर पास ही किसी के साँस लेने की आवाज भी सुनाई देने लगी।

अवर्णनीय अनुभूति

मैंने कुछ सम्हलकर सहमते हुए टेबुल लैम्प जला दिया। एक व्यक्ति मेरे सामने खड़ा मुस्करा रहा था और मेरी ओर अपलक देख रहा था। अब मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि जो कोई भी हो, यह मेरा पति नहीं है। यह तो और ही कोई लीला है। मैंने साहस करके उस व्यक्ति की ओर देखा और पूछा--'कौन हो तुम?'

वह जवाब में केवल मुस्करा भर दिया। उसने कुछ ऐसी निगाहों से मेरी ओर देखा कि मैं एकबारगी सिहर उठी। वह मेरी ओर बढ़ने लगा। मैं घबराकर पलंग से उतर गई और जोर-जोर से चीखकर बोली--'कौन हो तुम?' उसने कोई जवाब नहीं दिया, बस मेरी ओर धीरे-धीरे बढ़ता रहा। मैंने टेबुलपर रखे पीतल के गुलदस्ते को उठाकर उसके सिरपर दे मारा। पर मैं यह देखकर हैरान रह गई कि वह पहले की ही तरह बराबर मुस्कराए जा रहा था। उसपर गुलदस्ते के भरपूर वार का कोई असर नहीं हुआ था। मेरे बिल्कुल करीब आकर उसने मुझे अपनी बाहों में इस प्रकार लिया जैसे मैं कोई नन्हीं सी गुड़िया होऊँ। फिर उसने मुझे पलंगपर लिटाकर बत्ती बुझा दी।

उसने मुझे पूरी तरह आलिंगन में ले लिया था एकबारगी सिहर उठी मैं मुझपर फिर वही नशा छाने लगा। वह मस्ती आने लगी। रह-रहकर मुझे रोमाञ्च हो आता था। एक अवर्णनीय, विचित्र आनन्ददायक अनुभूति थी जो पहले मुझे कभी प्राप्त नहीं हुई थी। मैं सब कुछ भूलकर उसकी भुजाओं में पड़ी रही। वह सारी रात न सोया और न तो मुझे ही सोने दिया। मैं यन्त्रचालित-सी उसके इशारे पर नाचती रही। वह भय, जिससे मैं सारे दिन परेशान रही थी, अब दूर हो चुका था। मैं एक विचित्र तृप्ति का अनुभव कर रही थी। एक ऐसी तृप्ति और एक ऐसा सन्तोष जो मुझे पहले कभी नहीं मिला था। उसी अवस्था में न जाने कब मेरी आँख लग गई। सबेरे जब मैं सोकर उठी तो परेशान अवश्य थी पर वह परेशानी अब एक अलग प्रकार की थी। इस परेशानी में भय का नाम तक नहीं था। परेशानी अब यह थी कि अगर किसी ने देख लिया तो या किसी को पता चल गया तो क्या होगा? आज फल के लिफाफे के स्थान पर एक सुन्दर सा डिब्बा रखा था टेबुल पर। अपने बाल और कपड़े ठीक कर मैं बिस्तर पर से उठ खड़ी हुई। शीशे के सामने जाकर

मैंने अपने चेहरे को सँवारा। फिर टेबुल पर पड़े डिब्बे को खोला और यह देखकर चकित रह गई कि उसमें मोतियों का सुन्दरसा हार था। बीच में हीरे का एक कीमती लाकेट झूल रहा था। मैं हार को गले में डालकर शीशे में अपनी छवि देखने की इच्छा का लोभ संवरण न कर सकी। हार मेरे गले में सचमुच खूब सुन्दर लग रहा था। मैं काफी देर तक अपने आपको शीशे में निहारती रही, और फिर हारको उतारकर सन्दूक में रख दिया। दोपहर को काम से फुर्सत पाकर मैंने कलवाले फलों को निकाला और काटकर खाया। इतने स्वादिष्ट फल मैंने जीवन में पहले कभी नहीं खाए थे।

रात आयी, उस दिन जाने किस भावना के वशीभूत होकर मैंने श्रृंगार किया और गले में मोतियों का वह हार भी पहन लिया।

टन-टन करके बारह बजे। पहले कमरे में सुगन्ध फैली, फिर पदचाप सुनाई पड़ी। बत्ती मैंने पहले ही बुझा दी थी। वह मेरे बिस्तर में आ पहुँचा। उस रात पिछली दो रातों से भी अधिक सुख और आनन्द मिला। और उनकी तीव्र अनुभूति हुई। कामना और वासना दोनों से मिलकर एक स्वर्गीय तृप्ति की सृष्टि कर दी उस रात ने मेरे मन में। मैंने जीवन में कभी ऐसे अवर्णनीय सुखद सहवास की कल्पना तक नहीं की थी।

पूरे एक महीने तक ऐसा ही होता रहा। अब मुझे ऐसा लग रहा है कि निश्चय ही उन दिनों किसी अज्ञात शक्ति के वश में थी मैं! मेरी आत्मा पर किसी ने पूर्ण अधिकार कर लिया था।

एक दिन मेरे पति का पत्र आया। पढ़कर विह्वल हो उठी। एक-एक शब्द में प्रेम का मधु घुला हुआ था। पढ़ते-पढ़ते मेरा मन आन्दोलित हो उठा। अपने पति से, जो मुझे कितना प्रेम करते थे, मैं विश्वासघात कर रही थी। उनको धोखा दे रही थी। मेरी आत्मा मुझे फटकारने लगी। मेरे नारीत्व ने पूर्व संस्कार को एकबारगी जागृत कर दिया और मैंने निश्चय कर लिया कि जो हो गया सो हो गया, आज मैं उस धूर्त कपटी को समझूँगी।

रात आई! रोज की तरह वह आया और मेरे समाने कुर्सीपर बैठ गया। मैंने उसकी ओर देखा। वह आज अपने असली रूप में था। कोई तीस-पैंतीस साल का आकर्षक और सुन्दर युवक था वह। उसकी मोहक आँखों में विचित्र सा आकर्षण था। मैं करुण स्वर में बोली--'तुम कौन हो?' मुझे रोज इस तरह क्यों परेशान करते हो? क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा? बोलो, बतलाओ मुझे!'

उसका गुलाब की तरह खिला चेहरा एकबारगी कुम्हला गया मगर वह बोला नहीं।

मैं उठकर उसके पैरों पर गिर पड़ी और विचलित स्वर में कहने लगी--'ईश्वर के लिए और न गिराओ मुझे! आखिर किस अपराध का दण्ड देने आते हो तुम मुझे।'

उसका कुम्हलाया हुआ चेहरा लाल हो उठा मेरी बात सुनकर। हिंसा का भाव भी उतर आया उसकी आँखों में। क्रोध भरे स्वर में वह कहने लगा--सुनना चाहती हो तो

सुनो--मैं ईरान का शाहनवाज हूँ, मेरी बीवी बहुत सुन्दर थी, लाखों में एक थी वह, मैं उसे जान से भी ज्यादा चाहता था और प्यार करता था। उसकी हर खुशी पूरी करने को बराबर तैयार रहता था। उसे किसी बात की कमी न थी। शादी के बाद उसे हिन्दुस्तान घूमने की इच्छा हुई। यह लगभग साठ वर्ष पहले की बात है। लाहौर में मेरे एक रिश्तेदार रहते थे। मैंने उन को खत लिखा और जब अपनी बीवी को लेकर हिन्दुस्तान आया तो उन्हीं के घर ठहरा। मेरे रिश्तेदार हिन्दुस्तान की हर जगह और हर शहर से परिचित थे। वे अपने कारोबार के सिलसिले में एक प्रकार से पूरा हिन्दुस्तान घूम चुके थे। उसका एक बेटा था। नाम था अब्दुल कादिर! बड़ा ही हसीन और आकर्षक युवक था वह! उम्र यही रही होगी चौबीस-पचीस साल की। मेरी बीवी से उसका परिचय काफी घनिष्ठ हो गया। मुझे अपनी बीवी पर पूरा भरोसा था इसलिए दोनों की घनिष्ठता को कोई खास महत्व नहीं दिया मैंने। मेरी बीवी बेझिझक कादिर से बातें करती। कभी-कभी हँसी-मजाक भी कर लिया करती। कार में बैठकर उसके साथ घूमने भी चली जाती। सिनेमा के रात का शो भी देखती। मैं कभी दखल न देता।

लाहौर में हम दो महीने रहे। उसके बाद दिल्ली, आगरा और बनारस घूमने की इच्छा हुई। कादिर भी साथ हो लिया। मैंने सोचा, चलो, कादिर के साथ रहने से सुविधा ही रहेगी।

पुनर्जन्म पर विश्वास

काश! मुझे जरा सा भी आभास मिल गया होता कि मेरी बीवी कादिर से प्यार करने लग गई है और कादिर भी उसे चाहने लगा है तो भूलकर भी कादिर को साथ न लेता। खैर, हम सब बनारस आए।

अन्य शहरों की अपेक्षा बनारस बहुत अच्छा लगा मेरी बीवी को। कई महीने बीत गए। वह जाने का नाम ही न लेती। जब मैंने बहुत समझाया तो बोली--'मैं अब यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगी। अपने देश भी नहीं। यहीं कोई मकान खरीद लो। मैं उसी में रहूँगी।' मैं भला क्या जानता था कि इसके पीछे कादिर का हाथ है। मेरे पास पैसों की कमी न थी। अपने साथ काफी जवाहरात और सोना लाया था मैं। तुमको बतला ही चुका हूँ कि अपनी बीवी की खुशी में ही मेरी भी खुशी थी। इसी मकान को खरीद लिया मैंने। उस समय नवाबों का खानदान इसी मुहल्ले में आबाद था इसलिए मुझे किसी बात की परेशानी नहीं थी। कादिर को मैंने कई बार लौट जाने को कहा, मगर वह बार-बार यही कहता कि वह बनारस में बनारसी साड़ी का कारोबार करेगा इसलिए वह यहीं रहेगा।

पर उसका इरादा तो कुछ और ही था। वह तो मेरे जवाहरातों और सोने-चाँदी को हथियाने के साथ-साथ मेरी बीवी को भी हासिल करना चाहता था और उसके इस घृणित इरादे को पूरा करने के लिए मेरी बीवी भी उसका साथ देने को तैयार थी। मगर मैं क्या जानता था कि जिसको मैंने दिल से चाहा, वही मेरे साथ विश्वासघात करेगी।

आखिर एक रात दोनों ने मिलकर मेरी हत्या कर दी इसी कमरे में और इसी मकान के तहखाने में मुझे दफना दिया। वह चुप हो गया। उसकी आँखों में आँसू उतर आये थे। सहमी-सहमी उसकी दर्दभरी कहानी सुनती रही मैं। फिर किसी तरह बोली--'मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है पर इसमें मेरा क्या दोष है?'

'कुछ नहीं' वह कुछ तेजी से बोला। उसकी आँखो में आँसुओं की जगह सहसा ही एक विचित्र सा भाव झलकने लगा था। मैं डर गई। वह तीखे स्वर में बोला--'मेरी हत्या करने के पहले मेरी बीवी ने मुझपर काफी अत्याचार किए थे। मुझे पूरी तरह से विवश कर दिया था दोनों ने। प्यार में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। वह अन्धा हो जाता है। यही हालत मेरी थी। मैं कादिर को अलग कर देना चाहता था मगर इसका कोई उपाय न था। मैंने जादू-टोने का रास्ता अपनाया लेकिन उसमें भी सफलता नहीं मिली। खैर! मैंने मरते समय प्रतिज्ञा की थी कि अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का और अपनी हत्या का बदला मैं अपनी बीवी से अवश्य लूँगा। पर.... उसका स्वर कोमल हो गया..... 'पर तुमको देखकर अपना इरादा बदल दिया मैंने।'

'मुझसे और आपके इरादे का क्या मतलब है?'

वह हो-हो करके एकबारगी हँसने लगा। फिर हँसी रोककर बोला---'तुम पुनर्जन्म पर विश्वास करती हो!'

'हाँ, करती हूँ।'

'तो सुनो, तुम्हीं मेरी बीवी शकीला थी। मैं मुसलमान हूँ। पुनर्जन्म पर मुसलमान विश्वास नहीं करता लेकिन तुमको देखकर मैं पुनर्जन्म पर विश्वास करने लगा हूँ।'

मेरा दिल डूबने लगा। यह कैसे हो सकता है? वह बोला--'इस दुनिया से परे एक और भी दुनिया है। मैं उसी दुनिया का रहने वाला हूँ इसलिए सब कुछ जानता हूँ। शकीला ने जैसे मुझे धोखा दिया था, उसी तरह कादिर ने भी उसको दिया। दो साल बाद जब शकीला के हुस्न और जवानी से उसका दिल भर गया तो एक दिन उसे इसी मकान में अकेली छोड़कर वह माल-मत्ता के साथ लाहौर भाग गया। शकीला को करारा धक्का लगा। अब वह अकेली थी, बिल्कुल निस्सहाय और अनाथ। उसके सामने अँधेरा ही अँधेरा था। वह पागल हो गई।

पड़ोस के एक मुसलमान ने उसके पागलपन का फायदा उठाया और उसे निकाल कर मकान हथिया लिया। मैं चाहता तो उसी समय शकीला से बदला ले सकता था मगर वह स्वयं अपने किए का फल भोग रही थी। आखिर एक दिन उसकी भी मौत हो गई। उसकी लावारिस लाश दो दिनों तक पड़ी रही। आखिर लोगों ने चन्दा उतारकर उसकी लाश को दफन किया। (शकीला की कब्र वाराणसी के विजया टाकीज के निकट के कब्रिस्तान में आज भी विद्यमान है।) इस बात को एक लम्बा अर्सा गुजर गया। तबसे मैं

शकीला की खोज में था। मैं जानता था कि कभी न कभी वह इस मकान में अवश्य आएगी। बदले की आग में जल रहा था मैं। मगर तुमको देखकर मेरी प्रतिहिंसा की भावना खत्म हो गई और मैं तुमसे फिर प्यार करने लगा। आखिर मैंने शकीला से प्यार किया था...'

उसका चेहरा फिर खिल उठा-गुलाब के फूल की तरह। मुस्कराता हुआ बोला--'तुम बिल्कुल शकीला की शक्ल की हो। वही दूधिया बदन, वही नाक-नक्श, वैसे ही घने बाल-काले रेशम जैसे मुलायम, तुम्हारे होंठ....' उसने मेरी ठोढ़ी पकड़कर ऊपर उठाया और झुककर कहा--'वैसे ही रसभरे हैं। तुम्हारी आँखों की नीलिमा में वही गहराइयाँ, वही आकर्षण है। तुम्हारा जिस्म भले ही नमिता का हो मगर रूह शकीला की ही है।'

मैं तड़पकर अलग हो गई।

वह फिर मेरी ओर बढ़ा और बड़े गुस्से में बोला--'तुम्हारे इनकार का नतीजा क्या होगा? तुमको तो छोड़ दिया मैंने मगर तुम्हारे आदमी को नहीं छोड़ूँगा, समझी! तुम्हारा इनकार तुमको विधवा बना देगा। अपना बदला मैं तुम्हारे आदमी से ले लूँगा आज ही इसी वक्त।'

'नहीं, नहीं। भगवान के लिए ऐसा मत करना। मुझे अपनी बरबादी और तबाही मंजूर है पर उन्हें कुछ न करना' और मैं फफक-फफक कर रोने लगी।

उसने मुझे उसी अवस्था में पकड़कर अपने पास खींच लिया और सारी रात मेरे शरीर से खेलता रहा। फिर रोजाना यही होने लगा।

कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं गर्भवती हूँ। हे भगवान अब क्या होगा? उस रात वह आया तो मैंने उसको नई परेशानी बतलाई अपनी। वह बस मुस्कराता रहा। जाने से पहले बोला--'मेरा बदला पूरा हो गया। लो यह मेरी अन्तिम भेंट है।' यह कहकर वह गायब हो गया। मैंने उसकी 'भेंट' को खोलकर देखा--'हीरे-मोती और नीलम का बहुत कीमती हार था। मैंने उसे सम्हालकर रख दिया सन्दूक में। उसके बाद वह फिर कभी नहीं आया। पर जो पाप वह मेरे पेट में छोड़ गया था, वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहा। मैं हमेशा अपने कमरे में पड़ी रहती। चिन्ता और परेशानी के कारण मेरा स्वास्थ्य खराब होता गया।'

दुर्गापूजा पर मेरे पति बनारस आने वाले थे। उनका पत्र जब मुझे मिला तो मेरा मन गहरी चिन्ता में डूब गया। कैसे करूँगी उनका सामना? मैंने उनके साथ विश्वासघात किया है। यह जानकर उनकी मानसिक स्थिति क्या होगी? इसकी कल्पना से मेरा मन सिहर उठा। मेरी विवशता की कहानी पर भला कौन विश्वास करेगा। सब मुझे चरित्रहीन ही कहेंगे और समझेंगे विश्वासघातिनी। बदचलन कहकर मुँह पर थूकेंगे। नहीं.....नहीं...... मैं उनका सामना नहीं कर सकूँगी। इसलिए अपने जीवन का अन्त कर रही हूँ मैं।

पत्र में मैंने जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। यदि विश्वास न हो तो मेरा सन्दूक खोलकर देखें! उसमें कीमती रत्नों के हार पड़े हैं जिन्हें उसने मुझे उपहार के रूप में दिया है। मैं अपनी मृत्यु की स्वयं जिम्मेदार हूँ। मैं अपने साधु जैसे ससुर और देवता जैसे पति से क्षमा चाहती हूँ।

पत्र के अनुसार नमिता का सन्दूक खोलकर देखा गया। उसमें सचमुच कीमती रत्नों के हार मिले जिनकी कीमत उस जमाने में लाखों रुपये थी। मोतियों का एक हार जिसमें अत्यन्त कीमती हीरे का लाकेट लगा था जिसको देखकर आश्चर्यचकित रह गया मैं। तस्वीर में पहने व्यक्ति के हार और लाकेट से वह बिल्कुल मिलता-जुलता था, कहीं भी असमानता नहीं थी।

हाँ! एक बात तो भूल ही गया पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में बताया गया था कि नमिता को छः मास का गर्भ था-मगर मांस के लोथड़े के रूप में।

जिन्नात का प्रतिशोध

रोज की तरह उस रात भी उषा का कमरा इत्र, अगरबत्ती और फूलों की मिली-जुली सुगन्ध से भर उठा। उस समय रात के दो बजे थे। मैं और अवधबिहारी शर्मा सायं से ही इसी समय की प्रतीक्षा में थे। सुगन्ध मिलते ही हम दोनों उषा के कमरे के सामने जाकर खड़े हो गए। दरवाजा भीतर से बन्द था। फाँकों में से झाँककर देखा मैंने। जीरो पावर के बल्ब की मद्धिम रोशनी में मुझे एक धूमाकृति दिखलाई पड़ी। वह एक लम्बे-चौड़े और भारी-भरकम व्यक्ति की आकृति थी। कभी वह उषा के पलंग पर बैठ जाती तो कभी कमरे में टहलने लगती।'

सहसा सोई हुई उषा की आँख खुल गई। उसने हल्के से मुस्कराकर कहा, 'आप आ गए? आपकी ही प्रतीक्षा करते--करते झपकी लग गई थी मुझे। सोचा शायद आप न आएँ आज।'

अब तक वह धूमाकृति पलंग पर उषा के करीब बैठ चुकी थी। फिर हम लोगों ने किसी को कोमल स्वर में कहते सुना--'भला क्यों नहीं आता मैं। तुम्हारे बिना एक पल भी रहना मेरे लिए मुश्किल है।' फिर वही खिलखिलाहट, वही हँसी-मजाक और.....।

स्तब्ध रह गया मैं। जब मुझे शर्मा जी ने ये सारी बातें बतलाई थीं, सहसा मुझे विश्वास नहीं हुआ था। शर्माजी की एकमात्र लड़की थी उषा। सुन्दर, आकर्षक और मृदुभाषिणी तो थी ही, इसके अतिरिक्त प्रथम श्रेणी में एम. ए. थी वह। उम्र यही बाईस-तेईस वर्ष थी।

शर्माजी सूचना विभाग में अधिकारी थे और थे मेरे परम मित्र। वाराणसी में पद सम्हालने के बाद उन्होंने पहला काम किया था, उषा की शादी। इकलौती लड़की होने

के कारण काफी धूमधाम से उसकी शादी की थी और दिल खोलकर दान-दहेज भी दिया था शर्माजी ने। उषा के पति का नाम था सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय। वह बम्बई विश्वविद्यालय में प्राध्यापक था। शादी के तीसरे ही दिन वह बम्बई वापस चला गया था। उसने कहा था, वहाँ फ्लैट मिलते ही आकर पत्नी को ले जाएगा। मगर शादी के एक साल बीत जाने पर भी न फ्लैट मिला और न तो वह वाराणसी ही आया। पर उषा से बराबर पत्र-व्यवहार करता रहा और सान्त्वना देता रहा कि फ्लैट मिलते ही वह बम्बई ले जाएगा उसको।

एक दिन अचानक एक घटना घट गई। अगर वह न घटी होती तो शायद एक बहुत भयानक रहस्य पर से पर्दा भी न उठता। एकाएक उषा बीमार हो गई। तेज बुखार हो आया उसे। ज्वर के ताप में वह बड़बड़ाने लगी। शाम को दवा लेने पर थोड़ा आराम मिला तो वह सो गई।

रात के समय उषा की माँ लीलावती देवी उसके कमरे में यह देखने के लिए गई थीं कि अब उसकी तबीयत कैसी है? पर वह कमरे के सामने पहुँचीं तो दरवाजा बन्द था। पहले कभी उषा दरवाजा बन्द करके नहीं सोती थी इसलिए थोड़ा आश्चर्य हुआ लीलावती देवी को।

फिर सहसा किसी के साथ उषा के हँसने-बोलने की आवाज सुनाई पड़ी। लीलावती देवी एकदम चौंक पड़ीं। इतनी रात को भला कौन है उषा के कमरे में? वह किसके साथ हँस बोल रही है?

उषा! उषा! दरवाजा खोलो। किससे बातें कर रही है तू? दरवाजा भड़भडाती हुई लीलावती देवी फुसफुसाहट भरे कठोर स्वर में बोल पड़ीं। थोड़ी देर बाद कमरे की बत्ती जली, फिर दरवाजा खुला। सामने अलसायी हुई उषा खड़ी थी। उसके बार बिखरे हुए थे और साड़ी अस्त-व्यस्त थी।

लीलावती देवी कमरे में चली गईं। सहसा उनकी नाक में फूलों और इत्र की मिली-जुली सुगन्ध भर गई। आश्चर्य से उन्होंने नजरें घुमाकर चारों तरफ देखा, फिर उषा से पूछने लगीं--'तू किसके साथ बातें कर रही थी? कौन था तेरे कमरे में? बोल जल्दी! कौन था?'

लीलावती देवी को अपनी बेटी और उसके चरित्र पर पूरा भरोसा और विश्वास था। फिर भी उस समय जो कुछ सुना था, उससे सन्देह होना स्वाभाविक था।

उषा ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने एक बार माँ की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखा, फिर धम्म से पलंग पर बैठ गई। लीलावती देवी का सन्देह और पक्का हो गया। उन्होंने सोचा दाल में जरूर कुछ काला है। उस समय तो नहीं, पर दूसरे दिन उषा से काफी पूछताछ की गई। लेकिन एक मौन तो हजारों मौन। उषा ने कुछ नहीं बतलाया। बस वह माँ-बाप की ओर अपलक निहारती रही। सभी हैरान थे। सयानी विवाहिता और पढ़ी-लिखी लड़की को मारपीट कर या धमकाकर भी तो कुछ पूछा नहीं जा सकता था।

उस रात के बाद तो रोज ही रात म उषा के कमरे का दरवाजा बन्द मिलने लगा। उस समय कमरे का वातावरण सुगन्धमय हो उठता। कभी-कभी किसी के साथ उषा के हँसने-बोलने की भी आवाज सुनाई पड़ने लगी। लेकिन लाख पूछने पर भी उषा कुछ न बतलाती।

दिन पर दिन उसकी कंचन जैसी काया पीली पड़ती जा रही थी। आँखें धँसती जा रही थीं। खिले हुए गुलाब के फूल जैसा उसका सुन्दर चेहरा मुरझाने लगा था। आँखें हर समय लाल रहने लगी थीं। बोलना और लोगों से मिलना-जुलना भी बहुत कम होने लगा था। हर समय अपने कमरे में ही पड़ी रहती थी पलंग पर।

एक दिन शर्मा जी ने ये सारी बातें मुझे बतलाईं। सुनकर मुझे भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। आखिर मैंने उनसे उषा को बुलवाने के लिए कह दिया। एकान्त में काफी घुमा-फिराकर पूछने पर उषा ने संकोच भरे स्वर में मुझको जो कुछ बतलाया, उसे सुनकर मेरा मन अविश्वास और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से भर गया।

एक महीने से रोज रात को लगभग दो बजे उषा से मिलने सुरेन्द्र आता है। भला यह कैसे सम्भव है? अगर वह एक महीने से वाराणसी में ही है तो अपने सास-ससुर से मिलने क्यों नहीं आया? इस तरह लुक-छिपकर आधी रात को पत्नी से मिलने की क्या जरूरत थी जबकि उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था? इतने दिन हो गए, उसपर घरवालों की नजर क्यों नहीं पड़ी? किस रास्ते से आता है वह? ये सारे प्रश्न मेरे मन में एक-एक कर उभरने लगे। उषा से पूछना बेकार था, क्योंकि इन तमाम प्रश्नों के उत्तर में उसके पास सिर्फ 'मौन' था।

अवधबिहारी शर्मा को ये सारी बातें नहीं बतलाई मैंने। मैं स्वयं सब कुछ अपनी आँखों से देखना चाहता था और जब मैंने देखा तो एकदम हतप्रभ सा हो गया। समझते देर न लगी मुझे। किसी जिन्न के कब्जे में थी उषा। वही जिन्न सुरेन्द्र के रूप में रोज रात में उससे मिलने आया करता था। उषा को क्या मालूम कि पति के वेश में कोई शैतान उसके युवा शरीर और मादक सौन्दर्य का उपभोग जी भरकर कर रहा है।

मैं अभी सोच ही रहा था कि वह धूमाकृति सहसा पार्थिव शरीर में बदल गयी। अब एकदम सुरेन्द्र के रूप में वह जिन्न मेरी आँखों के सामने था। फिर उसने जो लीला शुरू की, वह मुझसे नहीं देखी गई।

जब मैंने शर्माजी को ये सारी बातें बतलाईं और कहा कि सुरेन्द्र की शक्ल में कोई जिन्न उषा के पीछे लग गया है तो सहसा उन्हें भी विश्वास नहीं हुआ। लेकिन लीलावती देवी को इस बात का पता चला तो रोने लगीं वह।

उषा की हालत दिनोंदिन बिगड़ती ही जा रही थी। लगता था, मानों कोई पिचकारी से उसके शरीर का सारा खून चूस ले रहा है।

मैं तान्त्रिक तो नहीं हूँ मगर उस समय तन्त्रशास्त्र मेरे अध्ययन का रुचिकर विषय अवश्य था। इस दिशा में मेरे गुरु थे उस समय वाराणसी के प्रसिद्ध साधक भवानीशंकर भादुड़ी। वह वाराणसी के नारदघाट पर रहते थे। जब मैंने यह सारी घटना उनको सुनाई तो वे भी गम्भीर हो गए, थोड़ी देर बाद उन्होंने गम्भीर स्वर में बतलाया कि पुनर्जन्म को न मानने के कारण मुसलमानों की प्रेतात्माएँ अतृप्त वासना और कामना लिए हुए इधर-उधर भटकती रहती हैं। प्रेत-योनि की एक खास अवधि पूरी होने के बाद उनमें एक विशेष प्रकार की अदम्य शक्ति आ जाती है। उसी शक्ति के कारण उन्हें जिन्नात कहा जाता है, हम जिसे 'प्रेत' कहते हैं उसी को उर्दू अथवा अरबी भाषा में 'जिन्न' कहते हैं। एक जिन्नात में सैंकड़ों जिन्नों का बल होता है। उनकी आयु हजारों वर्ष की होती है। आयु के अनुसार उनकी अपनी शक्ति भी बढ़ती जाती है। जिन्नात की इच्छा बड़ी प्रबल होती है।

कमाल साहब की रूह

जिन्नात की गति-मति भी विलक्षण होती है। और वे अपनी इच्छाशक्ति से असम्भव से असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ होते हैं। सुरेन्द्र का रूप धारण कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है उनके लिए, मगर इसके पीछे अवश्य कोई गम्भीर रहस्य है। बिना किसी खास कारण के जिन्नात किसी इन्सान रूप धारण करके किसी औरत का उपयोग नहीं कर सकते।

भादुड़ी महाशय से जब मैंने उषा की बाधा दूर करने की याचना की तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि वे तन्त्र के सात्विक मार्ग के उपासक हैं इसलिए असमर्थ हैं। मगर मैंने हार नहीं मानी। प्रयत्न में बराबर लगा रहा। अन्त में एक दिन भादुड़ी महाशय ने मुझे एक अरबी मन्त्र दिया और उसकी क्रिया और विधि भी समझाई। उसी के अनुसार मैं काम करने लगा। एक बृहस्पतिवार और एक शुक्रवार निकल गया, कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। लेकिन दूसरे बृहस्पतिवार की रात में एक विचित्र घटना घटी। उस समय मैं भादुड़ी महाशय की बतलाई हुई विधि के अनुसार क्रिया कर रहा था। तभी अचानक मेरे कमरे का वातावरण फूल, धूपबत्ती और इत्र की सुगन्ध से भर उठा। वह सुगन्ध वैसी ही थी जैसी मैंने उषा के कमरे के समीप अनुभव की थी।

अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि दूसरे क्षण भीतर से बन्द कमरे का दरवाजा अपने आप फटाक से खुल गया। चौंककर मैंने जब उस ओर देखा तो एकदम स्तब्ध रह गया। मेरे सामने उषा खड़ी थी। उसकी आँखें गूलर की तरह लाल थीं और चेहरा सुर्ख था।

पहले तो मैं उसे देखकर सहम सा गया, फिर सम्हलकर बोला 'इस समय तुम यहाँ कैसे आई अकेली?'

'तुमने बुलाया तो आना पड़ा। क्या चाहते हो? बोलो किसलिए बुलाया है तुमने मुझको?'

हे भगवान! उषा का स्वर नहीं था वह! बोलने का ढंग भी उसका अपना नहीं था। वह किसी मर्द का स्वर था। बोलने में भी मर्दानापन था। उषा मुझे चाचाजी कहती थी। 'तुम' शब्द का प्रयोग उसके लिए असम्भव था। दूसरे ही क्षण मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। वह निश्चय ही उषा पर सवार जिन्नात का स्वर था।

तुरन्त नौकर भेजकर मैंने शर्माजी को बुलाया। वे भागे-भागे आए तो मालूम हुआ कि उषा शाम से ही घर से गायब थी। खोजते-खोजते लोग परेशान हो गए थे। वस्तुस्थिति समझ गया मैं। मन्त्र-शक्ति से आकर्षित होकर जिन्नात खिंचा हुआ मेरे पास चला आया था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उषा ने मेरा मकान भी पहले कभी नहीं देखा था। वह मेरे यहाँ कभी आई ही नहीं थी। कुछ देरतक तो वह मेरी ओर घूरती रही, फिर एकाएक पलटी और कमरे के बाहर जाने लगी। मैं और शर्मा जी भी उसके पीछे लपके।

रात के दस बजे थे उस समय। दिसम्बर की महीना था। कुहरे से आच्छन्न सड़क, चारों तरफ गहरा सन्नाटा। आगे-आगे उषा और उसके पीछे-पीछे लपके जा रहे हम लोग। अजीब स्थिति थी। मैंने शर्माजी से कहा--'देखना है कि वह कहाँ जाती है? जरूर कोई रहस्य है इसमें।'

मेरा अनुमान सही निकला। उषा शहर के बाहर जाकर एक खण्डहरनुमा मकान के सामने बनी एक टूटी-फूटी कब्र से लिपट गई। उस समय वह बिलख-बिलख कर बड़े करुण स्वर में रो रही थी। निर्जन सुनसान इलाका था। चारों ओर मरघट जैसी उदासी छाई हुई थी। ....तो यही था रहस्य।

मगर कब्र से लिपट कर रोने की बात समझ में नहीं आई हम दोनों को। उसी समय कब्रिस्तान का बूढ़ा चौकीदार अब्दुल मजीद हाथ में लालटेन लिए हुए सामने से आता दिखलाई पड़ा। वह मुझे पहचानता था। सलाम करके बोला--'क्या माजरा है पण्डित जी!'

मैंन शुरू से लेकर अन्त तक की सारी कथा सुना दी मजीद मियाँ को। सुनकर वह भी सन्न रह गया। फिर खाँसते हुए उसने फुसफुसा कर जैसे अपने आप से कहा--'या खुदा! क्या फिर कमाल साहब की रूह जाग गई?'

'कमाल साहब कौन हैं'? मैंने पूछा।

उस वक्त मजीद मियाँ ने कुछ नहीं बतलाया, सिर्फ इतना ही कहा--'रात ज्यादा हो गई है। अभी बेटी को ले जाइए। कल किसी समय आप तशरीफ ले आएँ तो सब बतला दूँगा।' दूसरे दिन मजीद मियाँ ने जो कहानी सुनाई वह, अजीबोगरीब तो थी ही, एक हद तक अविश्वसनीय भी थी। संक्षेप में ही सुनाऊँगा मैं उसे।

मजीद मियाँ ने बतलाया कि यह कब्र कमाल साहब की है। करीब सौ साल पहले वह हजरत इसी जगह दफन हुए थे। अपने जमाने के बड़े शौकीन मिजाज और अय्याश

तबीयत के थे कमाल साहब। चार अदद बीवियाँ तो थीं ही, इनके अलावा कई रखैलें भी थीं। अपने वालिद के इकलौते औलाद थे। काफी दौलत थी। बाप के मरने के बाद दोनों हाथों से अय्याशी में खर्च करने लगे हजरत! कोई रोकने-टोकने वाला था नहीं। जवानी की ढलान पर कमाल मियाँ जी-जान से एक नाचने वाली पर फिदा हो गए। उस नाचने वाली का नाम था चमेली बाई। सचमुच चमेली का फूल ही थी वह। क्या गजब का हुस्न था। इतनी हसीन कि जन्नत की परियाँ भी उसके सामने पानी भरें।

चमेली बाई का कोठा दालमण्डी में था। जमीन पर साँझ की स्याही उतरते ही उसका कोठा बनारस के रईसजादों से भर जाता था। घुँघरुओं की झनकार के साथ तबले ठनकने लगते। बेला, चमेली, जूही के फूलों और इत्रों की खुशबुओं से रंगीन रात गमक-महक उठती थी। चाँदी के गिलास में सुरा ढालकर जब अपने मेंहदी लगे कोमल हाथों से वह पेश करती तो रईसजादे अपने को खुशकिस्मत समझते।

न जाने कैसे कमाल साहब को भनक लग गई चमेली बाई के हुस्न की। फिर उन्होंने देर नहीं की। फौरन चाँदी की थाली में एक हजार गंगा-जमुनी सिक्के रेशमी रुमाल से ढँककर नजराने के रूप में चमेली बाई के पास भेज दिया।

'गंगा-जमुनी से क्या मतलब?' मैंने बीच में टोककर पूछा।

'सोने-चाँदी के मिले-जुले सिक्कों को उस जमाने में गंगा-जमुनी कहते थे। उसे खास मौकों पर नजराने के रूप में पेश किया जाता था' मजीद मियाँ ने बतलाया 'चमेली बाई पहले से ही कमाल साहब की अय्याश-मिजाजी और जिन्दादिली से वाकिफ थी। उसने मुस्कराकर नजराना कबूल कर लिया। फिर एक दिन कमाल साहब के गले का हार बनकर झूल गई वह। कमाल साहब के अधेड़ जिस्म में सिहरन दौड़ गई। चमेली बाई के अनार के फूल जैसे कोमल और लाल होठों को उन्होंने आहिस्ते से चूम लिया।'

दिन बीतने लगे! साँझ होते ही चमेली बाई की सजी-धजी पालकी कमाल साहब की कोठी के फाटक पर उतरने लगी। फिर रात रंगीन हो उठती। नशे में धुत कमाल साहब पूरी रात चमेली बाई की गोद में पड़े रहते।

धीरे-धीरे बर्बाद होने लग गए कमाल साहब मगर हुस्न की मलिका चमेली बाई आबाद होने लग गई। जब दौलत खत्म हो गई तो जमीन-जायदाद बिकने लगी। फिर एक ऐसा वक्त आया कि आप सामने जो कोठी का खण्डहर देख रहे हैं न, इसे छोड़कर कमाल साहब का सब कुछ बिक गया। ऐसे मामलों में अक्सर जैसा होता है, वही हुआ।

कमाल साहब बूढ़े तो हो ही चले थे, अत्यधिक सुरा-सुन्दरी के सेवन से शरीर और जर्जर हो चुका था। आखिर चमेली बाई की बेवफाई के सदमे को बर्दाश्त नहीं कर सके और एक रात इसी कोठी में दम तोड़ दिया उन्होंने। मरते वक्त उनके पास न एक फूटी कौड़ी थी और न अपना कोई नाते-रिश्तेदार था। चमेली बाई के कारण उनकी

बीवियाँ और रखैलें पहले ही उन्हें छोड़कर चली गईं थी। औलाद कोई हुई ही नहीं थी। उनकी यादगार के रूप में बस कमाल साहब की अय्याशी और जिन्दादिली के साथ-साथ चमेली बाई की बेवफाई की कहानी सुनानेवाला यह खण्डहर ही रह गया अब।

पूरी कहानी सुनाकर मजीद मियाँ उदास नजरों से कमाल साहब की कब्र की ओर देखने लगा, जैसे अपने आप से बोला--'मगर पण्डित जी! कमाल साहब की रूह को जन्नत में भी शान्ति नहीं मिली। कभी-कभी उनकी रूह कब्र में जाग जाती है, फिर कई-कई दिनों तक भटकती रहती है कोठी के खण्डहर में।'

साँझ की स्याह कालिमा कोठी के सिसकते हुए खण्डहर और टूटी-फूटी कब्र पर फैल चुकी थी। मेरा मन न जाने कैसा हो गया था। लेकिन सोच रहा था कि इस करुण कथा से उषा का क्या सम्बन्ध है? क्यों कमाल साहब की रूह परेशान कर रही है उसे? फिर मेरे सामने एक प्रश्न उभरा--आखिर क्यों? सहसा मेरे कानों में एक विचित्र आवाज सुनाई दी। लगा, जैसे कोई मरता व्यक्ति कराह रहा हो। धीरे-धीरे वह वेदनाभरी आवाज ऊँची होती गई। मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से मजीद मियाँ की ओर देखा, वह कुछ बोला नहीं।

अकस्मात् आवाज आनी बन्द हो गई और वातावरण में एक भयानक नीरवता छा गई। उस समय आकाश में बादल घिरे हुए थे। सर्दी बढ़ने लगी थी। सहसा वातावरण में एक भयानक चीख उभरी और फिर रोने की आवाज सुनाई दी। मैं टार्च जलाकर खण्डहर की ओर लपका। रोने की आवाज उधर से ही आ रही थी।

'रुक जाइए पण्डित जी।' मजीद मियाँ की आवाज सुनाई दी। 'इस वक्त उधर जाना खतरे से खाली नहीं है। कमाल साहब की रूह भटक रही है।'

मगर मैं रुका नहीं। न जाने कौन सी शक्ति खींच रही थी मुझे उधर। खण्डहर के भीतर पहुँचने पर मुझे महसूस हुआ कि कोई जोर-जोर से साँस ले रहा है। मैंने चारों ओर टार्च की रोशनी फेंकी, लेकिन कोई नहीं दिखा।

सहसा फिर एक करुण चीख गूँज उठी। टार्च की तेज रोशनी के साथ ही मेरी नजर भी उस ओर घूम गई। एकदम मेरे रोंगटे खड़े हो गए। देखा-सामने एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति खण्डहर की धूल से भरी टूटी-फूटी सीढ़ियाँ उतर रहा था। वह तंजेब का कुर्ता पहने था, सिरपर ईरानी टोपी और हाथ में चाँदी की मूँठवाली छड़ी थी। मैंने रोशनी में चेहरा साफ-साफ देखा, खूब रोबदार था। आँखें बड़ी-बड़ी थीं। मूँछें घनी और नुकीली थीं। नीचे का जबड़ा लटका हुआ था।

एकाएक साँय-साँय करते हुए निस्तब्ध वातावरण में इत्र और फूलों की मिली-जुली भीनी-भीनी सुगन्ध तैर गई। फिर वहाँ एक क्षण भी रुका नहीं मैं। तुरन्त ही वापस लौट आया। उस समय मजीद अफीम की गोली जमाकर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। मुझे देखते ही वह बोला-'अब आप एक लम्हा भी यहाँ मत ठहरिए, वरना भारी मुसीबत में फँस जाएँगे। जिन्नात बड़ी बुरी तरह बदला लेते हैं पण्डित जी।...... आप जाइए'

'मगर मजीद मियाँ! मैं और भी बहुत कुछ जानना चाहता हूँ। वह लड़की बहुत खतरनाक हालत से गुजर रही है।'

मैं इस मामले में आपकी कोई मदद नहीं कर सकता। टका-सा जवाब देते हुए मजीद ने कहा। मगर मुझे उस समय ऐसा लगा, मानों मजीद कुछ छिपा रहा है।

शुरू से ही मेरी खोजी-प्रवृत्ति रही है। ऐसे रहस्य जब तक अनावृत्त नहीं हो जाते तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलती। जी-जान से जुट गया मैं। भादुड़ी महाशय ने एक तावीज दी थी, जिससे काफी राहत थी उषा को।

आखिर मेरा प्रयत्न सफल हुआ। मजीद के भी खानदान का एक व्यक्ति चमेली बाई का आशिक था। बाद में उसने चमेली बाई से शादी कर ली। उस व्यक्ति का चमेली बाई से शादी के बाद का एक बड़ा सा फोटोग्राफ था जो मुझे मिल गया। फोटोग्राफ देखते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं। चमेली बाई की शक्ल हू-ब-हू उषा से मिलती-जुलती थी। कहीं कोई फर्क नहीं था। बस कहीं कोई फर्क था तो उम्र में। ऐसा लगता था मानों उषा ही उस व्यक्ति के साथ बैठी है।... तो क्या चमेली बाई की आत्मा ने उषा के रूप में जन्म लिया है? क्या यह सम्भव है?

जब मैंने भादुड़ी महाशय को फोटो दिखाकर अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने स्वीकृति से सिर हिलाकर कहा--'हाँ! यह सम्भव है और यह भी सम्भव है कि शायद इसी कारण कमाल साहब की अतृप्त आत्मा सुरेन्द्र के रूप में उषा को परेशान कर रही हो?'

'मगर इन सारी बातों का समाधान कैसे होगा?' मैंने पूछा।

'आवाहान से।' भादुड़ी महाशय बोले--'आवाहन करने पर सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा। तभी कमाल साहब की भटकती हुई आत्मा से उषा को मुक्ति मिल सकेगी।' निश्चित दिन भादुड़ी महाशय ने मुझे आवाहन की क्रिया और उसकी विधि बतला दी और जब मैंने उसके अनुसार सब किया तो कमाल साहब की रूह फौरन आ गई उषा के शरीर में। उसकी आँखें लाल हो गईं और पूरा शरीर काँपने लगा।

रूह ने जो कुछ बतलाया, उसको सुनकर दंग रह गया मैं। सचमुच चमेली बाई की आत्मा ने उषा के रूप में जन्म लिया था। जिन्न, जिन्नात या प्रेतों का अपना एक खास दायरा और एक खास सीमा होती है। उषा वाराणसी आते ही कमाल साहब की भटकती रूह के दायरे में आ गई। शरीर भले ही उषा का था, मगर आत्मा तो चमेली बाई की ही थी जिसे कमाल साहब की रूह ने पहचान लिया। लगभग अस्सी वर्ष बाद मिली थी चमेली बाई उषा के रूप में। उसकी बेवफाई के कारण कमाल साहब की अतृप्त रूह में एकदम प्रतिशोध की आग धधक उठी। इसी बीच उषा की शादी हो गई। इस शादी ने

प्रतिशोध की आग में घी का काम किया। मन्त्रपूरित जलका छींटा पड़ते ही कमाल साहब की रूह तिलमिला उठी। चीखकर बोली--'इस हरामजादी को कभी नहीं छोड़ूँगा अब मैं.... इसने मेरी जिन्दगी बरबाद कर दी..... सारी दौलत लूट ली... आखिर में मुझे धोखा दिया....इसे मारकर मैं अपने साथ ले जाऊँगा.... मैं नहीं छोड़ूँगा.. नही छोड़ूँगा.... नहीं छोड़ूँगा.... ताकि यह भी मरने के बाद मेरी तरह बेपनाह भटके और मेरी तरह रूहानी दुनिया की तमाम यातनाओं को भुगते.....।'

मैं एकबारगी घबरा गया। समझ में नहीं आया कि करूँ क्या? शर्मा जी भी चिन्तित हो उठे। उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सहसा दरवाजे पर एक टैक्सी आकर खड़ी हुई। उसमें से सुरेन्द्र उतरा। बिना किसी पूर्वसूचना के एकाएक उसे आया देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो उठे। सुरेन्द्र को फ्लैट मिल गया था और वह उषा को लेने आया था। मगर मैंने महसूस किया कि सुरेन्द्र की गतिविधि और उसका स्वभाव पहले जैसा नहीं था। ऐसा लगा जैसा उसने शराब पी रखी हो। दूसरी बात यह कि कमरे में उसके घुसते ही पूर्व परिचित फूलों और इत्र की मिली-जुली सुगन्ध तैर गई थी वातावरण में सहसा। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि सुरेन्द्र के आते ही उषा भी एकदम से स्वस्थ हो गई।

एक सप्ताह बाद उषा सुरेन्द्र के साथ बम्बई चली गई। मगर अपने पीछे कई रहस्यमय प्रश्न छोड़ गई। मैं उलझ गया उन प्रश्नों के जाल में।

अभी मेरा समाधान हुआ भी नहीं था कि एक भयंकर वज्रपात हुआ। एक दिन ट्रंककाल से खबर मिली कि एक कार दुर्घटना में सुरेन्द्र और उषा-दोनों की मृत्यु हो गई घटनास्थल पर ही।

रहस्य और भी गहरा गया। जब मैंने ये सारी बातें भादुड़ी महाशय को बतलाई तो सुनकर वे भी एकबारगी स्तब्ध रह गए। फिर बोले--'हे माँ! आखिर उस कामुक पिशाच ने प्रतिशोध ले ही लिया।'

बाद में भादुड़ी महाशय ने ही रहस्यों पर से काला पर्दा हटाया। उन्होंने बतलाया कि उस समय सुरेन्द्र वाराणसी न आया होता तो मृत्यु की घटना न घटती। दोनों की इस प्रकार दारुण मृत्यु न होती, कदापि नहीं। कमाल साहब की रूह बदला लेने के चक्कर में तो थी ही। सुरेन्द्र के वाराणसी आते ही उस कामुक की रूह उस पर आक्रमण कर बैठी। अब तक वह सुरेन्द्र के रूप में उषा से मिलती थी, लेकिन जब उस समय सुरेन्द्र स्वयं आ गया तो उस बदमाश की रूह उसी के शरीर में प्रवेश कर गई। तभी तो सुरेन्द्र की मति-गति अस्वाभाविक लगी थी। भीनी-भीनी सुगन्ध भी फैल गई थी वातावरण में।

भादुड़ी महाशय ने बतलाया कि कार दुर्घटना भी कमाल साहब की रूह ने ही करवाई थी। यह सुनकर स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। खैर कहानी तो खत्म हो गई,

लेकिन कमाल साहब की कोठी के खण्डहर में आज भी कभी-कभी रात के सन्नाटे में मर्दानी आवाज के साथ एक औरत के चीखने-चिल्लाने और अन्त में रोने की आवाज सुनाई पड़ती है।

जब वह मरने के बाद मिली

भूत-प्रेत की अनेक कहानियाँ आपने पढ़ी और सुनी होंगी। औघड़ों-तान्त्रिकों के चमत्कारों की भी तमाम विश्वसनीय, अविश्वसनीय घटनाएँ देखी-सुनी होंगी। मगर क्या कभी आपने इस पर भी विचार किया है कि भूत-प्रेतों की मति-गति क्या है? उनकी अवस्था या उनकी स्थिति कैसी होती है? इसके अतिरिक्त इस तथ्य पर भी क्या आपने कभी विचार किया है कि अशरीरी आत्माओं की सहायता से विभिन्न प्रकार के चमत्कार दिखाने वाले औघड़ों-तान्त्रिकों के पास प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध शक्ति कहाँ से आ जाती है? मैंने इन्हीं सबको समझने के लिए स्वतन्त्र रूप से 'प्रेत विद्या' पर शोध और अन्वेषण कार्य शुरू किया था।

अन्य शास्त्रों की तरह 'तन्त्र' भी एक शास्त्र है। इस परम शास्त्र के दो पक्ष हैं। पहला पक्ष तन्त्र के दार्शनिक, आध्यात्मिक और यौगिक स्वरूप का प्रतिपादन करता है। दूसरा पक्ष प्रतिपादन करता है तन्त्र के क्रिया स्वरूप का। मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण और शान्तिकर्म-ये षट् कर्मसाधन इसी दूसरे पक्ष के अन्तर्भूत हैं।

वास्तव में तन्त्र का यह पक्ष पूर्ण रूप से प्रतिवाहक शक्तियों पर आधारित पूर्ण परामनोवैज्ञानिक है और इसके अन्तर्गत ६४ विद्याएँ हैं। वे ६४ विद्याएँ कौन-कौन सी हैं, इसका विस्तृत उल्लेख मैंने पुस्तक 'मारणपात्र' में किया है। खैर उन ६४ विद्याओं में एक विद्या है 'प्रेत विद्या।'

पूर्व और पश्चिम के परामनोवैज्ञानिक जहाँ एक ओर अचेतन मन की असीम और रहस्यमई शक्तियों पर व्यापक रूप से खोज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर प्रेत विद्या पर भी गहराई से अनुसन्धान कर रहे हैं। जैसा कि बतलाया जा चुका है, परामनोविज्ञान को 'विज्ञान' की परिधि में लाने का सर्वप्रथम प्रयास सन् १८८२ में लन्दन में 'सोसायटी फार साइकिकल रिसर्च' की स्थापना से हुआ। इसके बाद सन् १८८५ में 'अमेरिकन सोसायटी फार साइकिकल रिसर्च' की स्थापना हुई पर उसे वैज्ञानिक मान्यता मिली सन् १९७१ में।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'प्रेत' है क्या? वास्तव में मरने के बाद तुरन्त जो अवस्था प्राप्त होती है, वही प्रेत की अवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति मरने के बाद कुछ समय के लिए प्रेतावस्था को अवश्य उपलब्ध होता है, यह निर्विवाद सत्य है।

प्रेतावस्था स्थिति और उसके जीवन को समझने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि स्थूल शरीर, स्थूल जीवन और स्थूल जगत ही सब कुछ नहीं है। जब तक स्थूल शरीर है, तभी तक स्थूल जीवन और जगत है। संसार में लोग शरीर को ही पैदा होते

देखते हैं और चिता पर जलते हुए भी उसी को देखते हैं। स्वयं जन्म लेने वाला और मरने वाला यह समझ नहीं पाता कि वह है कौन? इसी का समुचित उत्तर पाने के लिए मैंने प्रेत विद्या पर प्रकाशित, अप्रकाशित तमाम पुस्तकें पढ़ डालीं। न जाने कितने औघड़ों और तान्त्रिकों, योगियों आदि से भी मिला। इतना ही नहीं, भूत-प्रेत से सम्बन्धित न जाने कितनी जीवन-मरणदायिनी, भयानक साधना भी की मगर बन्धु, न सन्तोष मिला और न तो मिली तृप्ति। सफलता तो कोसों दूर रही। मैं हार-थककर बैठने वाला ही था कि अचानक मेरी भेंट एक महातान्त्रिक से हो गई। नाम था परिमल कान्ति घोष। घोष महाशय प्रेत विद्या के मर्मज्ञ तो थे ही, इसके अलावा कई प्रकार की प्रेत सिद्धियाँ भी उन्हें उपलब्ध थीं। काशी के मानसरोवर मुहल्ले में किराए के एक मकान में रहते थे। परिवार में कोई नहीं था, अकेले थे। पूरे दिन अपने कमरे में भीतर से दरवाजा बन्द कर न जाने क्या करते थे। लेकिन साँझ होते ही श्मशान की ओर निकल जाते थे और भोर के समय वापस लौटते। मैंने शुरू से अन्त तक अपनी सारी कथा उन्हें सुना डाली और अन्त में अपनी जिज्ञासा और कौतुहल की भी चर्चा की।

घोष महाशय चुपचाप सब कुछ सुने। बोले, इन सब पचड़े में मत पड़ो। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? पढ़ो-लिखो, माता-पिता की सेवा करो, लोक-परलोक सुधारने का प्रयास करो। बस यही तुम्हारे लिए बहुत है।

मैं हार मानने वाला नहीं था। समझते देर न लगी मुझे, घोष महाशय उपदेश का गंगाजल पिलाकर टरकाना चाहते थे मुझे। मगर मैंने पीछा नहीं छोड़ा महाशय का। लगा रहा पीछे। सुना था कारण वारि यानी मदिरा के भक्त हैं महाशय। मदिरा देखकर प्रसन्न हो उठते हैं। एक दिन पहुँच गया मैं मदिरा की बोतल लेकर। देखते ही गद्गद हो उठे प्रेत-साधक महोदय। पूरी बोतल खाली करते देर न लगी। नशा गहराने लगा और आँखें गूलर की तरह लाल हो गईं। भर्राये स्वर में कहने लगे--मनुष्य के शरीर में पाँचों तत्वों के सम्मिश्रण से बना एक विशेष प्रकार का रासायनिक तत्व होता है। वह विशेष तत्व 'मृत्यु के समय आत्मा' को अपने आवरण में लेकर बाहर निकलता है। वैज्ञानिक लोगों ने उसे 'प्लाज्मा' नाम दिया है। प्लाज्मा अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है जीवन की, समझ गए न! यह भी बतला दूँ तुझे जिस व्यक्ति के शरीर में प्लाज्मा की मात्रा अधिक होती है, उसके प्रति प्रेतात्माएँ स्वतः आकर्षित होती हैं और समय-समय पर उसकी आवश्यक सहायता भी करती हैं। ऐसे ही व्यक्ति तान्त्रिक क्रिया के बल पर प्रेतों पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं और उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्य भी ले सकते हैं। सत्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों प्रकार की प्रेतात्माएँ होती हैं। इन तीनों प्रकार प्रेतात्माओं से मनचाहा काम लेने की अपनी अलग-अलग विधियाँ हैं। लेकिन यह सब सुनकर आखिर तू करेगा ही क्या? प्लाज्मा की अधिकता न होने से ही तो असफल रहा। 'प्लाज्मा को बढ़ाने का कोई उपाय तो होगा ही।' मैंने पूछा?

'है, लेकिन तू कर सकेगा उपाय?' घोष महाशय, शेष बची मदिरा को हलक के नीचे उतारते हुए बोले।

'क्यों नहीं, आप बतलाइए भी।' जरा सहिष्णु होकर बोला मैं।

प्लाज्मा को बढ़ाने की क्रिया तो थी अति कठिन, लेकिन मैं सफल हो गया उसमें।

विचित्र अनुभूति

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि प्लाज्मा के अधिक मात्रा में बढ़ जाने के फलस्वरूप शरीर का तापमान १०१ डिग्री हमेशा बना रहता है। व्यक्ति अपने भीतर एक विचित्र प्रकार की ऊर्जा का अनुभव बराबर करता रहता है। ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। मेरे शरीर का तापमान हमेशा १०१ डिग्री रहने लगा मगर मुझे अपने भीतर जो एक विशेष प्रकार की अनुभूति होती थी, उसे मैं बतला नहीं सकता। शब्द नहीं है उस विचित्र अनुभूति को व्यक्त करने के लिए।

उन दिनों मेरे चिन्तन-मनन का स्थान काशी का लाली घाट था। लाली घाट की धूलभरी सीढ़ियों पर बैठा रहता था न जाने कब तक। रात कितनी गुजर गई, पता ही नहीं चलता था। रोज की तरह उस रात में भी बैठा था मैं लाली घाट की सीढ़ियों पर। वातावरण में गहरी नीरवता छायी हुई थी। बगल में हरिश्चन्द्र घाट पर कोई चिता जल रही थी, उसी की ओर अपलक निहार रहा था मैं।

रात धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी और उसके साथ नीरवता भी। सहसा मेरी नजर एक नारी की छाया पर पड़ी। धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ती आ रही थी वह। फिर बिल्कुल मेरे सामने आकर खड़ी हो गई वह। एकबारगी अचकचा गया मैं। सहम कर पूछा--'कौन हैं आप? क्या चाहती हैं मुझसे?'

उत्तर देने के बजाय वह खिलखिलाकर हँसने लगी। बड़ी विचित्र लगी उसकी हँसी। हँस लेने के बाद धीमे स्वर में बोली--'आपने मुझे पहचाना नहीं? मैं जवा हूँ! जवा।'

'कौन जवा?'

'अरे! नाम भी भूल गए आप मेरा। मैं आपके पड़ोस में रहती थी अपने मामा-मामी के साथ। आप मुझे ट्यूशन पढ़ाते थे। ..... अब याद आया कुछ!'

सहसा मस्तिष्क को झटका लगा। याद आ गया सब कुछ। मेरे पड़ोस में एक सज्जन रहते थे। नाम था हरिमोहन चतुर्वेदी। बड़े ही सज्जन, सौम्य और बड़े ही मिलनसार। रहने वाले इन्दौर के थे। बनारस में नौकरी करते थे। जवा उनकी भांजी थी। मेरे परिवार से चतुर्वेदी जी के परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध था इसलिए जवा का भी मेरे यहाँ आना-जाना था। इण्टर की छात्रा थी वह लेकिन पढ़ने-लिखने में कमजोर। किसी तरह बी. ए.

किया उसने और फिर चली गई अपने घर। तीन-चार साल बाद चतुर्वेदी जी भी रिटायर हो गए और इन्दौर चले गए। बाद में पता चला कि जवा की शादी हो गई। फिर एक दीर्घ अन्तराल।

कश्मीरी थी जवा। कश्मीर का सारा सौन्दर्य भरा था उसके रूप में। बिजली जैसी दाहक चमकवाली उस रूपसी ने निश्चय ही मेरे जीवन को अपने लक-दक उजाले से एकबारगी उद्‌भासित कर दिया था, इसमें सन्देह नहीं। उद्दाम यौवन से तरंगित उसकी छवि में न जाने कौन सा आकर्षण था जिसके वशीभूत हो गया था मैं कुछ समय के लिए।......लेकिन सब कुछ भूल गया मैं उस दीर्घ अन्तराल में। धीरे-धीरे जीवन अन्तर्मुखी होता चला गया और उसी के साथ जीवन और जगत के प्रति मोह-माया समाप्त होती चली गई। सर्वत्र शून्य के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रह गया जीवन में। इतने वर्षों बाद अब यह अप्रत्याशित मिलन! आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। एक साथ कई प्रश्न कर बैठा-कैसे आई? कब आई? कहाँ ठहरी हो? इतनी रात को यहाँ कैसे?

'रूपा को जानते हैं न?'

'कौन रूपा?'

'वही मेरी सहेली, जो मेरे साथ पढ़ती थी।'

'हाँ याद आया।'

'चार-पाँच दिन पहले आना हुआ है। रूपा के यहाँ ही ठहरी हुई हूँ। आपके घर गई थी। पता चला कि आप यहाँ बैठे हुए हैं। इसलिए आपसे मिलने यहाँ चली आई।' फिर थोड़ा रुककर उदास स्वर में आगे कहने लगी वह--'जबसे बनारस से गई हूँ तब से दिन-रात आपकी छवि कलेजे में आग बनकर जलती रही है। कौन ऐसा दिन रहा है जब आपकी याद न आई हो। मुझे आपसे प्रेम था और आज भी है और उसी के वशीभूत होकर मैं इतनी दूर से चलकर यहाँ आई हूँ। इस संसार में सिर्फ आपको माना था सब कुछ। लेकिन आपने मुझे कभी समझने की कोशिश नहीं की। मेरे मूक पुकार को कभी भी सुनने की चेष्टा नहीं की। करते भी कैसे? जो आदमी हमेशा अपने में लीन रहे, वह भला कैसे समझेगा किसी के मन की पीड़ा को और किसी की आत्मा की वेदना को?'

सब कुछ सुनकर भी मुझसे कुछ बोला न गया और कुछ कहा भी न गया। श्मशान में चिता जलकर राख में बदल चुकी थी। रात भी काफी हो गई थी। मैंने जवा की ओर देखकर पूछा--'मेरे यहाँ कब आओगी?'

'कल रात इन्तजार करिएगा आप।'

दूसरे दिन अधिक इन्तजार नहीं करना पड़ा। लगभग एक प्रहर रात गए आ गई वह। ट्यूबलाइट के धवल प्रकाश में उसका कमनीय उज्ज्वल रूप और भी अधिक जगमगा उठा था। इस बीच उसके सौन्दर्य में कोई अन्तर नहीं आया था बल्कि माँग में दमकते सिन्दूर ने जैसे उसे और सजा दिया था।

अभ्यस्त मीठी हँसी हँसती हुई जवा बोली-'देखिए, मैं आपके लिए क्या लाई हूँ।' यह कहकर उसने अपने आँचल में से जूही, चमेली, बेला, रातरानी और हर शृंगार के ढेर सारे ताजे खिले हुए फूल मेरे आगे बिखेर दिया। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। बेमौसम के ये सारे फूल कहाँ से ले आई वह? फिर उस ओर से ध्यान हटाकर मैंने कहा--'तुम इन्हीं फूलों को अपने चारों ओर बिखेर कर बिस्तर पर बैठो, मैं तुम्हारा एक बढ़िया सा फोटो लूँगा।'

'अच्छा, मेरा फोटो लेंगे? खींचिए।'

कहकर वह पुष्पशय्या पर बैठ गई।

मैने जवा के दो-तीन पोज खींच लिए।

'आजकल आप क्या कर रहे हैं? फोटो खिंच जाने के बाद बोली जवा।'

'परामनोविज्ञान के अन्तर्गत 'प्रेतविद्या' पर खोज कर रहा हूँ मैं।'

'सफलता मिली?'

'नहीं। सफलता तो अभी सपना बनी हुई है।'

'आपको इस विषय में बहुत सो रहस्य की बातें बतलाऊँगी जिससे आपको अपनी खोज में काफी सहायता मिलेगी।'

मुझे आश्चर्य हुआ--'तुमसे भला इस विषय से क्या सम्बन्ध है?'

'बहुत कुछ सम्बन्ध है।'

सचमुच जवा ने प्रेत-विद्या के रहस्य की बहुत से बातें बतलाईं। मृत्यु की स्थिति के बारे में, प्रेतों की स्थिति, अवस्था, गतिविधि, कार्यकलाप और उनकी शक्ति के बारे में।

आश्चर्य से भर उठा मेरा मन। प्रेत-विद्या से सम्बन्धित बिल्कुल ज्ञान भण्डार था जवा के पास। यह सब बतलाने और कहने का ढंग उसका ऐसा था मानों स्वयं उसने उन स्थितियों और अवस्थाओं का अनुभव किया हो।

जवा ने बतलाया--'जो लोग प्राकृतिक मृत्यु के पहले किसी कारणवश असामान्य रूप से मरते हैं, उनकी मूर्च्छा शरीर से अलग होते ही समाप्त हो जाती है और वे काफी समय तक अपने आपको मरा हुआ नहीं समझते बल्कि उन्हें लगता है कि वे अपने परिवार और समाज के बीच ही जीवित हैं और उनसे पूर्ववत सम्बन्ध बना हुआ है। जो लोग प्राकृतिक मृत्यु के कारण शरीर छोड़ते हैं, वे अपने मृत शरीर को जब तक वह नष्ट नहीं हो जाता और उसके साथ-साथ अपने स्वजनों और अपने परिजनों को भी देखते हैं। उनसे सम्पर्क स्थापित करने और बातें भी करने का प्रयास करते हैं। मगर ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। वे जो कहना चाहते हैं, वह उनके परिवार के सदस्यों के मस्तिष्क में विचार अथवा इच्छा के रूप में उत्पन्न हो जाता है।'

'मतलब समझा नहीं मैंने।'

'जैसे कोई मृतक अथवा प्रेतात्मा अपनी रुचि का भोजन चाहती है और वह अपनी इस इच्छा को अपने परिवार को बतलाना चाहती है तो उसकी वह इच्छा परिवार के किसी खास सदस्य के मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाएगी और वह वही भोजन स्वयं करेगा या तो किसी दूसरे को कराएगा। इसी प्रकार और बातों को भी समझ लेना चाहिए। मृत प्राणी के मन में अपने से सम्बन्धित लोगों और वस्तुओं के प्रति भारी मोह होता है। वे अपना अस्तित्व-बोध कराने का बराबर प्रयत्न करते हैं मगर सफल नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में उन्हें भारी कष्ट होता है। कोई-कोई मृत प्राणी अपने परिवार के लोगों को स्वप्न में अपनी इच्छा भावना या अपनी आवश्यकता व्यक्त करते हैं।'

मैंने विस्मयभरी उत्सुकता से पूछा-'मरने के बाद मनुष्य अपने अस्तित्व का बोध किस शरीर में करता है? पहले वासना शरीर में और फिर सूक्ष्म शरीर में।'

मैंने पूछा--'वासना शरीर और सूक्ष्मशरीर कैसा और किस रंग का होता है?'

--'पहले शरीर का रंग काला और दूसरे शरीर का रंग सफेद होता है।'

मैंने पूछा--'दोनों शरीर कैसा होता है?'

आत्मा का गर्भ में प्रवेश

बिलकुल स्थूल शरीर जैसा ही। मगर वासना का प्रभाव जितना तीव्र होगा, उसी के अनुसार वासना शरीर में परिवर्तन भी होगा। उस परिवर्तन के फलस्वरूप वासना शरीर की उम्र भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और फिर दूसरी मृत्यु होती है। उस मृत्यु के बाद अपने मूल संस्कार को लेकर प्राणी अपनी मति-गति के अनुसार सूक्ष्म शरीर को स्वीकार कर लेता है।

जब तक उसे अनुकूल गर्भ नहीं मिलता, तब तक वह उसी सूक्ष्म शरीर में बना रहता है। अपने संस्कार के अनुकूल गर्भ मिलते ही वह सूक्ष्म शरीर के साथ गर्भ स्थित स्थूल शरीर को ग्रहण कर लेता है। (इस विषय के विशेष अध्ययन के लिए पढ़िए 'मारणपात्र' लेखक-अरुण कुमार शर्मा) यहाँ दो बातें काफी महत्वपूर्ण हैं, जवा ने कहा--'पहली यह कि जिस स्त्री-पुरुष की वासना और संस्कार से उसकी वासना और उसका संस्कार मिलता-जुलता होगा, उसी के गर्भ में वह प्रवेश कर पाता है। यदि किसी कारणवश अथवा किसी प्रकार अन्य गर्भ में प्रवेश कर भी गया तो ऐसी स्थिति में शिशु गर्भ में ही मर जाता है या जन्म लेने के कुछ दिनों बाद। दूसरी बात यह है कि अपनी वासना-कामना के अनुरूप गर्भ में निर्मित हो रहे शरीर के प्रति काफी मोह होता है उसको। गर्भ में शरीर-रचना पूरी होने तक वह बराबर माता के आसपास चक्कर लगाया करता है। गर्भस्थ शिशु शरीर का जब पूर्ण निर्माण हो जाता है तब जन्म के दो घण्टे पूर्व

आत्मा उसमें प्रवेश करती है और उसके प्रवेश करते ही माता को पीडा होने लग जाती है। आत्मा का गर्भ में प्रवेश होने का यही लक्षण है।'

मैंने फिर उत्सुक होकर पूछा--'प्रेत किसे कहते हैं?'

'प्रेत' जरा हँसकर जवा ने कहा--'आप पहले यह समझ लें कि आत्मा का कभी न साथ छोड़ने वाला शरीर सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के नष्ट होने का मतलब है, आत्मा की हमेशा के लिए आवागमन से मुक्ति। आत्मा का बार-बार जन्म लेने और जन्म लेकर बार-बार मरने का एकमात्र कारण सूक्ष्म शरीर ही है। प्रेत दो प्रकार के होते हैं, पहला वासना शरीरधारी और दूसरा सूक्ष्म शरीरधारी। पहले प्रकार के प्रेत वासनालोक में और दूसरे प्रकार के प्रेत सूक्ष्मलोक में रहते हैं। ये दोनों प्रकार के प्रेत अपने-अपने लोकों में रहते हुए भी बराबर भौतिक जगत से सम्पर्क बनाए रखते हैं और उसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं जैसे भौतिक जगत में भौतिक शरीर में रहकर व्यतीत करते थे। मोटी-मोटा समझें कि प्रेत वह है जिसके पास 'मन' तो है लेकिन इन्द्रियाँ नहीं हैं।'

मैंने पूछा--'सुना है कि प्रेतों में बहुत शक्ति होती है। उन्हें वह शक्ति कहाँ से प्राप्त होती है?'

जवा ने कहा--'मन की तीन अवस्थाएँ हैं--चेतन, अचेतन और अतिचेतन। जीवित प्राणी चेतन मन की अवस्था में काम करता है। मरने के बाद चेतन मन का स्थान अचेतन मन ग्रहण कर लेता है। अचेतन मन की भी दो अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था में वासना शरीरधारी आत्माएँ और दूसरी अवस्था में सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ काम करती हैं।

चेतन मन में जितनी शक्ति होती है उससे कई हजार गुनी शक्ति अचेतन मन में होती है और उससे भी कई हजार गुनी शक्ति होती है उसकी दूसरी अवस्था में। इन दोनों अवस्थाओं में शक्तियों की भिन्नता के कारण वासनाधारी और सूक्ष्म शरीरधारी प्रेतात्माओं में काफी अन्तर होता है। पहले प्रकार के प्रेतों का जीवन अशान्त, दुखी, व्यथित, विवेकशून्य होता है। इसके ठीक विपरीत दूसरे प्रकार के प्रेतों का जीवन शान्त, स्थिर और विवेकमय होता है।'

'तुम्हारे कहने का मतलब यह कि मन की विभिन्न अवस्थाओं की शक्ति ही प्रेतों की शक्ति है।'

'हाँ! ठीक समझे आप।' जवा बोली--'जीवित अवस्था में चेतन मन के जरिए मनुष्य अपनी इच्छाओं को किसी माध्यम से पूर्ण कर लेता है लेकिन मरने के बाद स्थूल शरीर के अभाव में उन्हें पूरा करने में अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ता है। वासना शरीरधारी प्रेतात्माएँ अपनी इच्छा, कामना, वासना आदि को पूरा करने के लिए पागलों की तरह इधर-उधर भटकती रहती हैं और अपने वासना, कामना आदि के अनुकूल

किसी जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर उन्हें पूरा करने का प्रयास करती हैं। जितनी प्रकार की प्रेत-बाधाएँ हैं--उनमें यह भी एक 'प्रेत-बाधा' है। इस प्रकार के प्रेतबाधित व्यक्ति के चेतन मन की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है लेकिन प्राण की शक्ति काफी मात्रा में बढ़ जाती है जिसका प्रभाव शरीर के तापक्रम पर पड़ता है। प्रेतबाधा वाले व्यक्ति के शरीर का ताप हमेशा १०० से १०२ डिग्री तक बना रहता है। दूसरी बात यह है कि प्राणशक्ति की इस प्रकार की वृद्धि के कारण ही प्रेतत्माएँ अपनी आवश्यकता की पूर्ति किया करती हैं। अगर उन्हे शराब पीने की इच्छा होगी तो बाधित व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार शराब पीने की आदत लग जाएगी। आपको मालूम होना चाहिए जिस व्यक्ति को शराब पीने की बुरी लत है, वह वास्तव में किसी शराबी प्रेतात्मा से पीड़ित होता है अगोचर रूप से। चेतन मन की क्षीणता के कारण प्रेतबाधित व्यक्ति जो कुछ भी करता है, उसका उसे ज्ञान नहीं होता।

रही बात सूक्ष्म शरीरधारी प्रेतात्माओं की। अचेतन मन की दुहरी शक्ति और साथ ही विपुल प्राण शक्ति के फलस्वरूप वे बिना किसी रोक-टोक के क्षणमात्र में हजारों मील की यात्रा कर सकने में समर्थ होती हैं। किसी भी स्थान पर तत्काल पहुँचकर वहाँ का समाचार प्राप्त कर सकती हैं। वे किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित कर उसके मन की बात उसकी इच्छा और उसकी मति-गति का पता लगा लिया करती हैं और उस व्यक्ति को अपने संस्कार के अनुरूप बनाकर मनचाहा काम ले लेती हैं लेकिन इसका पता उस व्यक्ति को नहीं होता। वह तो यही समझता है कि उसी के जरिए वह कार्य हो रहा है। अचानक बिना किसी योजना के किसी के द्वारा अच्छा या बुरा काम हो जाने के पीछे यही रहस्य है।

इस प्रकार की प्रेतात्माएँ अपनी कामना, वासना आदि की पूर्ति के लिए किसी के शरीर में प्रवेश करने के बजाय स्वयं ऐसी परिस्थिति और ऐसा वातावरण तैयार कर देती हैं कि मनुष्य अदृश्य रूप से उससे प्रेरित होकर घटना का पात्र बन जाता है और अनजाने और अनचाहे ही ऐसा काम कर बैठता है, जिससे उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।'

मैं अपलक जवा का मुँह ताक रहा था। पलभर चुप रहकर उसने आगे कहना शुरू किया--'मैं आपको समझा देती हूँ एक उदाहरण देकर, जैसे इस प्रकार की कोई प्रेतात्मा कामुक है और अपनी काम-पिपासा की पूर्ति के लिए व्याकुल है तो इच्छित स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर उनको एक-दूसरे की ओर आकर्षित करेगी और ऐसी परिस्थिति का निर्माण करेगी जिससे वे दोनों सहवास में प्रवृत्त हों। सहवास के आनन्द की अनुभूति उनकी अपनी होगी और उसी से उसकी वासना तृप्त हो जाएगी। इसी प्रकार झगड़ालू और दुष्ट मनोवृत्ति की प्रेतात्माएँ मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर झगड़ा और मारपीट करा देती हैं। खून, कत्ल करा देती हैं। सच पूछिए तो मनुष्य के मस्तिष्क पर ७५ प्रतिशत अधिकार इस प्रकार की अच्छी-बुरी प्रेतात्माओं का ही होता है। पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि इसीलिए तो हैं कि मस्तिष्क पर अधिक से अधिक अधिकार अ' ा हो।'

ये सब सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। आखिर जवा इतना सब कुछ कैसे जानती है। यह तो अति गूढ़ रहस्य है। पर आगे और कुछ पूछता, तभी टन-टन कर दूर कहीं चार का घण्टा बजा। सबेरा होने वाला था। जवा अकस्मात अस्थिर और चंचल हो उठी। व्यग्र स्वर में बोली--'अब मैं जाऊँगी। और मत रोकिए आप मुझे।'

जवा के चले जाने के बाद भी काफी देरतक मैं यही सोचता रहा कि बी. ए. की छात्रा जवा को प्रेतविद्या के इन गोपनीय और गूढ़ रहस्यों की जानकारी कैसे हुई।

कैसी थी जवा की प्यास?

दो दिन बाद जवा फिर आई रात के समय। वातावरण में गहरी निस्तब्धता व्याप्त थी। उसके कमरे में घुसते ही विचित्र सी स्निग्ध गन्ध भर गई और उसी के साथ एक अनोखी अनुभूति हुई मुझे। उसी अवस्था में मैंने भर नजर जवा की ओर देखा--हे भगवान! कैसी आसुरी छवि थी? जवा की आँखों में एक विचित्र सा सम्मोहन उतर आया था। रक्ताभ होंठ फड़क रहे थे। जवा कुसुम-से गालों पर आग की लपटें खेल रही थीं जैसे।

मैंने विह्वल होकर कहा--'आओ बैठो जवा। मैं तुमसे और भी बहुत सी बातें पूछना चाहता हूँ।'

'जो पूछना हो पूछो जल्दी।'

'क्यों? आज जल्दी क्यों है?'

'प्यास लगी है।'

'पानी पी लो।'

'नहीं पानी से नहीं बुझेगी मेरी प्यास!'

कैसी थी जवा की प्यास-समझ में नहीं आया मेरे। मैं तो और बहुत कुछ जानने के मूड में था। शायद इसीलिए 'प्यास' का अर्थ समझ न सका मैं उस समय। सहज भाव से बोला--'मैं कुछ और बातों का समाधान चाहता हूँ।'

'पूछो न?'

'सूक्ष्म शरीरधारिणी प्रेतात्माओं के विषय में ही जानना चाहता हूँ। सुना है वे प्रकट भी होती हैं और मनचाही चीजें भी लाकर देती है।'

'हाँ, अपनी प्रबल इच्छाशक्ति और अपने प्राणबल से कुछ समय के लिए पंच भौतिक अणुओं को संघटित कर वे स्थूल आकार में प्रकट हो जाया करती हैं। मगर सभी ऐसा नहीं कर सकतीं। किसी-किसी में यह शक्ति होती है। अचेतन मन में शक्ति होने के कारण उनका अस्तित्व-भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों पर होता है। वे किसी पदार्थ या वस्तु को कहीं से लाती-वाती नहीं, बल्कि जहाँ जिस स्थान पर वह पदार्थ या वस्तुएँ

रहती हैं वहाँ जाकर उनको देख आती हैं और फिर तुरन्त अपने मनोबल से स्वयं उसकी सृष्टि कर देती हैं। लेकिन एक बात है, वह यह है कि जब तक मनोबल का प्रभाव रहता है तभी तक वह वस्तु या पदार्थ अपने स्थूल आकार में रहता है। प्रभाव समाप्त होते ही उसका भी अस्तित्व विलीन हो जाता है। कुछ विशिष्ट आत्माएँ भी होती हैं जो ऐसा न कर स्वयं वस्तु या पदार्थ का निर्माणकर दिया करती हैं। उनकी निर्मित वस्तु या पदार्थ अपना अस्तित्व बहुत समय तक बनाए रखते हैं। शीघ्र नष्ट नहीं होते। उन विशिष्ट आत्माओं को योगात्मा और विशुद्धात्मा कहते हैं।'

यह आपको मालूम होना चाहिए कि आत्मा अपनी शक्ति के बाहर कुछ नहीं कर सकती। सभी की अपनी-अपनी शक्ति, अपनी-अपनी सीमा और अपनी-अपनी मर्यादा होती है, और उसी के अन्दर रहकर वे काम किया करती हैं। पर उनसे सभी काम नहीं ले सकते। जो अच्छे तन्त्र साधक और अघोरी हैं, वे ही मन्त्र शक्ति और तान्त्रिक क्रियाओं के बल पर उनसे काम ले सकते हैं। मन्त्रों की अपनी शक्ति होती है, उस शक्ति से सूक्ष्म शरीरधारिणी प्रेतात्माओं का मनोबल, प्राणबल, और उनकी इच्छाशक्ति बँध जाती है इसलिए उनसे वे इच्छानुसार जो चाहे वह करा सकते हैं। इस प्रकार की सूक्ष्मात्माओं में कुछ ऐसी भी होती हैं जो सूक्ष्म जगत की स्थाई निवासिनी हैं। वे अच्छे और बुरे दोनों स्वभाव की होती हैं। वे विकट और भयानक होती हैं। उनसे मनचाहा काम लेना सबके वश की बात नहीं। समझे न आप ? ऐसी दुर्धर्ष आत्माओं को कोई शक्ति बाँध सकती है तो वह एकमात्र मन्त्रशक्ति। वह शक्ति जिसके हाथ में होती है, वह उनके द्वारा सब कुछ कर सकने में समर्थ होता है। किसी के मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर उसके विचारों और भावों को बतला सकता है। किसी को अपने मन के अनुकूल कर सकता है। इतना ही नहीं, उनसे अपनी इच्छा के अनुसार काम भी करा सकता है। वह व्यक्ति तो यही सोचे-समझेगा कि वह सब कर रहा है।

मैंने विस्मय से पूछा--'क्या ऐसे लोग हैं?'

'क्यों नहीं', जवा ने कहा--'बहुत से लोग हैं। एक तो आपके परिमल कान्ति घोष ही हैं। उन्हें भूल गए आप?'

'हे भगवान! तुम घोष महाशय को कैसे जानती हो?' आश्चर्य से पूछा मैंने।

'क्यों नहीं जानूँगी! उन्होंने तो आपको वह क्रिया बतलाई थी जिससे आपके भीतर वह वस्तु पैदा हो गई जिससे आकर्षित होकर मुझे यहाँ आपके निकट आना पड़ा।' यह सुनते ही लगा मानो मैं किसी भयंकर इन्द्रजाल में फँस गया हूँ। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया मैं। किसी अज्ञात भय से सारा शरीर सिहर उठा मेरा। ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरी देह से सारा जीवन-रस निचोड़ लिया हो।

मेरे सामने एक भयंकर सत्य था। मगर तत्काल निर्णय नहीं कर सका कि वह सत्य था कैसा? तभी टन्-टन् कर ग्यारह बजे रात के। अपने आप अन्तरमन को फोड़कर मेरे मुँह से एक चीख निकल गई और उसी के साथ भय विजड़ित स्वर में बोल पड़ा--'कौन

है तू? निकल जा यहाँ से.....।' मैंने देखा उसकी आँखें आग से जल उठीं जैसे नथुने फड़क उठे और चेहरा कठोर हो गया। स्याह रंग उतर आया वहाँ पर। भयंकर रौद्र रूप। अट्टाहास कर उठी वह। बोली--'मैं जवा हूँ। आपके पड़ोस में रहने वाली जवा। आपसे प्रेम करने वाली जवा। आपको चाहने वाली जवा।'

'नहीं, तुम वह जवा नहीं हो।'

'नहीं, मैं वही जवा हूँ। कोई अन्तर नहीं आया है मुझमें। मैं आ गई हूँ और अब भोर के पहले नहीं जाऊँगी। बत्ती बुझा दीजिए.....'

अब मैंने जवा की प्यास का मतलब समझा। 'नहीं, बत्ती नहीं बुझेगी'--मैंने कम्पित स्वर में कहा।

जवा के चेहरे पर एक पैशाचिक भाव उतर आया और होठों पर खेल गई एक कठोर और क्रूर मुस्कान। अमानवीय स्पन्दन से उसका सारा शरीर एकबारगी हिल उठा। फिर उसका दाहिना हाथ बढ़ा, फिर बढ़ता गया.... बढ़ता ही गया और बैठे ही बैठे उसने लगभग आठ फुट दूर लगा स्विच दबाकर बत्ती बुझा दी। फिर अन्धकार ही अन्धकार। मुझे प्रत्यक्ष पिशाचिनी लग रही थी वह। मेरा खून पानी हो गया। जवा का लम्बा हाथ वापस लौट आया और लगा दो बर्फ जैसी ठण्डी बाहें अपने आगोश में ले रही हैं मुझे। उसके बाद चेहरे पर गर्म उच्छ्वास का अनुभव हुआ। मेरे भयातुर कण्ठ से सिर्फ गों-गों की आवाज भर निकली। फिर एक अस्पष्ट-सा प्राण कँपा देने वाला चीत्कार करके मैं न जाने कब संज्ञाशून्य हो गया। गहरी मूर्च्छा की उस स्थिति में मैंने देखा--कश्मीर का एक सुन्दर सुखद वन प्रदेश। बड़ा ही मनोरम और अपूर्व प्राकृतिक दृश्य था। एक ओर बर्फ से ढँकी ऊँची-ऊँची पहाड़ी चोटियाँ थीं तो दूसरी ओर था मनोहारी प्राकृतिक छटाओं से हरा-भरा वह वन प्रदेश, जिसकी गोद में एक छोटा सा बसा था गाँव। कच्चे-पक्के मकान और कुछ झोपड़ियाँ थी वहाँ। बराबर इस बात का मुझे अनुभव हो रहा था उस समय कि जवा का अस्तित्व मेरे अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। अब मेरे सामने गाँव के एक मकान का भीतरी हिस्सा था। वहाँ सर्वत्र गहरी उदासी छायी हुई थी। फर्श पर धूल की मोटी पर्त जमी हुई थी। खिड़की-दरवाजों के पल्ले टूट-टाटकर अलग हो गए थे। लगता था मानों वह मकान वर्षों से उजाड़ पड़ा हो। श्मशान जैसी नीरवता बिखरी हुई थी चारों तरफ। मकान में कई कमरे थे जिन्हें एक के बाद एक पार कर एक बड़े से कमरे में पहुँचा मैं जिसके रोशनदान से छनकर धूमिल प्रकाश भीतर आ रहा था और उसी धूमिल प्रकाश में मैंने देखा-छत से लटकती हुई एक लाश। मोटी रस्सी के सहारे झूल रही थी वह लाश। एकाएक लाश के चेहरे पर नजर पड़ गई मेरी। भय और विस्मय से मैं चीख पड़ा एकबारगी। हे भगवान! यह तो जवा की लाश है। तभी किसी का मद्धिम स्वर सुनाई पड़ा-'हाँ यह जवा की ही लाश है। इसी गाँव और इसी घर में उसकी शादी हुई थी। मगर शादी के दो दिन बाद उसने इसी कमरे में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी।'

'क्यों?'

इसका उत्तर नहीं मिला मुझे उसकी जगह किसी के सिसकने और फिर हिलक-हिलक कर रोने की आवाज सुनाई दी।

सहसा स्वप्न भंग हुआ। मूर्च्छा टूटी। आँखे खुलीं। सबेरा हो चुका था। दोपहर के समय घोष महाशय से मिला और उनको सारी कथा सुनाई। सब कुछ सुनने के बाद घोष महाशय बोले--'मेरी बतलाई हुई क्रिया के बल पर तुम्हारे भीतर जो विशेष ऊर्जा उत्पन्न हो गई है, उसी के फलस्वरूप आकर्षित होकर ही प्रकट हो गई थी तुम्हारे सामने जवा की अतृप्त आत्मा, समझे न बन्धु।'

'और कोई आत्मा क्यों नहीं आई? जवा की ही आत्मा क्यों आई? उत्सुक होकर मैंने पूछा।'

'इसलिए कि वह जीवित अवस्था में तुमको चाहती थी, तुमसे प्रेम करती थी। तुम्हारे प्रति उसके मन में आकर्षण था, मोह था उन्हीं सब के वशीभूत होकर आई थी वह। यह भी समझ लो, उन्हीं सबके कारण ही शादी के बाद आत्महत्या की थी उसने। निश्चय ही उसी गाँव में ब्याही गई होगी जिसके एक मकान में उसकी लटकती हुई लाश को देखा था तुमने मूर्च्छावस्था में।'

थोड़ा रुककर घोष महाशय आगे कहने लगे--'जवा की आत्मा ने तुमको जो कुछ बतलाया, वह सब प्रेतविद्या की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि जिसका जिस व्यक्ति से अत्यन्त आत्मीय और घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, मरने के बाद उसकी आत्मा उस व्यक्ति के निकट बराबर बनी रहती है काफी समय तक। लेकिन बहुत चाहने पर भी वह अपनी स्थिति और अपने विचारों से अवगत नहीं करा पाती। जवा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना होगा। उसे अवसर मिला और अवसर मिलते ही उस ऊर्जा के कारण उसकी आत्मा ने तुमसे सम्पर्क स्थापित कर लिया।'

'क्या भविष्य में भी इस प्रकार की और भी आत्माएँ मुझसे सम्पर्क स्थापित करेंगी....स्वयं अपने आप?'

'सम्भव है' घोष महाशय बोले 'जिनका तुमसे निकट का आत्मीय सम्बन्ध रहा होगा चाहे इस जन्म का या पिछले किसी जन्म का उनकी आत्माएँ निश्चय सम्पर्क स्थापित करेंगी तुमसे अपने आप। इतना ही नहीं, अन्य आत्माएँ भी सम्पर्क स्थापित कर सकती हैं इस प्रकार तुमसे। इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि उस ऊर्जा की तो यही विशेषता ही है।'

घोष महाशय की बातें बड़ी विचित्र लगीं मुझे। घोर आश्चर्य भी हुआ। लेकिन उस समय तो और घोर आश्चर्य हुआ जब मैंने फोटो का प्रिण्ट देखा। फोटो में बिस्तर था और बिस्तर पर चारों तरफ बिखरे हुए फूल थे मगर जवा नहीं थी बिस्तर पर।

गतात्माओं का आवाहन

परिमल कान्ति घोष की ही तरह एक और सज्जन काशी में रहते थे। नाम था भोला गिरि। उन्हें भी कई प्रकार की प्रेत सिद्धियाँ थीं। उनके चमत्कार के सम्बन्ध में काफी

कुछ सुन रखा था, लेकिन कभी कोई चमत्कार देखने को नहीं मिला था उनका मुझे। वैसे तो वे रहते थे वाराणसी के निकट कपिलधारा तालाब के ऊपर एक कमरे में। दो-तीन बार उनसे मिलने के लिए गया था मैं कपिल-धारा। उसके बाद काशी के लाली घाट पर ही प्राय: भेंट हो जाया करती थी मेरी उनकी। नियमित रूप से हर अमावस्या की रात्रि में लालीघाट पर आकर बैठा करते थे वे और पूरी रात भूत-प्रेत और तन्त्र-मन्त्र से सम्बन्धित विभिन्न साधनाओं की चर्चा होती मेरी उनसे। कब काली स्याह रात गुजर जाती, पता ही न चलता। आत्मविद्या के महापण्डित और प्रेतशास्त्र के भारी विद्वान थे भोला गिरि, इसमें सन्देह नहीं।

एक दिन मैंने प्रसंगवश पूछा--'बाबा! गतात्माओं से सम्पर्क साधने का कोई तान्त्रिक उपाय भी है क्या?'

'है क्यों नहीं?' गिरि महाशय बोले, 'वैसे तो कई साधन हैं, जिनमें 'महापात्र विद्या' अति विश्वसनीय है। खतरे की सम्भावना उसमें कम है।'

'महापात्र विद्या' क्या है?

'प्रेतों अथवा गतात्माओं से सम्बन्धित बारह प्रकार की तमोगुणी विद्याएँ हैं। उन्हीं में एक है 'महापात्र विद्या'। इसे छोड़कर अन्य सभी विद्याएँ कठिन और अति भयंकर हैं। पग-पग पर जान का खतरा बना रहता है उनकी सिद्धि के मार्ग में। बिना समझे-बूझे उनकी सिद्धि के चक्कर में कदापि न पड़ना चाहिए। रही कपाल-विद्या की बात। जैसा कि मैंने बतलाया, इसमें अधिक खतरा और भय नहीं है। तन्त्र में 'महापात्र' कहते हैं मृतक की खोपड़ी को, समझे न! मरने के बाद ४० दिन का समय अति महत्वपूर्ण होता है। इस अवधि में किसी मृतक की खोपड़ी यदि मिल जाए तो उसके माध्यम से तान्त्रिक क्रिया के बल पर उस मृतक की आत्मा से सम्पर्क साधा जा सकता है। कभी मौका मिला तो तुमको 'महापात्र विद्या' का चमत्कार अवश्य दिखाऊँगा। निश्चय ही तुमको अपने 'परलोक विज्ञान' से सम्बन्धित खोज में इससे सहायता मिलेगी।'

अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी मुझे। मौका मिल ही गया एक दिन।

अमावस्या की काली अन्धेरी रात। लगभग दो बजे का समय। वातावरण में गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। कभी-कभार लावारिस आवारा कुत्तों के भौंकने की आवाजों से साँय-साँय करता हुआ निस्तब्ध वातावरण छत्र से टूटकर बिखर जाता था।

हर अमावस्या की रात की तरह उस रात भी भोला गिरि के साथ मैं बैठा था लालीघाट की सीढ़ियों पर।

कुछ ही देर पहले बगलवाले हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में एक चिता घण्टों धू-धूकर जलने के बाद बुझी थी मगर राख गर्म थी अभी। चिता में जलने वाली लाश की

बदरंग खोपड़ी को श्मशान के डोम ने लातों से ढकेल कर गंगा के गन्दे पानी में फेंक दिया था। जब उसने फेंका था-उसी समय पास के पीपल की डाल पर बैठा कोई मांसखोर पक्षी एकबारगी जोर से चीखा था और उसके साथ ही भोला गिरि महाशय भी चौंके थे। चौंककर अन्धेरे में मेरी ओर देखा था उन्होंने। वे क्या कहना चाहते थे, दूसरे ही क्षण समझ गया मैं। मैं लपककर उस जगह पहुँचा जहाँ डोम चौधरी ने खोपड़ी फेंकी थी पानी में। टटोलकर मैंने खोपड़ी निकाल ली और लाकर भोला गिरि को थमा दी। जब मैंने थमाया था, उसी समय गंगा पार सियारों के समवेत स्वर में रोने की आवाज भी सुनाई दी। किसी अज्ञात भय से सिहर उठा मेरा सारा शरीर।

भोला गिरि का एकान्त कमरा। रात का समय। काठ की एक छोटी सी चौकी पर लाल रेशमी कपड़ा बिछाकर उस पर खोपड़ी रख दी गई थी। उसके सामने लोहबान, गुगुल, अगरबत्ती और चमेली के तेल का दीपक जलाकर रखा गया। फिर खोपड़ी को लाल फूलों की माला पहनाई गई और अन्त में भोला गिरि ने लाल सिन्दूर से खोपड़ी पर कोई अटपटा तांत्रिक मन्त्र लिखा और काफी देर तक खोपड़ी के सामने ध्यानस्थ बैठे रहे वह। निश्चय ही वह कोई भयंकर तान्त्रिक अनुष्ठान था जो अपने आप में था अति रहस्यमय। मेरे अनुरोध पर भोला गिरि महाशय उस खोपड़ी के माध्यम से उसकी आत्मा का आवाहन कर मृत्यु के अनन्तर की स्थितियों से मुझे अवगत कराने के लिए वह आयोजन कर रहे थे उस समय। उनके संकेत पर कमरे के एक कोने में आसन जमाकर मौन साधे बैठा मैं उनकी गतिविधि को आँखे फाड़े देख रहा था। वातावरण में एक अबूझ-सी खिन्नता भरी उदासी छाई हुई थी। खोपड़ी के सामने जल रहे दीप की मन्द लौ की पीली रोशनी में लगा जैसे वह कोठरी नहीं, पिशाचपुरी हो। एक अजीब सा भय मेरे भीतर समाता जा रहा था उस समय।

एकाएक ध्यान भंग हुआ भोला गिरि का। उन्होंने झोले में रखी शराब की भरी बोतल निकाली और पूरी बोतल दहकते हुए कोयले की आग में उड़ेल दी। फिर उसी के साथ ढेर सारा लोहबान, गुगुल और राल भी आग में डाल दिया। दूसरे ही क्षण धुएँ का एक बड़ा सा गुबार उठा और पूरी कोठरी में चारों तरफ फैल गया। साथ ही साथ वातावरण में बिखर गई शराब, लोहबान, गुगुल और राल की मिली-जुली गन्ध भी। और भयंकर हो उठा वातावरण। और उस भयंकर वातावरण में सहसा फिस्-फिस् की धीमी आवाज सुनाई दी मुझे। वह आवाज घुटी हुई थी जिसे समझ न सका मैं। तभी गिरि महाशय का गम्भीर स्वर गूँज उठा उस रहस्यमय वातावरण में। वे कह रहे थे--'कौन हो तुम.....? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई?'

समझते देर न लगी मुझे। खोपड़ी की आत्मा वहाँ आ गई थी। कोयले की धधकती आग से निकलने वाले धुएँ के बीच उसकी स्याह धूमाकृति को, जो किसी औरत की शक्ल की थी, स्पष्ट देख रहा था मैं। वह आकृति खोपड़ी के ऊपर खड़ी झूल रही थी जैसे।

'मैं स्थानीय एक गर्ल्स स्कूल की अध्यापिका हूँ। मेरा नाम सुषमा अग्निहोत्री है। संसार में कोई नहीं है मेरा। जीवन में असफल होकर आत्महत्या की है मैंने।' थोड़ा रुककर आत्मा आगे बोली--'मुझे इस प्रकार यहाँ क्यों बुलाया गया है?'

'काल के गहन अन्धकार की गोद में छिपे हुए पारलौकिक जगत के कुछ रहस्यमय तथ्यों की जानकारी के लिए। मुझे पूरा विश्वास है कि आप एक पढ़ी-लिखी महिला हैं। आप मेरे प्रश्नों का उत्तर अपने अनुभवों के आधार पर देंगी।'

'क्या जानना चाहते हैं आप?'

'आपने आत्महत्या कैसे की?'

'ढेर सारी नींद की गोलियाँ खाकर।'

'नींद की गोलियाँ खाने के बाद तुरन्त आप के मन में कौन सा विचार आया? क्या सोचा आपने?'

मौत भयानक नहीं होती

'आह! मैंने बहुत भारी गलती की। ऐसा मुझे नहीं करना चाहिए था। अब क्या होगा? मेरी आत्मा मौत की तमाम भयंकर तकलीफों को कैसे सहन कर सकेगी? मगर नहीं। ऐसा सोचना मेरा भ्रम था। मौत न कष्टदायिनी होती है और न ही भयानक। मौत के सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण ही वह भयानक और डरावनी लगती है।'

अग्निहोत्री की आत्मा ने आगे बतलाया--'मनुष्य चेतन है इसीलिए उसका एक ही स्थिति में बराबर बने रहना सम्भव नहीं है। प्रकृति के सभी रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहता है तो जीवन-यात्रा में परिवर्तन अथवा गतिशीलता क्यों नहीं रहेगी? यात्रा-क्रम के इन पड़ावों को ही जीवन और मृत्यु कहते हैं। इसमें न कुछ अप्रत्याशित है और न तो है आश्चर्यजनक। फिर मरण से भय किस बात का? वास्तव में मृत्यु के सम्बन्ध में लोग विचार ही नहीं करते। उसकी सम्भावनाओं और तैयारी के विषय में तथा उसके सन्दर्भ में उपेक्षा बरतते हैं। फलत: समय आने पर 'मरण' अविज्ञात रहस्य के रूप में सामने आता है जो भयानक और कष्टदायक होता है। अज्ञात की ओर बढ़ने और विचार करने पर ही महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं।

सुषमा अग्निहोत्री की आत्मा ने आगे बतलाना शुरू किया--'मरने के पहले जो भय था, वह मरने के बाद समाप्त हो गया। लेकिन हाँ! नींद की गोलियाँ खाने के बाद असीम शारीरिक वेदना और कष्ट का अनुभव हुआ था मुझे। सिर में भी काफी पीड़ा हो रही थी। सारा शरीर ऐंठ रहा था। किसी अंग पर अपना नियन्त्रण नहीं रह गया था मेरा।

सारे कष्ट, सारी वेदना, सारी पीड़ा और सारी यन्त्रणाओं को कब तक झेलती रही, बतला नहीं सकती मैं। और यह भी नहीं बतला सकती कि कब मैं चेतनाशून्य हो गई और कब बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया मेरा?'

'फिर क्या हुआ?'

'होगा क्या? जब चेतना लौटी तो मैंने अपने शरीर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चीरघर में पड़ा पाया। वहाँ और भी कई मृत शरीर पड़े थे जिनकी आत्माएँ भी मेरी तरह अपने-अपने मृत शरीर के निकट खड़ी थीं। सभी विषादग्रस्त थीं। सभी दुखी थीं और सभी थीं अपने शरीर के प्रति आसक्त। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि मैं सभी को देख-सुन रही थी। सभी के क्रियाकलापों का अवलोकन कर रही थी लेकिन मेरे अस्तित्व का और मेरी उपस्थिति का अनुभव किसी को भी नहीं हो रहा था। मैं भौतिक जगत में रहते हुए भी अपने अस्तित्व अथवा अपने व्यक्तित्व की अनुभूति एक ऐसे जगत के वातावरण में कर रही थी, जो सर्वथा ध्वनिहीन और उज्ज्वल प्रकाशमय था। निश्चय ही कोई अदृश्य दीवार थी जो भौतिक जगत और उस अनाम जगत के बीच खड़ी थी जिसके कारण मेरी देहातीत आत्मा भौतिक जगत में अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए भी अपना बोध लोगों को करा सकने में पूर्णतया असमर्थ थी उस समय। शायद इसी के फलस्वरूप मैं अपना सन्देश चाहकर भी नहीं दे पा रही थी। मैं सबकी बातें सुन रही थी लेकिन मेरी बात कोई सुन नहीं पा रहा था। बड़े ही आश्चर्य की बात थी वह मेरे लिए।'

'क्या मैं सुषमा अग्निहोत्री की विदेही आत्मा से अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए कुछ प्रश्न कर सकता हूँ?' मैंने पूछा भोला गिरि महाशय से।

वे बोले नहीं, शायद कोई मन्त्र जप कर रहे थे इसलिए सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी उन्होंने।

मैंने प्रश्न करना शुरू किया--'आप इस समय अपने अस्तित्व का बोध किस वातावरण में कर रही हैं?'

'वैसे ही ध्वनिहीन और उज्जवल प्रकाशयुक्त वातावरण में।'

'आप तो हमारी बातें सुन रही हैं, पर आपकी आवाज हम तक कैसे पहुँच रही है?'

'आप सबकी इसी क्रिया के बल पर। क्रिया के समाप्त होने पर फिर पहले ही जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।'

'पोस्टमार्टम के समय आपको कैसा लग रहा था?'

'कुछ अजीब सा लग रहा था। सोच रही थी कितना मूल्यवान और कितना महत्वपूर्ण है मानव शरीर। स्थूल शरीर ही ऐसा शरीर है जिसमें आत्मा अपनी पूर्णता का और अपनी शक्ति का अनुभव करती है। लेकिन मूल्य और महत्व तो तभी समझ में आता है, जब शरीर छूट जाता है। मुझको ही लीजिए, अगर मैं शरीर के मूल्य और महत्व को समझती होती तो आत्महत्या ही क्यों करती! लेकिन अब समझ रही हूँ। काश! एक बार फिर प्राप्त हो जाता मुझे शरीर.... जो लोग किसी समस्या के कारण आत्महत्या करते हैं वे बाद में पछताते हैं। इसलिए कि शरीर के मूल्य और महत्व के सामने वह 'समस्या' तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है उन्हें।'

'आप जिस अनाम जगत के वातावरण में हैं, उसमें और भी लोग हैं या आप अकेली हैं?'

'नहीं! अकेली क्यों? बहुत सारे लोग हैं। लेकिन सभी अपने आप में लीन हैं। किसी का किसी से कोई मतलब नहीं। किसी भी प्रकार का सामाजिक और पारिवारिक जीवन नहीं है यहाँ। लोग अपने-अपने अच्छे बुरे कर्मों की यादों में डूबे हुए हैं।'

'जब आपकी पार्थिव काया चिता में जलने लगी थी उस समय आप कहाँ थीं?'

'वहीं श्मशान में। मेरे अलावा और भी लोग थे जिनकी लाशें वहाँ जल रही थीं?'

'जैसे-जैसे शरीर जलकर राख में बदलता जा रहा था, वैसे ही वैसे उसके प्रति मेरा मोह और आकर्षण भी समाप्त होता जा रहा था।

'क्या आपको पार्थिव काया को छोड़ने का अनुभव हुआ था?'

'नहीं। जैसे सोने का पता नहीं चलता, वैसे ही मरने का भी पता नहीं लगता। कब आप सो जाते हैं? बतला सकते हैं? नहीं न! उसी प्रकार आप कब मर जाएँगे, आपको पता नहीं लगेगा। सोना, मरना दोनों बराबर। वास्तव में मरणकाल की घड़ी न कौतुहलमय होती है और न तो होती है कष्टदायक ही जिसे असह्य कहा जा सके। सब कुछ उतनी ही सरलता से सम्पन्न हो जाता है, जितनी कि रात्रि में सोते समय वस्त्रों का उतारना।'

'शरीर से अलग होने पर सर्वप्रथम आपको क्या अनुभव हुआ?'

'काफी हल्केपन का। लगा जैसे कोई भारी बोझ उतर गया हो। काफी देर तक मेरा अस्तित्व लाल, पीले और हरे रंग के प्रकाश के वलय से घिरा रहा, फिर वह लुप्त हो गया। मेरे शरीर के समाप्त होने पर मैं विचारों; इच्छाओं और कामनाओं का अति तीव्रता से अनुभव करने लग गई हूँ। मुझे अपने आप इस बात का पता चल गया है कि जब मेरी सारी वासना, कामना आदि क्षीण हो जाएगी, उनकी तीव्रता समाप्त हो जाएगी तभी मुझे भौतिक शरीर मिलेगा। सच पूछिए तो मेरा जन्म संसार में न हो तो अच्छा।'

'क्यों ?'

'इसलिए कि मैं जिस शरीर में, जिस वातावरण में और जिस अवस्था में हूँ, उसमें परम शान्ति है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसी शान्ति जो संसार में उपलब्ध नहीं।'

थोड़ा रुककर सुषमा अग्निहोत्री की विदेही आत्मा ने कहा--'अब बस करिए। मुझे जाने दीजिए।'

और उसके जाते ही वातावरण सहज हो गया। दूसरे दिन खोपड़ी गंगा में प्रवाहित कर दी गई।

●

कर्णिका-७

मरणोपरान्त जीवन-यात्रा

मेरे सामने कुछ ऐसे भी सिद्धान्त थे जिसने मेरे मन में कई जिज्ञासाएँ पैदा कर दी थी। इनका समाधान मैं अपनी स्वतन्त्र उपलब्धियों से करना चाहता था, किसी और की धारणा से नहीं।

मेरे सामने सबसे पहला प्रश्न यह था कि पूर्वजन्म की बातें बतलाने वाले बच्चे या वयस्क यह क्यों नहीं बतला पाते कि मृत्यु के बाद तथा पुनर्जन्म के पहले की अवस्था कैसी थी? जीवन जैसा कुछ था या नहीं। यदि था तो कैसा था?

यदि हम जीवन के अस्तित्व को प्रत्येक अवस्था में स्वीकार करते हैं तो मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म के पहले भी जीवन होना चाहिए। यह अवश्य है कि मृत्यु से पुनर्जन्म तक की यात्रा निस्सन्देह तिमिराच्छन्न है, जिसका भेदन अभी तक नहीं हो सका है। इसी प्रकार उस तिमिराच्छन्न यात्रा के बीच किन-किन अवस्थाओं अथवा परिस्थितियों से प्राणी गुजरता है और कैसे-कैसे उसे अनुभव होते हैं, ये सब भी कम रहस्यमय नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं, 'परामनोविज्ञान' का यह अत्यन्त रहस्यमय विषय है और जिस पर अभी तक प्रकाश नहीं पड़ सका है। अभी तक परामनोवैज्ञानिक इस विषय को सुलझाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। वैसे भारतीय आत्मविद्या के पास इसका आध्यात्मिक समाधान तो है, लेकिन परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह मात्र आत्मिक सन्तोष ही प्रदान करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

सुषमा अग्निहोत्री की गतात्मा ने मृत्योपरान्त तात्कालिक स्थितियों का जो वर्णन किया था, उसने मेरे भीतर उपर्युक्त विषय में खोज की प्रवृत्ति और अधिक तीव्र कर दी थी। मुझे इस बात की आशा हो गई थी कि तान्त्रिक क्रियाओं से, आश्चर्य और कौतुहल से भरी उन रहस्यमयी तिमिराच्छन्न मरणोपरान्त जीवन-यात्रा और उस यात्रा के दौरान उपस्थित होने वाली स्थितियों तथा उनके अनुभवों पर प्रकाश पड़ सकता है। इस बात की भी जानकारी हो सकती है कि प्राणी का जीवन पहले ही जैसा रहता है या कोई अन्तर पड़ता है उसमें। और वह अपने उस नए जीवन में अपने अस्तित्व का बोध किस प्रकार

करता है? जब मैंने अपनी जिज्ञासा भोला गिरि के सामने रखी और जब खोपड़ी के माध्यम से गतात्माओं को बुलाने वाली विशेष तान्त्रिक क्रियाओं को बतलाने का आग्रह किया तो महाशय एकबारगी टाल गए। मैं जानता था कि ऐसे लोग शीघ्र तैयार नहीं होते। मगर मैंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। मैं बराबर कभी मदिरा लेकर तो कभी फल-मिठाई लेकर उनके पास जाता रहा। इसी बीच मैंने चार-पाँच ऐसे लोगों की खोपड़ियाँ इकट्ठी कर लीं जिनकी ४० दिन के भीतर किसी न किसी रूप में और न किसी न किसी प्रकार मृत्यु हुई थी। खोपड़ी इकट्ठा करने में मेरा सहयोग दिया था, मणिकर्णिका श्मशान घाट के डोम चौधरी पन्नालाल ने। मेरे परिवार को काफी सम्मान देते थे वह। मुझे तो वह कुछ अधिक ही मानते थे। मेरे लिए उन्होंने एक सुन्दर सा तख्त बनवा रखा था। जब मैं कभी उनके मीरघाट स्थित हवेलीनुमा मकान पर जाता तो वह अपनी गद्दी से उठ खड़े हो जाते और 'पा लागी महाराज' कहकर उसी चौकी पर बैठने का आग्रह करते। तख्त रोजाना गंगा जल से धोया जाता और उस पर रेशमी चादर बिछाई जाती। जब कभी आवश्यकता पड़ने पर मर्णिकर्णिका घाट पर उनसे मिलने जाता तो वहाँ भी अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी मेरा भरपूर स्वागत-सत्कार करते वह।

जिन खोपड़ियों को मैने इकठ्ठा किया था उनमें केवल एक ही खोपड़ी की गतात्मा आ सकी और वह गतात्मा थी किसी पढ़े-लिखे कुलीन ब्राह्मण की। नाम था सरजू पाण्डेय। उम्र थी चालीस साल के लगभग। सरजू पाण्डेय को विष देकर मारा गया था और वह विष दिया था, उनकी पत्नी कौशल्या ने। मगर क्यों? इसलिए कि वह अपने देवर से जिसका नाम था रामप्रसाद पाण्डेय, प्रेम करती थी। वह यह नहीं चाहती थी कि उसका पति उन दोनों के बीच काँटा बनकर हमेशा चुभता रहे। सरजू पाण्डेय पढ़े-लिखे और काफी समझदार व्यक्ति थे। छोटे भाई का शारीरिक सम्बन्ध पत्नी से है, यह जानते थे वह। उनसे कोई बात छिपी नहीं रह गई थी। मगर जानबूझकर भी वह चुप थे। इन्सान सबकुछ बर्दाश्त कर सकता है, पर अपनी पत्नी की चरित्रहीनता को कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। आखिर एक दिन भंयकर विस्फोट हो ही गया जिसके फलस्वरूप सरजू पाण्डेय को अपने जान से हाथ धोना पड़ा। इस प्रसंग में मुझे सर्वथा एक नई और साथ ही अत्यन्त रहस्यमयी बात का पता चला और वह यह कि जिस किसी की हत्या का रहस्य रहस्य ही बना रह जाता है और पुलिस उस रहस्य का पता नहीं लगा पाती या किसी की हत्या को साधारण मृत्यु या आत्महत्या मानकर लोग मौन साध जाते हैं, ऐसी गतात्माएँ कभी-कभी अपनी अदृश्य शक्ति के बल पर स्वयं ऐसा वातावरण अथवा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दिया करती हैं, जिससे हत्या का सारा रहस्य अपने आप खुल जाता है और हत्यारे को दण्ड भी मिल जाता है।

सरजू पाण्डेय की तड़पती आत्मा ने ऐसा ही किया था। उनके मामले को आत्महत्या मानकर पुलिस ने अपनी छानबीन बन्द कर दी थी। गाँव वाले भी मौन साध गए थे। सभी लोगों ने समझ लिया था कि सरजू पाण्डेय ने आत्महत्या की थी।

मगर सरजू पाण्डेय की गतात्मा चुप नहीं बैठी। वह अपने भाई और अपनी पत्नी के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों में आए दिन झगड़े होने लगे। एक दिन तो झगड़ा मारपीट में बदल गया और इसी तरह एक दिन मारपीट के दौरान एक दूसरे पर लांछन लगाकर सरजू पाण्डेय की हत्या का रहस्य उगल दिया दोनों ने। बात खुली तो जंगल की आग की तरह पूरे गाँव में फैल गई।

सरजू पाण्डेय की आत्मा ने बतलाया कि दोनों पर मुकदमा चल रहा है। मैं जानता हूँ कि क्या होगा अन्त में। रामप्रसाद को फाँसी होगी और कौशल्या को होगा आजीवन कारावास। मैं वैसे अभी स्वतन्त्र हूँ। मगर शीघ्र ही अपने गाँव के मुखिया रमापति दूबे की बहू मालती के गर्भ से जन्म लेने वाला हूँ। मैं बराबर मालती के आसपास में चक्कर लगाया करता हूँ।

'क्यों चक्कर लगाते हैं आप?'

सरजू पाण्डेय की गतात्मा ने बतलाया--'मालती के गर्भ के पलने वाले जिस शिशु के रूप में मैं जन्म लेने वाला हूँ, उसके शरीर की रचना अभी पूरी नहीं हुई है। जब शरीर की रचना पूरी हो जाती है, प्राणों का और साथ ही रक्त का संचार नस-नाड़ियों में होने लगता है तथा हृदय एवं मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह बराबर होने लगता है तभी जन्म के ठीक दो घण्टे पूर्व गर्भस्थ शिशु के शरीर में नाभि मार्ग से प्रवेश करती है आत्मा। इसके पहले नहीं।'

'क्या आप मालती के अलावा और किसी के गर्भ में प्रवेश नहीं कर सकते?'

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में सरजू पाण्डेय की गतात्मा ने जो बतलाया, उसका सारांश यह था कि आत्मा को अपने इच्छानुसार किसी भी गर्भ में प्रवेश करने और जन्म लेने की स्वतन्त्रता नहीं होती। कोई अदृश्य शक्ति बराबर इसके लिए गतात्मा को रोकती रहती है। इसी प्रकार दूसरी ओर 'कर्म' संस्कार के अनुकूल गर्भ में प्रवेश करने के लिए भी प्रेरित करती रहती है। मतलब यह है कि आत्मा अपनी इच्छा से मनचाहे गर्भ में प्रवेश कर जन्म नहीं ले सकती।

जब मैंने सरजू प्रसाद पाण्डेय की गतात्मा से यह पूछा कि मृत्यु के बाद से अब तक आपको क्या-क्या अनुभव हुए? किन-किन अवस्थाओं और परिस्थितियों से गुजरना पड़ा? तो इस पर उसने बतलाया कि मुझे रात के समय दूध में जहर दिया गया था। दूध पीने के थोड़ी ही देर बाद जैसे ही मैं खाट पर लेटा कि मुझे चक्कर-सा आने लगा और उसी के साथ पेट और सीने में भी भयंकर दर्द होने लगा। फिर कब और किस क्षण मैं चेतनाशून्य हो गया, बतला नहीं सकता। और जब चेतना लौटी तो मैंने अपने शरीर को जमीन पर निश्चेष्ट पड़ा देखा। सोचने लगा--यह क्या हो गया? अभी तक तो मैं अपने शरीर के साथ अपने अस्तित्व का बोध कर रहा था। लेकिन उस अवस्था में शरीर से अलग अपने अस्तित्व का बोध कर रहा था।

'क्या दोनों बोधों में साम्य था?'

'नहीं, साम्य नहीं था। कुछ विलक्षण ही बोध था वह। शरीर में आत्मा भारीपन और परतन्त्रता का अनुभव करती है और शरीर रहित अवस्था में उसके ठीक विपरीत हल्कापन और स्वतन्त्रता का करती है अनुभव। लेकिन जैसा कि मैंने कहा वह अनुभव बराबर प्रगाढ़ ही होता जा रहा है। वास्तव में शरीर रहित आत्मा की इस अवस्था का अनुभव है बड़ा महत्वपूर्ण और साथ ही है अत्यन्त विलक्षण भी। मगर एक बात है, इस अवस्था में कोई कर्म नहीं कर सकता। सर्वत्र भोग ही भोग हैं मेरे लिए।'

'हाँ, तो फिर क्या हुआ?'

'कब?'

'जब आपकी चेतना लौटी।'

'होगा क्या?' सरजू पाण्डेय की गतात्मा बोली--'मेरे घर पर गाँव वालों की भीड़ लगी हुई थी। मेरे परिवार के लोग विलाप कर रहे थे। दिखाने के लिए कौशल्या रो रही थी और रामप्रसाद भी विलाप कर रहा था। विष देकर मेरी हत्या की गई है, मरने के बाद जब यह मुझे मालूम हुआ तो घृणा से भर गया मेरा मन।'

मैं अपने परिवार और गाँववालों के बीच था लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि कोई भी मेरे अस्तित्व का बोध नहीं कर पा रहा था। सभी के लिए मैं अस्तित्वहीन था। एक बात और थी, वह यह कि लोगों के मन की बातें, लोगों के भाव और विचार तत्काल जान जाता था मैं।

सूक्ष्म शरीर दिक्-काल से परे होता है

पहली बार मैंने जाना कि आदमी भीतर कुछ होता है और बाहर होता है कुछ और। थोड़ी देर बाद मेरे मृत शरीर को श्मशान घाट ले जाया गया। शवयात्रा में मैं भी था। श्मशान में उस समय चार-पाँच चिताएँ जल रही थी और जिनकी चिताएँ जल रही थीं, वे लोग भी वहाँ मौजूद थे। सभी के चेहरे पर दु:ख सन्ताप और पश्चाताप के मिले-जुले भाव थे। अपने शरीर को चिता में जलते हुए देखकर मुझे भी भारी दु:ख हुआ। विवश था, कर ही क्या सकता था! जब शरीर हाथ से निकल जाता है, तभी लोग उसका मूल्य समझते हैं।

श्मशान के एक ओर बैठकर परिवार के लोग अपना-अपना मुण्डन कराने लग गए। आश्चर्य हुआ मुझे। जिसका मुण्डन हो जाता था, उससे मेरा आन्तरिक सम्बन्ध अपने आप टूट जाता था। साथ ही उसके प्रति मोह-माया और आकर्षण भी समाप्त हो जाए, शायद इसीलिए मुण्डन कराया जाता है। इसी प्रकार जब मेरी लाश पूरी जल चुकी थी तो शरीर के प्रति भी मेरा मोह और जो आकर्षण था, वह भी समाप्त हो गया और घोर विरक्ति

से भर उठी मेरी आत्मा। उस अवस्था में मुझे जिस परम शान्ति का अनुभव हुआ, उसे बतलाया नहीं जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भौतिक जीवन में वैसी शान्ति दुर्लभ है। लेकिन बन्धु, उस परम शान्ति की परम अनुभूति अधिक समय तक न रह सकी। सहसा अपने आपको मैं ऐसे वातावरण में अनुभव करने लगा जिसे नारकीय ही कहा जायेगा। उफ् कैसा था वह वातावरण? गहन अन्धकार से भरा हुआ और नि:स्तब्ध जिसमें प्रवेश करते ही परम शान्ति की वह अनिर्वचनीय अनुभूति बदल गई एकबारगी। देखा, उस घोर अन्धकाराच्छन्न और निस्तब्ध वातावरण में मेरी ही तरह बहुत सारे लोग मानसिक यन्त्रणा भोग रहे थे। सभी अपने आप में अलग-थलग थे और थे अपने आप में लीन। मैं उस नारकीय वातावरण में कब तक रहा, यह तो बतला नहीं सकता लेकिन जब तक रहा, तब तक असहनीय रहा मेरे लिए सब कुछ। अचानक मुझे जोरों की भूख लगी। विकल हो उठा मैं भूख-प्यास से। और तभी पहुँच गया मैं अपने गाँव में। बड़ा आश्चर्य हुआ मुझे। देखा--मेरे घर ब्राह्मण-भोज हो रहा था उस समय। ब्राह्मणों के अलावा जाति-बिरादरी के लोग भी भोजन कर रहे थे। समझते देर न लगी मुझे। उस दिन मेरा श्राद्ध था। मेरे नाम से एक ब्राह्मण महाशय अलग बैठकर भोजन कर रहे थे। किसी अज्ञात प्रेरणा से मैं उनके निकट पहुँच गया। हे भगवान, यह क्या हुआ। उन्हें देखते ही मेरी भूख-प्यास एकबारगी खत्म हो गई और परम तृप्तिका अनुभव करने लगा मैं। अब मेरी समझ में आया कि मृतक का श्राद्ध और उसके नाम पर ब्राह्मण भोजन क्यों और किसलिए कराया जाता है।

थोड़ा रुककर सरजू प्रसाद पाण्डेय की गतात्मा ने आगे बतलाना शुरू किया---'ब्राह्मण भोजन समाप्त होने के बाद मैं अपने आप में एक बहुत बड़े परिवर्तन का अनुभव करने लगा?'

'कैसा अनुभव?' मैंने प्रश्न किया।

सर्वप्रथम मैंने अपने अस्तित्व में हल्कापन अनुभव किया और उसी के साथ मेरी मानसिक, वैचारिक और आत्मिक शक्ति बढ़ गई। इतना ही नहीं, मेरी इच्छाशक्ति भी एक विशेष सीमा तक प्रबल हो उठी जिसके फलस्वरूप प्रफुल्ल होकर मैं विचरण करने लगा। मेरे मार्ग में किसी भी प्रकार की भौतिक वस्तु बाधक नहीं थी। मैं प्रसन्नचित्त से भ्रमण करते हुए एक अत्यन्त रमणीक और सुरम्य स्थान पर पहुँच गया। मेरे सामने काफी लम्बा-चौड़ा और हरा-भरा मैदान था जिसके एक ओर सघन वृक्षों की कतारें थीं और दूसरी ओर धनुषाकार बहती हुई एक नदी थी। नदी काफी चौड़ी थी और उसका पानी स्वच्छ और निर्मल था। वृक्षों की डालियों पर पक्षी कलरव कर रहे थे। वातावरण में विचित्र सी शान्ति बिखरी हुई थी। चारों तरफ साँय-साँय कर रहा था। पहले तो मैंने समझा कि धरती के बाहर किसी अनजाने लोक में पहुँच गया हूँ मैं। मगर सुषमाओं से भरा स्थान इसी धरती पर ही कहीं था।

काफी दूर जाने के बाद एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखाई दिया मुझे, जिसकी दूर-दूर तक फैली हुई सघन शाखाओं के तले साधु-संन्यासियों की बहुत सी झोपड़ियाँ थीं जिनके चारों ओर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ थीं। फूलों की सुगन्ध से वातावरण भरा हुआ था।

उस सुगन्धित और मोहक वातावरण में एक स्थान पर कई साधु-संन्यासी सत्संग कर रहे थे। वहाँ जाकर खड़ा हो गया मैं। मुझे देखकर एक महात्मा बोले--'बेटा, तुम रहिमनपुर गाँव के हो न?' महात्मा का स्वर बड़ा ही कोमल और मधुर था। अपनत्व का भी भाव था उसमें। मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया--'हाँ महाराज, पर अब उस गाँव और अपने परिवार से मेरा कोई नाता-रिश्ता नहीं रह गया है। अब तो सब कुछ सपना-सपना सा लगता है।'

'क्या स्वप्न है और क्या यथार्थ है, इसका निर्णय कर पाना असम्भव है।' महात्मा बोले।

'मगर महाशय। आप कैसे जान गए कि रहिमनपुर गाँव का हूँ मैं।'

'मैं भी रहमिनपुर गाँव में कभी रहता था।' थोड़ा रुककर महात्मा आगे बोले--'गाँव के बाहर आम, जामुन और नींबू का जो बाग है न, वह मेरा ही था। मैंने ही उस बाग में शिव मन्दिर और कुँआ बनवाया था।'

..... तो...... तो..... क्या आप ही स्वामी सत्यानन्दजी हैं? मैंने आश्चर्य भरे स्वर में पूछा।

'हाँ! बेटा, ठीक समझा तुमने। मैं सत्यानन्द हूँ और मेरी ही है वह समाधि।'-महात्मा ने ऊपर शून्य में देखते हुए उत्तर दिया।

स्वामी सत्यानन्द जी ने लगभग अस्सी वर्ष पहले पूरे एक सौ दस वर्ष की उम्र में समाधि ली थी। सुना था कि स्वामी जी वेद, पुराण, शास्त्र आदि के प्रकाण्ड विद्वान थे। साधक भी थे। सभी उनका सम्मान करते थे और सभी देखते थे उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से।

जब तक मैं स्वामी जी के सान्निध्य में रहा, तब तक असीम शान्ति का अनुभव किया मैंने। उनके सत्संग से मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह अति मूल्यवान था। उसने मेरे भीतर अध्यात्म की एक ऐसी ज्योति जला दी जिसके प्रकाश से उद्भासित हो उठी है मेरी आत्मा।

'क्या अब स्वामी जी से आपका सम्पर्क नहीं है?' मैंने पूछा।

'जी नहीं। अब सम्पर्क नहीं रह गया है। इस समय अपने गाँव में ही रहकर पुनर्जन्म की प्रतीक्षा कर रहा हूँ मैं।'

'क्या मरणोपरान्त आपके व्यक्तित्व अथवा आपके जीवन में किसी प्रकार का अन्तर पड़ा है?' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में गतात्मा ने जो कुछ बतलाया, उसके अनुसार मनुष्य के विचार, स्वभाव, संस्कार आदि में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता जबकि उसकी मानसिक शक्ति अति प्रबल हो उठती है। विचारों में भी प्रगाढ़ता आ जाती है। थोड़ा अन्तर कहीं है तो केवल यही की स्थूल शरीर का जीवन श्वास-प्रश्वास का जीवन है जबकि सूक्ष्म शरीर का जीवन है श्वास-प्रश्वास रहित। यही एक मात्र कारण है कि सूक्ष्म शरीर दिक्-काल से परे होता है और वह किसी भी स्थान पर तत्काल उपस्थित भी हो सकता है। उसके लिए किसी प्रकार की पार्थिव सत्ता बाधक नहीं। एक विशेष बात यह भी समझ में आई कि सूक्ष्म शरीर धारी आत्माएँ कहीं अन्यत्र नहीं, हम सब लोगों के बीच में ही हैं। वे अपनी ओर से हम सबसे सम्पर्क स्थापित करने और अपना सन्देश देने का बराबर प्रयास करती रहती हैं। अगर हम ध्यानयोग द्वारा अपने मन को एकाग्र और वशीभूत कर अपने सूक्ष्म शरीर का विकास और उत्कर्ष कर लें तो हमारी ओर से भी सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं से सम्पर्क सम्भव है।

कहने को आवश्यकता नहीं, सुषमा अग्निहोत्री और सरजू पाण्डेय की कथा ने जहाँ एक ओर कई महत्वपूर्ण पारलौकिक रहस्यों को अनावृत्त किया, वहीं दूसरी ओर गतात्माओं से सम्पर्क साधने की दिशा में सर्वथा एक नए आयाम पर भी सोचने-समझने के लिए बाध्य कर दिया मुझे।

जिन दिनों मैं इस नए आयाम पर चिन्तन-मनन कर रहा था, उसी समय विश्व की प्रख्यात परामनोविज्ञानवेत्ता इलेन वर्टेलेट से मेरा परिचय हुआ। एक बार प्रसंगवश इलेन ने कहा--'जिन लोगों की यह धारणा है कि जो व्यक्ति इस लोक से चला जाता है, वह फिर नहीं मिलता है, मैं इसे सही नहीं मानती। आप जब चाहें तब अपने परिवार के प्रिय दिवंगत प्राणीयों से मिल सकते हैं। यह मिलन जागृत अवस्था में नहीं अपितु निद्रा की स्थिति में स्वप्न में ही हो सकता है।'

ब्रह्मपिशाच का प्रतिशोध

इलेन का कहना है कि स्वप्न में दिवंगत आत्मा से मिलने के लिए इच्छुक व्यक्ति को जागने के समय अपना ध्यान उस पर केन्द्रित करना होगा।

स्वप्न विशेषज्ञा इलेन यह मानती है कि मृत्यु जीवन के एक अन्य समपृष्ठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सूक्ष्म शरीर का विचरण उस विभाजक को पार कर जाता है जिसके उस पार वे आत्माएँ रहती हैं, जो इस संसार से विदा हो चुकी हैं। यहीं पर सूक्ष्म शरीर अपनी प्रिय दिवंगत आत्माओं से मिलता हैं। मृत्यु नये समारम्भ के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। स्वयं जीवन मृत्यु की एक प्रक्रिया है।

इलेन पिछले २५ साल से स्वप्न का अध्ययन कर रही हैं और इस पर तथा अन्य विविध विषयों पर व्याख्यान भी दे रही हैं।

वह स्वप्न को यथार्थगत अनुभूति मानती हैं। उनका कहना है कि स्वप्न में आप किसी मृत व्यक्ति के साथ होते हैं तो सचमुच आप वहीं होते हैं, जहाँ दिवंगत आत्मा है। आप उस आवरण को पार करके उसके पास चले जाते हैं जो आपके और उसके बीच में स्थित है।

अनेक व्यक्तियों ने स्वप्न में अपनी दिवंगत पत्नियों के साथ रहने के सुख का अनुभव किया है। ऐसा नहीं हो सकता कि आपसे दिवंगत प्राणी स्वप्न में बार-बार मिलता रहे। यह तभी सम्भव होगा जबकि दिवंगत आत्मा को यह पता लग जाए कि आप उससे मिलने के लिए उत्कण्ठित हैं। इस उत्कण्ठा का आभास दिवंगत आत्मा को तभी होगा जब आप अपने मन में उससे मिलने का बार-बार आग्रह करें।

सन् १९५४ ई. जनवरी का महीना। साँझ का समय। उन दिनों मैं 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य' शीर्षक एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिख रहा था और उसी के सम्बन्ध में अपने एक परामनोवैज्ञानिक मित्र से, जिनका नाम राधामोहन सान्याल था, मिलने कलकत्ता गया हुआ था। उस समय सान्याल महाशय भी 'भारतीय रहस्यवाद' पर शोधकार्य कर रहे थे। शनिवार का दिन था। सान्याल महाशय से मिलने के बाद मैं काली जी का दर्शन करने के लिए कालीघाट की ओर चल पड़ा। मगर उस समय माँ का पट बन्द हो चुका था, एक घण्टे बाद खुलने वाला था। अत: मैं समय व्यतीत करने के विचार से इधर-उधर टहलता हुआ कालीघाट के श्मशान की ओर चला गया। श्मशान में नित्य की भाँति उस समय दर्जनों चिताएँ जल रही थीं। दुर्गन्धमय वातावरण में अबूझ सी खिन्नता भरी उदासी पसरी हुई थी। न जाने कब तक मैं अपलक निहारता रहा उन जलती हुई चिताओं को! मन अवसाद से भर उठा। खिन्न हो गया चित्त उन चिताओं के रूप में जलते हुए परम सत्य को देखकर। तभी 'हरि बोल.... हरि बोल....बोल हरि...' की आवाज कानों में पड़ी। सिर घुमाकर देखा, खाट पर एक युवक का शव रखे हुए कुछ लोग जल्दी-जल्दी श्मशान की ओर आ रहे थे। शव के पीछे एक नवयुवती भी थी। सद्य: परिणीता नवयुवती! सहज ही आकृष्ट हो गई मेरी दृष्टि उसकी ओर। गोरा रंग, लम्बा कद, छरहरा बदन! माँग में लाल सिन्दूर, कलाइयों में शंख के वलय और काँच की लाल चूड़ियाँ। सुडौल और आकर्षक देह पर लिपटी हुई चौड़े पाट की लाल रेशमी साड़ी।

बहुत ही सुन्दर युवती थी वह। उम्र रही होगी २३-२४ साल के लगभग! आँखें सूजी हुई थीं। कभी गुलाब की तरह खिला रहने वाला चेहरा मुरझाया हुआ था। बाल खुलकर पीठपर बिखरे हुए थे। मुरझाए चेहरे पर असीम पीड़ा, कष्ट, दु:ख और असीम वेदना के भाव स्पष्ट थे। बुझी हुई आँखों के नीचे स्याह धब्बे उभर आए थे। निश्चय ही वह मृत युवक की पत्नी थी, समझते देर न लगी मुझे। काल के क्रूर हाथों ने उसी युवती का दप्-दप् करता हुआ सिन्दूर पोंछा था। उसी को असमय में विधवा बनाया था। मृत्यु ने!

कन्धों से उतार कर खाट जमीन पर रख दी गई। माथे पर उभर आई पसीने की बूंदों को गमछे से पोंछते हुए लोग जरा परे हटकर सुस्ताने लगे।

सामने जलती हुई लाशों को युवती ने पथरायी आँखों से एक बार देखा और फिर धम्म से पति की लाश के सिरहाने बैठ गई।

मैं धीरे-धीरे चलकर युवक की लाश के करीब पहुँचा। देखा, युवक काफी सुन्दर और आकर्षक था। गहरी शान्ति का भाव था चेहरे पर। ऐसा लगता था मानों वह गहरी नींद में सो रहा है और कोई मधुर सपना देख रहा है। आँखें अधखुली थीं। नीचें का होंठ मुस्कराहट की मुद्रा में था।

युवती दोनों हाथ बाँधे, बुझी-बुझी आँखों से अपने पति के चेहरे की ओर एकटक निहार रही थी अब! ऐसा लगा, मानो वह अपने पति के नींद से जागने की प्रतीक्षा कर रही हो। अचानक अपने दोनों हाथों को फैलाकर युवती ने लाश को अपने आलिंगन में ले लिया और करुण स्वर में लगी विलाप करने। श्मशान की उदासी और गहरी हो गई। पेड़ पर बैठा हुआ कौवा भी एकबारगी कें-कें कर चीख पड़ा। लोग दौड़े और लपककर युवती को लाश से अलग किया। फिर एक सज्जन समझाते हुए बोले--'इस तरह अब रोने से कोई लाभ नहीं चन्दना! अपने मन को शान्त रखो, जो चला गया अब वह लौटकर आने वाला नहीं है।'

युवती का नाम चन्दना था। सचमुच चन्दना ही थी। वे सज्जन उसे पकड़ कर एक ओर ले गए और फिर समझाने लगे! मगर चन्दना अभी भी रोए ही जा रही थी। कभी वह आँचल से आँसू पोंछती तो कभी पति की लाश की ओर देखती।

दृश्य बड़ा ही करुण हो चला था। मन विषण्ण हो उठा मेरा। रुका न गया मुझसे वहाँ फिर। श्मशान के बाहर निकल आया मैं। मगर तभी एक सज्जन किसी को चीख-चीख गाली देते हुए वहाँ आ पहुँचे। ६०-६५ के लगभग उम्र थी महाशय की। पर वेशभूषा भिखारियों जैसी थी। वे फटा-पुराना, चिथड़े जैसा कुर्ता पहने थे। कमर में मैली-कुचैली धोती बँधी हुई थी। सिर के पके बाल सूखे और उलझे हुए थे। दाढ़ी भी काफी बढ़ी हुई थी। बिल्कुल किसी पागल भिखारी जैसे लग रहे थे महाशय! उस व्यक्ति को अचानक वहाँ देखकर लोग एकबारगी घबरा गए। दो-तीन सज्जनों ने आगे बढ़कर उन्हें पकड़ना चाहा मगर वे महाशय सभी को परे ढकलेते हुए उस युवक की लाश के करीब जा पहुँचे। और 'मेरे लाल....मेरे बेटे... मेरे निशीथ' करते हुए लिपट गए लाश से।

मृत युवक का नाम निशीथ था, लेकिन वे वृद्ध महाशय कौन थे? क्या पिता थे उस मृतक के? हाँ! पिता ही थे वे। बगल में खड़े एक बंगाली सज्जन फुसफुसाकर बोले-- 'आपने पहचाना नहीं! यह रायचौधरी विपिन बाबू हैं।'

'रायचौधरी विपिन मजुमदार! चन्दनवाड़ी के जमींदार, रायचौधरी विपिन..।'

'हाँ! हाँ! महाशय वही रायचौधरी मजूमदार! उन्हीं के इकलौते बेटे की लाश है यह। वहाँ जो खड़ी रो रही है लड़की, उन्हीं की पुत्रवधू है बेचारी। अभी एक ही साल पहले तो शादी हुई है। लेकिन मौत के सामने भला किसका वश चलता है?'

रायचौधरी विपिन मजूमदार को मैं जानता था। अपने समय के बहुत बड़े जमींदार थे महाशय। चन्दनबाड़ी में उनकी बहुत बड़ी आलीशान हवेली थी। कलकत्ता में भी उनके कई मकान थे। कई सिनेमा हाल के मालिक भी थे वह। सभी प्रकार का सुख प्राप्त था उन्हें। बड़े ही वैभवशाली और सम्पन्न थे मजूमदार... मगर उनकी हालत यह कैसे हो गई? कौन से राहु ने ग्रस लिया उनको? --'अरे भाई ब्रह्म पिशाच के प्रतिशोध की आग में सब कुछ जलकर भस्म हो गया। अब बाकी ही बचा क्या? एक लड़का था, वह भी आज चल बसा बेचारा।' बगल में खड़े बंगाली महाशय अपने आप कहने लगे 'भगवान दुश्मन को भी ऐसा बर्बाद न करें।'

'ब्रह्म पिशाच का प्रतिशोध! कैसा प्रतिशोध?' समझ में नहीं आया मेरे। जब मैंने सान्याल महाशय से इसकी चर्चा की तो पहले वे गम्भीर हो गए और फिर उन्होंने जो कुछ बतलाया, वह बड़ी ही मर्मस्पर्शी और रोमाञ्चकारी कथा थी। सान्याल महाशय भी चन्दनबाड़ी के ही निवासी थे।

सन्ध्या का अपहरण

यह पहली बार मुझे मालूम हुआ। रायचौधरी की मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा, धन, यश, कीर्ति और वैभव के साथ उनके समूचे परिवार को 'ब्रह्म पिशाच' के प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए सान्याल महाशय ने अपनी आँखों से देखा था।

सारी कथा सुन लेने के बाद नींद न आई मुझे पूरी रात। बार-बार चन्दना का मासूम चेहरा उभर आता था आँखों के सामने! मरणोपरान्त जीवन पर पुस्तक तो अवश्य लिख रहा था मैं, मगर रायचौधरी की मर्मस्पर्शी कथा ने मुझे इस बात का विश्वास दिला दिया कि मृत्यु के बाद भी जीवन के अस्तित्व में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। मनुष्य के विचार, स्वभाव, गुण, संस्कार आदि में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता।

रायचौधरी विपिन बाबू सज्जनता और दया की प्रतिमूर्ति थे। उन्हें तीन सन्तानें थीं, दो पुत्र और एक पुत्री। बड़े पुत्र का नाम था मनीष रायचौधरी और छोटे पुत्र का नाम था निशीथ रायचौधरी। पुत्री, जिसका नाम था हेमलता, सबसे छोटी थी। जहाँ विपिन बाबू सदाचारी, सज्जन, दयालु और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, वहीं ठीक उसके विपरीत मनीष परम व्यसनी और दुराचारी था। जमींदारों के जितने भी अवगुण होते हैं, वे सबके सब उसमें कूट-कूटकर भरे थे। लुक-छिपकर वह शराब पीया करता था और गाँव की बहू-बेटियों को छेड़ा करता था। इन तमाम अवगुणों के बावजूद मनीष में एक विशेषता यह थी कि वह अपने पिता की अवज्ञा नहीं करता था। उनके सामने वह एक आज्ञाकारी पुत्र के समान ही रहता था।

विपिन बाबू काली के साधक-उपासक थे। अपनी विशाल हवेली में ही उन्होंने काली का एक भव्य मन्दिर बनवाया था जिसमे काली की चतुर्भुजी पाषाण प्रतिमा स्थापित थी। दोनों नवरात्रों में विशेष रूप से माँ काली की पूजा-अर्चना और आराधना होती और भैसों की बलि भी दी जाती।

माँ काली की नित्य सेवा और पूजा-पाठ के लिए पैतृक पुरोहित आशुतोष भट्टाचार्य नियुक्त थे। हर अमावस्या को नियम के अनुसार मनीष को भी पूजा के लिए मन्दिर जाना पड़ता था। पिताजी की आज्ञा पर मन ही मन झुँझलाते हुए भी वह उनकी अवज्ञा नहीं कर पाता था। उसका कुसंस्कारी मन पिता के अनुशासन और जप-तप, पूजा-अर्चना आदि में नहीं बँध पाया था। पुरोहित भट्टाचार्य महाशय को केवल एक पुत्री थी "सन्ध्या" जो अपनी नानी के यहाँ कलकत्ता में रहती थी। भट्टाचार्य महाशय अकेले थे और मन्दिर से सटे एक कमरे में रहते थे। उनका रहन-सहन और खाने-पीने का सारा खर्च विपिन बाबू वहन करते थे। सदैव दूसरों को आर्शीवाद देकर भट्टाचार्य महोशय अपने शुष्क जीवन का सूनापन दूर करते थे। सन् १६४६ में उनकी सास का देहान्त हो गया इसलिए उनकी एकमात्र पुत्री सन्ध्या चन्दनबाड़ी चली आई और पिता के साथ रहने लगी। सन्ध्या तब १६-१७ वर्ष की हो चली थी। उसका एक-एक अंग पुष्ट होकर खिल उठा था। उसका रंग काफी गोरा था। कद लम्बा और शरीर छरहरा था। आँखें बड़ी-बड़ी थीं और नाक नुकीली थी। होंठ पतले और गुलाब के फूल की तरह कोमल और रक्ताभ थे। कोई भी उसे देखता तो बस अपलक देखता ही रह जाता।

पुत्री के आ जाने से भट्टाचार्य महाशय को मुँहमांगी मुराद मिल गई थी। उनको अपने नीरस जीवन में पहली बार ही शायद सुख-सुविधाओं की झलक मिली थी। सन्ध्या ने आते ही गृहस्थी जमा दी थी। भट्टाचार्य को दोनों समय भोजन मिलने लगा था। जीवन का ढर्रा चलता रहा कुछ समय तक। एक दिन भट्टाचार्य महाशय के मन में तीर्थयात्रा करने का विचार उत्पन्न हुआ। वे काशी और वृन्दावन जाना चाहते थे और वहाँ कुछ समय व्यतीत कर बदरीनाथ भी जाने की उनकी इच्छा थी। अवसर देखकर एक दिन उन्होंने अपनी तीर्थयात्रा के इस विचार को विपिन बाबू के सम्मुख व्यक्त किया।

विपिन बाबू स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनको भला क्या एतराज हो सकता था? उन्होंने तुरन्त अनुमति दे दी। बोले-- 'भट्टाचार्य जी आप सहर्ष तीर्थयात्रा पर जाएँ। जो खर्च चाहिए वह मुझसे ले लें।' भट्टाचार्य महाशय प्रसन्न हो उठे। गद्‌गद स्वर में बोले--'मेरी अनुपस्थिति में संध्या को आप अपनी शरण में रख लें। तीर्थयात्रा से वापस लौटने पर मैं शीघ्र ही संध्या का विवाह करना चाहता हूँ।'

विपिन बाबू को इसमें क्या आपत्ति थी। उन्होंने संध्या को अपने पास रखने तथा भट्टाचार्य जी को चिन्तारहित होकर तीर्थयात्रा करने का आश्वासन दे दिया।

एक सप्ताह बाद भट्टाचार्य महाशय तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गए और सन्ध्या विपिन बाबू के परिवार के साथ हवेली में रहने लगी। शीघ्र ही वह हेमलता की प्रिय सहेली भी बन गई। विपिन बाबू की पत्नी बड़ी रानी कनकप्रिया देवी तो सन्ध्या की सुघड़ता और मृदु स्वभाव की प्रशंसा ही किया करती थीं। अभाव में पली संध्या समुचित स्नेह और अपनत्व पाकर खिल उठी। ओस में भीगे गुलाब के फूल की तरह उसका रूप-रंग निखर आया। विपिन बाबू ने हेमलता के साथ ही उसकी भी शिक्षा और गायन सीखने का प्रबन्ध कर दिया। वह एक प्रकार से हेमलता की छोटी बहन ही बन गई थी। दोनों प्राय: साथ ही साथ रहती थीं। हवेली के सामने आम का घना बाग था। काफी बड़ा बाग था वह। एक दिन हेमलता और संध्या साथ-साथ बाग में टहल रही थीं। उसी समय मनीष भी वहाँ पहुँच गया। अभी तक संध्या को नहीं देखा था उसने। अपनी बहिन के साथ एक रूपसी युवती को देखकर उसका लोलुप मन उसे अंकशायिनी बनाने के लिए तड़प उठा। उसने ललचाई नजर से संध्या की ओर देखा और फिर अपनी बहन से पूछा--यह लड़की कौन है?'

'अरे आपको नहीं मालूम? पुरोहितजी की लड़की है सन्ध्या।' हेमलता हँसकर बोली।

'मैं तो आज ही इसे देख रहा हूँ। बहुत सुन्दर है।' सन्ध्या की ओर अपलक निहारते हुए मनीष बोला।

'आप घर पर रहते ही कहाँ हैं कि इसे देखेंगे!' हेमलता आगे बोली--'संध्या जितनी सुन्दर है उससे कहीं अधिक सुन्दर इसका गाना है। सुनेंगे तो पागल हो जाएँगे!'

'ठीक है, कभी सुनेंगे तुम्हारी सहेली का गायन!'

जब दोनों की बातें हो रही थीं, उस समय संकोच में डूबी एक ओर खड़ी थी संध्या।

मनीष की लोलुप दृष्टि बराबर जमी रही संध्या पर। संध्या ऐसी कामुक दृष्टि से भली-भाँति परिचित थी। उसे मनीष की आँखों में वासना के उस दानव का आभास मिल चुका था, जो आँखों ही आँखों में उसे पी जाना चाहता था। वह तुरन्त उसके सामने से हट गई।

मनीष की वासना की आग बुरी तरह भड़क चुकी थी। वह किसी भी तरह और किसी भी कीमत पर संध्या को प्राप्त कर लेना चाहता था। अब तक न जाने कितनी कुमारी लड़कियों और विवाहिता युवतियों के सतीत्व से खेल चुका था वह मगर बदनामी के भय से और जमींदारी के रोब से कोई कुछ बोल नहीं पाता था। आखिर एक रात अपहरण कर ही लिया मनीष ने संध्या का। मगर यह अपहरण केवल मनीष के लिए ही नहीं

बल्कि रायचौधरी के समूचे परिवार के लिए भयंकर रूप से घातक सिद्ध हुआ। नित्य की भाँति चार बजे भोर में कनकप्रिया देवी उठीं। उन्होंने देखा कि उनकी बगल वाली चारपाई पर सन्ध्या नहीं थी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। संध्या उनके साथ ही उठती थी और नित्यक्रिया के लिए जाती थी। जब दो-तीन घण्टे तक संध्या किसी को हवेली में नहीं दिखलाई दी तो हंगामा मच गया। हर सम्भावित स्थान को खोजा गया मगर संध्या को नहीं मिलना था, नहीं मिली।

रायचौधरी विपिन बाबू इसी दु:ख में बीमार पड़ गए और उन्होंने चारपाई पकड़ ली। करीब बीस दिन बाद तालाब के किनारे आम के एक पेड़ के नीचे झाड़ी में फँसा हुआ सन्ध्या की साड़ी का टुकड़ा मिला। जब लोगों ने उसे पहचाना तो गाँव में हंगामा मच गया। फिर पुलिस आई। तालाब में जाल डाला गया। काफी देर बाद सन्ध्या की लाश पत्थर में बँधी हुई मिली। लाश नंगी थी और बुरी तरह सड़ चुकी थी। लाश को देखकर कनकलता देवी बेहोश होकर गिर पड़ीं।

पुरोहित का आत्मघात

मर्यादा, शील और धर्मभीरु विपिन बाबू चीख-चीख कर अपने सिर के बाल नोचने लगे। बीमार तो थे ही। उनकी आत्मा कलप रही थी कि भट्टाचार्य को दिए गए वचन को अब कैसे निभा पाएँगे? क्या जवाब देंगे उनको?

चार-पाँच महीने के बाद भट्टाचार्य महाशय तीर्थयात्रा से वापस चन्दनबाड़ी लौटे और जब उन्होंने यह अप्रत्याशित दु:खद समाचार सुना तो विक्षिप्त हो उठे। लगातार हफ्तों तक 'संध्या-संध्या' चिल्लाते रहे। संयम और विवेक की प्रतिमूर्ति भट्टाचार्य महाशय का संयम टूट गया था। विवेक भी नष्ट हो गया था उनका।

'किस व्यभिचारी ने मेरी पुत्री के साथ दुराचार किया है? मैं उसका समूल नाश कर दूँगा। उसके पूरे वंश को नष्ट कर दूँगा।' क्रोध से थर-थर काँपते हुए उस ब्रह्मतेजोमय ब्राह्मण ने कहा और धीरे-धीरे चलकर तालाब के किनारे पहुँचे और पानी में उतरकर अपना गमछा भिगोया तथा फिर उसे कसकर गले में बाँधा और आत्महत्या कर लिया।

ब्रह्म हत्या का समाचार जब विपिन बाबू ने सुना तो पीले पड़ गए। एक नहीं दो-दो मौतें हो चुकी थीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे करें क्या? सदमे को बर्दाश्त न कर सके विपिन बाबू। पागल हो गए वह। दिनभर गाँव में घूमते रहते और चीखते-चिल्लाते रहते। हालत उनकी दिन पर दिन दयनीय होती गई।

विपिन बाबू की अवस्था ऐसी होने पर मनीष स्वतन्त्र हो गया। उसकी तूती बोलने लगी। सुरा-सुन्दरी का खुला प्रयोग होने लगा हवेली में।

बरसात का मौसम था। उस दिन सबेरे से ही पानी बरस रहा था। साँझ गहरा गई थी। मनीष आकण्ठ डूबा हुआ था मदिरा में और उस समय उसकी वासना को तृप्त करने

के लिए कई ग्राम बालाएँ थीं उसके निकट। अचानक चीखकर जमीन पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। फिर तो उस दिन से एक न एक व्याधि उसे लगी ही रहती। मनीष को लगता कि किसी अज्ञात शक्ति ने उसे जमीन पर पटक दिया है। नींद में भयानक से भयानक और डरावनी आकृतियाँ उसे घूरती हुई दिखलाई देतीं। कभी-कभी ऐसी स्थिति में खाट से उठकर तालाब की ओर भागने लग जाता वह। भोजन परोसकर जब सामने रखा जाता तो मल-मूत्र में परिवर्तित हो जाता वह। मनीष को भूखा-प्यासा ही रह जाना पड़ता। बड़े-बड़े पण्डित, तान्त्रिक और ओझा बुलाए गए। पूजा-पाठ, तन्त्र-मन्त्र और झाड़-फूँक की गई। तरह-तरह के वैदिक और तान्त्रिक अनुष्ठान और प्रयोग किए गए मगर लाभ कुछ नहीं हुआ। सभी ने यही बतलाया कि मनीष पर ब्रह्म राक्षस का प्रकोप है। ठीक होना असम्भव है। कोई भी उपचार शुरू होने पर मनीष के सारे शरीर में असह्य पीड़ा होने लग जाती थी और वह पागलों की तरह चीखने-चिल्लाने लगता था। मरने के पहले बराबर एक सप्ताह तक वह बेहोश रहा। सभी उपाय व्यर्थ गए। कभी-कभी उसी बेहोशी की ही अवस्था में वह चिल्लाता--'मैं रायचौधरी का वंश निर्मूल कर दूँगा... सर्वस्व नाश कर दूँगा..।'

और एक रात वह जैसे ही चिल्लाकर बोला--'मैं रायचौधरी का वंश निर्मूल कर दूँगा' उसी समय उसके मुँह से ढेर सारा खून निकला और उसी के साथ निकल गए उसके प्राण भी।

मरने के कुछ देर पहले मनीष ने अपनी माँ को अपना पाप बतलाया। उसने कहा--'वह सन्ध्या को अपने दो आदमियों की सहायता से उठवाकर गाँव के बाहर रंगमहल में ले गया था। वहाँ उसने सन्ध्या के साथ दुष्कर्म किया। इच्छाभर भोग लेने के बाद उसने उसे नौकरों के हवाले कर दिया। नौकरों ने भी जी भरकर मनमानी की सन्ध्या के साथ और फिर गला घोंटकर नौकरों ने उसकी हत्या कर दी तथा लाश को तालाब में डुबो दिया पत्थर बाँध कर।'

मनीष के मरने के बाद हवेली में तरह-तरह की भयानक आवाज गूँजने लगी। कभी-कभी किसी औरत के खिलखिलाकर हँसने की आवाज भी तैर जाती हवा में। हवेली के बन्द दरवाजे, खिड़की और आलमारियों के बन्द पल्ले अपने आप फटाफट खुल जाते। कभी-कदा हवेली के भीतर चारों तरफ मल-मूत्र की वर्षा होने लगती, जिसके फलस्वरूप वातावरण में दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध फैल जाती। हवेली में कीमती सामानों का गायब होना और कपड़ों में अपने आप आग लग जाना तो मामूली बात हो गई थी।

करीब एक साल तक तो ऐसा ही होता रहा सब कुछ। उसके बाद मौत का सिलसिला चल पड़ा। एक के बाद एक मृत्यु होने लगी। शान्ति के लिए किसी अनुष्ठान के निमित्त कोई भी ब्राह्मण या तान्त्रिक तैयार न होता। पूजा-पाठ और हवन के लिए यदि

कोई तैयार भी हो जाता तो हवन की अग्नि ही प्रज्वलित न हो पाती। खैर, अन्त में सदाबहार हवेली वीरान हो गई। निशीथ कलकत्ते में अपने मामा के पास रहता था। बस वही बचा रहा इस अभिशाप से अब तक। वह विपिन बाबू को भी कलकत्ता ले आया। इलाज भी कराया उनका। मगर ठीक कहाँ होना था उनको। हाजरा रोड और कालीघाट की सड़कों और गलियों में पागल भिखारी की तरह घूमते रहते। दया करके किसी ने कुछ दे दिया तो खा लिया वरना अपने में लीन।

उस घटना के करीब पन्द्रह-सोलह दिनों के बाद साँझ के समय मैं हाजरा रोड से गुजर रहा था। देखा फुटपाथ पर विपिन बाबू पड़े हुए थे। शरीर पर वही फटा-पुराना कुर्ता और मैली-कुचैली लुंगी। उलझे हुए बाल कीचड़ में सने हुए थे। आँखें बन्द थी। मुँह खुला हुआ था। एक ओर अलमुनियम का एक कटोरा पड़ा था। खाली नहीं था वह। उसमें भात था जो कभी का सूख गया था।

निस्पन्द पड़े विपिन बाबू के चारों ओर घेरकर बहुत से लोग खड़े थे। पूछने पर मालूम हुआ कि न जाने कब के मरे पड़े हैं फुटफाट पर वह। आँखें भर आईं मेरी। रुका न गया वहाँ फिर मुझसे। वंश के अन्तिम एक मात्र चिराग निशीथ की मृत्यु के आघात को सह न सके विपिन बाबू। सचमुच ब्रह्म पिशाच के प्रतिशोध की आग ने उन्हें भी जलाकर भस्म कर डाला था।

लगभग दस वर्ष बाद सन् १९६५ में मुझे एक आवश्यक कार्य से सान्याल से मिलने के लिए चन्दनबाड़ी जाना पड़ा। एक प्रकार से मैं इन तमाम घटनाओं को भूल ही चुका था। मगर जब चन्दनबाड़ी पहुँचा तो स्मृतिपटल पर एक-एक घटना उभर आई।

करीब ७०-८० कच्चे-पक्के मकानों का गाँव चन्दनबाड़ी। गाँव के बाहर एक बहुत बड़ा पक्का तालाब था और था काली मन्दिर जिससे सटा हुआ था काफी लम्बा-चौड़ा केला बागान और उस बागान के बाद थी विपिन बाबू की विशाल हवेली। साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी वातावरण में। जब मैं तालाब के किनारे से होकर आगे बढ़ा तो सामने ही दिखलाई पड़ गई हवेली। व्यस्त परिवेश में अतीत की एक यादगार के रूप में वह हवेली धूलि-धूसरित होकर भी वहाँ की भंगिमा से सिर ऊँचा किए खड़ी थी। फिर भी मुझे वह बड़ी ही म्लान और कातर प्रतीत हुई। सब ओर साँय-साँय हो रहा था। सेवार और जलकुम्भी से भरे तालाब के मटमैले पानी में छाया पड़ रही थी हवेली की। मैंने देखा-तालाब की सीढ़ियाँ टूटी-फूटी थीं और उनपर बेशुमार काई जमी हुई थी जिसके फलस्वरूप वातावरण में दुर्गन्ध फैल रही थी। सोचने लगा मैं... इसी तालाब में सन्ध्या की लाश फेंकी गई थी और इसी तालाब के पानी में उतरकर आत्मघात किया था भट्टाचार्य महाशय ने। एक हत्या की गई थी और दूसरे ने स्वयं अपनी हत्या की थी। दोनों गतात्माओं का साक्षी था वह मूक तालाब। विषण्ण हो उठा मेरा मन और वहीं काई

लगी एक सीढ़ी के टूटे पत्थर पर बैठ गया मैं। कब तक गालों पर हाथ धरे चुपचाप यही सब सोचता हुआ बैठा रहा मैं, ख्याल नहीं। अचानक किसी के खिलखिलाकर जोर से हँसने की आवाज कान में पड़ी मेरे। चौंक पड़ा एकबारगी मैं। चारों ओर सिर घुमाकर देखा... सारी प्रकृति रात्रि के निविड़ अन्धकार में डूबी हुई थी। कौन था? किसकी हँसी थी वह? कुछ समझ में न आया मेरे। उठकर चलने लगा मैं।

अभी चार-पाँच कदम ही चला होऊँगा कि अचानक फिर वहीं हँसी सुनाई पड़ी मुझे। इस बार हँसने की आवाज को ध्यान से सुना मैंने। हवेली के भीतरी हिस्से से आई थी वह आवाज। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर घूम पड़ा मैं हवेली की ओर।

प्रेत योनि से मुक्ति

एक अबूझ-सी उदासी, एक विचित्र सी खिन्नता परिव्याप्त थी हवेली में। लाल पत्थरों से बनी उस ऊँची शानदार हवेली की धूल से अटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय लगा जैसे काफी अरसे से कोई आया न हो वह। टूटी-फूटी जर्जर बारादरी में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़फड़ाते कबूतर कानों को छूते हुए निकल गए। लगा जैसे चमगादड़ों का समूह भी समवेत स्वर में चीखा हो वहीं कहीं।

देखा-सामने हाथ में लालटेन लिए कोई आ रहा था। राशि-राशि बिखरे अन्धकार में लालटेन की पीली मद्धिम रोशनी का दायरा एक बार सिमट कर फैला और फिर फैलता ही गया। विस्मित आँखों से एकटक सामने देखता रहा मैं।

धुँआ उगलते लालटेन के म्लान उजियाले के पीछे एक अस्पष्ट सा चेहरा। गौर से देखने पर शरीर की रेखाएँ स्पष्ट हो गई। लम्बा, दुबला, जीर्ण-शीर्ण शरीर, तीखी नाक, विस्फारित भावहीन-सी आँखें, आँखों के किनारे गहरी स्याही, विर्वण रक्तहीन-सा चेहरा। न जाने किस निगाह से देख रही थी वह प्रौढ़ा कि डर लग आया।

जैसे दुविधा हो रही हो। ऐसी निगाह से देखती रही थी मेरी ओर वह प्रौढ़ा। फिर क्षीण हँसी हँसकर बोली--'आइए भीतर चले आइए।'

फीकी रोशनी का दायरा कसमसाया और फिर आगे सरका। उसी के पीछे-पीछे मैं चला।

भीतर गहरी खामोशी थी। बाहर की दुनिया से वह अनजाना लोक परे सा प्रतीत हुआ मुझे। थोड़ा भय लगा लेकिन फिर सम्हाल लिया मैंने अपने आपको। यह प्रौढ़ा कौन है? क्या इसी की हँसने की आवाज सुनाई पड़ी थी मुझे? जब मैं मन ही मन यह सब सोच रहा था--उसी समय उसने पीछे मुड़कर मेर ओर देखा और फिर जरा सा हँसकर बोली, 'आपने मुझे क्या पहचाना नहीं?'

'नहीं, आपको पहचान न सका मैं! कौन हैं आप?'

'शायद कालीघाट की श्मशान की घटना भूल गए आप, ऐसा लगता है मुझे?'

यह सुनकर अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। 'क्या आप चन्दना हैं? विपिन बाबू की पुत्रवधू चन्दना!'

'हाँ! अब पहचाना आपने ठीक से मुझे।' फिर फिस-फिस कर हँस पड़ी चन्दना! बड़ी ही रहस्यमई हँसी थी वह।

'आप इस हवेली में मुझे मिलेंगी, ऐसा कभी सोचा भी न था मैंने....कब से हैं आप?'

'जबसे मेरी दुनिया उजड़ी है तभी से हूँ शर्मा जी।'

'मैं शर्मा हूँ! यह कैसे मालूम है आपको?'

'मुझे सब मालूम है पण्डित जी! आप बनारस के रहने वाले हैं और यहाँ सन्याल बाबू से मिलने आए हैं, यह भी मुझे मालूम है।'

स्तब्ध रह गया मैं। रहस्य समझ में नहीं आया मेरे। लम्बे-चौड़े आँगन के बाद कई बड़े-बड़े कमरे थे। एक कमरे का दरवाजा लगा, जैसे अपने आप खुल गया हो। जमीन पर एक खाट बिछी थी। एक तरफ टूटी हुई एक कुर्सी भी पड़ी थी। मुझे इसी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर स्वयं खाट पर बैठ गई छोटी रानी! सहसा हवा का एक झोंका आया और उसी के साथ कमरे में विचित्र-सी दुर्गन्ध फैल गई। लगा, जैसे कहीं कोई मुर्दा सड़ रहा हो।

लालटेन की काँपती हुई पीली रोशनी में अब साफ देख रहा था मैं छोटी रानी चन्दना को। जो रूप और सौन्दर्य दस वर्ष पहले देखा था, वैसा अब कुछ नहीं था वहाँ। न वह रूप था और न तो वह सौन्दर्य ही। चम्पा के फूल की तरह शरीर का रंग धूमिल पड़ गया था। सावन-भादों की काली घटा की तरह स्याह, घने बाल अधपके होकर रूखे पड़ गए थे। आँखों के नीचे भी स्याही फैल गई थी। पूरे चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आई थीं। मगर इन सबके बावजूद चेहरे पर एक अजीब सा तेज फैल रहा था उस समय! खाट पर बैठने के बाद छोटी रानी ने एक बार बड़ी गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर आहिस्ते से बोली--'आप तो जानते ही हैं सारी कथा......?'

'हाँ! लगभग सब जानता हूँ। सब कुछ सुन चुका हूँ मैं। वासना की एक छोटी सी चिनगारी ने कैसे प्रतिशोध की ज्वालामुखी बनकर रायचौधरी परिवार को भस्म कर डाला, उससे अच्छी तरह परिचित हूँ मैं!'

'उफ! हे माँ! क्या हो गया।' एक दीर्घ श्वाँस ली छोटी रानी ने और फिर आगे बोलीं-'मेरा एक काम है! कर सकेंगे आप उसे?'

'आज्ञा दें! अवश्य करूँगा मैं।'

मेर बात सुनकर छोटी रानी ने एक बार चारों तरफ आँखें घुमाकर देखा और फिर खाट पर बिछी दरी के नीचे से एक पोटली निकाल कर उसे मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा--'ये रुपए हैं! पूरे पाँच हचार रुपए... इसे रख लें आप अपने पास।'

पोटली ले ली मैंने। फिर बोला--'क्या करना होगा मुझे?'

फिर एक लम्बी साँस ली छोटी रानी ने और उच्छ्वास भरे स्वर में कहने लगीं--'रायचौधरी परिवार के सभी लोग भयानक प्रेत योनि में पड़े हैं। उनकी आत्मा का उद्धार करना होगा आपको।'

'ठीक है! मगर मैं कैसे कर सकता हूँ उद्धार!'

'आपको मैंने जो रुपए दिए हैं, इनसे आप काशी और गया में श्राद्ध करवा दें और ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियों को भोजन भी करवा दें। इन सबसे उन प्रेतात्माओं को शान्ति मिलेगी और प्रेत-योनि से मुक्ति भी मिल जाएगी।'

अपने वाक्य को जैसे ही छोटी रानी ने पूरा किया, उसी समय आँगन में किसी की खिलखिलाकर हँसने की आवाज आई। किसकी हँसी थी वह? आश्चर्य और भय के मिले-जुले भाव से भर गया मन। सिर घुमाकर देखने की कोशिश की मैंने, पर अँधेरे में कुछ दिखलाई न पड़ा मुझे!

दस-पन्द्रह मिनट बाद फिर उसी प्रकार हँसने की आवाज आई। इस बार की हँसी मुझे कुछ अजीब सी लगी। निश्चय ही वह किसी मनुष्य की हँसी नहीं थी। अचानक मेरी निगाह छोटी रानी की ओर घूम गई। देखा, उनका चेहरा पीला पड़ गया था। भय और आतंक से भरकर काँप रही थीं वह। पथराई हुई आँखों से कभी मेरी ओर तो कभी आँगन की ओर देख लेती थीं। फिर एकाएक उनका चेहरा काला पड़ गया। हँसने की फिर आवाज सुनाई पड़ी। इस बार बिल्कुल नजदीक सुनाई पड़ी थी आवाज। ऐसा लगा मानों कोई कमरे में ही हँसा हो। नजर अपने आप घूम गई और फिर सुषम्रा तक एक हिमप्रवाह दौड़ गया। रोम-रोम सिहर उठा मेरा। सोलह-सत्रह साल की एक युवती दरवाजे के पास खड़ी छोटी रानी की ओर घूर रही थी। बड़ी भयानक शक्ल थी उस युवती की। सारा शरीर पानी से भीगा हुआ था उसका। बालों से भी पानी चू रहा था। गीली साड़ी बदन से चिपकी हुई थी। ऐसा लगा मानो अभी-अभी स्नान करके आई हो वह। कौन थी वह युवती! उसे देखकर असीम आतंक से अवश हो गया मेरा सारा शरीर। लगा जैसे प्राण ही निकल जाएँगे। छोटी रानी की ओर देखने की कोशिश की मैंने, लेकिन कहाँ थीं वह? एक क्षण.... एक क्षण का भी सौवाँ हिस्सा उसके बाद ही वह रहस्यमयी युवती आँगन की ओर बढ़ गई और अगले ही क्षण भयानक अट्टाहास से गूँज उठा निस्तब्ध वातावरण। लगा जैसे भयातुर कण्ठ से छोटी रानी ने चीत्कार किया हो--'बचाओ....।'

'छोटी रानी, छोटी रानी.... रानी मैं' पुकारता हुआ मैं भी भागा आँगन की ओर। मगर दूसरे ही क्षण किसी पत्थर से टकराकर गिर पड़ा मुँह के बल जमीन पर, फिर होश

न रहा मुझे और जब चेतना लौटी तो देखा--सबेरा हो चुका था और मैं सन्याल महाशय के कमरे में एक खाट पर पड़ा था। सान्याल महाशय के अलावा और भी कई लोग मेरे करीब खड़े थे। सभी के चेहरे पर उत्सुकता, विस्मय और आश्चर्य का मिला-जुला भाव था।

'छोटी रानी कहाँ है?' धीमे स्वर में पूछा मैंने सान्याल महाशय से?

सान्याल महाशय का चेहरा गम्भीर हो उठा! बिना कुछ बोले दूसरे कमरे में चले गए वह और जब वापस लौटे तो उनके हाथ में पोटली थी, रुपये की पोटली!

'क्या यह आपका रुपया है?'

'नहीं! रानी माँ ने दिया था रुपया। उन्हीं का है यह रुपया।' यह सुनकर सान्याल महाशय का सफेद हो गया चेहरा। शायद उनका गला सूख गया था। सूखे कण्ठ से हकलाते हुए बोले--'कल रात सचमुच आपसे छोटी रानी माँ मिली थीं और रुपया दिया था?'

'आप इस तरह क्यों पूछ रहे हैं? क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ आपसे?'

'नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं है। आपसे रानी माँ नहीं, रानी माँ की भटकती हुई प्रेतात्मा मिली थी।' और सान्याल महाशय अपना वाक्य पूरा कर पाते कि बीच में ही चीखकर बोल पड़ा मैं--'क्या प्रेतिनी थी वह?'

'हाँ!' सान्याल महाशय ने जवाब दिया--'वह प्रेतिनी थी। पिछले दस साल से भटक रही है वह इस हवेली के खण्डहर में! और उसके साथ ही भटक रही है सन्ध्या की भी प्रेतात्मा।'

कहने की आवश्यकता नहीं, मैंने उसी दिन चन्दनबाड़ी छोड़ दिया और बनारस चला आया। बनारस पहुँचकर छोटी रानी के आदेशानुसार सारा काम करा दिया। उनकी और उनके परिवार के लोगों की भटकती हुई आत्माओं को शान्ति मिली या नहीं, प्रेत-योनि से वे लोग मुक्त हुए या नहीं, यह मैं नहीं बतला सकता। मगर यह अवश्य बतला सकता हूँ कि मैं एक बार फिर चन्दनबाड़ी गया था। हवेली में पूरी एक रात रहा पर मुझे वहाँ फिर कोई भटकती हुई आत्मा नहीं दिखलाई पड़ी। सान्याल महाशय ने उस वीरान हवेली को खरीद लिया है।

कर्णिका-८

ब्रह्म पिशाच का शाप

प्रेतों की जितनी योनियाँ हैं, उनमें एक योनि ब्रह्म प्रेत की भी है। प्रेतशास्त्र में इस योनि के तीन मुख्य रूप बतलाए गए हैं--पहला ब्रह्मपिशाच का रूप है, दूसरा ब्रह्मराक्षस का है और तीसरा रूप है ब्रह्मवीर का। भारत प्रसिद्ध हरसू ब्रह्म, हरिराम ब्रह्म, तुलसीराम ब्रह्म आदि इसी तीसरे रूप के ब्रह्म हैं। इन तीनों प्रकार के ब्रह्म प्रेतों का सम्बन्ध केवल ब्राह्मण जाति से समझना होगा। जो ब्राह्मण किसी कारणवश आत्महत्या करता है, उसको ब्रह्मपिशाच की योनि प्राप्त होती है। यदि किसी ब्राह्मण ने धर्म, सम्प्रदाय अथवा समाज, जाति, संस्कृति आदि की रक्षा हेतु आत्महत्या किया है तो उसे 'ब्रह्मवीर' की योनि प्राप्त होती है। इसी प्रकार जिस ब्राह्मण की किसी कारण वश हत्या कर दी गई है अथवा स्वयं अकालग्रस्त होकर मर गया है तो उसे ब्रह्मराक्षस की योनि उपलब्ध होती है।

अपने-अपने स्थान पर ये तीनों प्रकार के ब्रह्म प्रेत मानवेतर आयुप्राप्त, भयंकर, दुर्धर्ष और अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं। उनमें असीम प्राणबल होता है। मन:शक्ति और इच्छाशक्ति भी अत्यन्त प्रखर और तीव्र होती है जिससे पदार्थ-अणुओं का संघटन कर के अपने को किसी भी रूप, आकार अथवा शरीर में प्रकट कर सकते हैं। वे भयंकर दुर्घटनाओं, तूफानों, झंझावातों और सामूहिक नरसंहार के भी कारण बनते हैं। वे प्रकृति में विकृति पैदा कर तरह-तरह के उत्पात कर जीवन को अस्त-व्यस्त करने में सिद्धहस्त होते हैं।

प्रेतशास्त्र के अनुसार ब्रह्मप्रेतों की स्थिति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि के बाहर है। वे जिस दिन और जिस समय अपने पार्थिव शरीर का त्याग किए रहते हैं, उस दिन, उस समय प्रत्येक वर्ष अपने मृत्युस्थल पर आते हैं। यदि उस स्थान पर उनके निमित्त मन्दिर, चौरा अथवा समाधि बनी होती है तो उसमें प्रवेश कर वे कुछ समय विश्राम करते हैं। वे सूक्ष्मलोक में अत्यन्त शक्तिशाली और भयंकर प्राणी माने जाते हैं। उनकी आयु सूक्ष्मलोक में कम से कम सौ वर्ष और अधिक से अधिक एक हजार वर्ष होती है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि स्थूल जगत का एक दिन सूक्ष्म जगत के

एक मिनट के बराबर होता है। खैर आयु पूर्ण होने पर ब्रह्मप्रेत पुन: मानव योनि में जन्म ले लेते हैं या फिर 'वेताल' की योनि में चले जाते हैं। वह प्रेतों की अन्तिम योनि समझी जाती है। उसके ऊपर क्रमश: यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और देवयोनियाँ हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, ये समस्त गुह्य योनियाँ मानव योनि से सम्बन्धित हैं। उन्हें सिद्ध करने तथा उनसे लौकिक कार्यों की सफलता के लिए सहायता प्राप्त करने की अनेक साध्य, असाध्य विधियाँ और क्रियाएँ हैं। तान्त्रिक साधना से सम्बन्धित जितने मार्ग हैं, उनमें एक 'अघोर मार्ग' भी है। अघोर मार्गीय श्मशान साधना, चिता साधना, शव साधना आदि कठिन साधनाओं द्वारा वे सिद्ध होते हैं। उनकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों घातक और विनाशकारक है। देवयोनि को छोड़कर अन्य योनिवाली आत्माएँ प्रसन्न होने पर जहाँ सारे सुख प्रदान करती हैं, वहीं क्रोधित होने पर अपनी जमात में मिला लेती हैं। अगर किसी कारणवश अप्रसन्न हो गई तो सारे परिवार का नाश कर देती हैं या निर्वंश कर देती हैं। कुष्ठ आदि जैसे असाध्य रोग,व्याधियाँ भी इन्हीं के कुपित होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं।

सन् १९५१! उन दिनों 'परामनोविज्ञान' के अन्तर्गत 'देहातीत अवस्था' पर शोधकार्य कर रहा था मैं। उसी समय मेरे जीवन में एक विलक्षण और अविश्वसनीय घटना घटी थी। मैंने कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि ब्रह्मपिशाच्च से सामना होगा और उसकी अलौकिक लीलाएँ भी देखने को मिलेंगी। निश्चय ही वह मेरे जीवन का रोमांचकारी अनुभव था। आज भी कभी उसके सम्बन्ध में सोचता हूँ तो सहसा सारा शरीर सिहर उठता है मेरा।

बंगाल और असम की सीमा पर एक कस्बा था जिसका नाम था सुन्दरगढ़। विश्वास राय सुन्दरगढ़ के सम्पन्न जमींदार थे। उन्होंने सन्तान के लिए एक के बाद एक पाँच शादियाँ की थीं किन्तु पुत्र का सुख देखना उनके भाग्य में नहीं लिखा था। तमाम दवा-दारू, पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, पुरश्चरण और तन्त्र-मन्त्र कराकर वे हार चुके थे। जब वे निराशा के कगार पर खड़े थे, उसी समय मेरा एक लेख उनको पढ़ने को मिला। वह लेख कलकत्ता के दैनिक समाचार पत्र 'विश्वामित्र' के साप्ताहिक अंक में प्रकाशित हुआ था। लेख का विषय था 'तान्त्रिक औषधि विज्ञान'। अन्य पाठकों की तरह विश्वास राय चौधरी का भी पत्र आया। यथोचित उतर भी दे दिया मैंने। लगभग दो सप्ताह बाद अचानक विश्वास राय चौधरी की सबसे छोटी पत्नी सुधा राय चौधरी का रजिस्टर्ड पत्र मिला मुझे। खोलकर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। पत्र के साथ पाँच सौ रुपये का बैंक ड्राफ्ट भी था। उन्होंने सुन्दरगढ़ आने का निमन्त्रण दिया था मुझे। वह पाँच सौ रुपया यात्रा-खर्च के लिए था। पत्र के प्रत्येक शब्द में अनुरोध, आग्रह और आकर्षण था। सुधा राय चौधरी, पढ़ी-लिखी विदुषी महिला हैं, यह समझते देर न लगी मुझे। उनके अनुरोध को टाल न सका और उसी सप्ताह रवाना हो गया मैं सुन्दरगढ़ के लिए।

पूरे तीस घण्टे की यात्रा से क्लान्त शरीर और अवसन्न मन लिए जब मैं उस छोटे से रेलवे स्टेशन पर उतरा तो साँझ की स्याह कालिमा निकट की पहाड़ियों पर फैल गई थी। कुहरे की हल्की पर्तों से ढक गया था सारा वनप्रान्त।

रेलवे स्टेशन से लगभग बीस-पचीस मील दूर था सुन्दरगढ़। अपने पहुँचने की तारीख की सूचना मैंने पहले ही रजिस्टर्ड पत्र द्वारा सुधा राय चौधरी को दे दी थी। मुझे पूरा भरोसा और पूरा विश्वास था कि स्टेशन पर अवश्य कोई लेने आएगा किन्तु काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद भी कोई दिखलाई नहीं दिया मुझे। साँझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे रात्रि के निविड़ अन्धकार में बदल गई। स्टेशन पर सन्नाटा छा गया। सोचा, शायद सुधा राय चौधरी को समय पर मेरा पत्र न मिला हो। अब क्या होगा? सुन्दरगढ़ के लिए घने जंगलों और सुनसान घाटियों के बीच से सड़क गई हुई थी। अकेले अनजान रास्ते पर जाना और वह भी रात के समय, बहुत ही भयंकर और कष्टप्रद था। फिर उस समय कोई सवारी भी तो नहीं थी। विवश होकर वेटिंग रूम में रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया मैंने। सोचा, सबेरे यदि कोई सवारी मिल गई तो ठीक, वरना वापस कलकत्ता लौट जाऊँगा।

स्टेशन मास्टर बंगाली सज्जन थे। उन्होंने अपना एक आदमी भेजकर बाजार से पूड़ी-सब्जी मँगवाई मेरे लिए और सोने के लिए वेटिंग रूम के बगल में बने माल गोदाम में एक खाट डलवा दी।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा। शायद उस समय रात के ग्यारह बजे थे। सहसा आकाश में बादल घिर आए और बिजली की चमक और बादलों की गरज-तरज के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। अजीब था वह वातावरण। आकाश और जमीन मिलकर मानो एकाकार हो गए थे। शीतल अन्धकार का अन्तहीन समुद्र और उसके बीच दप्-दप् जलने वाले जुगुनुओं की चमक।

स्याह आकाश का वक्ष जलाती हुई बिजली चमकी। जलते तारे जैसी तीखी रेखा अनन्त आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक कौंध गई एक बारगी। एकाएक गीली बरसाती हवा का एक तीव्र झोंका आया और शीतल हवा फैल गई गोदाम के भीतर। उसी के साथ गोदाम का भारी-भरकम दरवाजा भी फटाक की आवाज के साथ खुल गया लेकिन दरवाजा तो भीतर से बन्द था। फिर कैसे खुल गया अपने आप? मैं सोचने लगा और तभी दरवाजे से होकर यह व्यक्ति भीतर आता हुआ दिखलाई पड़ा। धीरे-धीरे चलकर वह मेरे नजदीक आकर खड़ा हो गया। लम्बी-चौड़ी काठी, शरीर का रंग बिल्कुल काला, सिर मुड़ा हुआ और चेहरे पर अजीब सा अमानवीय भाव। उसकी आँखें गोल और नाक लम्बी और असामान्य थी। नीचे का जबड़ा काफी बड़ा और सामने की ओर निकला हुआ था। दहकते हुए अंगारे की तरह उसकी आँखें मानो जल रही थीं उस समय। वह केवल एक धोती पहने हुए था।

माधुरी की वेदना

कन्धे पर जनेऊ पड़ा था उसी से मैं समझ गया कि वह व्यक्ति ब्राह्मण है। उसका रूप-रंग और हाव-भाव देख न जाने किस अज्ञात भय से मैं एकबारगी काँप उठा। पहले तो वह व्यक्ति मेरी ओर अपलक देखता रहा, फिर गम्भीर स्वर में बोला--'आप काशी के ब्राह्मण हैं न?' उसका प्रश्न सुनकर किसी प्रकार हकलाते हुए उत्तर दिया मैंने--'जी हाँ! मैं काशी का रहने वाला हूँ किन्तु इस समय मेरा आना कलकत्ते से हुआ है।' मेरा उत्तर सुनकर वह घुटने के बल जमीन पर बैठ गया, फिर हाथ जोड़कर सिर नवाकर कहने लगा, 'धन्य हो प्रभु! मेरा कितना भाग्य है कि आपका दर्शन हुआ मुझको! अब मेरी एक प्रार्थना है। यदि आप स्वीकार करें तो बड़ा उपकार होगा मेरा। मैं अपने आपको धन्य समझूँगा।'

यह सुनकर उस समय पहली बार अपने ब्राह्मण जाति का होने का बड़ा गर्व हुआ। परदेश में काशी के ब्राह्मणों का इतना महत्व और सम्मान है, इसे पहली बार ही अनुभव किया मैंने। स्वर को थोड़ा गम्भीर बनाकर मैंने पूछा--'कहिए, क्या प्रार्थना है आपकी?'

'महाराज!' उसने मेरा पैर थामकर कहा--थोड़ी ही दूरी पर मेरा निवास है, आप इस समय वहीं चल कर भोजन करें, रात भर विश्राम करने के बाद प्रात: काल चले जाइएगा, मैं आपको सुन्दर गढ़ पहुँचाने की व्यवस्था कर दूँगा, आप चिंता न करें।

मैंने एकबारगी चौंक कर पूछा--

आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं सुन्दरगढ़ जाऊँगा?'

मेरी बात सुनकर वह हँसते हुए बोला--'मुझे नहीं मालूम होगा तो भला किसको मालूम होगा महाराज?' इतना कहकर खड़ा हो गया वह और चलने का आग्रह करने लगा।

एक बार तो हिचकिचाया मैं, फिर सोचा, खाना तो खा लिया है, रात बिताने के लिए जगह भी मिल गई है, क्या होगा जाकर? फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर अटैची उठाई और चल पड़ा उसके पीछे-पीछे।

लगभग पन्द्रह-बीस मिनट चलने के बाद वह रुक गया। बोला--'लीजिए, महाराज! पहुँच गए हम लोग।'

मैंने नजर घुमाकर चारों तरफ देखा तो अन्धेरे में सामने कुछ दूर पर एक आलीशान महल दिखाई पड़ा। मन ही मन सोचने लगा, देखने में तो यह व्यक्ति बहुत साधारण लगता है, मगर है सम्पन्न।

वर्षा बन्द हो चुकी थी उस समय। चतुर्दशी का रुपहला चन्द्रमा बादलों की ओट से झाँकने लगा था। उसकी दूधिया चाँदनी में वह महल बड़ा ही रहस्यमय लगा मुझे।

चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। ऐसा लगा मानो मैं किसी अनजाने लोक में गया होऊँ। रास्ते में अपना परिचय देते हुए उसने मुझे बतलाया था कि उसका नाम विष्णु शर्मा है। कई पीढ़ी से वह वहाँ रह रहा है। बाल-बच्चे नहीं हैं। केवल पत्नी है। नाम है माधुरी। माधुरी के मधुर निश्छल प्रेम के वशीभूत होकर उसने अन्तर्जातीय विवाह किया था। अतः ब्राह्मण समाज से निकाल दिया गया, लेकिन उसे इसकी कोई परवाह नहीं थी। उसके विचार से नारी नीच से नीच जाति की क्यों न हो, वह पवित्र है। उसकी पवित्रता से जाति का कोई सम्बन्ध नहीं। यदि नारी का प्रेम निष्कलंक और निश्छल है तो मनुष्य को मानवीय गुणों से भर देता है, देवता की कोटि में पहुँचा देता है। आज तक जितने लोग महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हुए है, उनमें से अधिकांश के पीछे नारी की ही प्रेरणा और उसी का निश्छल प्रेम रहा है। विष्णु शर्मा ने कहा--'माधुरी ऐसी ही नारी है। जीवनभर उसने मेरा साथ दिया और आज भी दे रही है।'

न जाने क्यों ये सब सुनकर मेरे मन में माधुरी को देखने की लालसा जाग्रत हो गई थी। इसके लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी मुझे। उस विशाल महलनुमा मकान के दरवाजे पर ही हाथ में लालटेन लिए पति की प्रतीक्षा करती हुई खड़ी मिल गई माधुरी।

हँसते हुए विष्णु शर्मा ने कहा--'महाराज, यही है मेरी पत्नी माधुरी।'

मैंने माधुरी की ओर देखा। पति जैसा ही उसके शरीर का भी रंग एकदम काला था पर नाक-नक्श से आकर्षक, कमनीय और सुन्दर थी। अब तक मेरी धारणा थी कि गौरवर्ण की सुन्दर स्त्री होगी, लेकिन माधुरी को देखकर अपना यह विचार बदलना पड़ा मुझे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में न जाने कैसी चमक थी जो मेरी आत्मा की गहराइयों में उतरती चली गई। घनी स्याह केशराशि उसके नितम्बों तक फैली हुई थी। उसके शरीर की बनावट देखकर मुझे ऐसा लगा मानो कोणार्क के मन्दिरों में पत्थरों पर बनी कोई देवी सजीव होकर आ खड़ी हुई है मेरे सामने।

विष्णु शर्मा ने उल्लासभरे स्वर में अपनी पत्नी को मेरा परिचय देते हुए कहा-'ये काशी के पण्डित जी हैं धन्य भाग्य है मेरा कि आपने मेरे यहाँ ठहरने और भोजन करने का अनुरोध स्वीकार कर लिया है।' फिर उन्होंने पत्नी को आदेश दिया--'शीघ्र भोजन तैयार करो।' मेरी ओर मुस्कराकर देखती हुई माधुरी भीतर चली गई। उसके बाद बिण्णु श के साथ मैं एक काफी लम्बे-चौड़े कमरे में पहुँचा। कमरे का राजसी ठाट-बाट देखकर दंग रह गया मैं। छत से कीमती झाड़-फानूस लटक रहे थे जिनमें रंग-बिरंगी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। दरवाजों और खिड़कियों पर लाल और पीले रंग के कीमती रेशमी पर्दे झूल रहे थे। कमरे के एक ओर लम्बे-चौड़े तख्त पर मोटा गद्दा बिछा था जिस पर राजसी ढंग से तकिये और मसनद लगे हुए थे। तख्त के बगल में कीमती लकड़ी की जड़ाऊ मेज और कुर्सियाँ पड़ी थीं। फर्श पर कीमती ईरानी कालीन बिछा हुआ था।

पेण्टिंग की हुई दीवारों पर राजा-महाराजाओं के साथ सिर पर रेशमी पगड़ी बाँधे, मिरजई पहने, गले मे मोती और रुद्राक्ष की माला डाले, मस्तक पर भस्म-टीका लगाए पण्डितों के कई तैलचित्र टँगे थे, जिनमें एक चित्र था विष्णु शर्मा का भी। मैं चित्रों को निहार रहा था, तभी भोजन की थाली लिए माधुरी आ गई।

भोजन बड़ा स्वादिष्ट था। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि इस पहाड़ी और जंगली इलाके में इतना मधुर और इतना स्वादिष्ट भोजन मिलेगा खाने को? चाँदी की थाली और कटोरी में करीने से सजे विविध प्रकार के व्यंजनों को देखकर आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। भोजन करते समय माधुरी सामने बैठी रही। उस समय उसके कृष्णवर्णीय चेहरे पर एक विचित्र भाव था और थी एक विचित्र-सी चमक। वह अपलक मेरी ओर निहार रही थी।

मैंने भोजन करने के बाद सहज भाव से पूछा--'विष्णु शर्मा कहाँ गए?'

'आते होंगे।' इतना कहकर माधुरी मेरी बिल्कुल निकट आ गई और फिर मद्धिम स्वर में बोली--'रात ढलने वाली है। चलिए, अब थोड़ा विश्राम कर लें आप। उस लम्बे-चौड़े कमरे में एक छोटा सा, सजा हुआ कमरा था। एक ओर पलंग बिछा था। कमरे में घुसते ही एक विचित्र की गन्ध नासापुट में भर गई। वह गन्ध कैसी थी, समझ न सका मैं। पीछे-पीछे माधुरी भी आ गई। जब मैं बिस्तर पर लेट गया तो वह मेरे बिल्कुल निकट ही पलंग पर बैठ गई। उसकी क्या इच्छा है, यह समझते देर न लगी। उसकी आँखों में झाँककर देखा मैंने, वहाँ कामना और वासना की मिली-जुली आग धधक रही थी। चेहरे पर भी अजीब से सम्मोहन का सा भाव उतर आया था।'

'क्या चाहती हैं आप?' मैंने व्याकुल होकर पूछा।

मेरा प्रश्न सुनकर माधुरी के चेहरे पर अजीब-सी वेदना उभर आई और उसी के साथ भर आई सूनी-सूनी आँखों में न जाने कैसे दु:ख की छाया भी।

वह हताश स्वर में धीरे से बोली--'पण्डितजी! आप पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति हैं आप तो जानते ही हैं कि नारी की पूर्णता मातृत्व में है।'

अमोघ तान्त्रिक दीप

'मुझे अभी तक वह पूर्णता प्राप्त नहीं हुई। इतना लम्बा समय जीवन का व्यतीत हो गया पर मेरी गोद सूनी ही रही। कोई फूल खिल न सका मेरी गोद में।' बोलते-बोलते माधुरी का गला भर आया और गालों पर आँसु की बूँदें ढलक आई। किसी प्रकार गला साफ कर कहने लगी वह, 'महाराज! मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए। आपके पवित्र शरीर के स्पर्श से मेरी कामना पूरी हो जाएगी। मेर सूनी गोद में फूल खिल जाएगा।'

'हे भगवान! क्या चाहती है माधुरी!' मैं झटके से उठकर पलंग पर बैठ गया। किन्तु कुछ बोलूँ, इसके पहले ही माधुरी सहसा मेरे ऊपर झुक गई। जैतून की शाख की तरह

उसने अपनी दोनों बाँहें मेरे गले में डाल दीं। उसकी गर्म साँसे मेरे सीने से टकरा रही थीं। उसके शरीर का दबाव बढ़ता जा रहा था मुझ पर। अचानक उसकी आँखें दपसे जल उठीं, फिर अधिकारभरे स्वर में बोली--'महाराज, मेरी कामना पूर्ण किए बिना आप सुधारानी की कामना और उनका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकते।'

'सुधारानी को कैसे जानती हो तुम?' मैंने चकित होकर पूछा--'यह सब कहने का मतलब क्या है तुम्हारा?'

मेरी बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ी माधुरी। बड़ी ही विचित्र और रहस्यमयी हँसी थी उसकी। उसने उसी मुद्रा में मुझे आलिंगनबद्ध कर लिया और फिर उल्लासित होकर कहने लगी--'महाराज, आप मतलब जानना चाहते हैं? सब कुछ बतलाऊँगी आपको। अब तो बतलाना ही पड़ेगा मुझे।' उस समय माधुरी ने जो कुछ बतलाया वह निश्चय ही विलक्षण, रहस्यमय और अविश्वसनीय था।

विश्वास राय चौधरी के परदादा लावण्य राय चौधरी बहुत बड़े जमींदार थे। चुपके-चुपके अंग्रेजों की सहायता करके उन्होंने अपनी जमींदारी काफी बढ़ा ली थी। विष्णु शर्मा उनके परम मित्र तो थे ही, इसके अलावा वह राजपण्डित भी थे। उस समय उनके जैसा वेद और तन्त्रशास्त्र का धुरन्धर विद्वान कोई नहीं था। विष्णु शर्मा कद के लम्बे, गौर वर्ण, सुन्दर और तेजस्वी पुरुष थे। उनका बहुत आदर-सम्मान करते थे लावण्य राय चौधरी। विष्णु शर्मा भी पूजा-पाठ और तन्त्र-मन्त्र द्वारा लावण्य राय चौधरी की श्रीवृद्धि, यशवृद्धि और राज्यवृद्धि के लिए सदा प्रयास करते रहते थे, फलस्वरूप तीनों प्रकार की वृद्धियाँ बराबर होती गईं।

विष्णु शर्मा बहुत ऊँचे तान्त्रिक थे, इसमें सन्देह नहीं। एक दिन प्रसन्न होकर उन्होंने लावण्य राय चौधरी से कहा--'महाराज, मैं आपके लिए एक ऐसे तान्त्रिक दीप के निर्माण में लगा हूँ जिसकी प्रखर ज्योति के धवल प्रकाश से आपकी कीर्ति अमर हो जाएगी।'

यह सुनकर लावण्य राय चौधरी प्रसन्न और गद्‌गद हो उठे। यथासमय उस अमोघ तान्त्रिक दीप का निर्माण हो जाने पर विष्णु शर्मा ने उसे राजमहल के ऊपर स्थापित कर दिया दीपावली की महानिशा में।

उस दीप से चौबीसों घण्टे एक विलक्षण शुभ प्रकाश फूटता रहता था। आँधी-तूफान, वर्षा आदि का भी उस दीपक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। निश्चय अखण्ड दीप था वह जो तान्त्रिक मन्त्रशक्ति के बल पर हमेशा प्रज्वलित रहता था। उसे देखकर सभी आश्चर्यचकित थे।

समय व्यतीत होता चला गया। आखिर विनाश की घड़ी आ पहुँची। राजमहल के उत्तर की ओर कुछ दूर पर डोमों की बस्ती थी। डोमों का चौधरी भी उसी बस्ती में रहता

था। उसकी एक युवा पुत्री थी, इतनी रूपवती कि कोई देखकर सोच भी नहीं सकता था कि वह नीच जाति की हो सकती है। एक दिन उस रूपसी, सुन्दरी, पद्मगन्धा पर न जाने कैसे विष्णु शर्मा की दृष्टि पड़ गई। देखते ही वह वासना के वशीभूत होकर पागल हो उठे किन्तु लोक-लाज और सामज के भय से अपनी वासना को उस समय दबा दिया उन्होंने। फिर भी वासना की आग भीतर ही भीतर सुलगती रही। समय व्यतीत होता गया। दीपावली का पर्व आ गया। राज्य की श्रीवृद्धि के लिए हर वर्ष उस रात्रि विष्णु शर्मा तान्त्रिक विधि से लक्ष्मी की पूजा करते थे। इसके लिए विभिन्न जातियों की पाँच कन्याओं की आवश्यकता पड़ती थी जिनमें श्वपच (डोम) जाति की कन्या का भारी महत्व था। इसके लिए विष्णु शर्मा ने इस बार डोम चौधरी की लड़की को ही बुलाने का निश्चय किया। जब उन्होंने अपने इस विचार से लावण्य राय चौधरी को अवगत कराया तो उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। अनुष्ठान और पूजा के समय लड़की आ गई। अनुष्ठान पूरा होने पर अन्य लड़कियों को विष्णु शर्मा ने वापस भेज दिया किन्तु डोम चौधरी की लड़की को रोक लिया। एकान्त पाते ही विष्णु शर्मा सहसा उसे अपने बाहुपाश में कसकर बोले--'मैं तुम्हारे रूप और यौवन पर मुग्ध हूँ और तुमसे विवाह करना चाहता हूँ? क्या तुम मेरी पत्नी बनोगी?'

डोम पुत्री यह सुनकर निहाल हो गई। उसने विष्णु शर्मा की ओर दृष्टि उठाई। उनका तेजस्वी रूप और बलिष्ठ शरीर देखकर वह मुग्ध हो गई। उसने विष्णु शर्मा के गले में बाँहें डाल दीं। महातान्त्रिक विष्णु शर्मा की अतृप्त कामना पूर्ण हो गइं। उन्होंने उसी समय डोम पुत्री से गन्धर्व विवाह कर लिया।

किसी ने इसकी कल्पना तक न की थी। विष्णु शर्मा को काफी समझाया-बुझाया गया। जाति से निकालने की भी धमकी दी गई, किन्तु वे अटल बने रहे। आखिर ब्राह्मण समाज से उन्हें निष्कासित कर दिया गया। जब यह सारी कथा लावण्य राय चौधरी को मालूम हुई तो उनकी भौंहें तन गईं। वे स्वयं उस रूपसी डोमबाला के रूप-यौवन का भोग करने के लिए मन ही मन लालायित थे और उसके रूप-सौरभ का पान करने के लिए अवसर की खोज में थे। इस घटना से उन्होंने पराजय का अनुभव किया। कुछ दिनों बाद जब विष्णु शर्मा दरबार में आए तो उन्हें घूरते हुए वे क्रोधभरे स्वर में बोले--'पण्डितजी! आपने ब्राह्मण समाज का ही नहीं बल्कि मेरा भी घोर अपमान किया है। अब आज से हमेशा के लिए मेरे महल का द्वार आपके लिए बन्द हो गया। आप तत्काल मेरी जमींदारी की सीमा से बाहर निकल जाइए।'

विष्णु शर्मा कब सहन करने वाले थे। बोले--'ठाकुर साहब! ब्राह्मणों से किस स्वर में बोलना चाहिए, क्या इसकी शिक्षा आपको नहीं मिली है?' लावण्य राय चौधरी क्रोध से आगबबूला होकर बोले--'अरे विष्णु शर्मा!' अब तुम ब्राह्मण कहाँ रह गए?

तुम तो चाण्डाल कन्या से विवाह करके ब्राह्मण समाज के कलंक का काला टीका बन गए। अब किस मुँह से अपने को ब्राह्मण कहते हो.. तुम तो चाण्डाल हो चाण्डाल! और चाण्डाल को मैं राज पण्डित के पवित्र आसन पर नहीं बैठा सकता।' भरे दरबार में इस घोर अपमान को विष्णु शर्मा विष की तरह पी गए। कुछ बोले नहीं। इस पर लावण्य राय चौधरी का क्रोध और भड़क उठा। क्रोधावेश में उन्मत्त से वह चीख उठे--'नीच चाण्डाल... अभी इसी क्षण मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जा।' और सहसा लावण्य राय चौधरी अपने स्थान से उठकर आगे बढ़े और ढकेल कर बाहर कर दिया विष्णु शर्मा को।

गिरते-गिरते बचे विष्णु शर्मा। उसी समय किसी ने उन्हें सम्भाल लिया। पलटकर देखा तो उनकी पत्नी थी बगल में। उसने सब कुछ सुन लिया था। क्रोध और आवेश से उसका चेहरा तमतमा उठा था। पति को सँभालते हुए उसने लावण्य राय चौधरी की ओर एक बार जलती दृष्टि से देखा और फिर नागिन की तरह फुफकारती हुई ऊँचे स्वर में कहने लगी--'राय चौधरी! मेरे सामने तुमने मेरे पति का अपमान किया है जिसे कोई भी नारी कदापि सहन नहीं कर सकती। तान्त्रिक साधना में जाति-पाति और ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं है। चाण्डाल कन्या का प्रयोग यदि पूजा-उपासना में शास्त्र विहित है तो उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करना भी शास्त्र के अनुकूल ही है।' फिर विष्णु शर्मा की ओर संकेत करके उसने कहा--'पण्डित जी तन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इन्होंने सर्वप्रथम तान्त्रिक दीक्षा देकर मुझे भैरवी रूप में स्वीकार किया और बाद में पत्नी रूप में। मैं इनकी भैरवी हूँ और धर्म के अनुसार पत्नी भी। भैरवी का स्थान पत्नी से ऊँचा होता है। इन दोनों महत्वपूर्ण और गरिमामय पदों के अनुसार मुझे तान्त्रिक साधना भूमि में जो स्थान प्राप्त हो चुका है, उस स्थान शक्ति के बल पर मैं तुमको शाप देती हूँ कि तुमने नारी की भोग-लालसा के कारण मेरे पति का अपमान किया है इसलिए तुम नपुंसक हो जाओगे और तुम्हारा वंश नहीं चलेगा। इतना ही नहीं, जो तुम्हारी गद्दी पर बैठेगा वह भी तुम्हारी ही तरह नपुंसक और निर्वंशी होगा।'

विष्णु शर्मा से अब और सहन नहीं हुआ। वह भी ऊँचे स्वर में बोल उठे 'महाराज! मैं भी जानता हूँ कि मेरी पत्नी को पाने की कामना पर तुषाराघात होने के फलस्वरूप ही तुमने मेरा घोर अपमान किया है, इसलिए मेरे द्वारा निर्मित तान्त्रिक दीप का अखण्ड प्रकाश ही अब तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देगा। तुम्हारी सम्पूर्ण राज्य शक्ति मलेच्छों के हाथ चली जाएगी।' पति-पत्नि के भयानक शाप को सुनकर दरबार में उपस्थित सभी लोग सन्न रह गए। लावण्य राय चौधरी का क्रोध पश्चाताप में परिणत होने लगा मगर राज-दम्भ से मस्तक उठाकर वे बोले--'अरे ब्राह्मण, तूने एक चाण्डाल कन्या के मोहपाश में बँधकर मेरा अपमान करते हुए शाप दिया है।'

'मैं भी अपने राजत्व की मर्यादा की शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य ब्रह्मणों के समान तुझे कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी और तू चाण्डाल होकर ब्रह्म पिशाच की कष्टदायिनी योनि में भटकता रहेगा। तेरी यह चाण्डाल पत्नी भी निर्वंश होकर तेरे साथ ब्रह्म पिशाचिनी के रूप में भटकती रहेगी।'

इस प्रकार ब्रह्मबल और राजबल आपस में टकराकर नष्ट हो गए। लावण्य राय चौधरी का शाप सुनते ही विष्णु शर्मा का गौरांग शरीर काला पड़ने लगा। तेजस्वी चेहरे पर चाण्डालों की-सी हीनता-दीनता और वीभत्सता आ गई। उन्होंने चुपचाप पत्नी का हाथ पकड़ा और सिर नीचा करके दरबार से बाहर निकल गए।

दोनों को एक दूसरे के शाप ने तत्काल अपना फल दिखा दिया था। लावण्य राय चौधरी को तब तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। उसी समय उनके चेहरे पर भी क्लीवत्व का भाव उभर आया। कुछ समय बाद ब्रिटिश शासन की सहायता किसी तरह न करने के कारण अंग्रेजों ने उनके सारे अधिकार छीन लिए।

इस अविश्वसनीय विलक्षण कथा को सुनने के साथ ही मेरा मस्तिष्क अवसन्न होने लगा था शनैः शनैः। मन-प्राण चेतनाशून्य सा होने लगा था और न जाने कब उसी अवश चेतना के वशीभूत होकर अपना आपा खो बैठा मैं। फिर एक अज्ञात सुखद अनुभूति से आत्मा भर उठी मेरी। जीवन में प्रथम और अन्तिम बार वह स्वर्गीय अनुभूति हुई थी मुझको। माधुरी के मधुर कलश में भरे अमृत का मैं जाने कब तक पान करता रहा। सहसा किसी का कोमल स्वर कानों से टकराया--'पण्डित जी, वह चाण्डाल कन्या और कोई नहीं मैं ही हूँ। आपके स्पर्श से मेरी कामना, मेरी लालसा पूर्ण हो गई...। मेरी आत्मा भी मुक्त हो गई महाराज। इतना ही नहीं मेरे पति विष्णु शर्मा भी ब्रह्मपिशाच की भयानक योनि से मुक्त हो गए। हम दोनों पिछले सौ वर्षों से आप जैसे काशी के किसी ब्राह्मण की प्रतीक्षा में भटक रहे थे।' सुनते ही चेतनाशून्य हो गया मैं और फिर उसी शून्यावस्था में मैंने देखा कि एक अति सुन्दर स्त्री-पुरुष का जोड़ा मेरे सामने खड़ा दोनों हाथ जोड़कर कह रहा है--महाराज! आपने मुझे मुक्त किया है इसलिए हम लोग भी आपकी विद्वता और मर्यादा की रक्षा करेंगे। आप विश्वास राय चौधरी से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाइए। ब्राह्मणों को भोजन और दान-दक्षिणा दिलवाइए। सुधा रानी को अवश्य पुत्रलाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं। समझ गया मैं, वे दोनों निश्चय ही माधुरी और विष्णु शर्मा थे। अब दोनों को प्रेत योनि से मुक्ति मिल चुकी थी।

भोर के समय जब मेरी चेतना लौटी तो अपने आपको एक सुनसान खण्डहर में पाकर मुझे आश्चर्य हुआ। मेरे चारों तरफ चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे। खण्डहर के एक ओर बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था जिसके नीचे ब्रह्म का चौरा बना था। सोचने लगा--मैं

वेटिंग रूम से यहाँ कैसे, कब इस खण्डहर में पहुँच गया? तभी स्मृति में रात की सारी घटनाएँ एक-एककर उभरने लगीं। रात में जो कुछ अनुभव किया था, निश्चय ही वह सब ब्रह्मपिशाच की लीला थी। इसमें सन्देह नहीं रहा।

मेरे चैतन्य होते ही आसपास के लोगों में से एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा--'मैं सुन्दरगढ़ के राय चौधरी का सेक्रेटरी राजमोहन हूँ पण्डित जी! आप इस भुतहे स्थान पर कैसे पड़े थे? यह तो ब्रह्म बाबा का स्थान है। इस पीपल पर ब्रह्मपिशाच का निवास है। बड़ा भयंकर है वह। पकड़ लेता है तो फिर छोड़ता नहीं। लोग-बाग डर के मारे रात को क्या, दिन में भी इधर आने में कतराते है।' फिर थोड़ा रूककर वह बोला--'पण्डितजी! मैं आपको लेने के लिए आया हूँ। सामने गाड़ी खड़ी है। चलिये अब यहाँ से।' मुझसे कुछ बोला न गया, जाकर चुपचाप गाड़ी में बैठ गया मैं। सुन्दरगढ़ पहुँचा तो पति के साथ सुधाजी मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। जब मैंने उन्हें रात की सारी बातें बतलाई तो पति-पत्नी अवाक् रह गए।

कुछ देर बाद मैंने कहा--'यदि आप सन्तान चाहते है, तो ब्रह्मपिशाच के कहे अनुसार व्यवस्था कीजिए।' पति-पत्नी, दोनों मेरी बात मान गए। दूसरे ही दिन पूजा-पाठ, हवन और ब्राह्मण भोजन आदि शुरू हो गया। तभी एक विलक्षण घटना घटी।

एक दिन हवन करते समय अचानक सुधाजी की आँखें लाल हो गई। देखते ही देखते उनका चेहरा कठोर और वीभत्स हो उठा। न जाने कहाँ से उनमें भयंकर शक्ति आ गई। बाल अपने आप खुलकर पीठ पर बिखर गए। उसी विचित्र अवस्था में हवनकुण्ड में कूदने के लिए वह आगे बढ़ीं। कई लोगों ने उन्हें पकड़ना चाहा, किन्तु उन्होंने सभी को ढकेल दिया और सहसा हवनकुण्ड की धधकती आग में कूद पड़ीं।

चारों ओर हाहाकार मच गया। कुछ लोग तो इस अविश्वसनीय दृश्य को देखकर डरके मारे भाग खड़े हुए। समझते देर न लगी मुझे, जिस पिशाच-पिशाचिनी को भयंकर शाप के बन्धन से मुक्त कराने के लिए मुझे अपने जीवन का भारी मूल्य चुकाना पड़ा था--वही दोनों उस समय सुधा जी पर आक्रमण कर बैठे थे।

राय चौधरी दौड़े-दौड़े मेरे पास आए और चीत्कार करते हुए बोले--'शर्मा जी, किसी भी प्रकार सुधाजी को बचा लीजिए।'

उस समय मैं भी किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया था। कुछ सूझ ही नहीं रहा था मुझे। फिर भी इतना तो मैं जानता ही था कि सुधाजी का शरीर अग्नि से अप्रभावित रहेगा।

काफी प्रयत्न करके आखिर सुधाजी को हवन कुण्ड से बाहर निकाला गया। सचमुच उनका शरीर पूर्ण अप्रभावित रहा अग्नि से। उस समय वह अचेत थीं मगर उसी अवस्था में में न जाने क्या-क्या बड़बड़ा रही थीं। मेरा अनुमान सच निकला। उनके शरीर का एक रोयाँ तक नहीं जला था बल्कि उनका चेहरा अलौकिक आभा से चमक रहा था। मेरी ओर अपलक निहारते हुए उन्होंने कहा--'मुझे पहचानते हैं महाराज? मैं माधुरी हूँ।'

स्वर और बोलने के ढंग से मैं समझ गया कि वह माधुरी की मुक्त आत्मा ही है। मैंने कहा--'अब क्या चाहती हो तुम? जो कुछ तुमको चाहिए था वह तो तुमने पा ही लिया मुझसे।'

पैशाचिक हँसी हँसकर माधुरी की आत्मा बोली--'हम दोनों को शरीर चाहिए मनुष्य का शरीर। अब अधिक समय् तक इस अवस्था में नहीं रहना चाहते। मुझे आप बतलाइए कि हम दोनों आपके संसार में कैसे आएँ?'

मैंने कहा-'ठीक है। रास्ता देता हूँ। मगर किसी प्रकार का अमंगल मत करना।'

समयानुसार सुधाजी को दो सन्तानें हुई। एक पुत्र राजीव और एक पुत्री विभा राय। दोनों को देखकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ-राजीव राय का रूप-रंग बिल्कुल विष्णु शर्मा से मिलता-जुलता था और विभा राय भी एकदम माधुरी की प्रतिमूर्ति थी। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। निश्चय ही दोनों की आत्मा ने राजीव और विभा के रूप में जन्म लिया था किन्तु इस रहस्य को कभी किसी को नहीं बतलाया मैंने। यदि बतला भी देता तो भला कौन करता विश्वास!

पर जिस अमंगल की आशंका थी-वह होकर ही रही। उसे रोकने में असमर्थ रहा मैं। लावण्य राय चौधरी और सुधा राय चौधरी का अकस्मात मात्र तीन दिन के अन्तर पर निधन हो गया। उस समय उनकी दोनों सन्तानों की उम्र केवल चार और दो वर्ष थी।

इन सारी घटनाओं के घटे लगभग तीस वर्ष बीत चुके हैं। मैं उन्हें न जाने कब का भूल चुका था किन्तु पिछले दिनों राजीव राय चौधरी के विवाह का निमत्रंण-पत्र मिला तो वह सारी घटना मेरे मस्तिष्क में उमड़-घुमड़ उठी और..।

प्रेतात्मा की खोपड़ी

यह तो हुई तांत्रिकों और योगियों की बात। मैंने अपने खोज काल में प्रत्यक्ष रूप से यहाँ तक अनुभव किया है कि किसी भी मरे हुए व्यक्ति के शरीर का कोई भी अंग या अंश जब तक अपना पार्थिव अस्तित्व बनाए रहता है तब तक उस व्यक्ति की आत्मा उसी के आस-पास चक्कर लगाया करती है। चेतन-अचेतन अथवा सूक्ष्म और स्थूल का मूल केन्द्र मस्तिष्क है, इसीलिए मृतात्मा का विशेष आकर्षण अपनी खोपड़ी के प्रति होता है। यदि उसकी खोपड़ी कहीं पड़ी है, तो वह विद्युत चुम्बकीय स्तर पर अपना जीवन वहीं बनाए रखेगा। सिद्ध अघोरी लोग इसीलिए अपने पास मुर्दे की खोपड़ी रखते हैं कि उसके जरिए उनका संबंध बराबर मृतात्मा से बना रहता है और उसकी सहायता से वे विभिन्न चमत्कार दिखाया करते हैं।

लगभग १५-१६ वर्ष पहले एक ऐसी ही खोपड़ी मुझे भी मिली थी, जिसकी आत्मा ने मेरे सामने उपस्थित होकर अपने भौतिक जीवन की करुण कथा सुनाई थी, जब

वह मेरे सामने उपस्थित हुई थी, तो उसने अपने प्रबल वासनावेग से अपने पार्थिव शरीर की रचना कुछ समय के लिए कर ली थी-जिसे बाद में मैंने समझा। उन दिनों मैं अघोर सम्प्रदाय पर एक शोध पुस्तक लिख रहा था। विषय का आधार वैज्ञानिक तो था ही, इसके अलावा पुस्तक को ज्यादा से ज्यादा उपयोगी बनाने के लिए भारत में प्रकट और अप्रकट रूप से साधनारत अघोरी साधकों का परिचय भी मैं उस पुस्तक में देना चाहता था। यह कार्य कठिन था मेरे लिए। मगर काशी के अवधूत संत बाबा सोमारू राम ने मेरी कठिनाई दूर कर दी। उन्होंने कई गुप्त अघोरी साधकों के निवास का पता ही नहीं बतलाया, बल्कि उनसे सहायता भी दिलवाई।

बाबा सोमारू राम, बाबा कीनाराम की गद्दी के शिष्य थे, पर काशी के हरिश्चन्द्र घाट के महाश्मशान में विचरण करते थे।

घाट के ऊपर बरगद का पेड़ है। उसी का छायातले भगवती काली का एक छोटा-सा मन्दिर है। मूर्ति की स्थापना बाबा के ही हाथों से हुई थी। जीवन के अन्तिम चरण में बाबा ने मन्दिर को ही अपना साधना-स्थल बना लिया था। बाबा सिद्ध सन्त थे और चमत्कारी पुरुष भी। मैंने उनके कई विलक्षण चमत्कार देखे थे। वे हमेशा दारू के नशे में धुत रहते थे। जब कभी नशा उखड़ता था, तो अंट-संट गाली बकने लग जाते थे, जिसे लोग उनका आशीर्वाद समझ कर स्वीकार कर लेते थे। अघोरी साधकों की गाली ही सिद्धि होती है। बाबा ने अपनी इस सिद्धि के बल पर न जाने कितने लोगों का चमत्कारी कल्याण किया था।

बाबा से मिलने के लिये दूर-दूर से सिद्ध सन्त-साधु महात्मा आया करते थे। जब वे आते तो बाबा उनसे मेरा परिचय अवश्य कराते थे।

एक बार बाबा के पास एक अघोरी सन्त आए। वे शायद आसाम के किसी इलाके से आए थे। नाम था शिवराम अवधूत। लम्बी-चौड़ी काठी का शरीर, काला रंग मुड़ा हुआ बेडौल सिर और बड़ी-बड़ी गहरी आँखें। गले में रुद्राक्ष की मालाएँ और हाथ में मुर्दे की खोपड़ी-जो बराबर शराब से भरी ही रहती थी। बाबा शिवराम अवधूत हमेशा उसे पीते रहते थे।

मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि वह विलक्षण खोपड़ी कभी भी शराब से खाली नहीं रहती थी कब और कैसे खोपड़ी शराब से अपने आप भर जाती थी-यह समझ में नही आता था। जब मैंने इस रहस्यमय चमत्कार की गहराई में उतरने की कोशिश की तो असफलता ही हाथ लगी। जब इसकी चर्चा शिवराम अवधूत से की तो वे हो-हो कर हँसने लगे। बड़ी विलक्षण और गहरी हँसी थी उनकी। हँस लेने के बाद उन्होंने बगल में रखी शराब से भरी खोपड़ी उठायी और गट्-गट् कर सारी शराब पी गए। फिर कन्धे पर लटक रहे चिथड़े से मुँह पोंछ कर एक दीर्घ साँस लेते हुए बोले---'क्या करेगा जान-समझ कर इस रहस्य को? जा अपना काम कर। इन सबके फेर में मत पड़।'

मैंने बाबा के दोनों पैर थाम लिये। विनित स्वर में कहा--'बाबा! मैं अघोर सम्प्रदाय पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ। उसी के लिए ऐसे रहस्यमय चमत्कारों के मूल कारणों को जानना-समझना चाहता हूँ।'

मेरी बात सुन कर बाबा ने पलट कर मेरी ओर एक बार देखा। उनकी आँखें उस समय लाल हो रही थीं। मैं सहम गया।

काफी देर तक वे सामने जलती हुई चिता की ओर अपलक निहारते रहे फिर अचानक बोल पड़े--'दारू पीएगा?'

'कभी पीया तो नहीं है बाबा मगर आपकी आज्ञा होगी तो पी लूँगा।'

बाबा ने फिर से भर गई खोपड़ी की शराब मेरी ओर सरका दी। बोले, पी जा-सब पी जा!'

'हे भगवान! इतनी शराब?' मैं बुदबुदाया।

बाबा गरजे--'देखता क्या है? पी जा जल्दी से-रहस्य जानना चाहता है न।'

मैंने काँपते हाथों से खोपड़ी उठा ली। पहली ही घूँट में गले से लेकर कलेजे तक जल गया। मगर विवश होकर सारी शराब पीनी ही पड़ी। फिर सारा बदन सन-सन करने लगा। सिर भी घूमने लगा। उसी स्थिति में घर लौटा। रात काफी गहरी हो गई थी। आते ही खाट पर पड़ गया, फिर मुझे होश नहीं रहा और उसी अचेतन अवस्था में एक लम्बा सपना देखा। सपना बंगाल का था-पद्मा नदी के उस पार का। नदी एक जगह भयंकर मोड़ लेती है। मैंने देखा--वहीं ऊँचे कगार पर दो-तीन कमरों का एक छोटा सा कच्चा घर था। घर के सामने कच्चा ही एक चबूतरा था और उसके बाद केले का बगान था। चारों तरफ झक-झक साफ-सुथरा स्थान था। परिष्कृत ढंग की सजावट। घर के पिछवाड़े एक दरवाजा था जिससे दस कदम पर ही नदी का भयंकर कगार था। वहाँ बीस-पच्चीस फुट नीचे पद्मा से मिलती थी नागिन कन्या नदी की फुफकारती हुई धारा। बड़ी भयंकर जगह थी वह।

साँझ की स्याह कालिमा घिर आई थी। बंगाल की सारी उदासी मानो वहीं छा गई थी।

आँगन के तुलसी के बिरवे के सामने घी का दीप जलाते हुए बदन पर लाल किनारी की साड़ी लपेटे वहाँ एक नवपरिणीता वधू मौजूद थी। वह प्रणाम कर के उठ खड़ी हुई। ललाट और कपोल पर चन्दन के लेप से चेहरे का लावण्य और अधिक बढ़ गया था। आँखों में बच्चों जैसा भोलापन था और थी नीले सागर जैसी स्निग्धता।

प्रणाम कर चुकने के बाद लज्जा से विनम्र तथा कोमल स्वर में उसने पूछा--'माँ! आप कुछ कह रही हैं क्या?'

चबूतरे पर से माँ बोली, 'हाँ! बहू! अब विश्वेश्वर आता ही होगा। आज रसोई का झंझट करने की जरूरत नहीं। मन्दिर से ढेर सारा प्रसाद आ गया है वही थाली में लगाकर दे देना उसे और हाँ जल्दी ही लेट जाना।' बहुत मिठास थी वृद्धा के स्वर में।

सिर हिलाकर हामी भर दी बहू ने। विश्वेश्वर लौट आया। प्रसाद ग्रहण करने के बाद एक कमरे में वृद्धा ने अपने सोने का इन्तजाम किया और उसके बगल वाले कमरे में बहू की सुहागरात का इन्तजाम था। शादी में विशेष आडम्बर नहीं किया गया था। न ग्राम-वधुओं का समागम हुआ, न बातूनी पड़ोसिनों ने मजाक किया, न 'उलू' ध्वनि हुई और न तो किसी प्रकार का मंगल अनुष्ठान किया गया था।

जतन सहित कृष्ण चूडा के फूलों से शैय्या सजाकर धरती पर माथा टेक कर नववधू ने अपने पति को झुककर प्रणाम किया। उसके बाद मिट्टी के दीपक के मन्द आलोक में उसकी दोनों कजरारी आँखों में कुछ अश्रुबिन्दु मोतियों की तरह झिलमिला उठे। अवरुद्ध कण्ठ से बोली वधू--'तुम मेरे परमेश्वर हो! सर्वस्व हो! तुम्हें मेरी हर साँस अर्पित है। मुझे ग्रहण करके तुमने मन की जिस उदारता का परिचय दिया है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। मैं तुम्हारे चरणों में रहूँगी। आशीर्वाद दो कि इन्हीं चरणों में मेरे प्राण निकले।'

रात्रि की गहन निस्तब्धता के बीच उस के आँसू पोंछ दिए विश्वेश्वर ने। अपने दोनों हाथों के बीच पत्नी का गुलाब के फूल जैसा चेहरा दबा कर दीपक के मन्द आलोक में कुछ क्षणों तक देखता रहा वह।

नववधू के गालों पर कुछ अश्रुकण ढुलक आए थे। पर वे आँसू नहीं थे---हृदय के उत्ताप में गल कर गिरे हुए लावण्य के कण थे। शायद विश्वेश्वर के दोनों हाथों के बीच वह असाधारण सुन्दर चेहरा इस प्रकार स्थिर रहा जैसे शुभ्र दीप की स्निग्ध शिखा हो। कुछ क्षण बाद धीर गम्भीर स्वर में विश्वेश्वर बोला 'नहीं! मुझसे भूल नहीं हुई है, अर्चना! अत्यधिक भाग्यवान हूँ मैं। आओ, रात्रि अधिक हो गई है, चलकर सोएँ अब!' चारों ओर सन्नाटा छा गया। रात का घना अँधेरा जैसे झींगुरों के अनन्त क्रन्दन का भी गला घोंट रहा था। उस छोटे से कमरे में सिर्फ दो मृदु श्वास-प्रश्वासों का गम्भीर शब्द भर सुनाई पड़ता रहा और इस असीम शान्ति के बीच निद्रा रहित आँखों से सब कुछ देखने वाला साक्षी था कमरे के एक कोने में जलने वाला दीपक। धीरे-धीरे मनुष्य, पतंग और प्रकृति अरण्य, सब डूब गए सुषुप्ति की गोद में। एकाएक शान्ति भंग हुई।

'अर्चना!' किसी ने दरवाजे पर खड़े होकर आवाज लगाई।

अन्धकार को एकबारगी चौंका दिया इस शब्द ने। विश्वेश्वर उठकर बैठ गया बिस्तर पर। डरकर अर्चना ने जकड़ लिया उसे।

कुछ ही क्षणों बाद कठोर स्वर में फिर कोई गरज उठा--'अर्चना! दरवाजा खोलो।'

पाषाणवत् बैठा रहा विश्वेश्वर। भय और आतंक से जैसे काठ हो गया था वह। उसके सीने में मुँह छिपाकर फफक-फफक कर रो पड़ी अर्चना।

बगल के कमरे का दरवाजा खोलकर वृद्धा बाहर निकल आई। उसका विनय भरा स्वर सुनाई दिया--'महाराज! अर्चना और विश्वेश्वर का धार्मिक रीति से विवाह हुआ है। अब विश्वेश्वर का अधिकार है अर्चना पर। अब वह आपकी भैरवी नहीं, विश्वेश्वर की पत्नी है.....।'

'चुप रह बुढ़िया। ज्यादा बक-बक मत कर।'--वह व्यक्ति चीख कर बोला।

तभी टूटे हुए धनुष की तरह उछल कर विश्वेश्वर दरवाजे पर आ गया। हल्के अँधेरे में भी साफ दिखलाई पड़ा उसका गोरा शरीर। तन कर बोला--'क्या चाहिए आपको?'

महिषासुर जैसी आकृति का वह भयानक व्यक्ति कठोर स्वर में बोला--'तेरी नहीं अर्चना की जरूरत है मुझे। उसे बुला।'

'वह मेरी पत्नी है, तेरी भैरवी नहीं।'

अकस्मात् कठोर हो उठा विश्वेश्वर का स्वर।

यह सुनकर वह नर पिशाच अट्टाहास कर उठा। उसका दानव जैसा काला शरीर।

एकाएक गहन अन्धकार में डूबा हुआ निस्तब्ध वातावरण एक भयंकर आर्तनाद से काँप उठा। उसी के साथ मैंने देखा--विश्वेश्वर जमीन पर गिरा पीड़ा से छटपटा रहा था। धरती खून से लाल हो उठी थी। चौड़े फाल का एक भयानक बर्छा उसकी छाती में घुसा हुआ था। कुछ ही क्षणों में उसका शरीर शान्त हो गया।

विश्वेश्वर की लाश को लाँघ कर वह नर राक्षस कमरे के भीतर उछल पड़ा, फिर आँखें घुमा कर चारों तरफ देखने लगा। कमरे के एक कोने में दीप-शिखा लगातार जल रही थी। सुहाग शैया पर पड़े बकुल और रजनीगन्धा के फूल मुरझाते रहे।

पीछे के दरवाजे से पीठ टेके खड़ी रही सुन्दरी अर्चना। उसकी हिरणी जैसी आँखों में सिहरन भरे आतंक, असीम घृणा और कठोर संकल्प का एक अजीब-सा सम्मिश्रण था। गहरे निश्वासों से उसका कठोर वक्ष-स्थल उद्वेलित हो रहा था। उसके नासारन्ध्र फड़क रहे थे। चेहरे पर कठोरता का भाव आ गया था।

वह दृश्य देखकर यमराज भी थम कर खड़ा हो जाता। बहती हुई हवा भी स्थिर हो उठती।

समय ही कितना लगा इन सबमें? महाकाल की गोद में एक नगण्य सा क्षण। लेकिन इसी बीच में एक व्यक्ति का चरम भाग्य लेख निर्धारित हो गया।

पलक झपकने भर की देर में दरवाजा खोल कर वह पीछे के अँधेरे में बिजली की चमकती बलखाती रेखा जैसी विलीन हो गई। दूसरे क्षण बाद ही पद्मा के कल-कल नृत्य छन्द में एक बेसुरी-सी आवाज उभरी जिसने अर्चना की परिणति की सूचना दे दी। तूफानी हवा खुले दरवाजे के रास्ते से पछाड़ खाकर अन्दर दाखिल हुई। कमरे का जलता हुआ माटी का दीप भक् से बुझ गया।

और उसी के साथ हड़बड़ाकर उठ बैठा मैं! कमरे का दरवाजा न जाने कब और कैसे खुल गया था। छाती को एकदम से खाली करके आने वाली गहरी साँस जैसी तुहिन-शीतल हवा हँ-हूँ करती हुई अन्दर आ रही थी। अजीब सपना था। सुन्दर भी था और भयानक भी।

लेकिन सपना इतना साफ भी होता है, मुझे नहीं मालूम था। अब भी आँख बन्द करने पर साफ देख पाता हूँ। उसे। फिर नींद नहीं आई। सोचने लगा--अर्चना कौन थी? इस सपने का मतलब क्या था? क्या यही रहस्य था? और इसी रहस्य के परिचित कराने के लिए अघोरी ने मुझे खोपड़ी की शराब पिलाई थी?

मेरा मन उद्विग्न हो उठा।

दूसरे दिन बाबा से मिलने श्मशान पर जब गया तो मालूम हुआ कि वे नारायणपुर के श्मशान में चले गए हैं। उसी समय नाव से नारायण पुर पहुँचा। कार्तिक का महीना था। गुलाबी ठंड पड़ने लगी थी। साँझ की स्याह कालिमा फैल चुकी थी। एक अबूझ सी खिन्नता छाई थी चारों तरफ। कहीं किसी जानवर की लाश सड़ रही थी। सन्धाड से मेरा माथा चकराने लगा। घाट के ऊपर आया तो देखा--दो-तीन चिताएँ जल कर बुझ चुकी थीं! मगर उनकी राखों से अभी भी धुएँ की स्याह लकीरें उठ रही थीं। मैंने देखा--बाबा शिवराम अघोरी वहीं बैठे थे ध्यान लगाए। सामने शराब से भरी खोपड़ी रखी थी। मैं चुपचाप खड़ा बाबा की ओर देख रहा था। सोचा, जब ध्यान से उठेंगे तो बाते करूँगा। साँझ की स्याह कालिमा रात्रि की गहनता में बदल चुकी थी। चारों ओर सायँ-सायँ हो रहा था। सहसा श्मशान का पुराना पीपल का पेड़-जोर-जोर से हिलने लगा। उसी के साथ कुश की झाड़ियों से सियारों के रोने की आवाज भी सुनाई देने लगी।

मैं किसी अज्ञात भय से काँप उठा। कहीं कोई प्रेत लीला तो घटित न होगी। तभी उस निविड़ अन्धकार में किसी की घुटी-घुटी सी आवाज सुनाई पड़ी। लगा, कोई दबे कण्ठ से रो रहा है। मगर दूसरे ही क्षण किसी के खिलखिलाकर हँसने की भी आवाज सुनाई पड़ी।

मैं आतंकित हो उठा। निश्चय ही वह प्रेतों का ही कौतुक था। मेरी हिम्मत अब जवाब दे रही थी। वहाँ से जैसे ही मैं भागने के लिए मुड़ा कि एकाएक मेरी नजर बाबा की ओर अपने आप घूम गई। देखा--खोपड़ी के चारों ओर चक्कर काटती हुई एक

धूम्राकृति एक युवती के रूप में बदल गई। मैं चौंक पड़ा। वह युवती और कोई नहीं अर्चना ही थी, जिसे सपने में नववधू के रूप में देखा था। उस गहन अन्धकार में भी उसे बिल्कुल साफ देख रहा था। उस समय उसके चेहरे पर वही भाव थे जिसे मैंने सपने के अन्तिम चरण में देखा था। आतंक, भय और कठोर संकल्प के भाव।

पीपल का पेड़ अब भी बुरी तरह हिल रहा था। जोर-जोर से सियारों के रोने की आवाज अब भी सुनाई पड़ रही थी। बाबा ने आँखें खोलीं। अपने बेडौल सिर को थोड़ा ऊपर उठा कर सामने खड़ी अर्चना की ओर देखा। उन्हें मेरी उपस्थिति का ज्ञान नहीं था शायद।

सहसा उस अँधेरे में भयंकर आर्तनाद करती हुई एक चीख उभरी और निस्तब्ध वातावरण में बिखर गई। उसके बाद सामने जो दृश्य मैंने देखा--उससे मेरे शरीर का सारा रक्त जम गया। मैं भय और आतंक से काँप उठा। मेरी आँखे फैल गई।

अर्चना की उँगलियाँ बाबा के गले को कसती जा रही थीं। उनकी जीभ बाहर निकल आई थी। मुँह से गों-गों की आवाज आ रही थी। वे बुरी तरह छटपटा रहे थे। दूसरे ही क्षण मुँह से भलभलाकर खून निकला और उनकी काया निर्जीव होकर जमीन पर गिर पड़ी।

मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मेरा मस्तिष्क ज्ञानशून्य हो गया था। उस भयंकर पैशाचिक लीला को देखकर वहाँ मुझसे रुका न गया। दिशाहीन एवं लक्ष्यहीन होकर काले अँधियारे के बीच मैं वहाँ से भागा।

जब घर पहुँचा तो उस समय रात के दो बजे थे। मगर यह क्या? अपने कमरे का दरवाजा मैंने जैसे ही खोला, तो एकबारगी स्तब्ध रह गया। मेरे सामने अर्चना खड़ी मुस्करा रही थी। वही रूप, वही सौन्दर्य और वही वेश-भूषा जैसा कि मैं सपने में देखा था।

अभी मैं चखकर भागने ही वाला था कि अर्चना का शहद में डूबा हुआ स्वर कानों में पड़ा--'डरिए नहीं! मैं आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचाऊँगी। अन्दर आइए...।' यह शब्द सुनते ही मेरा सारा डर खत्म हो गया और मैं यह भी भूल गया कि मेरे सामने एक प्रेतात्मा सशरीर खड़ी है। मैं अन्दर जाकर अपनी चारपाई पर बैठ गया। अर्चना भी मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गई।

मैं काफी परेशान हूँ। सोचा था--अघोरी को मार कर मैं अपने आपको उसके बंधन से मुक्त कर लूँगी। मगर ऐसा न हो सका। अर्चना कहने लगी--'वह तो मर गया मगर उसकी आत्मा अब मेरे पीछे पड़ गई है। हे भगवान! हे परमेश्वर! अब क्या करूँ मैं? कहाँ जाऊँ? कहाँ मिलेगी शान्ति मुझे!'

इतना कहकर अर्चना सिर पर हाथ रखकर सिसकने लगी। उसकी स्थिति उस समय दयनीय थी।

'बोलो! मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकता हूँ? तुम्हारे कोई काम आ सकता हूँ' मैंने हौले से कहा।

अर्चना ने अपना सिर ऊपर उठाया। गीली आँखों से मेरी ओर देखा। फिर अवरुद्ध कण्ठ से बोली 'आप मेरी सहायता नहीं करेंगे तो कौन करेगा? इसीलिए तो मैं आपके पास आई हूँ। मेरी खोपड़ी श्मशान में पड़ी है। बस उसे आप ले आइए। दया करिए मुझ पर!'

'वह खोपड़ी तुम्हारी है?'

'हाँ! मेरी ही है! जब मैंने पद्मा में कूदकर आत्महत्या की तो इस अघोरी ने मेरी लाश को किसी तरह प्राप्त कर लिया और उस पर बैठकर तीन साल तक शव-साधना की उसने-फिर मेरी खोपड़ी को सिद्ध कर अपने पास रख लिया। तबसे, यानि पिछले चालीस वर्ष से इसके कब्जे में हूँ!'

एकाएक मेरे मस्तिष्क में स्वप्न का अन्तिम दृश्य घूम गया। बोला--'यह अघोरी, वही तो नहीं है जिसने तुम्हारे पति की हत्या कर तुमको पाना चाहा था।'

'हाँ! हाँ वही है'--अर्चना ने गालों पर ढुलक आये आँसुओं को पोंछते हुए उत्तर दिया।

जब मैंने यह पूछा कि आखिर वह अघोरी क्यों तुम्हारे पीछे पड़ा था तो अर्चना ने बतलाया कि ग्यारह साल की उम्र में अघोरी ने उसे अपनी तांत्रिक भैरवी बना लिया था। वह उसकी साधना में बराबर सहयोग देती रही। मगर जब वह सोलह साल की युवती हुई तो उसने उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर कोई निकृष्ट साधना करना चाहा, जिसके लिए वह तैयार नहीं हुई।

थोड़ा रुक कर अर्चना ने आगे कहना शुरू किया--'मेरे पिता थे चक्रमणि भट्टाचार्य। काली के उपासक थे। उसी अघोरी से अघोर मंत्र की दीक्षा ली थी, उन्होंने। इसीलिए गुरु की भैरवी बनने में उन्होंने एतराज नहीं किया। मगर जब मैंने उन्हें यह बतलाया कि अघोरी मेरा कौमार्य भंग करना चाहता है, तो उन्होंने चटपट मेरा विवाह कर दिया। फिर भी अघोरी ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा।'

यदि दूसरे दिन मैं श्मशान में जाकर खोपड़ी न लाया होता तो यह कथा यहीं पर समाप्त हो जाती। मगर नहीं, मुझे तो जिन्दगी भर के लिए एक भयंकर विपत्ति मोल लेनी थी। उस अघोरी की आत्मा के चक्कर में फँसना था। जब मैंने श्मशान में पड़ी खोपड़ी उठाई, निश्चय ही उसी समय कहीं दूर अदृष्ट ने ठहाका लगाया होगा। जिसे मैं सुन न सका। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर खोपड़ी अपने कमरे में लाकर रख दी। अर्चना फिर नहीं आई उसके बाद। सबेरे जब खोपड़ी पर नज़र पड़ी तो स्तब्ध रह गया।

वह शराब के बजाय खून से भरी हुई थी। बिल्कुल ताजा खून। घबरा कर बाबा सोमारू राम के पास पहुँचा। उस समय वे तन्मय होकर चिता की अधजली लकड़ियाँ उठा रहे थे। मैंने उनको एक ही साँस में सारी घटना सुना डाली। वे निर्विकार सुनते रहे, लकड़ियाँ बीनते रहे! फिर पास ही सीढ़ी पर बैठकर एक बार गहरी नजरों से उन्होंने मेरी ओर देखा। बड़ी रहस्यमयी दृष्टि थी उनकी। मैं समझ न सका। थोड़ी देर बाद गम्भीर स्वर में बाबा बोले--'तू तो बुरी तरह प्रेतों के चक्कर में फँस गया रे.....।'

'ऐं! क्या कह रहे हैं आप?'

बाबा हँस पड़े। मगर उस हँसी में कड़ुवाहट थी।

श्मशान से खोपड़ी लाकर तूने अच्छा नहीं किया, बाबा आगे बोले 'अघोरी की आत्मा से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए अर्चना यही चाहती थी कि तुम वहाँ से खोपड़ी लाकर अपने पास रख लो।...जानते हो... इससे क्या हुआ...अर्चना तो प्रेत-योनि से मुक्त हो गई, अघोरी के चंगुल से भी छूट गई मगर तू फँस गया अघोरी की प्रेतात्मा के चंगुल में!'

बाबा की बात सुनकर मेरे सारे शरीर में कँपकपी होने लगी। पसीना छूटने लगा। हकलाते हुए बोला--'अब क्या होगा? कैसे छुटकारा मिलेगा?.....'

'खून सहित खोपड़ी को लाकर यहीं श्मशान में गाड़ दे। सब ठीक हो जाएगा।'

रात के सन्नाटे में मैंने वैसा ही किया। रात के सन्नाटे में लाकर श्मशान में खून सहित खोपड़ी गाड़ दी।

पर क्या इससे पूरी तरह छुटकारा मिल गया अघोरी शिवराम अवधूत की प्रेतात्मा को?

'नहीं।' सोलह वर्ष का लम्बा अर्सा बीत गया। मगर कभी-कदा अघोरी की प्रेतात्मा मुझे सशशीर दिखलाई पड़ जाती है। इस कथा को लिखते समय भी कई बार उसने मेरे कमरे का चक्कर लगाया है। अभी भी मुझे ऐसा लग रहा है कि वह कहीं पास ही खड़ी मेरी सारी गति को अपनी अदृश्य आँखों से देख रही होगी।

पुर्नजन्म

आदिकाल से मानव यह प्रश्न करता रहा है कि 'मानव क्या है, कहाँ से आता है और कहाँ जाता है?' उसका प्रारम्भ इस जन्म से होता है, अथवा जन्म के पहले भी उसका अस्तित्व था? यदि उसका अस्तित्व था, तो किस रूप में था? क्या मृत्यु ही जीवन की अन्तिम परिणति है? जहाँ संसार के समस्त धर्मावलम्बी मृत्यु को ही जीवन का अन्त मानते हैं, वहीं समस्त संसार को इस नए विज्ञान का ज्ञान देते हुए भारतीय संस्कृति मानती है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। पुनर्जन्म भारतीय संस्कृति के तत्व ज्ञान का एक मौलिक अंग है। देहान्त के साथ शरीरगत आत्मा की मृत्यु न होकर वह आत्मा उस देह

में प्राप्त संस्कारों के साथ दूसरी देह में चली जाती है। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं। परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्मतत्व, परलोक तत्व, जीव और जीवन तत्व आदि के अलावा मैंने पुनर्जन्म के मूलभूत सिद्धान्तों और मूलभूत तथ्यों पर भी गहन शोध, खोज और चिन्तन-मनन किया है। प्रस्तुत रचना उसी का मौलिक परिणाम है। खैर....

जीव का जन्म मृत्यु के पश्चात् तुरन्त इसी लोक में होता है या परलोक जाकर उसे लौटना पड़ता है? शास्त्रों में ऐसा कहा गया है और पारलौकिक विद्या को जानने वाले विद्वान भी ऐसा मानते हैं कि मृत्यु के बाद जीवात्मा तुरन्त ही इस भूलोक में दूसरे शरीर में जन्म लेता है। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि यदि जीवात्मा का, जो कि अमर है, परलोक जा सकने योग्य विकास न हुआ हो, तो भूलोक में तुरन्त उसका जन्म होगा। मरने वालों का भूलोक की ओर अत्याकर्षण भी मरणोत्तर तुरन्त पुनर्जन्म का कारण हो सकता है। वैसे मृत्यु के बाद पुर्नजन्म की स्थिति तीन वर्षों तक कभी भी सम्भव बतलाई गई है।

मनुष्य अपने पिछले जन्मों के संस्कारों को लेकर पुन: इस मृत्युलोक में जन्म लेता है और उन संस्कारों का सारभूत उसे स्मरण रहता है, जब तक कि वह इस दुनिया व माया-जाल में भ्रमित नहीं हो जाता।

प्रत्येक बार अन्तरात्मा जन्म लेता है और प्रत्येक बार विश्व-प्रकृति के उपादानों से एक मन-प्राण और शरीर की रचना होती है। यह रचना अन्तरात्मा के भूतकाल के विकास और उसके भविष्य की आवश्यकता के अनुसार होती है। शरीर छोड़ने के बाद जीव अपने मनोयोग और प्राणमय व्यक्तित्व को फेंक देता है और अपने भूतकाल के सारतत्व को आत्मसात करने तथा नए जीवन की तैयारी के लिए विश्राम में चला जाता है। यह तैयारी ही नए जन्म की परिस्थितियाँ निश्चित करती है। एक नए व्यक्तित्व के गठन में और उसके उपादानों के चुनाव में उसका पथ-प्रदर्शन करती है। मृत्यु के बाद अन्तरात्मा सूक्ष्म शरीर में निकल जाता है। जब जीव किसी विगत व्यक्तित्व या व्यक्तियों को अपने वर्तमान विकास के अंग के रूप में साथ लाता है, केवल तभी विगत जन्म की बातों को स्मरण रखने की सम्भावना रहती है। अन्यथा स्मृतियाँ पुनर्जन्म तक नहीं-कुछ ही समय तक ठहरती हैं। अगर ऐसा न होता, तो विगत जन्मों की स्मृति नया शरीर लेने के बाद भी अपवाद न होकर नियम होती है। यह सम्भव है कि एक जन्म के संबंध बाद के जन्मों में आसक्ति के बल पर टिके रहें, किन्तु यह नियम नहीं हैं।

पुनर्जन्म के लिए वापस आने वाला अन्तरात्मा नए शरीर में कब प्रवेश करता है, इसका कोई नियम नहीं है। व्यक्ति-व्यक्ति की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। यानी जन्म या देहान्तरण का मूलभूत निर्धारण मृत्यु के समय होता है। उस समय चैत्य पुरुष यह चुनाव करता है कि अगले पार्थिव प्राकट्य में उसे क्या करना है? और परिस्थितियाँ उसी के अनुरूप संयोजित हो जाती है।

आधुनिक मन के लिए पुनर्जन्म एक कल्पना है। एक मत है। वह कभी भी आधुनिक विज्ञान की पद्धतियों से प्रमाणित नहीं हुआ। फिर भी आधुनिक आलोचक के पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे वह पुनर्जन्म की सत्यता या असत्यता को प्रमाणित कर सके। वास्तव में पुनर्जन्म मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान का विषय है और उसका निर्णय भौतिक की अपेक्षा इन दोनों विज्ञानों के प्रमाणों से करना होगा। खैर...

पुनर्जन्म परामनोविज्ञान का एक अनसुलझा विषय है। योग तंत्र और भूत-प्रेतों की तरह पुनर्जन्म भी मेरे शोध और खोज का विषय रहा है। जिन दिनों मैं उपर्युक्त तमाम सिद्धान्तों के आधार पर परामनोवैज्ञानिक ढंग से पुनर्जन्म पर खोज कार्य कर रहा था-- उसी समय मेरे जीवन में एक ऐसी अलौकिक और अविश्वसनीय घटना घट गई, जिसने पुनर्जन्म से संबंधित मेरी खोज की दिशा को ही एकबारगी बदल दिया।

मेरे एक मित्र थे नाम था रघुनाथ प्रसाद तिवारी। बनारस के भदैनी मुहल्ले में रहते थे वह। प्रथम श्रेणी में एम. ए. करने के बाद उन्होंने एक कालेज में नौकरी कर ली। प्राध्यापक का पद था। वेतन भी अच्छा था। तिवारी जी काफी सीधे-सादे और सरल स्वभाव के थे। रहन-सहन भी उनका साधारण था। जब नौकरी लग गई तो, उनके परिवार के लोग विवाह के लिए उन पर दबाब डालने लगे। पहले तो तिवारी जी न-नुकुर करते रहे, पर बाद में तैयार हो गए।

तिवारी जी के पिता का नाम था रामनाथ तिवारी। बनारस जिले में ही उनकी अच्छी जमीन्दारी थी। गाँव में हवेलीनुमा पक्का मकान था। किसी बात की कमी न थी उन्हें। परिवार में उनकी पत्नी देवकी और एक मात्र पुत्र रघुनाथ तिवारी थे।

शादी पक्की हो गई। रामनाथ तिवारी के एक अभिन्न मित्र थे सूर्य नारायण मिश्र। उन्हीं की इकलौती लड़की श्यामा से शादी होनी निश्चित हुई थी। मिश्रा जी भी काफी सम्पन्न व्यक्ति थे। श्यामा ही उनकी एक मात्र सन्तान थी। इसीलिए शादी में उन्होंने दिल खोलकर खर्च किया था। दहेज भी काफी दी थी।

श्यामा पढ़ी-लिखी, सुन्दर और आकर्षक युवती थी। गोरा रंग, इकहरी देह और लम्बा कद था उसका। घर-गृहस्थी के कामों में निपुण तो थी ही वह। अपने मृदु और सरल स्वभाव से ससुराल वालों का दिल जीत लिया उसने। रघुनाथ तिवारी भी ऐसी सुशिक्षिता और सद्‌गृहणी पत्नी पाकर प्रसन्न थे। वे श्यामा को इतना प्यार करते थे और इतना चाहते थे कि उसके बिना एक पल रहना उनके लिए मुश्किल था।

संयोगवश दो साल बाद एक छोटी-सी बीमारी में श्यामा का स्वर्गवास हो गया। रघुनाथ तिवारी अपनी प्राण प्रिया पत्नी के वियोग में तड़प उठे और पागलों की तरह घूमने लगे। रात-दिन बड़बड़ाते रहते, 'श्यामा तुम कहाँ गई, कहाँ गई तू मुझे छोड़कर!' दिन प्रतिदिन उनकी हालत दयनीय होती जा रही थी। बाल उलझे रहते। तन-बदन का खयाल

न रहता। कपड़े-लत्ते भी न बदलते। खाना-पीना और सोना तो एकबारगी छूट ही गया था उनका। रघुनाथ तिवारी मेरे अभिन्न मित्र थे। मुझसे उनकी यह दशा देखी नहीं जाती थी। लेकिन मैं कर ही क्या सकता था भला?

उन्हीं दिनों एक महात्मा काशी के बंगाली टोला मुहल्ले में रहते थे। उनका नाम था भोला गिरि। योगी पुरुष थे वह। प्राय: समय मिलने पर मैं उनके यहाँ चला जाया करता था। बड़ी शान्ति मिलती थी मुझे उनके निकट। एक दिन मैं विक्षिप्त रघुनाथ तिवारी को भी वहाँ ले गया अपने साथ।

उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ जबकि मुझे देखते ही गिरि महाशय बोले--'इन पत्नी वियोगी को लेकर यहाँ क्यों आए?'

मैंने उनसे कभी इस संबंध में चर्चा नहीं की थी। सोचा बाबा अवश्य ही अपनी विद्या से सब कुछ जान गए होंगे।

क्या सोच रहे हैं शर्मा जी! बाबा ने पुन: मुस्कराकर कहा। मैं गम्भीर होकर बोला--मैं जो कुछ सोच रहा हूँ। उसे आप समझ रहे हैं। मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? कुछ उपाय करें जिससे तिवारी जी की आत्मा को शांति मिले। मेरी बात सुन कर गिरि महाशय ने गहरी दृष्टि से एक बार तिवारी जी की ओर देखा और फिर कुछ सोचने लगे। करीब आधा घण्टा बाद बोले--ली अमावस्या की रात में इनको लेकर आइएगा तभी कुछ हो सकता है। और हाँ, आते समय अगरबत्ती और सुगन्धित फूलों की चार मालाएँ भी लेते आना।

अमावस्या की रात में गिरि महाशय कौन-सा उपाय करेंगे यह न समझ सका मैं। खैर, अमावस्या की साँझ के समय अगरबत्ती और माला लेकर तिवारी जी के साथ जब मैं उनके मकान पर पहुँचा, तो देखा वे पल्थी मारकर ध्यान की मुद्रा में आँख बन्द किए बैठे हुए थे। मैं सामान रखकर सामने बैठ गया। तिवारी जी भी हाथ जोड़कर एक ओर बैठ गए।

पूरे दो घंटे बैठना पड़ा। मगर यह क्या? बाबा को समाधि से उठते ही तिवारी जी अचेत हो गए और उनकी आँख मुँद गई।

बाबा ने तिवारी जी को गहरी नजरों से एक बार देखा और फिर उनके सामने अगरबत्ती सुलगाकर रख दिया। बोले--इन पर इनकी पत्नी की आत्मा आ गई है। इतना कहकर बाबा ने उन पर जल फेंका।

तिवारी जी का चेहरा लाल हो गया और होंठ फड़फड़ाने लगे। अचानक वे बोलने लगे।

गिरि महाशय ने पूछा--तुम कौन हो?

मैं श्यामा हूँ।

कौन श्यामा?

सूर्य नारायण मिश्र की लड़की।

और

रघुनाथ तिवारी की पत्नी।

बहुत ठीक! इस समय तुम कहाँ से बोल रही हो? मैं कलकत्ता के एक मारवाड़ी सेठ के घर में लड़की के रूप में पैदा हुई हूँ। एक बात याद रखिए। मुझे यहाँ देर तक मत रोकिएगा। मैं इस समय अपनी माँ के साथ सो रही हूँ। माँ भी सो रही है। उनके जागने के पहले मुझे अपने वर्तमान शरीर में वापस चले जाना होगा। वर्ना वे लोग घबराएँगे। हो सकता है वे लोग मुझे मरी हुई समझकर गंगा में प्रवाह न कर दें।

क्या तुम्हारी आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर को लेकर यहाँ आई है?

गिरि महाशय ने पूछा!

हाँ।

लेकिन इतने से तुम्हारे पति रघुनाथ तिवारी को सन्तोष न होगा। हो सकता है यह खबर पाकर कलकत्ता के लिए चल पड़ें और तुम्हें खोज कर तुमसे मिलने का प्रयास करें। आप ऐसा करने से इन्हें रोकिएगा। मेरी अवस्था इस समय कुल तीन महीने की है। मैं तो शिशु के शरीर से निकलकर और अपने पति के वयस्क शरीर के माध्यम से बात कर रही हूँ। मेरी आत्मा मेरे वर्तमान शरीर में इतनी विकसित रूप में बातचीत नहीं कर सकेगी। तब इन्हें निराशा होगी और अधिक दुखी हो जाएँगे।

एक आमन्त्रित आत्मा के द्वारा यह सारी बात सुन कर मैं एकबारगी स्तब्ध रह गया। पहली बार मैंने आत्मा का आवाहन देखा था और इस प्रकार की बातें सुनी थीं। मैंने बाबा से अनुरोध किया कि मुझे कुछ प्रश्न करने की आज्ञा दें।

बाबा ने स्वीकृति दे दी मुझे।

मैंने पहला प्रश्न किया--क्या तुम यह बतला सकती हो कि जीवन और मृत्यु के बीच तुमको कैसा अनुभव हुआ था? हाँ, बतला सकती हूँ! तीन दिनों से मुझे बुखार आ रहा था। मगर चौथे दिन बुखार काफी तेज हो गया। दोपहर को दवा खाकर मैं जैसे ही लेटी थी कि एकाएक सर चकराने लगा और उसके बाद सीने में दर्द होने लगा। मैं उठकर बैठ गई किसी को बुलाना चाहा, मगर बुला न सकी चाह कर के भी। सर चकराने और सीने में दर्द के साथ-साथ मेरी तबीयत भी घबराने लगी। आँखें झपकने लगीं और फिर नींद-सी लगने लगी। मैं फिर लेट गई और न जाने कब गहरी नींद में सो गई। काफी देर बाद बहू! वहू! की आवाज कानों में पड़ी। शायद मेरी सास मुझे पुकार रही थी। मेरी नींद

खुल गई। मगर मुझे घोर आश्चर्य इस बात का हुआ कि मैं अपने शरीर को खाट पर पड़ी हुई देख रही थी। मेरी सास और गाँव की कुछ औरतें मेरे शरीर को चारों ओर से घेर कर बैठी रो रही थीं जोर-जोर से। मैं अपने शरीर को छूना चाहा, मगर ऐसा न कर सकी। काफी देर तक बैठी रही मैं अपने शरीर के पास। बाद में मुझे जब यह मालूम हुआ कि मैं मर चुकी हूँ, तो बड़ा दुख हुआ मुझे। मेरे पति उस समय बनारस में थे। मैं उनसे यह बतलाने के लिए वहाँ से चल पड़ी कि मैं अब मर चुकी हूँ। कैसे अब उनसे मुलाकात होगी?

तुम्हारे गाँव से बनारस करीब १५-१६ मील है। तुम कैसे गयी रघुनाथ तिवारी के पास?

बस जैसे ही सोचा कि उनसे मुझे मिलना चाहिए, तुरन्त उनके पास पहुँच गई मैं।

मगर तुम तो मर चुकी थी? पति से बात कैसे की तुमने?--बात कहाँ कर सकी मैं। जब वहाँ पहुँची, तो वे उस समय किसी आदमी से बात कर रहे थे। मैं उनके सामने जाकर खड़ी हो गई और उनके मन में यह भावना भर दी कि मैं मर चुकी हूँ। गाँव जल्दी जाएँ।

उसके बाद क्या हुआ?

मैं भी गाँव लौटकर अपने शरीर को देखना चाहती थी। मगर ऐसा न कर सकी। मुझे लगा कि कोई अदृश्य शक्ति मेरे अस्तित्व के चारों ओर घूम रही है। फिर मैं सब कुछ एकाएक भूल गई। यह भी भूल गई कि मैं मर चुकी हूँ और संसार से मेरा कोई नाता नहीं रह गया है। उस समय मुझे घोर शान्ति का अनुभव हो रहा था।

क्या उस समय तुम इसी संसार में अपने अस्तित्व का बोध कर रही थी?

नहीं! सब कुछ भूल जाने के बाद उस शान्ति के बीच मैं एक ऐसे वातावरण में अपने आपको पा रही थी। जहाँ घना कुहरा छाया हुआ था और चारों तरफ चाँदनी जैसा शुभ्र प्रकाश फैल रहा था।

फिर कलकत्ता में तुम्हारा जन्म कैसे हुआ?

मैं न जाने कब तक और कितने दिनों तक उस स्थिति में और उस वातावरण में विचरण करती रही और इधर-उधर भटकती रही, बतला नहीं सकती। एक दिन अचानक न जाने कहाँ और किधर से ५-६ लड़कियों ने आकर मुझे घेर लिया। --कैसी थीं वे लड़कियाँ ?

बड़ी सुन्दर थीं। किसी के हाथ में पूड़ी-मिठाई की थाली थी। किसी के हाथ में पानी से भरा गगरा था, तो किसी के हाथ में रेशमी साड़ियाँ थीं।

सभी ने एक साथ मिलकर कहा--लो खाना खा लो। पानी पी लो और यह साड़ी पहन लो।

मैंने चुपचाप खाना खाकर सांड़ी जब पहन ली, तो वे लड़कियाँ मुझे एक बहुत बड़े महल में ले गईं अपने साथ। महल के चारों ओर सुन्दर फूलों के बाग थे और वहाँ काफी भीड़ थी। महल के भीतर एक तख्त पर काफी मोटा-ताजा एक व्यक्ति बैठा हुआ था सिर झुकाए हुए। उसके बेडौल शरीर पर गेरुए रंग का रेशमी चोंगा झूल रहा था।

उसके सामने ले जाकर लड़कियों ने खड़ा कर दिया। उस व्यक्ति ने अपना बड़ा सा सिर उठा कर मेरी ओर घूरते हुए देखा। और फिर हाथ से कोई इशारा किया। जिसका मतलब मैं नहीं समझी। उसके बाद फिर क्या हुआ बतला नहीं सकती। अच्छा, अब मुझे जाने दें! इतना कहकर श्यामा की आत्मा वापस चली गई और उसे वापस जाते ही तिवारी जी सचेत होकर फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखने लगे।

मैंने पूछा--क्या बात है तिवारी जी!

श्यामा कहाँ गई? अभी-अभी तो थी वह यहाँ?

आपने श्यामा को देखा था? बाबा ने पूछा।

हाँ। देखा ही नहीं बल्कि उससे मैंने बातें भी कीं।... तो आपने पत्नी को देख लिया और उससे बातें भी कर लीं, यही चाहते थे न आप?

तिवारी जी को यह सुनकर जैसे होश आया। चौंककर बोले--हाँ! महाराज! मैंने आपसे इसी के लिए प्रार्थना की थी। मुझे शान्ति मिल गई अब!

रघुनाथ तिवारी को तो शान्ति मिल गई। मगर मेरा मन एकबारगी अशान्त हो उठा। एक साथ कई प्रश्न उभर आए मानस में। इस घटना से मेरी कई जिज्ञासाओं का एक साथ समाधान हो गया। कलकत्ता जाकर मैंने श्यामा के पुनर्जन्म के संबंध में उसके बताए हुए पते पर छान-बीन की, तो बात सच निकली। कलकत्ता स्ट्रीट के एक मारवाड़ी परिवार में तीन मास पूर्व जन्म लिया था एक लकड़ी ने। श्यामा ने अपने वर्तमान माता-पिता और परिवार के लोगों के जो नाम बतलाए थे-वे सही थे।

मरने के बाद श्यामा को उन रहस्यमई लड़कियों के द्वारा, जो पूड़ी-मिठाई और साड़ी मिली थी, वह इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि मृतक के नाम से जो कुछ भी इस लोक में दान-पुण्य किया जाता है वह अवश्य उसी रूप में उसे मिलता है।

एक ओर इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कुछ समय तक इस जगत और जीवन की स्मृति बनी रहती है जीवात्मा को और इसके अलावा अपनी मति-गति का भी कुछ समय स्मरण बना रहता है उसे।

बाबा ने बतलाया कि, जब तक जन्म लेने वाला शिशु बोलना और भाषा समझना नहीं सीख जाता तब तक उसे अपने पूर्व जीवन-जगत और पूर्व मति-गति का स्मरण बराबर बना रहता है।

भोला गिरि निश्चय ही एक सिद्ध योगी पुरुष थे। आत्म-विद्या में वे पारंगत थे। मुझे अपनी खोज की दिशा में काफी सहयोग मिला। मेरे यह पूछने पर कि जब श्यामा की आत्मा ने जन्म ले लिया था तो फिर अपने आपको उसने अपने पति के सामने प्रकट किया? पूर्व शरीर तो नष्ट हो चुका था। वह नवीन देह धारण कर चुकी थी। तो बाबा ने बतलाया कि जैसे जीवात्मा की पूर्व जन्म-संबंधी स्मृति बनी रहती है, उसी प्रकार उसे अपने पूर्व शरीर के आकार-प्रकार और रूप-रंग का भी ज्ञान बना रहता है, पुनर्जन्म के कुछ समय बाद तक। अपने पूर्व संस्कार, गुण, कर्म आदि की स्मृतियों के साथ अपने पूर्व पार्थिव शरीर के ज्ञान को सम्मिलित कर, अपने भौतिक शरीर का निर्माण कुछ समय के लिए वे कर लेती हैं। इसमें आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ इस तथ्य को भी समझ लेना चाहिए कि आकाश यानी 'ईथर' में जैसे शब्द के कम्पन कुछ समय तक बने रहते हैं, वैसे ही 'रूप' के भी आकार वहाँ बने रहते हैं दीर्घ काल तक। जिसकी आत्मा जितनी प्रखर और शक्तिशालिनी होती है उसके पार्थिव शरीर के रूप का आकार-प्रकार भी उसी के अनुसार दीर्घ काल पर्यन्त 'ईथर' में बना रहता है। ऐसी आत्माएँ यदि कहीं जन्म भी ले चुकी हैं, तो आवश्यकता पड़ने पर वे इस प्रकार अपने पूर्व शरीर के द्वारा कहीं भी प्रकट हो सकती हैं।

यह हम स्वीकार करते हैं कि विज्ञान ग्रहों और नक्षत्रों पर अपना आधिपत्य जमा रहा है। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि वह अभी तक आत्मा के बारे में कोई ऐसा तथ्य खोज नहीं पाया है जिसका सिद्धान्त प्रकट कर वह आत्मा की अमरता और उसके भूत-भविष्य के बारे में सर्व सुलभ मार्ग का दर्शन करा सके। वैसे हमारे देश के मनीषी इस विषय पर काफी कुछ लिख गए हैं, किन्तु उनका इस युग में वैज्ञानिकीकरण आवश्यक है। जीवात्मा के पुनरागमन से संबंधित विवरण तो वैज्ञानिक तथ्यों के इतना निकट है कि हमें अपने मनीषियों के प्रति श्रद्धानत हो जाना पड़ता है। प्रत्येक मानव शरीर का निर्माण पंच भौतिक तत्वों से होता है। किन्तु किस तत्व का कितना अंश शरीर में होता है और किस रूप में रहता है इसकी जानकारी के पीछे आज के वैज्ञानिक पड़े हैं। चिकित्सा-विज्ञान का यह गूढ़ और स्थूल विषय है।

बाबा ने बतलाया कि जीव जब मरता है, तब उसका शरीर शीतल हो जाता है। यानी अग्नि तत्व निकल जाता है। उसके बाद वायु की जो नलिकाएँ हैं, वे धीरे-धीरे बन्द होने लगती है। इसे ही श्वास की गति का बन्द होना कहते हैं। जब तक शरीर की नलिका में वायु शेष रहती है तब तक मनुष्य को मरा हुआ घोषित नहीं किया जा सकता। अंगों में किसी-न-किसी रूप में संचालन क्रिया अवश्य होती रहती है। यह वायु ही अन्तिम तत्व है, जो अन्त में शरीर के बाहर निकलता है।

मनुष्य के शरीर से मरते समय निकली हुई वायु विचरण करती, कहाँ से कहाँ पहुँच रही है इसका क्या ठिकाना? कभी-कभी वह वायु अपने स्थूल रूप में श्वास के द्वारा किसी अन्य जीवित व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाती है। यदि वह व्यक्ति प्रजनन क्रिया

में लीन हैं, तो उसके योग से जो स्त्री गर्भ धारण करती हैं उसके गर्भ में उस मृतक की आत्मा का आविर्भाव हो जाता है। वैसे यह एक दुर्लभ संयोग है। ऐसे संयोग हमेशा नहीं होते हैं, पर होते अवश्य हैं और जब कभी इस तरह के दुर्लभ योग-नियोग से कोई आत्मा इस संसार में आती है, तो वह अपनी पिछली जन्म कथा बयान कर लोगों को आश्चर्य में डाल देती है।

मौत के बाद भी जिन्दगी है

'१६४२ ई. की बात है। दूसरा महायुद्ध जोरों पर था। जापानी बम-वर्षक विमान कलकत्ता तक बम वर्षा कर रहे थे। ब्रिटिश साम्राज्य सिमट रहा था और जापान तीव्र गति से एशियाई देशों को हड़प रहा था। अब भारत को जापानियों का मुकाबला करना पड़ रहा था। ब्रिटिश सेनाओं में खलबली मची हुई थी। भारत के राजनैतिक दल स्वतंत्रता का नारा लगा रहे थे। ब्रिटिश सरकार चिन्तित थी। 'सिक्योरिटी' और 'सी. आई. डी.' का जाल बिछा था।'

'मैं उन दिनों कलकत्ता में रहता था। मेरे एक सहपाठी रंगून विश्वविद्यालय में विज्ञान के प्राध्यापक थे। नाम था शशि भूषण चक्रवर्ती। मुझसे उनकी काफी पटती थी। निश्छल स्वभाव के कारण मनकी सारी बातें बतला दिया करते थे मुझको। उस दिन सबेरे से वर्षा हो रही थी, इसीलिए कहीं बाहर न जाकर मैं अपने कमरे में बैठा काव्यतीर्थ परीक्षा की तैयारी कर रहा था। जिस मकान में रहता था वह बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय पं० ताराचन्द्र दर्शन केशरी का था। दूसरे कमरे में बैठे वे भी किसी शास्त्र-चिन्ता में डूबे हुए थे उस समय। अचानक उसी समय मेरे कमरे का बन्द दरवाजा खट् से खुला। चौंक कर मैंने देखा, दरवाजे के पास शशि भूषण महाशय खड़े थे। आश्चर्य से मैने पूछा--'अरे आप? कब आये रंगून से?'

सामने कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा--'अभी-अभी प्लेन से चला आ रहा हूँ। आपसे कुछ महत्वपूर्ण बातें करनी हैं।'

'अरे भाई! पहले चाय-वाय तो आप पी लें, फिर इत्मीनान से बातें होंगी, जल्दी क्या है....।'

'शशिभूषण महाशय थोड़ा व्यग्र होकर बोले, नहीं! शर्मा जी! मेरे पास समय बहुत कम है। मुझे तुरन्त वापस लौटना है। इसके अलावा मेरी शारीरिक स्थिति भी शोचनीय है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनिए।'

'ध्यान से देखा मैंने, सचमुच शशिभूषण का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था। सारा शरीर काँप रहा था। आँखों में भी चिन्ता और आतंक की मिली-जुली छाया थी।'

मैंने कहा--'ठीक है। कहिए क्या बात है!'

शशिभूषण ने एक बार पूरे कमरे में आँखें घुमाकर देखा और फिर कोट की भीतरी जेब से सौ-सौ के नोटों के दस हजार रुपए का एक बण्डल निकाल कर मेरे सामने टेबल

पर रख दिया। फिर थोड़ा गम्भीर होकर बोले--'समय नहीं है, इसीलिए घर नहीं जा सकूँगा। आप तो जानते ही हैं कि माँ ने मेरी पढ़ाई-लिखाई के खर्च के लिए मकान गिरवी रख दिया था। ये रुपए माँ तक पहुँचाना है आपको। और उनसे कहना है कि जमीन्दार को रुपए देकर तुरन्त मकान छुड़ा लें।' फिर दोनों हाथों से अपने रक्तहीन चेहरे को रगड़ते हुए बोले, 'हाँ, मेरी पत्नी से कह दीजिएगा कि विज्ञान पर लिखी हुई मेरी पुस्तक छापने के लिए ज्योति बाबू तैयार हैं। पुस्तक की पाण्डुलिपि उन्हें दे देंगी और उसका जो रुपया मिले, उससे अपनी एम. ए. की पढ़ाई पूरी कर लेंगी वह।'

'इतना कहकर शशिभूषण तुरन्त कुर्सी से उठे और नमस्कार करके कमरे से बाहर निकल गए। मैं हत्प्रभ सा उनको जाता देखता रह गया।'

'शशिभूषण चक्रवर्ती का मकान चौबीस परगना में था। कई बार उनके मकान पर जा चुका था। उसके परिवार से भी परिचित था मैं, इसीलिए किसी प्रकार की परेशानी नहीं थी मुझे। दूसरे दिन ही मैं रवाना हो गया रुपया देने के लिए। मगर उस समय मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब मैंने सुना कि शशि भूषण की रंगून से आते समय दो दिन पहले मृत्यु हो चुकी है। जिस प्लेन से वह कलकत्ता आ रहे थे, उसे जापानी बम-वर्षक विमान ने ध्वस्त कर दिया था। जब मैं उनके मकान पर पहुँचा, उस समय लोग शशिभूषण का क्षत-विक्षत् शव अन्तिम संस्कार के लिए ले जा रहे थे। आप ही सोचिए, उस समय मेरी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी?'

बतलाने से होता ही क्या? भला कौन विश्वास करता मेरी बात पर? मैं चुपचाप रुपए देकर वापस लौट आया। हाँ! ज्योति बाबू से अवश्य चर्चा की। पहले उनको भी विश्वास नहीं हुआ था लेकिन जब उनको रुपए और पाण्डुलिपि की बात बतलाई, तब विश्वास हो गया कि निश्चय ही शशिभूषण की प्रेतात्मा आकर मुझसे मिली थी। इसी घटना ने मुझे 'प्रेत विद्या' के रहस्यमय अन्तराल में प्रवेश करने की प्रेरणा दी। सर्वप्रथम मेरे मानस में जो प्रश्न उभरा वह यह था कि क्या मृत्यु के बाद भी जीवन है? और इस रहस्यमय जटिल प्रश्न के उत्तर की खोज में मैं उसी क्षण से जुट गया। उस समय कलकत्ता में एक अंग्रेज महिला 'स्टेले राबर्ट्स' रहती थीं। उन्होंने प्रेत-विद्या का गम्भीर अध्ययन किया था। इतना ही नहीं, वे स्वयं माध्यम थीं प्रेतात्माओं का। प्रेतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने तथा उनसे वार्तालाप करने की कोई कला उनमें नहीं थी। अध्ययन काल में वह अपने आप प्रेतात्माओं का माध्यम बन गई थीं। इसके लिए उन्हें अपनी ओर से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता था। जब मैंने शशिभूषण की घटना सुनाने के बाद जिज्ञासा प्रकट की तो इस दिशा में वह मेरी सहायता करने के लिए तुरन्त तैयार हो गईं। सन् १९५० ई. तक मैंने 'स्टेले राबर्ट्स' के निर्देशन में प्रेत विद्या पर खोज और शोध-कार्य किया। भारत स्वतंत्र हो जाने के बाद जब वे स्वदेश लौटने लगीं तो उन्होंने मुझे एक ऐसी पुस्तक की पाण्डुलिपि दी जिसमें पृथ्वी पर विचरण करने वाली प्रेतात्माओं के

अतिरिक्त सूक्ष्म जगत में निवास करने वाली अन्य शक्ति-सम्पन्न आत्माओं से भी सम्पर्क स्थापित करने की अनेक विद्याओं का सविस्तार वर्णन था।

मैंने स्वयं प्रयास कर किसी प्रकार की भूत-प्रेत सिद्धि नहीं की है बल्कि जब मैं अन्वेषण काल में सत्यानुभूति की दिशा में भटक रहा था तब अपने आप अनेक सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं ने मुझे अपना शुभचिन्तक समझ लिया और मेरे अस्तित्व से अपना स्थायी संबंध स्थापित कर लिया।' और इस समय वर्तमान काल में बहुत सी आत्माएँ मेरे संपर्क में हैं।

यदि मैं चाहूँ तो उनसे बहुत कुछ सहायता प्राप्त कर सकता हूँ। वे हमेशा इसके लिए तत्पर भी रहती हैं। मगर मैं ही नहीं चाहता क्योंकि एक बार इनके चक्कर में पड़ गया तो समझिए फिर छुटकारा पाना सम्भव नहीं।' इसी प्रकार की एक आत्मा हैं--पीर कमाल साहब।

'अपने समय के बहुत बड़े औलिया फकीर थे कमाल साहब। हर बात में उन्हें कमाल हासिल था। दो सौ वर्ष पहले बनारस में ही उन्होंने समाधि ग्रहण की थी। पास में ही उनकी मजार है। जब कभी मुझे कोई परेशानी होती है तो उनके मजार पर जा कर बैठ जाता हूँ। इससे बड़ी शान्ति मिलती है।'

'पृथ्वी पर मुख्य रूप से दो प्रकार की सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएँ हैं--पहली वे जो कभी मनुष्य रहती हैं। ऐसी आत्माएँ वासना का वेग और शुभाशुभ कर्मों के क्षीण होने के बाद पुन: मनुष्य योनि में लौट आती हैं। इसी श्रेणी में कुछ आत्माएँ ऐसी भी होती हैं- जो अनन्त काल तक सूक्ष्म शरीर में निवास करती हैं, मगर वे बराबर अगोचर रूप से जीवित मनुष्यों से सम्पर्क बनाए रखती हैं। काफी समय बीतने के बाद ऐसी आत्माएँ अवसर पाकर संस्कार के अनुसार मानव-शरीर ग्रहण कर लेती हैं या फिर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल कर किसी अन्य लोक में चली जाती हैं।'

दूसरे प्रकार की आत्मा वे होती हैं जो कभी भी भूलोक का प्राणी नहीं रही होतीं। वे किसी अन्य लोक से पृथ्वी पर भ्रमण करने के लिए आ जाती हैं कभी-कदा। इनमें दैवी और आसुरी-दोनों प्रकृतियों की आत्माएँ होती हैं। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, परियाँ, देवता आदि इसी श्रेणी की आत्माएँ होती हैं।

मेरे मानस में जब पहली बार मरणोत्तर जीवन के विषय में प्रश्न उभरा तो उसके समाधान के लिए 'स्टेले राबर्ट्स' ने तत्काल मरे हुए एक व्यक्ति की प्रेतात्मा से मेरा सम्पर्क कराया था। 'सेन्ट्रल एवेन्यू' में रहने वाले एक धनी परिवार के एक प्रौढ़ सदस्य मुमुर्षू अवस्था में थे। राबर्ट्स का उस परिवार से घनिष्ठ परिचय था, इसीलिए किसी बात की रुकावट नहीं थी। उस व्यक्ति का नाम था रोशन लाल। वह कैन्सर का रोगी था। राबर्ट्स के साथ मैं उसकी चारपाई के करीब खड़ा था। करीब एक घण्टे के बाद मैंने

देखा कि उसकी साँस की गति मन्द पड़ती जा रही है और उसके साथ ही उसके पार्थिव शरीर के आकार-प्रकार का कुहरे जैसा एक दूसरा शरीर निर्मित हो रहा है। मृत्यु के बाद वह शरीर अपने स्थान पर एक बार जोर से काँपा और फिर शव के चारों तरफ चक्कर काटने लगा। राबर्ट्स ने बतलाया कि यह रोशन लाल का सूक्ष्म शरीर है जो पुन: स्थूल शरीर में प्रवेश करने की कोशिश कर रहा है, मगर अब यह असम्भव है, क्योंकि प्राणवाहिनी नाड़ियों का मार्ग बन्द हो चुका है। सूक्ष्म शरीर कब तक शव के आस-पास रहेगा-यह पूछने पर राबर्ट्स ने बतलाया कि जब तक शव का दाह-संस्कार नहीं हो जाएगा। शव के नष्ट हो जाने पर शरीर के प्रति जो मोह होता है, वह समाप्त हो जाता है। लगभग चार-पाँच घंटे बाद जब शव-दाह हो गया तब राबर्ट्स ने मेरा सम्पर्क रोशनलाल की प्रेतात्मा से करा दिया। तत्काल मरे हुए व्यक्ति का सबसे पहला विचार यही होता है कि वह शोक-सन्तप्त परिवार को यह जानकारी दे कि रोने-धोने की आवश्यकता नहीं। उसका जीवन अब भी बना हुआ है। दूसरा विचार यह होता है कि संसार में छूटे अपूर्ण कार्य को कैसे देखा जाए! रोशन लाल की प्रेतात्मा के सम्पर्क में आकर तत्काल मैंने इन दोनों महत्वपूर्ण बातों की जानकारी प्राप्त की और यह भी जाना कि भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने के बाद व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए सांसारिक चिन्ताएँ और इच्छाएँ भी मृतात्मा के साथ-साथ ही रहती हैं। रोशन लाल की मृतात्मा से जब मैंने पूछा कि आप कैसा अनुभव कर रहे हैं, तो उसने कहा कि 'जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ। हाँ! रोग की पीड़ा समाप्त हो गई है क्योंकि रोग तो पार्थिव शरीर में था, शरीर नष्ट होने पर रोग और उसकी यातना भी समाप्त हो गई।' यदि अशरीरी आत्मा सूक्ष्म आयाम में चली गई है तो इसका मतलब यह नहीं कि वह भौतिक जगत के अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से भुला दे। इसका ज्वलंत उदाहरण शशिभूषण की घटना है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि जब वह पार्थिव शरीर में थी तब उस व्यक्ति विशेष का साधारण रूप से अपनी जिम्मेदारियों के प्रति क्या दृष्टिकोण था? इसी दृष्टिकोण के आधार पर आत्मजगत में इसका विभिन्न स्वरूप रहता है। एक चोर मरने के बाद ईमानदार नहीं बन जाता। एक मूर्ख विद्वान नहीं बन जाता। ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो मरते हुए व्यक्ति के संस्कार, विचार और भाव को बदल दे। न ही दूसरे आयाम में पहुँची हुई नवीनतम आत्मा किसी अन्य रूप में बदल सकती है।

'अगर एक व्यक्ति एकाएक मर जाता है और वह संसार के वातावरण में ठहरे बगैर प्रेतात्मा बन जाता है, तो वह अपने साथ अपनी सभी अनसुलझी समस्याओं को भी ले जाता है। कौन-सी बड़ी समस्या है और कौन-सी छोटी, यह मृतक के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। जो समस्या एक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है वही दूसरे की निगाह में अत्यन्त साधारण हो सकती है। मृतात्माएँ जब तक अपनी समस्याओं को हल नहीं कर लेतीं तब तक जीवित प्राणी के समान बेचैन और चिन्तित रहती हैं। समस्याओं के हल के लिए वे संबंधित प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करना चाहती हैं। उनके मस्तिष्क में

अपने विचार संप्रेषित करना चाहती हैं। स्वप्न में भी प्रकट होकर समस्याओं को हल करने के लिए अनुरोध करती रहती हैं। यदि किसी जीवित प्राणी ने उनकी समस्या को हल कर दिया तो वे अदृश्य रूप से उसकी काफी सहायता करती हैं। यहाँ फिर शशिभूषण का प्रसंग आता है। उसकी मृतात्मा ने मुझे एक बार मृत्यु के मुँह से बचा लिया था। मैं पंजाबमेल से कलकत्ता जाने के लिए स्टेशन पहुँचा। ट्रेन आने के दस मिनट बाद उसने मुझे संकेत से बताया कि पंजाबमेल डुमराँव के समीप दुर्घटनाग्रस्त होने वाली है, अत: मैं यात्रा न करूँ। बात सच निकली। यदि यात्रा की होती तो आज आपको यह कथा सुनाने के लिए मैं जीवित न होता।'

'हिन्दू मृतात्माओं और मुसलमान मृतात्माओं (जिन्न) में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर हैं। मुसलमान पुनर्जन्म का सिद्धान्त नहीं मानते और उनके शव जमीन में दफनाए जाते हैं। यही दोनों बातें अन्तर पैदा कर देती हैं। पीर-पैगम्बरों, औलिया-फकीरों आदि की आत्माएँ पुनर्जन्मवाद को स्वीकार न करने के कारण अनन्त काल तक सूक्ष्म शरीर में रहती हैं। यदि उनका 'मजार' है तो, वे अपने मजार में निवास करती हैं अथवा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि में विचरण किया करती हैं। खजूर का पेड़ उनके विश्राम का केन्द्र होता है। जुम्मेरात को मजार पर जलने वाले चिराग की रोशनी ही वे देख पाते हैं। इत्र, सफेद फूलों की माला और खोए की बरफी से वे काफी प्रसन्न होते हैं।'

पीर-पैगम्बरों तथा औलिया-फकीरों से संबंध स्थापित करने तथा उनसे सहायता प्राप्त करने के लिए 'चौकी' बनाने का नियम है। हिन्दू संस्कृति और साधना में इसी को 'पीठ' कहते हैं। चौकी अथवा पीठ का मतलब है-सभी प्रकार की सूक्ष्म शक्तियों का भू-केन्द्र। इसका अपना विज्ञान है। जो लोग इसके विज्ञान से परिचित हैं, वे पीठ का निर्माण कर सूक्ष्म शक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर तरह-तरह के लौकिक-अलौकिक लाभ उठाते हैं। मुझे राबर्ट्स ने जो बहुमूल्य हस्तलिखित पुस्तक दी थी उसमें प्रसिद्ध पीर-पैगम्बरों और औलिया-फकीरों की 'चौकी' बनाने की बहुत सारी रहस्यमय विधियाँ दी गईं थी। पुस्तक पढ़ने के बाद मरणोत्तर जीवन के रहस्यों को जानने-समझने का नशा और भी गहरा हो गया। यदि उस समय मैं यह जानता कि मेरी यह लालसा मेरे सामने ऐसे तिमिराच्छन्न सत्यों को उद्घाटित कर देगी, जिससे मेरा भौतिक जीवन हमेशा के लिए पूर्णतया अशान्त हो जाएगा, तो मैं कदापि इस चक्कर में न पड़ता। खैर एक दिन मैंने चौकी बनाकर सूक्ष्म शरीरधारी और चौथे आसमान में रहने वाले पीरों की आत्माओं से संबंध स्थापित करने का निश्चय कर ही लिया।

निश्चय ही वह मेरे जीवन का संक्रान्तिकाल था। अनजाने में मैं ऐसे पथ का पथिक हो गया, जो चौथे आयाम वाले संसार की ओर जाता है और जिस पर चलने वाले व्यक्ति के सामने जीवन और जगत के तमाम रहस्य एक-एक कर खुलते जाते हैं। ग्यारह बृहस्पति और शुक्रवार में चौकी सिद्ध होती है और चौथे आसमान के पीरों की आत्माओं से सम्पर्क स्थापित होता है। रमजान महीने के पहले बृहस्पतिवार की रात में निर्देशित

विधि के अनुसार मैंने कमरे के फर्श पर चावल की कूड़ी बनाई। उस पर चमेली के तेल के पाँच दीप जलाए। पाँच सफेद फूलों की माला, इत्र का फाहा, पंचमेल मिठाई, पाँच बीड़ा पान और लौंग रखा। उसके बाद बन्दिश कर मैं मंत्र का जप करने लगा। दूसरे दिन शुक्रवार की रात में भी कब्रिस्तान में बैठ कर एकान्त में जप करना था। उसे भी किया मैंने। चार बृहस्पति और शुक्रवार को कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। मगर पाँचवें शुक्रवार को रात में जब मैं जप करने के लिये कब्रिस्तान में पहुँचा तो देखा कि एक सिरे पर खूब प्रकाश हो रहा था। एक खास कब्र के नजदीक एक तख्त लगा था, जिस पर लाल मखमल की चादर बिछी हुई थी। थोड़ी देर बाद एक ओर से धीरे-धीरे पग उठाता हुआ एक व्यक्ति तख्त के करीब आया और उस पर बैठ गया। वह कीमती सिल्क का कुर्ता-पाजामा पहने हुए था। सिर पर सफेद गोल टोपी थी। शरीर का रंग बर्फ की तरह बिल्कुल सफेद था। गले में मोतियों की माला झूल रही थी। बायें हाथ की कलाई में मोगरे के फूल का गजरा लपेटे हुए था वह। देखने में बिल्कुल युवक लग रहा था। नाक नुकीली और आँखें बड़ी-बड़ी थीं। चेहरा आकर्षक और सुन्दर था।

मैं अपनी उपस्थिति की जानकारी उस व्यक्ति को नहीं देना चाहता था अत: हमेशा की तरह चुपचाप अपनी जगह बैठ कर जप करने लगा, मगर मेरी नजर उस व्यक्ति पर ही जमी रही। टन्-टन् करके रात के बारह बजे। कब्रिस्तान के वातावरण में उस समय भयंकर निस्तब्धता छायी हुई थी। चारों ओर सायँ-सायँ हो रहा था। सहसा मैंने देखा कि कब्रिस्तान में जितनी कब्रें थी, उनके भीतर से एक-एक व्यक्ति निकल कर उस ओर बढ़ रहा है जहाँ तख्त पर आँखें बन्द किये शान्त-निर्विकार वह व्यक्ति बैठा था। इस प्रकार कब्र से निकलकर जाते हुए व्यक्तियों को देख कर एकबारगी सारे शरीर में सिहरन दौड़ गई और मैं भयभीत हो उठा। तख्त के सामने जमीन पर सफेद चादर बिछी थी, उसी पर चारों तरफ वे लोग बैठ गए। ऐसा लगा मानो कोई सभा होने वाली हो। अगले चार शुक्रवार को बराबर यह दृश्य कब्रिस्तान में देखा मैंने। दसवें शुक्रवार को जब मैं कब्रिस्तान में पहुँचा तो वहाँ कव्वालियाँ हो रही थीं। मैं समझ चुका था कि यह सब जिन्नों की लीला है जो प्राय: 'चौकी' की साधना करने वाले को दिखलाई पड़ती है। खैर उस रात भी मैं अपने स्थान पर बैठकर जप करने लगा।

फिर आया अन्तिम गुरुवार। साँझ के समय हमेशा की तरह कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर पूजा आदि करने के बाद जप करने लगा मैं। उस रात मुझे कुछ विचित्र अनुभूति हुई। जब मैं आधा जप कर चुका तो अचानक मेरा सारा शरीर भारी होने लगा। सिर घूमने लगा। आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। ऐसा लगा मानो किसी भी क्षण चेतना लुप्त हो जाएगी मेरी। पर अपने मनोबल से अपने आपको चेतना-शून्य नहीं होने दे रहा था। दृढ़ संकल्प कर लिया था कि जो भी परिस्थिति सामने आएगी, उसका सामना करूँगा, मगर यह मेरा भ्रम था। थोड़ी देर बाद देखा कि चावल की कूड़ी के समीप रखे

सारे सामान अचानक गायब हो गए और दीपकों का प्रकाश भी मन्द हो गया। इसके साथ ही मेरा शरीर भी हल्का हो गया एकबारगी। अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि देखा-चाँदी की थालियों में अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ, कीमती दुशाले, रेशमी कपड़े और अशर्फियाँ रखी हुई हैं मेरे सामने। मगर मैंने ध्यान नहीं दिया उन वस्तुओं की ओर। उँगलियों में फँसी माला के दाने निरन्तर घूमते रहे। लगभग आधा घण्टा बाद एकाएक फटाक् से कमरे का बन्द दरवाजा अपने आप खुल गया। हवा का एक तेज झोंका आया। दीपकों की मद्धिम लौ एक बार सिहर कर थम गयी। प्रकाश का दायरा फिर कसमसाया। जप करते-करते मेरी नजर दरवाजे की ओर घूम गई। हे भगवान! कब्रिस्तान में तख्त पर बैठा हुआ दिखाई देने वाला व्यक्ति सामने ही खड़ा मेरी ओर घूर रहा था। विचित्र-सा सम्मोहन था उसकी बड़ी-बड़ी स्थिर आँखों में। काफी प्रयत्न करने के बावजूद मैं उसकी ओर से नजर न हटा सका। तभी उस व्यक्ति की खनकती हुई गम्भीर आवाज सुनाई पड़ी-- आपने मुझे क्यों बुलाया है? क्या काम है मुझसे?'

'उसने इस ढंग से प्रश्न किया कि मैं एकबारगी सकपका गया। किसी प्रकार साहस बटोर कर हकलाते हुए मैंने पूछा, 'आप कौन हैं?'

यह भी बतलाने की जरूरत पड़ेगी आपको? इतना कह कर एक बार वह मुस्कराया, फिर बोला--'मैं पीर कमाल हूँ। रूहानी दुनिया से आया हूँ। बोलो, क्या चाहते हो? तुम्हारी वजह से मेरी दुनिया में हलचल मच गई है। जल्दी बोलो।'

मैं पीर कमाल साहब की मजार से परिचित था, मगर कभी स्वयं कमाल साहब इस प्रकार मेरे सामने आकर खड़े हो जाएँगे और इस प्रकार प्रश्न करेंगे, यह स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी मैंने। भय, विस्मय और संशय से मेरा बुरा हाल हो रहा था। छाती के भीतर कुछ खाली सा प्रतीत हुआ। अवश चित्त से बोला--'बस! आपकी मेहरबानी चाहिए मुझे! आपकी रूहानी दुनिया की जानकारी हासिल करने के लिए ही मैंने यह सब किया है।'

अभी मैं इतना ही बोल पाया था कि एकाएक कमरे में एक वैसी ही विचित्र सुगन्ध बिखर गई, वह सुगन्ध इतनी तीव्र थी कि मैं दूसरे ही क्षण चेतना-शून्य हो गया।

''एक प्रकार से इस कहानी को यहीं समाप्त हो जाना चाहिए, मगर नहीं, अभी तो मुझे रूहानी दुनिया की यात्रा करनी थी। जब मेरी चेतना वापस लौटी तो मैंने अपने आपको सर्वथा विपरीत परिस्थिति में पाया। सबसे पहले मेरी नजर फ़र्श पर लुढ़के अपने पार्थिव शरीर पर पड़ी। क्या मैं मर चुका हूँ? अचानक मेरे मन में यह प्रश्न उभरा, तभी किसी का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा--'नहीं मरे नहीं हैं। सिर्फ कुछ वक्त के लिए आपका जिस्मानी दुनिया से संबंध टूट गया है। अब आप रूहानी जिस्म में रूहानी दुनिया में हैं।' पलट कर देखा तो कमाल साहब सामने खड़े मुस्करा रहे थे। फिर मैं उनके साथ चल

पड़ा। उस समय बड़ा विचित्र अनुभव हो रहा था मुझे। पार्थिव जगत का कुछ दूसरा ही रूप था मेरे सामने। निश्चय ही अणु निर्मित इस स्थूल जगत के भीतर परमाणु निर्मित सूक्ष्म जगत का अनुभव कर रहा था मैं।

'मैं जीवित प्राणियों के बीच से गुजर जाता था, मगर वे मेरे अस्तित्व का अनुभव नहीं कर पाते थे। उनके स्थूल पार्थिव शरीर को तो मैं भी नहीं देख पाता था, मगर उसके जैसा ही सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व अवश्य अनुभव करता था। फिल्म के नेगेटिव जैसा ही दिखलाई पड़ता था सूक्ष्म शरीर! सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन, व्यक्तित्व और आन्तरिक भावों एवं विचारों का एक साथ और एक ही बार में मुझे अनुभव हो जाता था। रूहानी दुनिया में सबसे बड़ी बात मैंने यह देखी कि जीवित और मृत व्यक्तियों में कोई अन्तर नहीं है। जो लोग मर चुके हैं उन्हें भी मैंने जीवित व्यक्तियों की तरह लोक-व्यापार करते हुए देखा। यह सोचना गलत है कि धरती के शरीर को छोड़ने के बाद वे बेकार हो जाते हैं। उनमें सभी आदतें और बातें उसी प्रकार शेष रहती हैं, जैसे धरती पर थीं। अन्तर सिर्फ इतना होता है कि वे अपने धरती के शरीर को छोड़ कर एक नया शरीर धारण कर लेते हैं।'

सात्विक विचारों वाले मृत लोगों के शरीर का रंग बिल्कुल बर्फ की तरह सफेद और राजसी व तामसिक विचार वालों के शरीर का रंग लाल और स्याह देखा मैंने।

'मैंने एक और विचित्र बात का अनुभव किया। वह यह कि मैं जब और जहाँ जाने की इच्छा करता, तुरन्त वहाँ पहुँच जाता था। निश्चय ही मेरी इच्छा-शक्ति बढ़ गई थी। श्मशानों, कब्रिस्तानों और मरते हुए लोगों के निकट मृतात्माओं की अधिक भीड़ देखी मैंने। इसके अलावा उन्हें अपने विचारों-भावनाओं को जीवित लोगों के मस्तिष्क में संप्रेषित करते हुए भी देखा।'

उस अवस्था में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना घटी जिसे मैं कभी भी न भूल सकूँगा। न जाने कब, किस क्षण मैं एक ऐसे इलाके में पहुँच गया, जो बिल्कुल सुनसान था। मुझे जाना-पहचाना सा लगा वह इलाका। एक ओर काफी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे और दूसरी ओर मनोरम घाटी थी, जिसके बीच से एक नदी बह रही थी। उसका पानी बड़ा निर्मल और दूध जैसा सफेद था। थोड़ी दूर पर उसी नदी के किनारे एक पुराना मगर आलीशान महल था। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उधर ही बढ़ने लगा। वह महल मुगलकालीन शिल्पकला का अद्‌भुत नमुना था। ऐसा लगा मानो कोई अज्ञात शक्ति खींच रही है उस महल की ओर। और जब मैं उसके भीतर पहुँचा तो उस म्लान निस्तब्ध महल में विचित्र अनुभूति हुई मुझे। सहसा मेरे कानों में एक विचित्र आवाज सुनाई दी। ऐसा लगा मानो कोई मरता हुआ व्यक्ति कराह रहा हो। फिर अकस्मात आवाजें आनी बन्द हो गई और वातावरण में भयानक नीरवता छा गई। सहसा उस निस्तब्धता को भेदती हुई एक

चीख उठी और बड़े मर्मभेदी विलाप के स्वर में बदल गई। विलाप बन्द हो गया और उसकी जगह किसी के जोर-जोर से साँस लेने का अनुभव हुआ। थोड़ी देर बाद फिर मर्मभेदी विलाप का स्वर गूँजने लगा पूरे महल में। ऐसा लगा मानो कोई नारी काफी लम्बे अर्से से महल में सिसक रही हो, विलाप कर रही हो और अपने आपको मुक्त करने के लिए प्रयास कर रही हो। मगर वह इस महल में है कहाँ? दालान में खड़ा मैं सोच ही रहा था कि मेरी नजर सामने वाले एक बहुत बड़े फाटकनुमा दरवाजे की ओर घूम गई। देखा तो कई लोग धीरे-धीरे कदम उठाते हुए भीतर आ रहे थे। उनकी वेष-भूषा मुगलकालीन सैनिकों जैसी थी। वे सब एक बन्द कमरे के सामने खड़े हो गए। उसमें ताला लगा होने के कारण मैं उस कमरे में झाँक कर न देख सका था। एक व्यक्ति ने आगे बढ़ कर ताला खोला और फिर दरवाजा। खुलते ही सब एक साथ कमरे के भीतर चले गए और थोड़ी देर बाद निकले तो उनके साथ एक युवती थी। उसके आकर्षक चेहरे पर वेदना, व्यथा और करुणा के भाव स्पष्ट थे। उसकी स्वप्निल आँखें आँसू से गीली थीं। वह लगातार सिसक रही थी। बिल्कुल नंगी थी वह। यौवन से भरपूर गोरे शरीर पर जगह-जगह चोट के निशान थे। उसने कातर दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे ऐसा लगा मानो मूक भाषा में उसकी कातर आँखें कुछ कह रही हैं। अभी मैं परिस्थिति समझने की कोशिश ही कर रहा था कि सहसा वह युवती दौड़ कर मेरे पैरों से लिपट गई। और करुण स्वर में रोती हुई कहने लगी-'मैं पिछले तीन सौ वर्षों से यातना भोग रही हूँ। अब नहीं सहा जाता मुझसे। इन लोगों ने मुझे कैद कर रखा है यहाँ। मुझे छुड़ा लो इनके चंगुल से। कभी भी एहसान न भूलूँगी मैं आपका।'

'मैं भौंचक्का रह गया। यह युवती कौन है? और इन लोगों ने उसे क्यों कैद कर रखा है? माजरा क्या है? जब वह मेरे पैरों से लिपटी यह सब कह रही थी उस समय सैनिक से दीखने वाले वे लोग सिर झुकाए एक ओर चुपचाप खड़े थे। मैंने दोनों हाथों से पकड़ कर युवती को उठाया और कहा--'घबराओ नहीं! तुम्हारा नाम क्या है और यहाँ क्यों कैद हो?'

युवती ने कातर दृष्टि से देखते हुए रुँधे कण्ठ से कहा, 'मेरा नाम मेहरुन्निसा है। मैं पीर कमाल साहब की बेटी हूँ। एक हिन्दू युवक से मैं मुहब्बत करती थी। वह युवक भी मुझसे प्यार करता था। हम दोनों शादी करना चाहते थे मगर मेरा चचेरा भाई जमाल यह नहीं चाहता था। उसकी नियत खराब थी। वह मुझे अपने आगोश में देखना चाहता था। आखिर मैं और वह युवक शादी के इरादे से भाग कर बनारस चले गए और वहीं एक दिन हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार शादी कर ली हम दोनों ने। जब जमाल को पता चला तो वह भी चुपचाप बनारस पहुँच गया। एक दिन मौका पाकर उसने मेरे पति की हत्या कर दी और मुझे जबर्दस्ती उठा लाया। तब भी मैं उसकी बीवी बनने को नहीं तैयार हुई। आखिर एक दिन मेरी बेबसी का नाजायज फायदा उठा कर उसने जबर्दस्ती मेरे साथ मुँह

काला कर लिया। वह मुगल सेना में ऊँचे ओहदे पर था अतः जो चाहता, वह कर सकता था। बाद में मुझे अपने इसी महल में कैद कर लिया उसने।'

मैंने पूछा, 'मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?'

गला साफ करके वह युवती कातर स्वर में बोली, 'आप मेरे लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। आप हिन्दू हैं! ये मुसलमान सिपाही, जो जमाल के आदमी हैं आपके करीब नहीं आ सकते हैं। आप इनके चंगुल से मुझे छुड़ा कर इस इलाके के बाहर ले चल सकें तो आपकी मेहरबानी होगी। जिन्दगी भर आपका एहसान न भूलूँगी मैं।'

मैंने एक बार सिपाहियों की ओर देखा, जो पत्थर की बुत की तरह खड़े मेरी ओर घृणा भरी दृष्टि से देख रहे थे, फिर मेहरुन्निसा की कलाई पकड़ी और एक झटके से महल के बाहर निकल आया फिर उस सुनसान घाटी को पार करके न जाने कैसे मैं अपने कमरे में पहुँच गया। देखा तो पीर कमाल साहब वहीं खड़े मुस्करा रहे थे। मेहरुन्निसा उनके गले से लिपट गई और सिसक-सिसक कर रोने लगी। कमाल साहब की आँखें भी नम हो गई। काफी देर तक वह मेहरुन्निसा की पीठ थपथपाते रहे फिर मेरी ओर देख कर बोले--'आपने उन जालिमों की कैद से मेरी बेटी को छुड़ा कर मुझसे मिला दिया, इसके बदले आप जो चाहें मुझसे माँग सकते हैं?'

मैंने कहा--'मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस जब कभी मैं आपको याद करूँ, उस समय आप आ जाया करें।'

कमाल साहब ने सिर हिला कर कहा, 'बहुत अच्छा!' फिर अपनी बेटी के साथ वह एकाएक गायब हो गए।

जब मेरी चेतना लौटी तो अपने आपको अस्पताल में पाया। सात दिनों से लगातार मैं बेहोश था। लोगों ने मेरी जिन्दगी की आशा छोड़ रखी थी।'

पीर सुलेमान की चौकी

दैवी राज्य से मनुष्य का सम्बन्ध जोड़ने की प्रक्रिया में भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जितने साधनों का आविष्कार हुआ, उनमें 'पीठ' का स्थान सर्वोपरि है। पीठों के निर्माण और उनके द्वारा विभिन्न दैवी शक्तियों के आकर्षण की परम्परा विशेषकर तंत्र के विभिन्न सम्प्रदायों में रही है। अघोर और शाक्त सम्प्रदाय में तो 'पीठ' को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इन दोनों सम्प्रदायों की जितनी भी रहस्यमई साधनाएँ हैं, वे सब 'पीठ पर ही निर्भर हैं।'

'पीठ' का मतलब है 'शक्ति केन्द्र'। स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत का संबंध जोड़ने वाला एक अदृश्य सूत्र। 'पीठ' का एक विज्ञान है। जो लोग पीठ विज्ञान के रहस्यों से परिचित हैं, वही दैवी राज्य से सम्पर्क स्थापित करके फायदा उठा सकते हैं और तांत्रिक साधना में भी सफलता पा सकते हैं।

इस्लाम धर्म और संस्कृति की भी जितनी उपसना-साधना है, वह सब भी 'पीठ' पर ही निर्भर है। उस क्षेत्र में 'पीठ' को 'चौकी' कहते हैं। मगर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तांत्रिक 'पीठ' का बहुत व्यापक, गम्भीर और गूढ़ अर्थ है जबकि 'चौकी' को एक विशेष मानवीय सीमा में बाँधा गया है। सात आसमानों को ध्यान में रखते हुए चौकी को भी सात भागों में बाँटा गया है। हिन्दू धर्म के सात लोक इस्लाम धर्म के सात आसमान हैं। प्रत्येक चौकी एक-एक 'आसमान' से सम्बन्ध रखती है। औलिया की चौकी चौथे आसमान से, फकीरों की चौकी पाँचवें आसमान से और पीरों की चौकी छठें आसमान से संबंध जोड़ती हैं। सातवाँ आसमान पैगम्बर का है। एक, दो और तीन चौकी और उनसे संबंधित आसमान जिन्न-जिन्नातों के हैं।

जिन्न-जिन्नातों की चौकी तो उनकी कब्र ही होती हैं। हिन्दू प्रेतात्माओं की अपेक्षा मुस्लिम प्रेतात्माओं में अधिक शक्ति इसलिए होती है कि इस्लाम ने पुनर्जन्म को दूसरे रूप में स्वीकार किया है। मनुष्य की वासना और उसका संस्कार-ये दोनों चीजें मनुष्य का पीछा कभी नहीं छोड़तीं। मरने के बाद जब शरीर का बंधन टूट जाता है, तब वे संस्कार और तमाम वासनाएँ विराट रूप धारण करके आत्मा को काफी परेशान करती हैं। हिन्दू प्रेतात्माएँ तो उसी के अनुसार कहीं-न कहीं जन्म ले लेती हैं, मगर मुस्लिम प्रेतात्माएँ कयामत की रात की प्रतीक्षा में अनन्त काल तक अपनी वासनाओं और संस्कारों का बोझा ढोती रहती हैं। ऐसी प्रेतात्माओं को रूह कहते हैं।

जिन रूहों में अदम्य वासना, कामना और जिन्दगी के प्रति लालसा भरी रहती है, अथवा जिनकी अकाल मौत हुई है, जो जिन्दगी में महत्वपूर्ण काम अधूरे छोड़ कर मरे हैं, वे जिन्न होते हैं।

साधारण रूहों की हालत एक पागल सी होती हैं। रूहानी दुनिया के बजाय वे जिस्मानी दुनिया में ही मच्छरों की तरह भिनभिनाती रहती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे 'झुण्ड' बना कर रहती हैं और हमेशा इन्सान को गुमराह करने की कोशिश करती रहती हैं। उसमें बुरी-से-बुरी आदतें डाल देती हैं, जिनके वशीभूत होकर इन्सान अपना विवेक खो बैठता है और एक पशु की सी जिन्दगी बिताने लगता है। जिन्नों की हालत इनसे कुछ अलग तरह की होती है। वे उसी इन्सान से अधिक संबंध रखने के इच्छुक होते हैं, जिससे उनकी प्रबल वासना मिलती-जुलती है। वे रूहानी दुनिया की दूसरी सतह यानी आसमान में रहते हैं। पहला आसमान रूहों का है और दूसरा और दूसरा है जिन्नों का। रूहों और जिन्नों में वही अन्तर है, जो एक मूर्ख और जाहिल इन्सान एवं एक पढ़े-लिखे मगर साधारण इन्सान के बीच होता है।

जैसे रूहों और जिन्नों में थोड़ा-सा भेद है, वैसे ही जिन्न-जिन्नात में भी फर्क समझना चाहिए। जिन्नात काफी शक्तिशाली होते हैं। उनकी वासनाएँ अति भयंकर और

प्रबल होती हैं। वे अदम्य इच्छा शक्ति के मालिक होते हैं। वे अपनी प्रबल वासना के अनुसार इच्छा शक्ति के बल पर विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं। हजारों मील का सफर एक सेकेण्ड में तय कर सकते हैं। एक सीमा तक असम्भव से असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। इतना ही नहीं, वे किसी भी पदार्थ अथवा वस्तु की सृष्टि कर सकते हैं। तीसरे आसमान में रहते हुए भी वे जिस्मानी दुनिया से बराबर संबंध बनाए रखते है।

जो कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ, वह छठे आसमान से संबंधित पीरों की है। इस्लाम धर्म में पीरों का वही, स्थान है, जो हमारे यहाँ अत्यन्त उच्च कोटि के योगियों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं और सन्तों का है। जिसे खुदा का एहसास हो चुका है और जो खुदा के नजदीक है--वही पीर है।

पीरों की कब्र के ऊपर जो मजार बनाई जाती हैं, वही चौकी होती है। चौकी की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि पीर का जिस्म जिस दिन और जिस समय कब्र में दफन किया गया होता है, हर साल में उसी दिन और उसी समय छठे आसमान से उतर कर पीर की आत्मा अपनी मजार में अवश्य आती है। पीरों में किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहता। वे सभी जाति और सभी धर्म के लोगों की प्रार्थना सुनते हैं और दुआ करते व देते हैं। यदि वे किसी प्रकार प्रसन्न हो जाएँ तब तो पूछना ही क्या। किसी प्रकार का दुख और अभाव रह ही नहीं सकता। कोई ऐसी समस्या नहीं जो न हल हो सके। कोई ऐसा कष्ट नहीं जो तुरन्त दूर न हो जाए। बस पीर की कृपा दृष्टि भर होनी चाहिए। अरबी भाषा में लिखित प्राचीन इस्लामी तंत्र ग्रन्थों में सातों आसमानों से संबंधित सातों तरह की चौकियों को मंत्र-शक्ति के जरिए बनाने और उनकी सहायता से सातों आसमानों के प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करने की अनेक विधियों और अनेक क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। एक बार कोई चौकी बन गई तो वह पूरे एक साल काम आती है। यहाँ मैं एक बात और बतला दूँ कि चौकी वही बना सकता है और रूहानी दुनिया के लोगों से वही मिल सकता है, जिसमें प्रबल प्राणशक्ति होगी और दृढ़ मनोबल होगा, अन्यथा मर जाने या पागल हो जाने का डर बना रहता है।

यदि साधना में सफलता मिल गई तो निश्चय ही मानवीय शक्ति में एक ऐसी शक्ति घुल-मिल जाती है, जिसके माध्यम से व्यक्ति एक ऐसी अव्यक्त, अगोचर। केवल अनुभव की जाने वाली दुनिया के संपर्क में आ जाता है।

जब ये सारी बातें मुझे मालूम हुई तो मैं उल्लास से भर उठा और अरबी तंत्र-मंत्र की प्राचीन पुस्तकों और पाण्डुलिपियों की खोज में चारों ओर भटकने लगा। इसी सिलसिले में मेरी भेंट एक दिन हसन नियाज साहब से हो गई। वह मेरे मित्र थे और उन दिनों अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अरबी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक थे।

नियाज साहब के पिता अपने जमाने के मशहूर लेखक और अरबी एवं फारसी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। उनकी अपनी लायब्रेरी थी, जिसमें बेशुमार पुस्तकें थीं।

वहाँ अरबी तंत्र-मंत्र की पुस्तकों और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों की भी कमी नहीं थी। अपने मन की बात बतला कर जब मैंने नियाज साहब से कहा कि वह मुझे अपनी लायब्रेरी की पुस्तकों को देखने का मौका दें तो वह तुरन्त तैयार हो गए। जिस मकान में लायब्रेरी थी वह अलीगढ़ शहर के बाहर बड़े सुनसान जगह पर था। लम्बा-चौड़ा, हवेलीनुमा वह मकान काफी पुराना भी था। नियाज साहब के पिता के इन्तकाल के बाद एक लम्बे अरसे से उसमें कोई नहीं रहता था और वह खाली ही पड़ा रहता था।

एक हफ्ते के भीतर ही मैं उस मकान में पहुँच गया। जिस कमरे में लायब्रेरी थी, वह काफी लम्बा-चौड़ा था। दीवारों से लगी हुई करीब तीन दर्जन अलमारियों में ठसाठस पुस्तकें भरी हुई थीं। कमरे के बीच में एक गोल मेज थी, जिसके चारों ओर कुर्सियाँ रखी हुई थीं। अलमारियों, पुस्तकों और मेज-कुर्सियों के अलावा फर्श पर धूल की मोटी तह जमी हुई थी। लायब्रेरी के कमरे के सामने खुली छत थी। उसके बाद एक और कमरा था। उसी में मैंने अपने रहने का इन्तजाम कर लिया।

कमरे में तीन बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं, जो पूरब की ओर खुलती थीं। खिड़की के बाहर मकान से बिल्कुल लगा हुआ काफी लम्बा-चौड़ा एक मैदान था, जिसमें इमली, जामुन, बेर के अलावा खजूर के भी कई पेड़ थे। उन्हीं खजूरों के नीचे तीन-चार कब्रें भी बनी हुई थीं। एक कब्र तो लाल-सफेद और काले संगमरमर के पत्थरों से काफी सुन्दर बनी थी। उसके इर्द-गिर्द जूही और रातरानी के पेड़ लगे थे, जिनकी कोमल डालियाँ कब्र के ऊपर छायी हुई थीं। लेकिन जिस चीज ने मुझे विशेष रूप से आकर्षित किया, वह था रोजाना शाम के वक्त वहाँ जलने वाला चिराग। उस संगमरमरी कब्र पर वह चिराग रोज कौन जला जाता था?

एक दिन खिड़की के पास कुर्सी पर बैठा हुआ मैं कोई पुस्तक पढ़ रहा था, उसी समय सहसा मेरी नजर कब्र की ओर घूम गई देखा तो उन्नीस-बीस साल की एक युवती हाथ में जलता हुआ चिराग लिए धीरे-धीरे कदम उठाती हुई संगमरमरी कब्र की ओर बढ़ रही थी। चिराग की हल्की-पीली रोशनी में उस युवती का गोरा चेहरा चमक रहा था। निश्चय ही वह अत्यन्त सुन्दर युवती थी। मगर कौन थी? कहाँ रहती थी? क्यों वह रोजाना उस कब्र पर चिराग जलाने आती थी? ये तमाम प्रश्न एक-एक कर मेरे मस्तिष्क में उभरने लगे।

युवती ने आहिस्ते से उस चिराग को कब्र के सिरहाने रख दिया, फिर कुछ देर तक वहीं खड़ी उदास नजरों से कब्र की ओर निहारती रही, उसके बाद हौले-हौले कदम उठाती हुई झुरमुटों के भीतर से न जाने कहाँ चली गई वह।

फरवरी का महीना था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। उस दिन सबेरे से ही पानी बरस रहा था। मैंने सोचा ऐसे मौसम में वह युवती चिराग रखने नहीं आएगी। मगर यह मेरा भ्रम था। वह अपने ठीक वक्त पर आई। चिराग रखा और पानी में भींगती हुई ही काफी देर तक उदास नजरों से कब्र की ओर देखती खड़ी रही। फिर उसके जाते ही हवा

का एक तीव्र झोंका आकर पूरे कमरे में बिखर गया, उसी के साथ चारों ओर रातरानी की सुगन्ध भी फैल गई। उस वक्त मैं उस युवती के बारे में ही सोच रहा था। कौन है वह? कोई अशरीरी आत्मा तो नहीं है?

ये दोनों विकट प्रश्न मेरे मस्तिष्क में बुरी तरह छा गए थे, जिसकी वजह से मैं पूरी रात सो नहीं सका। आखिर भोर के समय थोड़ी झपकी लग गई, फिर जब आँख खुली तो एकदम स्तब्ध रह गया मैं। मेरे बिस्तर के सिरहाने ताजे खिले हुए रातरानी के ढेर सारे फूल रखे हुए थे। आश्चर्य से सन्न बैठा मैं उन फूलों को देख रहा था। कौन आया था मेरे कमरे में? दरवाजे तो भीतर से बन्द थे.... फिर... मेरा मन उद्‌भ्रान्त सा हो गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसी वक्त मुझे ऐसा लगा कि कोई आहिस्ते से बन्द दरवाजा खोल कर कमरे में आया है और मेरे पलंग के नजदीक खड़ा हो गया है।

सिर घुमा कर देखा तो स्तब्ध रह गया। आश्चर्य से आँखें फैल गई मेरी। मेरे सामने मुगलकालीन वेश-भूषा में खड़ी कब्र पर चिराग जलाने वाली युवती मुस्करा रही थी। वह बिल्कुल शाहजादी-सी लग रही थी। मैं बड़ी देर तक अपलक-अवाक् देखता ही रह गया उसकी ओर। किसी सद्ययौवना युवती में इतना सौन्दर्य समा सकता है, कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी मैंने। जैसा स्फटिक होता है, बस वैसा ही दूध जैसा उसके शरीर का रंग था। पतले-पतले गुलाबी होंठ, बड़ी-बड़ी स्याह आँखों में कुछ गजब का सम्मोहन भरा हुआ था। बाल काले और घुँघराले थे। उन्मत्त कर देने वाला यौवन भी अद्‌भुत था, जिसे देख कर किसी का भी मन बेकाबू हो सकता था। गोरी-गोरी कलाइयों में काले रंग की काँच की चूड़ियाँ पड़ी थीं और दाहिने हाथ की एक उँगली में हीरे की कीमती अँगूठी भी फँसी थी।

अस्फुट स्वर में मैंने पूछा, 'आप कौन हैं?'

मेरा प्रश्न सुन कर युवती का फूल-सा खिला चेहरा न जाने क्यों एकबारगी भावहीन हो गया। मुस्कराते हुए होंठ खामोश सूख गए और रसीली आँखों की चमक बुझ गई। धीरे से बोली, 'मेरा नाम नाजिमा है। मैदान के उस पार जो लाल कोठी है, उसी में रहती हूँ।' थोड़ा रुक कर उसने फिर कहा, 'आप पहले इन्सान है, जिसके करीब मैं आई हूँ ......'

'बड़ी खुशी की बात है। मैंने कहा, 'बताइए, क्या काम है मुझसे। .....'

नाजिमा का चेहरा गुलाब की तरह फिर खिल उठा। आहिस्ते से बोली--'आप रूहानी दुनिया के बारे में जानना चाहते हैं न?'

'हाँ-हाँ ... पर आपको कैसे मालूम?'

मुझे सब कुछ मालूम है। नाजिमा ने कहा--'यही तो मैं आपको बतलाने के लिए बेचैन थी। इस लायब्रेरी की चौथी आलमारी में एक बहुत पुरानी किताब है, हाथ की

लिखी हुई। उसमें पीर-फकीरों और औलिया की चौकी बनाने का तरीका बहुत समझा कर लिखा गया है। आप उसी किताब के सहारे पीर सुलेमान की चौकी बनाइए। खुदा चाहेगा तो आपको जरूर सफलता मिलेगी।'

इसके बाद नाजिमा एक पल के लिए भी नहीं रुकी वह एक झटके से घूमी और तुरन्त कमरे से बाहर निकल गई। मैं आश्चर्य से खड़ा जाती हुई नाजिमा को देखता रह गया।

खोजने पर चौथी आलमारी में नाजिमा की बतलाई हुई वह पुरानी किताब मिल गई। सचमुच वह चार सौ साल पुरानी पाण्डुलिपि थी। कागज काफी मोटे होने के बावजूद गल गया था। कहीं-कहीं अक्षर भी मिट गए थे। चमड़े की मजबूत जिल्द में बँधी थी वह पाण्डुलिपि। उसका शीर्षक भी काफी आकर्षक था--'रूहानी दुनिया की सैर' उसमें कुल मिलाकर तीन सौ पृष्ठ थे। कुछ पृष्ठों पर तो चमकीले-सुनहरे रंग-बिरंगे चित्र भी बने हुए थे, जो अपने आप में बहुत मूल्यवान और विलक्षण थे।

जो चीज मैं चाहता था वह इस तरह अकस्मात मुझे मिल जाएगी, इसकी कल्पना सपने में भी मैंने नहीं की थी। 'रूहानी दुनिया की सैर' के लेखक ने रूहानी दुनिया का जो सजीव चित्रण किया था, वह निस्सन्देह उसके अनुभवों पर आधारित था। उसने कल्पना का सहारा कहीं भी नहीं लिया था। छठें आसमान के बारे में खुलासा लिखते हुए लेखक ने बतलाया कि वह सात पीर मुस्तकिल हैं, जिनमें पीर सुलेमान का दर्जा काफी ऊँचा है। लेखक ने उनको 'नबी' यानी अवतारी पुरुष माना था। पीर सुलेमान की चौकी बनाने की जो विधि बतलाई गई थी, वह बहुत ही सरल थी।

विधि पढ़ कर अचानक मेरी आँखों में चमक आ गई। मैंने एकबारगी निश्चय कर लिया कि पीर सुलेमान की चौकी बनाकर ही दम लूँगा। और इसके लिए नियाज साहब के उस हवेलीनुमा मकान से अच्छा दूसरा एकान्त स्थान भला मुझे कहाँ मिलता?

काश! जब मैं यह निश्चय कर रहा था, उस वक्त मुझे जरा-सी भी इस बात का पता चल गया होता कि मेरे जरिए एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण होने जा रहा है, जिससे मैं जिन्दगी भर छुटकारा नहीं पा सकूँगा, तो सच मानिए, मैं सपने में भी पीर सुलेमान की चौकी बनाने की बात न सोचता।

उस दिन से प्राय: रोज ही नाजिमा मेरे कमरे में आने लगी। मगर वह कभी खाली हाथ न आती, कभी उसके साथ रातरानी के फूलों का ढेर होता तो कभी बढ़िया मिठाइयाँ। जिस समय वह कमरे में प्रवेश करती त्यों ही वातावरण में हिना और मुस्कम्बर की भीनी-भीनी खुशबू भर उठती। कभी-कभी वह अपने हाथों से बनाकर खाना भी ले आती और अपने सामने ही बैठा कर खिलाती थी।

नाजिमा के दिल में मेरे लिए इतनी प्रीति और अपनापन क्यों था, यह मेरी समझ में नहीं आता था। कभी-कभी सोचता-- 'क्या नाजिमा मुझसे प्रेम करने लगी है? क्या वह मुझे अपना बनाना चाहती है?' मगर नहीं! उसके व्यवहार में मुझे कहीं भी कामना या वासना की झलक भी नहीं दिखलाई पड़ी थी। उसके प्रेम में...स्नेहमय अपनत्व में एक स्वर्गीय सौन्दर्य था... निष्काम भावना थी।

अभी तक मेरी समझ में यह नहीं आया था कि 'रूहानी दुनिया की सैर' की पाण्डुलिपि के बारे में आखिर नाजिमा को कैसे मालूम था? वह कैसे जानती थी वह पाण्डुलिपि कहाँ, किस आलमारी में है?

फिर एक दिन मुझे एक ऐसी चीज की जरूरत पड़ गई जिसे लेने के लिए शहर जाना जरूरी हो गया था, मगर कपड़े पहन कर मैं जैसे ही बाहर निकला था, वहाँ नाजिमा मिल गई और उसके हाथ में वही चीज थी, जिसकी मुझे जरूरत थी।

इसी तरह कई बार हुआ। मुझे जब कभी भी किसी चीज की जरूरत पड़ती, नाजिमा न जाने कैसे जान जाती और उसके जरिए मेरी वह आवश्यकता पूरी हो जाती। मैं हैरान था। आखिर नाजिमा कैसे जान जाती थी मेरे मन की बात? फिर कहाँ से और कैसे लाकर देती वह चीज?

एक दिन तो मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वह रोज की तरह शाम को आई फिर एक बन्द लिफाफा मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली, 'इसे मेरे जाने के बाद खोलिएगा।' नाजिमा के चले जाने के बाद जब मैंने लिफाफा खोल कर देखा तो सन्न रह गया। भीतर सौ-सौ के बीस नोट थे। देख कर मेरा सारा शरीर एकदम झनझना उठा, मस्तिष्क शून्य सा हो गया जैसे। हे भगवान! नाजिमा आखिर है क्या बला? उस समय मुझे रुपयों की सख्त जरूरत थी मगर मेरी इस जरूरत को नाजिमा कैसे जान गई? उस रोज सारी रात मुझे नींद नहीं आई बस नाजिमा के ही बारे में सोचता-विचारता रहा। अन्त में निश्चय किया कि कल नाजिमा के आने पर उससे इसका राज जरूर पूछूँगा।

मगर क्या दूसरे रोज नाजिमा आई?

नहीं!

उस दिन के बाद वह मुझे कभी नहीं दिखलाई पड़ी। आखिर एक दिन मुझसे नहीं रहा गया तो मैं लाल बंगले की ओर चल पड़ा। दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। पूछने पर उसने एक बार मेरी ओर उदास नजरों से देखा फिर अपने कमजोर हाथों से मैदान की ओर इशारा करती हुई धीरे स्वर में बोली, 'नाजिमा वहाँ है... चले जाओ वहीं वह सो रही है।'

बुढ़िया की बात मेरी समझ में नहीं आई.... किन्तु मेरे कदम अपने आप मैदान की ओर बढ़ चले और संगमरमरी कब्र के सामने पहुँच कर रुक गए। उसके बाद मेरे मुँह से एकाएक चीख निकल गई, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता...

मगर मेरे चिल्लाने से क्या होता था? सत्य एकदम सत्य था और बिल्कुल मेरे सामने था।

कब्र के ऊपर लाल पत्थर पर उर्दू में साफ-साफ लिखा था, 'नाजिमा! मेरी प्यारी नाजिमा मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा--जाकिर।'

सारा शरीर जैसे बर्फ हो गया मेरा। सोचने-विचारने की शक्ति जैसे गवाँ बैठा मैं।

पूरे बीस दिन मैं एक प्रेतनी के सम्पर्क में था?

हाँ! वह प्रेतनी ही थी-तभी तो मेरे मन की बात तुरन्त जान जाती और बिना कहे ही सारी जरूरतें पूरी कर देती थी।

विस्मय और आतंक के कारण मुझे लगातार कई दिनों तक नींद नहीं आई। हर समय नाजिमा के बारे में ही सोचता रहता। रह-रह कर उसका अपरूप सौन्दर्य मेरे सामने थिरकने लगती थी।

एक सप्ताह बीत गया।

नाजिमा कौन थी? जाकिर कौन था? उन दोनों का आपसी संबंध क्या था?--ये तीनों विकट प्रश्न बराबर मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटते रहे।

आखिर एक दिन इनका उत्तर मिल ही गया मुझको। 'रूहानी दुनिया की सैर' का पाण्डुलिपि ने ही इस जटिल समस्या को हल कर दिया।

उस महत्वपूर्ण पाण्डुलिपि का लेखक 'जाकिर' ही था। पाण्डुलिपी के आखिर पृष्ठ पर सुनहरे अक्षरों में उसका नाम लिखा था। उसके बाद जो कुछ लिखा था, वह बहुत ही आश्चर्यजनक, कौतुहलपूर्ण और अविश्वसनीय सा था।

जाकिर की प्रेमिका थी नाजिमा। जाकिर अपने समय का बहुत बड़ा तिलस्मी था, साथ ही 'प्रेतविद्या' में भी वह माहिर था। रूहानी दुनिया के बारे में वह हरदम अधिक-से अधिक जानकारी हासिल करने की कोशिश करता रहता था। वह विभिन्न तरीकों से कई जिन्न-जिन्नातों से एक साथ सम्पर्क स्थापित कर लेता था। इसमें काफी खतरा था, मगर जाकिर ऐसे खतरों से खेलने में माहिर था।

एक बार संयोग से एक बहुत बड़ा जिन्न जाकिर के चंगुल में फँस गया। उसका नाम माकूल अली था। जाकिर उसकी मदद से नाजिमा की रूह को रूहानी दुनियाँ में भेजने लगा। नाजिमा जब वहाँ से वापस लौटकर आती तो जाकिर को रूहानी दुनिया का आँखों देखा हाल और अपने विचित्र अनुभव बताती। बाद में जाकिर ने उसी के आधार पर 'रूहानी दुनिया की सैर' नामक पुस्तक लिखी थी।

कहने की जरूरत नहीं कि पाण्डुलिपि के इस विवरण ने अदृश्य, अगोचर और मानवीय इन्द्रियों की सीमा से परे की दुनिया के प्रति मेरे विश्वास की नींव को और अधिक मजबूत कर दिया। दूसरे ही दिन-जुम्मेरात को मैंने पीर सुलेमान की चौकी बनाने

का दृढ़ संकल्प कर लिया। लिफाफे में नोट ज्यों के त्यों रखे थे। मैंने उनमें से दो नोट निकाले और जरूरी समान लाकर रख दिए। यहीं से एक ऐसी कहानी का जन्म होता है जिस पर शायद ही किसी को विश्वास हो। मगर सत्य-सत्य होता है और कभी-कभी वह इतना आश्चर्यजनक होता है कि एक बार मनुष्य को अविश्वसनीय और काल्पनिक सा ही लगता है।

साँझ की स्याह चादर फैल गई थी चारों तरफ। हालनुमा कमरे को साफ करके मैंने चावल के पाँच कूरे लगाए। फिर उन पर पाँच रंग के तेलों के अलग-अलग चिराग जलाकर उन पर पाँच रंग के अलग-अलग फूलों की मालाएँ पहना दीं। इसके बाद पाँच तरह की मिठाइयाँ रख कर धूप-लोहबान भी सुलगा दिया। दूसरे ही क्षण सारा कमरा सुगन्ध से भर गया। इसके बाद जो जरूरी काम थे, उन्हें पूरा करके मैं पाण्डूलिपि में दिए गए अरबी मंत्र को आँखें बन्द करके पढ़ने लगा चुपचाप।

धीरे-धीरे एक घण्टा बीत गया। चिराग बराबर जलते रहे। एक बार मैंने उनकी तरफ देखा और फिर मंत्र पढ़ने लगा। अचानक एक इतनी भयानक और डरावनी आवाज सुनाई पड़ी कि मेरा कलेजा काँप गया। कोई प्राण त्यागता हुआ व्यक्ति जैसे पीड़ा से कातर स्वर में कराह रहा हो! यह आवाज मैदान की कब्र की ओर से आ रही थी। वह भयानक आवाज धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी। साथ ही मेरा भय भी बढ़ता जा रहा था। सहसा मेरी नजर अपनी बाँयी ओर घूम गई। देखा तो वहाँ एक घिनौना-सा बदसूरत व्यक्ति बैठा था। उसकी काली-स्याह देह की चमड़ी गल गई थी। नीचे का जबड़ा बाहर की ओर लटका हुआ था। आँखें कोटर में धँसी हुई थीं और सिर मुँडा हुआ था। हाथ-पैर की उँगलियाँ आधी-आधी थीं। सब कुछ मिला कर वह बड़ा वीभत्स और भयानक व्यक्ति था। मैंने घृणा के मारे उसकी ओर से मुँह फेर लिया और जल्दी-जल्दी मंत्र पढ़ने लगा।

अब वह भयानक कब्रिस्तानी आवाज वातावरण की गहराई में डूबने लगी थी धीरे-धीरे और उसी के बाद एक नया वातावरण उपस्थित हो गया। चावल पर जल रहे पाँचों चिरागों की रोशनी के रंग लाल, पीले, हरे, सुनहले और नीले हो गए। फिर वे एक में मिलकर कुछ अस्पष्ट-सा आकार बनाने लगे। मैं बहुत ही सतर्क था उस समय और हर परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार था।

वह आकार धीरे-धीरे एक पालकी की शक्ल में बदल गया। जैतुन की लकड़ी की बनी वह पालकी बहुत ही खूबसूरत थी, जिस पर सोने का पर्त चढ़ा हुआ था और बारीक मीनाकारी की गई थी। दोनों ओर किमख्वाब और मखमल की कीमती चादरें झूल रही थीं। उन पर भी सोने के बारीक तार से तरह-तरह के फूल कढ़े हुए थे। पालकी के चारों तरफ मोतियों और हीरे-जवाहरात की झालर लगी थी।

कुछ क्षण बाद धीरे से पालकी का पर्दा हटा और उसमें से एक व्यक्ति ने सिर निकाल कर बाहर झाँका। वह बहुत ही सुन्दर था। होंठ पतले और लाल थे, नाक नुकीली और आँखें बड़ी-बड़ी थीं। गोरे रंग का वह व्यक्ति सिर पर कलंगीदार टोपी पहने था।

उस व्यक्ति ने मेरी ओर एक बार देखा, फिर मुस्करा पड़ा। उसकी मुस्कराहट मुझे बहुत अच्छी लगी। फिर उसने इशारा करके मुझे अपने नजदीक बुलाया। मैं अपनी जगह से हटना नहीं चाहता था और न मंत्रपाठ बन्द करना चाहता था, मगर न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उसकी ओर बढ़ गया। दूसरे ही क्षण उसने मुझे अपनी पालकी में बैठा लिया। मगर उसके पास बैठते ही मेरा मन-प्राण डूबने लगा जैसे। ऐसा लगा मानो चेतना कभी भी लुप्त हो सकती है, पर ऐसा हुआ नहीं।

दूसरे ही क्षण वह दृश्य मेरे सामने से हट गया और इसके साथ ही लगा जैसे वह पालकी तीव्र गति से हवा में उड़ रही हो।

वह व्यक्ति अभी भी मेरे सामने बैठा मुस्करा रहा था।

मैंने हिम्मत सँजोकर पूछा--"आप कौन हैं? मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?"

मेरा प्रश्न सुनकर वह व्यक्ति धीरे से बोला--"जिसकी चाह तुमको थी, मैं वही हूँ। और तुम जहाँ जाना चाहते थे, हम तुम्हें वहीं ले जा रहे हैं।"

इतना कह कर वह चुप हो गया। मैंने बाहर झाँक कर देखा-गहरा अन्धकार फैला था चारों तरफ। मुझे लगा जैसे किसी बहुत ही वीरान घाटी के बीच से गुजर रहा होऊँ। थोड़ी देर बाद मुझे उस घाटी में सैकड़ों-हजारों आदमियों के एक साथ रोने और चीखने-चिल्लाने की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। ऐसा लगा मानो सैकड़ों आदमियों को एक साथ कठोर यातनाएँ दी जा रही हों। उनका सामूहिक करुण आर्तनाद सुन कर मेरा रोम-रोम सिहर उठा।

उस व्यक्ति ने हौले से कहा--"उन आवाजों की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। वे हैवान से भी बदतर उन इन्सानों की तमाम रूहें हैं जिन्होंने अपनी जिस्मानी जिन्दगी में कभी कोई भी अच्छा काम नहीं किया है। तुम्हारे मजहब में जिसे नरक कहते हैं वह यही है। मगर उसे बनाने वाला खुदा नहीं बल्कि खुद इन्सान है। उसके अच्छे-बुरे विचार ही स्वर्ग और नर्क हैं। इसके अलावा और कुछ नहीं है!"

यह सुनकर मेरी सारी देह सन्न हो गई। मुझे अपने आप पर शक होने लगा कि मैं जिन्दा हूँ या मर चुका हूँ। मैंने अपनी आँखें घुमा कर अपने शरीर की ओर देखा, फिर सामने बैठे उस व्यक्ति की ओर ताकने लगा।

वह मुस्कराकर बोला--"तुम जिन्दा हो, मगर जो कुछ देख रहे हो या आगे जो देखो-सुनोगे, वह रूहानी जिस्म से देख सुन रहे हो या देखो-सुनोगे।'

यह सुन कर मैं और हैरान हो गया। सचमुच उस समय मुझे एक विचित्र अनुभूति हो रही थी। थोड़ी देर बाद मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ बेहद खामोशी थी। बाद में मालूम हुआ कि वह स्थान दुनिया का ऐसा हिस्सा है, जहाँ लोग अपने मजहब और ईमान के रास्ते चल कर आते और रहते हैं।

यहीं उस व्यक्ति से मेरा साथ छूट गया। वह कहाँ चला गया और पालकी कहाँ गायब हो गई कुछ पता ही नहीं चला। अपने आपको मैं उस विलक्षण वातावरण में एकदम अकेला और निस्सहाय अनुभव कर रहा था। उस समय मुझे स्थूल और सूक्ष्म शरीर के जरिए जिस्मानी और रूहानी दुनिया का एक साथ अनुभव हो रहा था। वह सब कुछ अत्यन्त विचित्र और वर्णनातीत था।

सारी धरती हरी-भरी घासों से ढकी थी। क्षितिज में--जहाँ धरती को आकाश चूम रहा था, वहाँ काफी दूर तक हल्की सिन्दूरी आभा फैली हुई थी और उसके ठीक नीचे शानदार मकानों और हरे-भरे पेड़-पौधों की लम्बी कतारें छन कर आ रहे रुपहले प्रकाश से चमक रहीं थी। उस नैसर्गिक दृश्य को आज भी मैं भूल नहीं पाया हूँ। इन पक्तियों को लिखते समय वह सारा दृश्य मेरे मानस पटल पर एक बार मूर्तिमान होता आ रहा है।

क्या मैं कोई गहरा स्वप्न देख रहा था?

नहीं, नहीं, वह स्वप्न नहीं, बल्कि एक हकीकत थी....इस दुनिया का दूसरा पहलू था और जीते-जागते इन्सानों का असली रूप था। वहाँ मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि मनुष्य अपने आपमें कितना क्षुद्र, अज्ञानी और सीमित है। जिस दुनिया को वह सत्य समझता है वह दुनिया और वहाँ का उसका जीवन इस नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर दुनिया की दृष्टि में एक स्वप्न से ज्यादा और कुछ नहीं है। वह यह नहीं जानता कि जिन्दगी खत्म होने के बाद वह एक ऐसी दुनिया में जाग उठेगा, जहाँ उसे यह जिन्दगी और यह दुनिया झूठी लगने लगेगी। उसी तरह, जैसे हम और आप सपने देखने के बाद जाग जाते हैं और उस सपने को झूठा समझते हैं।

मैंने कुछ ऐसे लोगों को भी देखा है, जो बुद्धि, ज्ञान और विद्या में काफी ऊँचे स्तर पर पहुँच गए थे और उस समय एवं क्षण का इन्तजार कर रहे थे जब इस भौतिक जगत में हजारों-लाखों लोगों से अलग 'व्यक्तित्व' लेकर जन्म लेंगे तथा ज्ञान का प्रकाश फैलाएँगे।

मैंने ऐसे भी प्राणियों को देखा है, जो मानव-मस्तिष्क से बराबर संबंध बनाए रखते हैं। उनमें अच्छे भी थे और बुरे भी। मानव मस्तिष्क पर अदृश्य रूप से अच्छा-बुरा प्रभाव डाल कर उसके अनुसार काम लेना उनका स्वभाव था। मेरे सामने यह एक बहुत बड़ा रहस्य प्रकट हुआ कि मनुष्य अपने आप में सिर्फ पच्चीस प्रतिशत स्वतंत्र है। पचहत्तर

प्रतिशत अच्छा या बुरा काम वह ऐसे ही प्राणियों के प्रभाव के वशीभूत होकर करता है। यदि कोई आदमी शराबी है तो बिना शराब पिए वह नहीं रह सकता। वह उसकी आदत बन गई है तो समझ लीजिए कि उस अज्ञात लोक के किसी अदृश्य प्राणी के प्रभाव में पड़ कर उसने शराब पीने की आदत डाल रखी है। यदि किसी कारण से वह प्रभाव हट जाए तो निश्चय ही वह व्यक्ति शराब पीना बन्द कर देगा और चेत रहते फिर कभी शराब की तरफ ताकेगा भी नहीं। ऐसे ही अन्य आदतों को भी समझ लेना चाहिए। अस्तु।

मैं कब तक उस अजीबो-गरीब दुनिया का चक्कर काटता रहा यह तो नहीं बतला सकता, मगर बाद में मुझे अनुभव हुआ कि मैं जिस वातावरण और स्थिति में हूँ, वह पानी में पड़ रही छाया की तरह हिलती हुई धीरे-धीरे गायब हो रही है। उसके साथ ही मैं भी एक विचित्र प्रकार का भारीपन अनुभव करता जा रहा था। फिर एक झटका-सा लगा और मेरे सामने घना कुहरा जैसा छा गया। जब वह कुहरा हल्का हुआ तो मैने स्वयं को अपने कमरे में पाया।

पाँचों चिराग पहले की ही तरह जल रहे थे। वातावरण में राल, लोहबान और अगरबत्ती की मिली-जुली गन्ध बिखरी हुई थी। मैं न जाने कब तक संज्ञाशून्य सा जड़वत् बैठा रहा। सहसा उसी समय फिर मुझे कब्रिस्तान से आने वाली भयानक आवाज सुनाई पड़ी। थोड़ी देर बाद अचानक कमरे का बन्द दरवाजा अपने आप फटाक् से खुल गया और हाँफती हुई नाजिमा मेरे सामने आ खड़ी हुई।

एक प्रेतात्मा को सशरीर अपने सामने देख कर मेरी दशा कैसी हो गई होगी यह आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। जीभ तालु से चिपक गई। न कुछ पूछा गया और न कुछ कहा गया। बस, आँखें फाड़े लगभग दो सौ वर्ष पुरानी उस अतृप्त प्रेतात्मा की ओर ताकता ही रह गया, ऐसी आत्मा की ओर, जो अपने मजहब के मुताबिक कयामत की रात तक कहीं भी जन्म नहीं ले सकती थी।

अचानक निस्तब्ध वातावरण में रुदन-भरा स्वर फैल गया। नाजिमा सिसक-सिसक कर रो रही थी। फिर वह दौड़ कर सहसा मुझसे एकदम लिपट गई।

'क्या चाहती हो तुम....' मैं जोर से चीख पड़ा।

'माकूल अली से मुक्ति.... बस.... मैं माकूल अली से मुक्ति चाहती हूँ। वह हर रात मुझे मारता-पीटता है.. मुझे उसके चंगुल से छुड़ा लो.... वह बड़ा जालिम है.... उफ्!'

नाजिमा की आखिरी बातें जैसे हवा में डूब गई।

मैंने अपने आपको किसी तरह उससे छुड़ाया और कमरे से बाहर भागा। फिर उसी बदहवास हालत में मैं कब तक दौड़ता रहा, कुछ मालूम नहीं।

बाद में जब मैंने सारी कहानी नियाम साहब को बतलाई तो वे बोले--'मियाँ! वह बड़ी जालिम लड़की की बेपनाह रूह है। उसने मेरे वालिद को भी काफी तंग किया था।

मजबूर होकर उन्होंने उसकी कब्र पक्की बनवा दी थी, मगर उसने मेरे वालिद को फिर भी नहीं छोड़ा। उसी के डर से न मैं उस मकान में रहने का साहस करता हूँ और न तो कोई किरायादार ही वहाँ रहने को तैयार होता है।'

नाजिमा की प्रेतात्मा को माकूल अली के चंगुल से मुक्ति मिली कि नहीं यह तो मैं नहीं बतला सकता, मगर मैं जरूर पच्चीस साल से उसके अदृश्य बन्धन में बँधा हुआ हूँ। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो आइए, कभी भी आइए मैं आपको उसके अस्तित्व का आभास भी करा दूँगा, मगर आप किसी संकट में पड़ जाएँ, तो उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं होगी।

●

कर्णिका ६

ज्योतिष का अभिशाप

भारतीय संस्कृति में ज्योतिष को पंचम वेद माना गया है। ज्योतिष के दो बहुश्रुत पक्ष हैं--फलित और गणित। मगर इसका एक और पक्ष भी है, जिससे बहुत कम लोग परिचित हैं--तांत्रिक पक्ष। ज्योतिष-तंत्र का मूल आधार है--समय अर्थात् काल। जो लोग 'काल' के रहस्य से परिचित हैं, वे ही ज्योतिष-तन्त्र से लाभ उठा सकते हैं। यह विद्या अत्यंत रहस्यमयी है। इसके जानकार लोग 'वर्तमान काल' के पटल पर भूत और भविष्य को इच्छानुसार स्पष्ट देख सकते हैं। भविष्य में घटने वाली कोई भी घटना उनके लिए वर्तमान काल के पटल पर तत्काल साकार एवं सजीव हो उठती है। बड़े दु:ख की बात है कि ज्योतिष की इस विलक्षण विद्या के पंडित अब हमारे देश में कम ही हैं।

यह अविश्वसनीय किन्तु सत्य कथा उन दिनों की है जब मैं ज्योतिष का ही अध्ययन कर रहा था। मेरे गुरु थे काशी के निष्णात् ज्योतिषी पंडित सीताराम झॉ। एक दिन ज्योतिष तंत्र की चर्चा चल पड़ी। झॉ जी ने बताया कि इस विद्या के मर्मज्ञ अब श्री भवतोष स्मृतिरत्न महाशय मात्र रह गए हैं। उनके बाद तो यह विद्या निश्चय ही भारत से लुप्त हो जाएगी।

मेरे हृदय में भवतोष स्मृतिरत्न महोदय से मिलने की प्रबल कामना जाग्रत हो गई।

स्मृतिरत्न महोदय कलकत्ता स्थित हाजरा रोड की एक गली में रहते थे। टैक्सी से उतर कर जब मैं गली में घुसा, उस समय साँझ में रात की कालिमा घुल चुकी थी। गली में काफी दूर जाकर बाँए हाथ की ओर था पीले रंग का दो मंजिला मकान। लोहे का छोटा-सा फाटक भीतर से बंद था। आवाज नहीं देनी पड़ी। लाल पाट के सफेद रंग की साड़ी पहने एक वृद्धा स्त्री धीरे-धीरे चल कर सामने आ खड़ी हुई। माँग में सिंदूर था और कलाइयों में शंख की चूड़ियाँ। उसने सूखी-सूखी नजरों से एक बार मेरी ओर देखा, फिर पूछा, 'किससे मिलना है, आपको?'

'स्मृतिरत्न महोदय से। बनारस से आया हूँ। क्या दर्शन देंगे?' एक ही साँस में बोल गया मैं। वृद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया। फाटक खोलकर सामने के कमरे की ओर इशारा भर कर दिया।

मकान के सामने छोटा-सा मैदान था, जिसमें रातरानी, केतकी, कृष्णचूड़ और जवा के पेड़ लगे थे। एक ओर तुलसी का पौधा भी था। भीतर घुसते ही एक विचित्र-सी खिन्नता भरी उदासी का एहसास हुआ। सायँ-सायँ हो रही थी। कमरे में भी जड़ता-सी छाई हुई थी। जमीन पर चटाई बिछी थी। एक ओर तख्त लगा था जिस पर एक वृद्ध सज्जन सिर झुकाए चिंतन-मनन की मुद्रा में बैठे थे। समझते देर न लगी। यही थे भवतोष स्मृतिरत्न महाशय, ज्योतिष-तंत्र के धुरन्धर विद्वान।

अँधेरा फैल चुका था। मैं चरण स्पर्श करके चटाई पर बैठ गया। तभी एक युवती ने कमरे में प्रवेश किया। पहले उसने बिजली का स्विच दबाया। जब प्रकाश हो गया तो उसने स्मृतिरत्न महाशय का चरण स्पर्श किया।

युवती का वय रही होगी अट्ठाइस-तीस के लगभग। गौर वर्ण इकहरा बदन, लम्बा कद, सुंदर आकर्षक चेहरा, मगर विषाद में डूबा हुआ। जाते समय दरवाजे पर ठिठक कर उसने एक बार गहरी नजरों से देखा मेरी ओर। निश्चय ही उसकी आँखों में कुछ ऐसा था जिसे समझ न सका मैं।

कौन थी वह युवती? स्मृतिरत्न महाशय की लड़की अथवा पुत्र-वधू?

मौन भंग हुआ। चिंतन-मनन की धारा टूटी। स्मृतिरत्न महाशय ने पहले दोनों हाथों से चेहरे को रगड़ा, फिर तीक्ष्ण दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा। उसके बाद शुष्क कंठ से बोले, 'कहिए कैसे आना हुआ?' जब मैंने आने का मन्तव्य बताया तो वे हँसने लगे। बड़ी कौतुक-भरी विलक्षण हँसी थी उनकी।

कमरे की दीवार पर भिन्न-भिन्न प्रकार की करीब दो दर्जन घड़ियाँ टँगी थीं। इसके अलावा कुछ घड़ियाँ, आलमारी और टेबुल पर भी रखी थीं। सभी चल रहीं थीं मगर सभी में समय अलग-अलग था। किसी में बारह बजा था तो किसी में चार। इसी प्रकार किसी में छः बजा था तो किसी में ग्यारह।

स्मृतिरत्न महाशय ने एक बार सिर घुमा कर घड़ियों की ओर देखा, फिर उँगलियों पर कुछ गणना की। थोड़ी देर तक न जाने क्या सोचते-विचारते रहे। उसके बाद अचानक बोले, 'तुमने क्रांतिकारी जीवन भी व्यतीत किया है न?'

'जी हाँ!' मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

'१८ नवंबर, १९४४ को दोपहर के समय पुलिस की गोली से तुम घायल हो गए थे न?'

'हाँ' आश्चर्य से बोला मैं।

इसके बाद फिर घड़ियों की ओर देखते हुए स्मृतिरत्न महाशय बोले, "दो दिन पूर्व सायंकाल के समय गंगा तट पर सीताराम झा से मेरे संबंध में बातें हुई थीं न?" इस बार

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मुँह बाए उनकी ओर देखता रह गया। उन्होंने भूत और वर्तमान काल की जो दो घटनाएँ बतलाई थीं, उसने मुझे चमत्कृत कर दिया था।

अब भविष्य काल सुनो-शुष्क कंठ से बोले वे, ''सन् १९७० से १९७६ तक तुम दमा के भयंकर कष्ट से पीड़ित रहोगे। १९७८ के अक्टूबर में तुम रोग से घबराकर आत्महत्या के उद्देश्य से गंगा तट पर जाओगे। किन्तु तुम आत्महत्या नहीं करोगे। एक महात्मा तुम्हारी प्राण रक्षा करेंगे और रोग से भी तुमको मुक्त कराएँगे।''

ऐं! भौचक्का-सा मैं स्मृतिरत्न महाशय की ओर देखने लगा। ''अक्षरश: सत्य है। कोई उसे बदल नहीं सकता।'' वे निर्विकार भाव से बोले। देखा, उनका चेहरा कठोर हो गया था, आँखें बड़ी हो गईं, गले की नसें तन गईं। थोड़ी देर बाद सहज स्वर में कहने लगे, ''ज्योतिष-तंत्र की इसी भविष्यवाणी ने एक पिता से उसका युवा पुत्र छीन लिया। माँ की गोद सूनी कर दी और एक अबला का सिंदूर पोंछ दिया। यह विद्या मेरे लिए घोर अभिशाप ही सिद्ध हुई।''

इसके बाद भवतोष स्मृतिरत्न महाशय ने ज्योतिष के अभिशाप की जो कथा सुनाई, उसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि मैं जानता होता कि सारी कथा सुनने के बाद अंत में एक विकट स्थिति का सामना करना पड़ेगा, तो पहले ही उठकर बाहर चला आता, अस्तु।

स्मृतिरत्न महाशय पृथ्वी और प्रकृति की दैनिक गति के साथ काल की गति का क्या संबंध है, इसका पता घड़ियों को देखकर लगा लेते थे। उनकी हर घड़ी किसी न किसी देश का निश्चित समय बताती थी। किन्तु जन-साधारण के लिए उनका यह सिद्धान्त नितांत दुर्बोध था। उनका कहना था कि मानव की दृष्टि-शक्ति निरवछिन्न है। उसके बीच-बीच में अंतर होता है। उसी की सहायता लेकर बाजीगर इंद्रजाल की सृष्टि किया करते हैं। निश्चय ही स्मृतिरत्न महोदय एकांत साधना और गंभीर गवेषणा के फलस्वरूप विश्व-नीति के जो तत्व जान गए थे। वे जन-साधारण के ज्ञान से सर्वथा परे था।

स्मृतिरत्न महाशय के लड़के का नाम था शेखर। इकलौता ही लड़का था वह। कलकत्ता मेडिकल कालेज से पढ़ाई पूरी करने के बाद उसे स्मृतिरत्न महोदय ने इंग्लैड भेज दिया। शेखर जब वापस लौटा तो उसके पास डॉक्टरी की बहुत बड़ी डिग्री थी। जिस दिन शेखर ने घर में प्रवेश किया, उसी समय से स्मृतिरत्न महाशय अष्टधातु के एक विलक्षण शक्ति संपन्न यंत्र के निर्माण में जुट गए। एक दिन वह बेटे के कमरे में गए। पिता को देखते ही शेखर उठ खड़ा हुआ।

स्मृतिरत्न महोदय ने रामनामी के भीतर से यंत्र निकालकर उसे दिया और कहा, ''एक विशेष कारण ये यंत्र तुम्हे हमेशा अपनी बायीं भुजा में धारण किए रहना होगा। इसे कभी उतारना मत।'' और उन्होंने स्वयं उनकी भुजा में यंत्र बाँध दिया।

कुछ दिन बाद एक दिन स्मृतिरत्न महाशय ने देखा कि शेखर की भुजा में यंत्र नहीं है। पूछने पर उसने बताया कि उतार कर रख दिया है।

"क्यों?"

"दिन-रात बाँधे रहने से असुविधा होती थी।"

स्मृतिरत्न महोदय गंभीर हो गए। बोले, "पर मैंने तो वह यंत्र तुमसे दिन- रात बाँधे रहने को कहा था।"

स्मृतिरत्न जी और कुछ भी बोले बिना वहाँ से चले आए।

किन्तु वहाँ से हट आने से ही क्या होता था? काल के अप्रतिहत प्रभाव का अनुभव उन्हें होने लगा। उनकी समझ में आ गया कि मानव के प्रयत्न ग्रह-नक्षत्रों के आगे कितने तुच्छ से थे। अस्थिर मन से वे पत्नी के पास पहुँचे और बोले--"मैंने शेखर को एक यंत्र हमेशा पहनने के लिए दिया था, किन्तु उसने उतारकर उसे रख दिया है। तुम जाकर उसे समझा दो कि वह उस यंत्र को हर समय पहने रहे नहीं तो घोर अमंगल की आशंका है।"

उनकी पत्नी श्रीमती सर्वमंगला अवाक् होकर उनके चेहरे की ओर ताकती रह गई। जीवन में पहली बार उन्होंने पति को इस सीमातक विचलित देखा था।

फिर सर्वमंगला ने शेखर को समझाया तो उसने कहा कि "तुम चिंता मत करो, माँ! मेरा कोई अमंगल नहीं हो सकता। पिताजी भ्रमवश घबरा गए हैं। पर तुम देखती जाओ, मुझे कुछ भी नहीं होगा।"

सर्वमंगला ने फिर भी आग्रह भरे स्वर में कहा, "मैं तो कुछ जानती-समझती नहीं, पर तुम्हारे पिता जब ऐसा कह रहे हैं तो उनकी बात मानकर चलना ही उचित है। जैसा कहते हैं, वैसा ही करो न!"

माँ की जिद पर शेखर ने फिर से यंत्र धारण कर लिया। पर एक सप्ताह के बाद उसे फिर खोल कर रख दिया।

स्मृतिरत्न को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने इस बार अपनी पुत्र-वधू शशि को भी सतर्क कर दिया।

शशि रोकर पति से बोली, "क्योंजी, तुम्हारी कैसी मति मारी गई है? तुम पिताजी की बात क्यों नहीं मानते। ऐसे तो तुम पहले नहीं थे। विदेश जाकर ही तुम्हारी मति-गति का यह हाल हुआ है, पर मैं कहे देती हूँ कि तुमने अब यंत्र उतारा तो अन्न-जल त्याग दूँगी।" पत्नी की जिद पर शेखर ने फिर यंत्र पहन लिया।

कुछ दिन बीत गए। सब ठीक रहा। किंतु हमेशा दूसरे के मन की बात नहीं रख सकता कोई। फिर एक दिन यंत्र उतार डाला शेखर ने।

इस बार स्मृतिरत्न महाशय ने शेखर के मित्रों से अनुरोध कराया। बार-बार के अनुरोध से मन-ही-मन विद्रोही हो उठा शेखर। सो मित्रों की एक न सुनी उसने, उल्टे उनका मजाक ही उड़ाया।

स्मृतिरत्न महाशय ने आखिरी कोशिश कर देखी। शेखर को बुलाकर उन्होंने पूछा, "तो यंत्र नहीं ही पहनोगे तुम?"

शेखर चुप खड़ा रहा।

"पहन लेते तो अच्छा था। इसमें तुमको असुविधा ही क्या है?"

"कपड़े पहनने में दिक्कत होती है और भारी-भारी सा भी लगा रहता है।"

स्मृतिरत्न जी के चेहरे की मांसपेशियाँ सिकुड़ उठीं। उनके चेहरे पर कठोरता आ गयी। जरा देर चुप रहकर वे बोले, "अब समझ में आ गया कि शास्त्रों में क्यों कहा गया है कि नियति को भला कोई रोक सका है?" तो अब इस दीवार पर तुम यह भी लिखकर रख लो कि आज से ठीक तीन मास बाद रात के ठीक ४ बजे तुम इस संसार से कूच कर जाओगे।

और स्मृतिरत्न महाशय स्वयं वहाँ से चले गए।

खिड़की के उस पार खड़ी शशि भी ससुर की बातें सुन रही थी। उनकी अंतिम बात सुनकर वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

इस परिवार के अगले तीन मास कैसे बीते, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक दबी हुई वेदना खड्ग की तरह जैसे हर समय परिवार के सदस्यों के सिर पर झूलती रही। ऐसा सुखी परिवार जैसे विगत् युग के किसी चिड़चिड़े ऋषि के शाप से एकाएक ही नीरस और निरानंद हो उठा। नि:शब्द रहकर सब लोग आसन्न दुर्घटना की प्रतीक्षा करते रहे।

लेकिन जिसे लेकर इतना सिर दर्द था, उसे जैसे कोई चिंता ही नहीं थी।

तीन मास व्यतीत हो गए। आखिर वह निश्चित दिन आ पहुँचा।

उस दिन भी प्रात:काल स्मृतिरत्न महाशय ने नित्य की भांति स्नान-पूजन किया। उसके बाद दैनिक कार्य निबटाते रहे वे। उनके चेहरे पर पाषाण जैसी कठोरता थी। इन तीन महीनों से वे अपने आपको एक भयावह आघात सहने के लिए तैयार करते आ रहे थे, उनके चेहरे से यह स्पष्ट था। सारा दिन वे अपने कमरे का दरवाजा बंद करते शास्त्रों का चिंतन-मनन करते रहते। माँ ने उस दिन अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया। बिस्तर पर ही लेटी रहीं वे। शशि ने रोते-रोते भोजन बनाया और पति को परोसा। उस दिन वह कई बार बेहोश हुई।

दिन बीत गई और साँझ की साया स्मृतिरत्न महोदय के घर के सुंदर बगीचे पर उतर आई। पूरे घर में सन्नाटा छाया रहा। लगता जैसे निस्तब्धता के दिगंत प्रसारी सागर में डूबा हुआ था वह घर। घर के पिछवाड़े अशोक वृक्ष की डाल पर बैठा चक्रवात् पक्षी करुण स्वर में आधी रात तक रोता रहा।

स्मृतिरत्न महोदय ने शहर के दो डॉक्टरों को पहले से ही खबर दे रखी थी। शाम होते-होते वे भी आ पहुँचे। शेखर के कमरे में बिस्तर के अलावा और कोई सामान न रखा गया। शेखर को शिकार का काफी शौक था। इसलिए पिता के तमाम निषेधों को मानकर भी उसने बंदूक उसी कमरे में एक कोने में रखवा ली। उसने कहा, "मेरे प्राण तो यही हैं।"

बगल के कमरे में स्मृतिरत्न जी दोनों डॉक्टरों के साथ उपस्थित रहे। अपनी पत्नी को बुलाकर उन्होंने कहा, "तुमने शेखर को गर्भ में धारण किया था, अतः तुम उसके दरवाजे के समीप बिस्तर लगाकर सोओ।"

दोनों डॉक्टर हँसकर बोले, "स्मृतिरत्न जी, तोड़-जोड़ तो सब तैयार है मगर रोगी कहाँ है?"

स्मृतिरत्न महाशय विषण्ण हँसी हँसकर बोले, "रोगी अभी कोई नहीं है, मगर चार बजे सवेरे होगा। उसी समय के लिए प्रस्तुत रहना है हमें।"

शेखर यह सुनकर मंद-मंद हँसा।

वह दुरंत निशा सबके बीच से होकर आगे बढ़ती रही। अलग-अलग लोगों के मन में अलग-अलग भाव उमड़ते रहे। वह कृष्ण पक्ष की प्रथमा तिथि थी। जाड़े की शुरुआत ही थी। बाहर घटाघोप अंधेरा था। बाग के पेड़ पौधे निःशब्द खड़े थे।

पहले की सुनी हुई लखींदार और बेहुला की कहानी शशि को याद आने लगी। कैसी भयानक प्रतीक्षा थी।

मकान के पास ही कहीं से टन् टन् करके भोर के ४ बजे। लोग हड़बड़ा कर उठ बैठे। डॉक्टरों में से एक ने स्मृतिरत्न महोदय से कहा, "चार तो बज गए। शेखर पूरी तरह स्वस्थ है अभी!"

स्मृतिरत्न महोदय बोले, "शेखर का जन्म अपने मामा के घर हुआ था। संभव है, वहाँ उसके जन्म का समय देखने में एकाध मिनट की देर हो गई हो। आप लोग १५ मिनट और प्रतीक्षा कर लीजिए।"

रात के अंतिम प्रहर में काफी ठंडक हो गई थी। सभी लोग नींद से अलसाए हुए थे। गहरा सन्नाटा छाया था। जैसे वह भयानक निस्तब्धता किसी आतंककारी व्यापार को

प्रतीक्षा कर रही थी। एकाएक उस गहन निस्तब्धता को चीरकर एक नारी कंठ की हृदयवेधी चीख सुनाई पड़ी, "बाबूजी मैं लुट गई! हाय मैं मर गई!"

और वह चीख जैसे वायुमंडल को आलोड़ित करती हुई आकाश की छाती को चीरकर बार-बार ध्वनित-प्रतिध्वनित होने लगी।

शेखर को जैसे बिजली का करेंट-सा छू गया। उछलकर उठ बैठा वह और कमरे के कोने में रखी बंदूक उठाकर दौड़ा। उस भयानक चीख से जाग उसकी माँ भी उठ पड़ीं। एकाएक दरवाजे पर उनसे टकराकर शेखर गिर पड़ा और गोली चल गई--धाँय।

नारी कंठ की उस आर्त पुकार से पहले ही कई लोगों की नींद टूट चुकी थी। गोली चलने की आवाज होते ही सब लोग 'क्या हुआ? क्या हुआ?' चिल्लाते हुए दौड़ पड़े।

स्मृतिरत्न महोदय भी बत्ती लेकर दौड़े-दौड़े अंदर पहुँचे। देखा लहुलूहान शेखर जमीन पर पड़ा तड़प-कराह रहा था। गोली सीने के बाएँ हिस्से को चीरती हुई निकल गई थी। डॉक्टरों से उन्होंने कहा, "अब सँभालिए अपने मरीज को।"

परंतु शेखर को फिर होश नहीं आया। मृत्यु से घोर संघर्ष करके भी डॉक्टर शेखर को बचा नहीं पाए। सूर्योदय के पहले शेखर के प्राण-पखेरू उड़ गए।

जब शेखर के शव को श्मशान ले जाया गया, तब भी स्मृतिरत्न महोदय अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। जिस अज्ञात शक्ति के दुर्लंघ्य विधान को प्राण प्रण से प्रयत्न करके भी वे रोक नहीं पाए थे, उस समय संभवतः उसी के दुर्भेद्य रहस्य का आविष्कार करने में जुटे रहे।

मुँह बाए चुपचाप सारी कथा सुनता रहा मैं। स्मृतिरत्न महोदय अब मौन साधे निर्विकार भाव से घड़ियों की ओर निहार रहे थे। तभी टन्-टन करके चार का घंटा बजा और उसी के साथ काली मंदिर में होती आरती की आवाज सुनाई पड़ी।

ऐं! भोर के ४ बज गए। समय का ज्ञान होते ही चौंक पड़ा मैं।

अचानक वातावरण को बेधती हुई एक नारी कंठ का भयंकर आर्तनाद सुनाई पड़ा- साथ ही गोली छूटने की आवाज भी कानों में पड़ी। स्मृतिरत्न महाशय उठकर बगलवाले कमरे की ओर लपके। मैं भी पीछे-पीछे गया। देखा फर्श पर एक युवक औंधा पड़ा था। खून से लथपथ! भय विस्मय के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। रोमांचित हो उठा सारा शरीर। तभी बगल से अस्फुट स्वर में आवाज आई, "नियति के विधान को भला कौन रोक सकता है?"

पलटकर देखा-स्मृतिरत्न जी आहत युवक के ऊपर झुके हुए न जाने क्या बुदबुदा रहे थे?

सहसा वातावरण में एक विचित्र दुर्गन्ध फैल गई। सड़ते हुए मांस की भीषण दुर्गन्ध। सहन नहीं हुआ मुझसे। बाहर निकल आया लेकिन तब जो दृश्य देखा, उसकी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था। शरीर का सारा रक्त जम कर बर्फ हो गया। भय से काँपने लगा मैं।

हे भगवान! यह कहाँ फँस गया मैं?

मेरे सामने दर्जनों नर-कंकाल हवा में झूल रहे थे। वे सजीव से थे। उनकी आँखों के गड्ढों में से विचित्र, तीखी रोशनी निकल रही थी। मैं काँपता हुआ भयभीत दृष्टि से उनकी ओर देख ही रहा था कि सहसा उन उछलते-कूदते कंकालों के बीच से एक युवती प्रकट हुई। पहचानते देर न लगी। यह वही युवती थी, जिसे शाम को कमरे में देखा था।

धीरे-धीरे चलती हुई वह मेरे करीब आकर खड़ी हो गई। फिर फुस-फुस करते स्वर में कहने लगी, ''तुम.... तुम मुझे पहचानते हो? मैं... मैं.... शशि हूँ.....शशि। ''

''तुम.... तुम शशि हो?'' हकलाता हुआ बोला मैं।

''हाँ, मैं शशि हूँ! ये सारी प्रेतात्माएँ मुझे बहुत दिनों से अपने चंगुल में फँसाकर परेशान कर रही हैं। मैं इनसे छुटकारा पाना चाहती हूँ।''

''ये प्रेतात्माएँ कौन हैं?''

''ये सब मेरे पति, सास-ससुर और बंधु-बांधवों की प्रेतात्माएँ हैं।''

''सास-ससुर की? मगर... मैंने तो यह पूरी बात स्मृतिरत्न महोदय के साथ बातें करते ही काटी हैं।'' मैं भय और आश्चर्य से सिहर कर बोला।

''आपका कहना ठीक है, मगर वह वास्तव में स्मृतिरत्न महाशय की प्रेतात्मा थी, जिससे आपने पूरी रात बातें की हैं।'' शशि ने हँसकर कहा और इसके बाद वह सहसा लपक कर मुझसे इस तरह लिपट गई, जैसे काफी दिनों से पुरुष के स्पर्श अथवा आलिंगन की प्यासी हो। मेरे सीने पर अपना सिर रखकर कहने लगी, ''तुमको ज्योतिष-तंत्र की सारी विद्या बतला दूँगी मैं। बस, तुम यहाँ से, इस मकान से मुझे बाहर निकाल ले चलो। मैं इन प्रेतात्माओं से छुटकारा चाहती हूँ। मुझे किसी तरह बचा लो।''

मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि इतनी प्रेतात्माओं से आक्रांत और भयंकर रूप से अभिशप्त इस मकान में इतने दिनों से शशि अकेली क्यों और कैसे रह रही है? इसी के साथ एक और प्रश्न उभरा मस्तिष्क में। जब मैं स्मृतिरत्नजी की प्रेतात्मा से बातें कर रहा था, उस समय भी तो शशि कमरे में आई थी। उसने ससुर का पैर भी छुआ था। कमरे की बत्ती भी उसी ने जलाई थी। क्या उस समय मुझको असलियत नहीं बता सकती थी?

एकाएक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंधा और उसी के साथ मुझे लगा कि जो औरत मेरे सीने से लिपटी है। वह हाड़-मांस की नहीं, नर-कंकाल ही है।

"हाँ! सचमुच वह भी नर कंकाल ही था--शशि का नर-कंकाल।"

और मेरे मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा, "कौन हो तुम? क्या चाहती हो मुझसे? छोड़ो... मुझे... छोड़ो।"

क्या इस तरह चीखने-चिल्लाने से शशि की प्रेतात्मा ने मुझे मुक्त कर दिया अपने पैशाचिक बंधन से? जी नहीं!

धीरे-धीरे उसकी पकड़ मजबूत होती गई और न जाने कब, किस क्षण बेहोश होकर गिर पड़ा था मैं फर्श पर, मालूम नहीं।

जब चेतना लौटी तो अपने-आपको मैंने कदंब के पेड़ के नीचे पड़ा पाया। सबेरा हो चुका था। आँखें मल-मलकर चारों तरफ देखा। मकान में भयंकर निस्तब्धता छाई थी। फर्श पर धूल की मोटी परत जमी हुई थी। खिड़की और दरवाजों के पल्ले टूटकर झूल रहे थे। बगीचे में तमाम ठूँठ ही ठूँठ थे। लगता था, मानों वर्षों से उस मकान में कोई रहा ही न हो।

तो यह सब प्रेतलीला थी?

रात का सारा दृश्य एक-एक करके घूम गया मस्तिष्क में। सिर थामे मैं मकान के बाहर निकल ही रहा था कि एक सज्जन की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। वे कौतुहल और जिज्ञासा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए बोले, "कहिए! आप यहाँ कैसे?"

बुझे हुए स्वर में मैंने सारी कथा संक्षेप में उन्हें सुना डाली। वे महाशय शायद उसी मुहल्ले में रहते थे। सब कुछ सुनने के बाद बोले, "ज्योतिषी जी का यह मकान तो पिछले ८ साल से वीरान पड़ा हुआ है। भुतहा है न! शेखर के मरने के बाद एक-एक करके ज्योतिषी जी, उनकी पत्नी और पुत्रवधू सब एक साल के भीतर ही चल बसे थे। तभी से यह मकान भुतहा हो गया है।" फिर थोड़ा रुककर बोले, "कभी-कदा भोर के समय किसी औरत के चीखने-चिल्लाने और फिर गोली छूटने की आवाज भी मुहल्ले वालों को सुनाई पड़ती है।"

इतना कहकर वे अपना दुशाला सँभालते हुए आगे बढ़ गए।

बनारस लौटकर जब मैंने सीताराम जी झाँ से सारी बातें कहीं तो सहसा उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ।

प्रेतात्माओं की गुफा

वह काफी पुरानी गुफा थी। लगभग एक हजार वर्ष पुरानी गुफा के सामने एक काफी लम्बा-चौड़ा पहाड़ी टीला था, जिसके ऊपर पत्थर का एक गोल चबूतरा था।

चबूतरे के काले रंग के चिकने पत्थर पर सिन्दूर पुता हुआ था और कहीं-कहीं खून के कतरे सूखकर जम गए थे। चबूतरे के बगल में काफी पुराना और घना पीपल का पेड़ था। पता चला कि वह ब्रह्म बाबा का थान है। लोग वहाँ मनौतियाँ मानते हैं और पूरी हो जाने पर चबूतरे की पूजा करते हैं और उस पर बकरे की बलि देते हैं।

जहाँ वह गुफा थी और टीला था उसके चारों तरफ शतपुड़ा की सुनसान घाटी मीलों तक फैली हुई थी और उस घाटी के सीने को चीरती हुई एक पहाड़ी नदी गरजती-तरजती कुछ दूर पर बह रही थी। नदी की धारा से लगभग चार-पाँच फर्लांग पूरब की ओर जाकर एकाएक घने जंगलों का सिलसिला शुरू हो जाता था, वहीं करीब ४०-५० घर का एक गाँव था। गाँव के निवासी आदि-वासी लोग थे। उन्हें मालूम हो चुका था कि सरकार की ओर से टीले की खुदाई और गुफा की जाँच होने वाली है। पहले तो गाँव के मुखिया हरपाल ने काफी विरोध किया था मगर बाद में बिल्कुल चुप हो गया। इसका कारण उस समय मेरी समझ में नहीं आया था। हरपाल अपने को गुनी और ओझा समझता था। पूरे गाँव में उसका दबदबा था। उसके सिर्फ एक लड़की थी-गौरामती। उम्र थी यही करीब १६-१७ साल की। जिस्म का रंग स्याह होते हुए भी उसमें आकर्षण था। मझोला कद, गोल चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, चपटी नाक और मोटे ओठों बावजूद भी गौरा में चढ़ती जवानी का अपना सौन्दर्य था, जो बरबस आँखों के सहारे दिल में उतर जाता था। जब मैंने उसे देखा तो बस देखता ही रह गया। हरपाल ने कहा, ''हुजूर कोई तकलीफ हो तो गौरा को खिदमत में लगा दूँ। खाना अच्छा पकाती है।''

मैंने स्वीकृति से सिर हिला दिया। मुझे उस इलाके में दो महीने रहना था। नौकर की जरूरत थी ही उस समय।

गौरा के अलावा ऊपर का काम करने के लिए मैंने एक नौकर और रख लिया, जिसका नाम था--जग्गू। बातचीत के सिलसिले में एक दिन हरपाल ने बतलाया कि गुफा में भूत, प्रेत तथा चूड़ैल रहती हैं। कभी-कदा उनकी वीभत्स और डरावनी आवाजें भी सुनाई पड़ती हैं। उनके डर से गुफा के भीतर कोई जाने का साहस नहीं करता। सुना है कि गुफा के भीतर ब्रह्म बाबा की चौकी भी है और कभी-कदा उनकी मजलिस भी लगती है। उस समय वहाँ बड़ी-बड़ी प्रेतात्माएँ आकर इकट्ठी होती है।

अक्टूबर महीने की शुक्ल पक्ष की रात थी। चौदह का चाँद आकाश में मुस्करा रहा था। रुपहली चाँदनी चारों ओर बिखरी थी। वातावरण बिल्कुल निस्तब्ध था। चारों ओर सायँ-सायँ हो रहा था। मैं अपने कैम्प में लेटा हुआ अंग्रेजी का एक उपन्यास पढ़ रहा था। उस समय रात के शायद ग्यारह बजे थे। न जाने कब पढ़ते-पढ़ते मैं सो गया और उस अवस्था में मैंने एक भयानक दृश्य देखा-एक कटा हुआ खून में डूबा हुआ सिर। ऐसा लगता था कि अभी-अभी किसी का सिर धड़ से अलग किया गया है। उस कटे हुए सिर

की आँखें गुड़हल के फूल की तरह लाल बिल्कुल सजीव लग रही थीं। उनमें घृणा, क्रोध और द्वेष का मिला-जुला भाव था। वे मेरी ओर घूर रही थीं। भय और आतंक से मैं एकबारगी सिहर उठा और उसी के साथ मेरी नींद अचानक खुल गई। सारा शरीर पसीने से भींग उठा। मगर यह क्या? सामने देखता क्या हूँ कि एक भयानक शक्ल का व्यक्ति मेरी चारपाई के करीब खड़ा मेरी ओर देखते हुए मुस्करा रहा है। हे भगवान! कौन है यह?

उसका रंग बिल्कुल काला तथा सिर मुड़ा हुआ था, मगर दाढ़ी काफी बढ़ी हुई थी। आँखें क्रूर और भयानक थी। गले में मूंगों और रंग-बिरंगी गोलियों की मालाएँ उसने पहन रखी थी। अपने दाहिने हाथ में आदमी के पंजे की हड्डियाँ लिए हुए था वह जिस पर लाल सिन्दूर पुता हुआ था। उस व्यक्ति पर जैसे ही मेरी नजर पड़ी, मैं बेतहाशा चीख पड़ा।

मेरी चीख सुनकर गहरी नींद में सो रहे मेरे सहयोगी वर्मा जी और राम नाथन जाग गए और अपने-अपने कैम्प से दौड़कर मेरे पास आ गए। राम नाथन के हाथ में भरी हुई बन्दूक थी। कैम्प में घुसते ही उनकी नजर उस व्यक्ति पर पड़ी और उन्होंने तुरन्त अपनी बन्दूक उसके सीने से लगा दी, ''भागने की कोशिश मत करना वर्ना.........'' रामनाथन गरजे।

उस व्यक्ति की आँखें दहक उठी और होंठ भिंच गए।

''बोल स्साले! कौन हो तुम?'' वर्मा जी ने लपककर उसकी गर्दन पकड़ ली और बेतहाशा उसको मारने लगे। मगर वह खामोश होकर बराबर मार खाता रहा। तभी जग्गू आ गया वहाँ। वह हाँफ रहा था। शायद काफी दूर से वह दौड़ा-दौड़ा आया था।

हाँफते हुए कहने लगा, ''सरकार! छोड़ दें इसे। वर्ना अनर्थ हो जायेगा। जानते हैं; किसको मार रहे हैं आप?''

''क्यों क्या बात है? कौन है यह आदमी?''

''सरकार चोखूराम है! चोखूराम। बहुत बड़ा तांत्रिक है यह। हाकिनी जगा चुका है मशान पर। बड़ी शक्ति है इसमें। जो चाहे वह कर सकता है।''

रामनाथन की बन्दूक झुक गई। वर्मा जी के भी हाथ तुरंत रुक गए।

चोखूराम ने हाथ में लिए हुए इन्सानी पंजें के कंकाल की ओर एक बार देखा फिर मुस्कराया। ऐसा लगा कि उसको अपनी शक्ति का घमण्ड हो।

''मगर चोखूराम इतनी रात को मेरे कैम्प में क्यों आया था।''--मैंने जग्गू से प्रश्न किया।

"आप उसी से पूछिए सरकार!"

"अच्छा, तुम बाहर जाओ। जब बुलाऊँ तभी आना भीतर।"

जब जग्गू बाहर चला गया तो मैंने चोखूराम के करीब जाकर पूछा, "सही-सही बतलाओ, असली बात क्या है?"

चोखूराम ने एक बार इन्सानी पंजे की हड्डी को घुमाया और फिर आहिस्ते से कहा, "मुझे गाँव के लोगों ने आप लोगों के ऊपर हाकिनी-विद्या का प्रयोग करने के लिए भेजा था। "

"किस लिए?"

"ताकि आप लोग डरकर यहाँ से भाग जाएँ और खुदाई का काम शुरू न करें।"

"क्या तुमको विश्वास है कि हम लोग डर जायेंगे और काम शुरू न करेंगे।"

"हाँ! मुझे पूरा भरोसा है अपनी तंत्र-विद्या पर।"

"मगर मैं इन सबको कोरा बकवास समझता हूँ चोखूराम।"

"आपने थोड़ी देर पहले कितना भयानक सपना देखा था। अभी भी याद होगा आपको। क्या फिर भी विश्वास नहीं है आपको?"--इतना कहकर चोखूराम व्यंग से मुस्कराया।

"तुम्हारा कहने का मतलब क्या है?"

"वह सपना, मेरी ही विद्या का चमत्कार था।"

मैंने सोचा, निश्चय ही चोखूराम हम सबको अपने मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने जाल में फँसाना चाहता है, मगर सपने की बात वह कैसे जान गया........?

मेरा इरादा चोखूराम को छोड़ देने का था। मगर रामनाथन उसे पुलिस में देना चाहते थे। सबेरा हुआ। पुलिस आई। चोखूराम को पुलिस के हवाले कर दिया गया। थोड़ी देर बाद हरपाल आ गया। आते ही कहने लगा, "हूजूर गजब कर दिया आपने। चोखूराम को छुड़ा लीजिए, नहीं तो आप लोगों पर बड़ी भारी विपत्ति आ जाएगी। घोर संकट में फँस जाएँगे आप सब!"

थोड़ा रुककर हरपाल आगे बोला, "ब्रह्म वीर को जगाने के लिए गाँव वालों की ओर से चोखूराम ने ग्यारह बाँझिन औरतों की अपने हाथ से उसी चबूतरे पर बलि दी है और बलि देकर उसी टीले पर उनकी लाशों को दफना भी दिया है। वे औरतें चुड़ैलों की शक्ल में अमावस्या की रात में निकलती है और सबेरा होने तक नाचती-कूदती और गाती हैं।'

उसी दिन शाम को पता चला कि चोखूराम पुलिस की निगरानी से भाग गया। पुलिस उसको खोज रही है।

दूसरे दिन एक आश्चर्यजनक घटना घट गई। जिस पर सहसा किसी को विश्वास न होगा। वर्मा जी और रामनाथन की बोली अचानक बन्द हो गई। दोपहर होने तक दोनों में पागलपन के लक्षण प्रकट होने लगे। मैं परेशान हो उठा। यह सब कैसे हो गया? दो-दो अधिकारियों की यह दुर्दशा...। कहीं चोखूराम तो कुछ नहीं कर रहा है। सहसा विश्वास नहीं हो रहा था उसकी तांत्रिक विद्या पर! उसी दिन दोनों व्यक्तियों को इलाज के लिए शहर भेजने की व्यवस्था की गई। मैं अकेला उस निर्जन प्रान्त में रह गया। सोचा, कहीं मेरी भी हालत ऐसी न हो जाए। सारा शरीर भय से रोमाचिंत हो उठा। मगर तभी गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला पर हाथ चला गया। तब थोड़ी शान्ति मिली।

साँझ होते ही काले बादल घिर आए। थोड़ी देर बाद वर्षा होने लगी। एकाएक ठंड भी बढ़ गई। गौरा बहुत जल्दी खाना पकाकर चली गई थी। मैंने खाना खाया और रजाई ओढ़कर चारपाई पर लेट गया। नींद के कारण पलकें झपकी जा रही थीं।

एकाएक आँखें खुल गई। देखा, गौरा चारपाई के पास खड़ी थी। दुबारा कभी-कदा कोई जरूरी काम पड़ने पर ही वह आती थी। मगर उस दिन कोई जरूरी काम नहीं था। फिर क्यों आई थी बारिश में भींगती हुई वह? समझ में नहीं आया।

वह मेरे चेहरे पर झुक गई। बोली, ''सरकार! अभी आप जग रहे हैं। बदन दबा दूँ।''

''नहीं! इसकी जरूरत नहीं है। तुम जाओ यहाँ से।''

गौरा जरा सा भी विचलि नहीं हुई। बोली, ''अच्छा! कल सबेरे आकर जल्दी ही चाय बना दूँगी। वह वापस न जा सकी।''

एकाएक वर्षा की गति तीव्र हो उठी और साथ ही हवा भी तेज हो गई। अचानक गीली बरसाती हवा का एक तेज झोंका आया और बर्फ जैसी शीतल हवा कैम्प के भीतर फैल गई। लालटेन के पीले प्रकाश में मैंने देखा गौरा, ठंड से काँप रही थी। उसका चेहरा भी स्याह पड़ गया था। मैंने उसे एक कम्बल दिया और एक तरफ सो जाने को कहा गौरा चूल्हे के पास कम्बल ओढ़कर सो गई। उसके बाद मैं भी सो गया। मगर जब सबेरा होने पर नींद खुली तो चौंक पड़ा। गौरा मेरी बगल में सो रही थी। जागने पर उसने कहा कि ठंड के कारण नींद नहीं आ रही थी इसलिए मेरे बिस्तर पर चली आई।

मैने गौरा को काफी डाँटा-फटकारा मगर वह बराबर मुस्कराती, हँसती रही। गौरा पर काफी गुस्सा आ रहा था। उसकी चुम्बक जैसी आकर्षण शक्ति पर तबीयत झुँझलाई। नीच खानदान की लड़की। बेशर्म, बेहया कहीं की, बदमाश...

एक सप्ताह के अन्दर ही मेरी सहायता के लिए वर्मा जी और रामनाथन की जगह दो दूसरे अधिकारी दिल्ली से आ गए। मैं बहुत जल्दी टीले की खुदाई शुरू करा देना चाहता था। दो दिन बाद बंसल साहब की देख-रेख में खुदाई शुरू हो गई। बंसल साहब, रामनाथन के जगह पर आए थे। बड़े ही मिलनसार और खुश-मिजाज व्यक्ति थे। उनकी पत्नी भी साथ आई थीं। दो-तीन साल पहले ही बंसल साहब की शादी हुई थी। पत्नी का नाम था--मनोरमा। काफी सुन्दर, आकर्षक और सभ्य युवती थी।

खुदाई शुरू हो जाने पर गुफा का रहस्य भी जानने के लिए मेरा मन व्याकुल हो उठा। भीतर जाने के लिए मेरे साथ दूसरे अधिकारी चोपड़ा साहब तैयार थे। दूसरे ही दिन चोपड़ा साहब को साथ लेकर मैंने गुफा के भीतर प्रवेश किया। जैसे-जैसे हम लोग आगे बढ़ते गए, अन्धकार भी गाढ़ा होता गया। टार्च की रोशनी में किसी तरह आगे बढ़ रहे थे। गुफा के भीतर हम कहाँ तक गए इसका अन्दाजा न मुझे लग पाया और न चोपड़ा को। घड़ी देखने पर इतना ही मालूम हो सका कि करीब एक घंटा हो गया चलते-चलते।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर मुझे गुफा काफी चौड़ी मिली। आगे चौड़ाई बढ़ती ही गई। अचानक कुछ फ़ासले पर प्रकाश दिखलाई पड़ा।

''शर्मा! यह प्रकाश कैसा है?''--चोपड़ा साहब बोले।

''यही तो मैं भी जानने की कोशिश कर रहा हूँ!''

जहाँ पर प्रकाश हो रहा था वहाँ गुफा हद से ज्यादा चौड़ी थी। जमीन पर तराशे हुए पत्थर बिछे थे। दाहिनी ओर दो-तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं और सामने की ओर लगभग छह फीट लम्बा-चौड़ा गोल दरवाजा था। शायद आगे जाने के लिए वह रास्ता था। मैं और चोपड़ा साहब दोनों ने चारों तरफ नजरें घुमा-घुमाकर देखा मगर प्रकाश कहाँ से आ रहा है, इसका पता न चल सका। न जाने क्या सोचकर मैं सामने वाले दरवाजे में घुस गया। मेरे साथ ही चोपड़ा साहब भी घुसे। लगभग १०-१५ कदम चलने पर फिर एक लम्बी-चौड़ी जमीन मिली और वहाँ भी खूब प्रकाश हो रहा था। दीवारों पर भी लम्बे-लम्बे पत्थर लगे थे। प्रकाश का श्रोत अब भी हम दोनों के लिए रहस्यमय ही बना रहा। मेरा अनुमान था कि गुफा वहीं खत्म हो गई है। मगर यह मेरा भ्रम मात्र था। उस लम्बे-चौड़े आँगन के ठीक सामने एक दरवाजा था, जो कम-से कम छह फीट ऊँचा रहा होगा। चोपड़ा को आँगन में ही खड़े रहने का आदेश देकर मैं दरवाजे के भीतर घुसा। वह बहुत बड़ा कमरा था। वातावरण में एक अजीब सी सुगन्ध फैल रही थी। जिससे मेरा मस्तिष्क भारी होने लगा। कुछ ही क्षणों बाद कमरे में हल्के गुलाबी रंग की फीकी गुलाबी रोशनी के सैलाब में मैंने अपने सामने जो कुछ देखा--उससे मेरा रोम-रोम सिहर उठा।

कमरे के ठीक बीचो-बीच करीब दो फुट व्यास का स्फटिक पत्थर का एक गोल चबूतरा था, जिसके ऊपर किसी तांत्रिक देवी की अति प्राचीन और दुर्लभ स्फटिक की

मूर्ति स्थापित थी। उसकी ऊँचाई करीब दो फुट और चौड़ाई १० इंच से अधिक नहीं थी। टार्च की तीव्र रोशनी में काफी देर तक मूर्ति की ओर निहारता रहा। सबसे नीचे अष्टदल कमल था, जिसके ऊपर शंकर जी समाधि मुद्रा में लेटे हुए थे। उनकी नाभि से कमल-नाल निकला हुआ था और उसके अर्ध विकसित कमल के ऊपर पद्मासन में कोई देवी बैठी हुई थी, जिसकी चार भुजाएँ थीं। देवी की गोद में कोई दूसरी देवी बैठी हुई थी, जिनकी दोनों आँखों को पहली वाली देवी ने अपने दो हाथों से बन्द कर रखा था। उनके शेष दो हाथों में शंख और ध्वज था। जो देवी गोद में बैठी थी, उसको आठ भुजाएँ थीं। ऊपर वाली दाहिनी और बायीं भुजा वरद और अभय मुद्रा में थी। शेष में देवी ने खड्ग चामर, चक्र त्रिशुल और पाश धारण किया था, दोनों देवियों की आँखें हीरे की थीं जो अपने आप में चमक रही थीं।

मैंने कमरे में से ही चोपड़ा को पुकारा।

चोपड़ा भी मूर्ति देखकर आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गए।

''जानते हैं चोपड़ा साहब! यह मूर्ति कम-से कम दो हजार वर्ष पुरानी है। हो सकता है यह विक्रम काल की हो। इसे किसी प्रकार निकालकर बाहर ले चलना चाहिए।'' अभी मैं यह कह ही रहा था कि न जाने कहाँ से, किधर से एक भयंकर काला विषधर निकल आया और धीरे-धीरे रेंगता हुआ मूर्ति के करीब पहुँचा और फिर पूरी मूर्ति को लपेटकर उसके ऊपर फन फैला दिया। बड़ा भयंकर दृश्य था वह। मैं तो डर से बुरी तरह काँपने लगा। अचानक धाँय-धाँय की आवाज से पूरा कमरा हिल उठा। देखा-साँप का फन चिथड़े-चिथड़े हो चुका था और फर्श पर वह बुरी तरह छटपटा रहा था। काले रंग के खून से देवी की मूर्ति भींग उठी थी। चोपड़ा ने सर्प पर गोली चला दी थी।

''यह क्या किया आपने चोपड़ा साहब?''

मगर चोपड़ा ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने आगे बढ़कर दोनों हाथों से मूर्ति को कई बार जोर से हिलाया और फिर चबूतरे पर से उसको एक झटके से उठा लिया। मैं मूक दर्शक की तरह देखता रहा।

जब हम दोनों गुफा के बाहर निकले--उस समय साँझ की स्याह चादर फैल चुकी थी। हल्की बारिश हो रही थी। गुफा के भीतर दुर्लभ मूर्ति मिली है, इस बात को सर्वथा गुप्त रखा गया। मुझे मूर्ति पाने की जितनी खुशी थी, उनता ही गम था सर्प के मरने का । चोपड़ा ने बतलाया कि यदि सर्प को न मारा जाता तो मूर्ति कैसे हासिल होती। मैं सोचने लगा, हो सकता है उस सर्प के रूप में कोई योगी रहा हो या साधक। कहीं कोई भारी गलती हुई है, कोई भारी अपराध हुआ है, ऐसा बार-बार मुझे लग रहा था उस समय। मेरा अनुमान सही निकला।

तीसरे ही दिन से अविश्वसनीय मरण यज्ञ शुरू हो गया। वर्मा जी और रामनाथन की मृत्यु आचानक अस्पताल में हो गई। उसी दिन रात में चोपड़ा साहब ने स्वयं फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली और एक सप्ताह के भीतर ही जीप दुर्घटना में बंसल साहब भी चल बसे।

आप ही सोचिए। एक के बाद एक चार आफिसरों की मृत्यु। मेरी मानसिक स्थिति कैसी रही होगी उस समय भय और आतंक से मैं अर्ध-विक्षिप्त हो रहा था। पागलों जैसी मेरी स्थिति हो गई थी। वातावरण में कोई अज्ञात तांत्रिक शक्ति क्रियाशील थी, यह समझते देर न लगी मुझे। क्या करूँ और क्या न करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

घबराहट और बेचैनी से बचने के लिए उस रात 'ब्लैक नाइट' की पूरी बोतल पी गया। बाहर बर्फीली हवा हाहाकार करती हुई दरख्तों पर अपना सिर धुन रही थी। काले बादलों से अटकर आकाश काला पड़ गया था। चारों ओर सायँ-सायँ हो रहा था। नशे में डूबा हुआ चारपाई पर मैं बेसुध पड़ा था। अचानक सीने और गले के करीब किसी के कोमल स्पर्श का अनुभव हुआ। अंधेरे में मेरे शरीर पर कोई अपनी कोमल उँगलियाँ फेर रहा था। उस स्थिति में और उस वातावरण में वह स्पर्श काफी सुखद लगा मुझे।

'कौन है?' धीरे से पुकारा मैंने!

'मैं हूँ सरकार, गौरा........'

नशे से बोझिल आँखें खोलकर देखा--गौरा मुझ पर झुकी हुई थी। उसके चेहरे पर इस समय अजीब-सा भाव था।

'क्या बात है गौरा? आज रात फिर... तुम..'

''हाँ, सरकार! मैं जान-बूझकर आज रात रुक गई यहाँ! फिर थोड़ा रुककर आगे वह हकलाते हुए कहने लगी, आप मुझे बदमाश और आवारा लड़की समझते हैं.... पर.... सरकार मैं ऐसी नहीं हूँ। पहली बार जब मैंने आपको देखा तभी से आपको चाहने लगी हूँ। मेरे दिल की यह बात न जाने कैसे चोखूराम को मालूम हो गई है। वह अब मुझसे शादी करने के लिए मेरे बाबा पर दबाव डाल रहा है। इतना ही नहीं सरकार! वह आपको रास्ते से हटाने के लिए गाँव के सूखे कुएँ में बैठकर रात को जादू-मंतर भी करता है। कल ही रात को उसने आपके नाम से पाँच मुर्गों की एक साथ बलि दी है सरकार। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। मैं नहीं चाहती कि आपकी जान खतरे में पड़े। आप यहाँ से चले जाएँ और मुझको अपने साथ ले चलें। मैं हर वक्त आपके साथ चलने को तैयार हूँ। अगर आप मुझे नहीं ले गए तो वह मुझे जबर्दस्ती अपनी बीवी बना लेगा और एक दिन मेरी भी ब्रह्म बाबा के थान पर बलि दे देगा। इस तरह वह गाँव की कई लड़कियों के साथ कर चुका है सरकार...।'' इतना कहकर गौरा ने अपना सिर मेरे सीने पर रख दिया और हिलक-हिलककर रोने लगी।

जाड़े की उस भींगी रात में गौरा का स्पर्श और सान्निध्य मुझे बड़ा सुखकर लगा। अपने आपको थोड़ा हल्का महसूस किया। काफी देर तक वह मेरे सीने से सटी रही और मैं उसकी नंगी पीठ सहलाता रहा। उसी स्थिति में मुझको बहुत सारी और रहस्य की बातें मालूम हुई। गौरा ने ही बतलाया सब कुछ। भयंकर तांत्रिक प्रयोग कर चोखूराम ने ही चारों अफसरों को मौत की गोद में पहुँचाया था। गुरु की दी हुई रुद्राक्ष की माला के कारण मुझ पर उसका तंत्र-मंत्र नहीं लग पा रहा था। वर्ना कभी का मैं भी खत्म हो गया होता।

चोखूराम की सारी तांत्रिक शक्ति उसी पंजे के कंकाल में थी। गौरा ने बताया यदि किसी तरह वह खूनी पंजा हासिल हो जाए तो उसकी सारी शक्ति खत्म हो जाएगी। जब मैंने गौरा से पूछा कि वह पंजा मिलेगा कैसे? तो उसने बतलाया कि वह उसे प्राप्त कर सकती है मगर.... इसके लिए उसके शरीर को अपवित्र करना होगा? यानी....

मैं गौरा के आशय को समझ गया।

"यदि मुझे वह खूनी पंजा मिल जाए तो क्या चोखूराम की सारी तांत्रिक शक्ति मेरे पास चली आएगी?" .... मैंने प्रश्न किया।

"हाँ सरकार!" गौरा, हुलसकर बोली, "गुफा की सारी प्रेतात्माएँ आपके कब्जे में हो जाएँगी। फिर तो आप जो चाहें वह कर सकते हैं!"

जैसा कि मैं बतला चुका हूँ उस समय तंत्र-मंत्र और भूत-प्रेत पर मेरा विश्वास नहीं था मगर गौरा के शब्दों में न जाने कौन-सा ऐसा जादू था कि तांत्रिक-शक्ति प्राप्त करने की लालसा एकाएक जागृत हो उठी मन में।

रात काफी हो चुकी थी। हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी उस समय। "ब्लैक नाइट" की दूसरी बोतल खोली और एक के बाद एक कई 'पेग' पी गया। गौरा ने भी पी। कब किस क्षण हम दोनों होश खो बैठे और कब किस क्षण एक-दूसरे के अस्तित्व में समा गए-मालूम नहीं हुआ। गौरा एक ही रात में किशोरी से पूर्ण युवती बन गई। जिसका नतीजा दूसरे ही दिन सामने आ गया। गाँव के उस सूखे कुएँ में चोखूराम मरा पड़ा मिला।

गौरा की देह अपवित्र होने से चोखूराम की मौत का क्या संबंध था? यह रहस्य आज तक मेरी समझ में नहीं आया। मगर गौरा ने जब उस खूनी पंजे को लाकर मुझे दिया, उस समय उसके काले और मोटे होठों पर एक विचित्र और रहस्यमयी मुस्कराहट थी।

खूनी पंजे को हाथ में लेते ही मेरा सारा शरीर एकबारगी सनसना गया और रोम-रोम से जैसे चिनगारियाँ छूटने लगीं। मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे चारों तरफ के वातावरण

में अनेकों काली छायाएँ मँडरा रही हैं। डर से मैंने आँखें बन्द कर लीं और जब कुछ देर बाद आँखें खोलीं तो वे सारी छायाएँ गायब मिलीं। चार-पाँच दिन तक तो कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी मगर एक रात अचानक मेरी आँख खुल गई। शायद अमावस्या की रात थी वह। चारों ओर स्याह अंधकार फैला हुआ था और एक विचित्र सी घुटन वातावरण में विद्यमान थी। सहसा मेरी नजर सामने टीले की ओर चली गई। उस गहरे अंधकार में भी मैंने साफ देखा कि वहाँ बहुत सारी छायाएँ नृत्य की मुद्रा में उछल-कूद रही थीं। किनकी छायाएँ थीं वे? क्या बाँझ औरतों की प्रेतात्माओं की तो नहीं थी?

कौतूहल और जिज्ञासावश मेरे कदम अपने टीले की ओर बढ़ गए और जब मैं टीले के करीब पहुँचा तो मेरे शरीर का सारा खून जैसे हिम हो गया। पैर काँपने लगे। होश-हवास गुम होने लगे।

मैंने देखा--ब्रह्म बाबा के थान के चबूतरे पर एक लम्बी काठी का व्यक्ति बैठा हुआ था। शरीर का रंग तांबिया था। सिर्फ एक लँगोटी पहन रखी थी उसने। दाढ़ी-मूँछ तो नहीं थी मगर सिर के बाल काफी लम्बे थे और पीठ पर बिखरे हुए थे। उनका रंग भूरा था। आँखें बड़ी-बड़ी थी, मगर पलकें नहीं थी। जबड़ा नीचे की ओर लटका हुआ था। छाती हद से ज्यादा चौड़ी थी और उस पर जंगली घास की तरह बाल उगे हुए थे। कुल मिलाकर वह व्यक्ति काफी भयानक और डरावना लग रहा था। जब मेरी आँखें उससे मिली तो उसने घृणा से दूसरी ओर अपना चेहरा घुमा लिया। उस समय उसके सामने कई औरतें एक साथ बेढंगे तौर पर नृत्य कर रही थीं। उनकी शक्ल-सूरत भी डरावनी थी। वे साक्षात् राक्षसी सी लग रही थीं। उनके बाल जमीन तक लम्बे थे और हवा में लहरा रहे थे। शरीर का रंग काला था। चेहरा किसी का गोल तो किसी का लम्बा था। आँखों की जगह बड़े-बड़े गड्ढे थे। स्तन हद से ज्यादा लम्बे थे जिस पर हड्डियों की मालाएँ झूल रही थीं। थोड़ी देर बाद प्रेतात्माओं का वह बेहूदा नृत्य खत्म हो गया और फिर वह व्यक्ति अपनी जगह से उठा और गुफा की ओर चल पड़ा। उसके पीछे वे सारी प्रेतात्माएँ भी चल पड़ीं। संज्ञा शून्य-सा स्तब्ध खड़ा मैं सब कुछ देखता रहा। अचानक अपने कन्धे पर किसी का स्पर्श पाकर चौंक पड़ा मैं। पलटकर देखा, बगल में खड़ी गौरा मुस्करा रही थी।

"तुम यहाँ कैसे आई?" मैंने उससे पूछा।

मगर उसने जवाब नहीं दिया। मेरा हाथ कसकर पकड़ लिए और लगभग खींचती हुई गुफा की ओर ले गई मुझे। मेरी समझ में नहीं आया कि वह चाहती क्या है? अब मैं उसके साथ गुफा के भीतर चल रहा था। वह बिल्कुल खामोश थी। उसकी आँखें लाल थीं। चेहरे पर मुर्दनी-सी छाई थी। थोड़ी देर बाद मैं उसके साथ उस जगह पर जा पहुँचा जहाँ वह विचित्र मूर्ति मिली थी मुझको और बंसल साहब ने गोली मार कर साँप को

हत्या की थी। मैं यह देखकर हैरान रह गया कि मूर्ति-जिसे मैंने अपने कैम्प में एक मजबूत सन्दूक में बन्द कर ताला लगाकर रखा था-वहाँ अपने आसन पर विराजमान थी। आप ही अनुमान लगाइए मेरी मानसिक दशा कैसी हो गई होगी? कभी कल्पना तक नहीं की थी कि ऐसी अनहोनी घटना घट जाएगी। मूर्ति वहाँ कैसे पहुँची? यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं स्तब्ध खड़ा मूर्ति की ओर अपलक न जाने कब तक देखता रहा। सिर घुमाकर गौरा से मैंने कुछ पूछना चाहा मगर गौरा वहाँ नहीं थी। आश्चर्य हुआ। गौरा कहाँ चली गई? कहाँ गायब हो गई वह? पागलों की तरह चारों ओर चक्कर लगाने लगा मैं गुफा में। तभी मेरे कानों में एक कोमल और मधुर संगीत-लहरी गूँज उठी। निश्चय ही वह संगीत मेरे इस संसार का नहीं था। उसके स्वर में एक विशेष प्रकार का आकर्षण और सम्मोहन था। कभी उसकी स्वर-लहरी तेज हो जाती तो कभी मन्द।

अभी संगीत का कोमल, स्निग्ध स्वर गुफा के रहस्यमय वातावरण में गूँज ही रहा था कि मैंने देखा न जाने कहाँ और किधर से एक-एक कर दर्जनों व्यक्ति वहाँ आकर इकट्ठे हो गए। वे सभी जंगली और बदसूरत थे। उनके शरीर का रंग बिल्कुल काला था और वे पूरी तरह से नंगे थे। उनके चेहरों पर अजीब-सी खामोशी थी। थोड़ी देर बाद जिस व्यक्ति को मैंने ब्रह्म बाबा के थान पर बैठा हुआ देखा था वह अचानक आकर वहाँ खड़ा हो गया। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि सामने से गौरा आती हुई दिखलाई दी।

''गौरा....। '' मैंने चीखकर पुकारा।

मगर उसने मेरी ओर इस तरह देखा मानो मुझको पहचानती ही नहीं। मैं वहाँ से भाग निकलने को सोचने लगा और इसके लिए मैं मुड़ा ही था कि एक लम्बी-चौड़ी काठी का संन्यासी गुफा के रास्ते पर खड़ा हुआ मिला। उसका रंग ताँबिया था। ऊँचा ललाट। सिर पर जटाजूट। मस्तक पर त्रिपुण्ड और लाल सिन्दूर का गोल तिलक। शरीर पर लाल रेशमी वस्त्र। पैरों में खड़ाऊँ। निश्चय ही वह कोई कठोर तांत्रिक सन्यासी था। उसके एक हाथ में थी किसी इन्सान के पंजे की समूची हड्डी। संन्यासी का चेहरा भव्य और तेजोमय था। लाल हो रहे नेत्रों में भी प्रखर ज्योति थी। उसने एक बार मेरी ओर घूर के देखा और फिर उच्च स्वर में पुकारा, ''माहेश्वरानन्द....।''

आवाज सुनकर ब्रह्म बाबा के थान वाला व्यक्ति जल्दी से चलकर संन्यासी के करीब पहूँचा और फिर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया उसने।

''सब ठीक है न! संन्यासी बोला।''

''हाँ! गुरुदेव। आपकी आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया गया है।''

माहेश्वरानन्द ने विनम्र स्वर में जवाब दिया।

''शीघ्र आगे का कार्य शुरू होना चाहिए।''

"जो आज्ञा गुरुदेव!"

मैंने देखा दूसरे ही क्षण उस विलक्षण देवी की विलक्षण मूर्ति के सामने बहुत सारी तांत्रिक पूजा की वस्तुएँ इकट्ठी हो गई। संन्यासी ने स्वयं देवी की पूजा की और अन्त में अपने साथ लाये खड्ग और इन्सानी पंजे की सिन्दूर लगाकर पूजा की। इसके बाद उसने हाथ हिलाकर माहेश्वरानन्द को कोई गुप्त संकेत किया जिसे मैं न समझ सका। मगर उसके बाद मेरे सामने जो लोमहर्षक और रोमाञ्चकारी दृश्य उपस्थित हुआ उसे आज भी याद कर काँप उठता हूँ। मैंने देखा-उस भयंकर तांत्रिक सन्यासी ने एक के बाद एक उन सभी व्यक्तियों की बलि देवी के सामने दे दी जो वहाँ आए थे। वे बेचारे निरीह पशु की तरह अपना सिर झुकाते फिर भयंकर खड्ग हवा में लहराता और उसके बाद उनका सिर धड़ से अलग होकर देवी के निकट जा गिरता। थोड़ी ही देर में सारी-धरती नर-रक्त में डूब गई। सन्यासी ने सभी नर-मुण्डों को इकट्ठा किया फिर उनकी विशेष प्रकार की तांत्रिक पूजा की। काफी देर तक वह देवी के सामने ध्यान मुद्रा में बैठा रहा।

"माहेश्वरानन्द!...." एकाएक सन्यासी का स्वर गुफा में गूँज उठा।

"जी, गुरुदेव!"

"यह लो! मानव हस्त अस्थी!"

उस इन्सानी पंजे की हड्डी को माहेश्वरानन्द को देते हुए सन्यासी ने कहा, "इसके माध्यम से इन सारे नर पशुओं की आत्माएँ तुम्हारे अधिकार में रहेंगी। इनकी सहायता से तुम असम्भव-से असम्भव कार्य कर सकने में समर्थ होगे।" थोड़ा रुक कर उस क्रूर सन्यासी ने आगे कहा, "मैंने सामूहिक नर-बलि द्वारा तुमको असीम तामसिक शक्ति प्रदान की है, इसका दुरुपयोग मत करना।"

मैंने देखा--यह सुनकर माहेश्वरानन्द के चेहरे पर अजीब सी चमक आ गई। उसने विनम्रता से संन्यासी को प्रणाम कर उस इन्सानी पंजे को अपने हाथों में ले लिया। मैं अवाक् पाषाणवत् देखता रहा, सारी पैशाचिक लीला। शायद आगे कुछ और देखता मगर तभी किसी के स्पर्श से चौक पड़ा। सिर घुमा कर देख, गौरा खड़ी थी मेरे बगल में।

मगर क्या वह गौरा थी?

नहीं! वह गौरा नहीं थी। गौरा की शक्ल में कोई दूसरी ही युवती थी। अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक थी वह। उसने कीमती जेवर और कपड़े पहन रखे थे। वेश-भूषा से कोई राजकुमारी लग रही थी। मैं उसकी ओर अभी देख ही रहा था कि एकाएक सारा वातावरण बदल गया और उस बदले हुए वातावरण में मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि मेरे चारों तरफ बहुत सारी काली बदसूरत छायाएँ चक्कर लगाती हुई नाच-कूद रही हैं।

फिर तो मैं एक पल भी वहाँ नहीं रुका। तुरन्त पलटा और पूरी शक्ति लगाकर

भागा। जब गुफा के बाहर आया और अपने कैम्प मे पहुँचा तो देखा मुखिया मेरा इन्तजार कर रहा था। उसकी आँखें सूजी हुई थीं और चेहरा उतरा हुआ था। उसने रुँधे हुए कण्ठ से जो आश्चर्यजनक समाचार सुनाया उससे हतप्रभ हो गया। भय और आतंक से दिल की धड़कन तेज हो गई। किसी तरह अपने को संभाल कर बोला, "क्या तुम सच कह रहे हो?"

"हाँ, हुजूर। पिछली रात अचानक उसे खून की कई उल्टियाँ हुई और फिर....।" मुखिया पूरा वाक्य बोल नहीं पाया। दोनों हाथों से मुँह छिपा कर रोने लगा।

गौरा को तो मैंने गुफा में देखा था, फिर उसकी मृत्यु कैसे हो गई? कब आई वह बाहर? अभी-अभी मेरे भागते समय भी....।

"गौरा कहीं रात में बाहर गई थी?" मैंने पूछा।

"नहीं सरकार!" मुखिया ने जवाब दिया, "कहीं नहीं गई थी बराबर घर पर ही रही।"

गौरा की लाश का अन्तिम संस्कार तब तक नहीं हुआ था। जाकर लाश देखी। अचानक चीख निकलते-निकलते रुक गई। गौरा के चेहरे पर एक ऐसा भाव था जिसे मैंने उस सुन्दरी युवती के चेहरे पर भागते समय देखा था। हे भगवान! कैसी मायाजाल में मैं उलझ गया था।

उसी दिन मैंने वह इलाका छोड़ दिया। मगर क्या इलाका छोड़ देने पर मेरा पीछा छूट गया उस अभिषप्त प्रेतलीला से? नहीं अभी तो मेरी दुर्दशा होनी शेष थी! बनारस लौटने पर करीब एक महीने बिस्तर पर पड़ा रहा। दवा-इलाज चलता रहा, पर लाभ कुछ भी नहीं। अन्त में मेरी हालत काफी दयनीय हो गई। ऐसी स्थिति में मेरे एक मित्र मुझे देखने आए। उनका नाम था--चन्द्रशेखर। वह ज्योतिष के अलावा तंत्र के भी अच्छे विद्वान् थे।

मुझको देखते ही चौंक पड़े चन्द्रशेखर जी! बोले, "ठीक-ठीक बतलाओ। क्या बात है?"

मैं कुछ छिपा न सका। सारी व्यथा शुरू से अन्त तक उनको सुना डाली।

काफी देर तक गम्भीर रहने के बाद वह बोले, "वह इन्सानी पंजा अब भी तुम्हारे पास है?"

"हाँ।" मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

उन्होंने मुझसे उसी समय पंजा लेकर गंगा में प्रवाहित कर दिया। जिसका परिणाम तुरन्त सामने आया। उसी क्षण से मेरे स्वास्थ्य में अचानक परिवर्तन होने लगा। मगर उसी

के साथ मेरे जीवन में एक के बाद एक विचित्र घटनाएँ घटने लगीं। कभी मेरे कमरे में तरह-तरह के इत्रों की सुगन्ध मिलती। कभी बेमौसमी सुगन्धित फूलों का ढेर मिलता। फूलों और मिठाइयों से भरी टोकरियाँ मिलती। कभी-कभी तो मैं मन में जिन वस्तुओं के बारे में सोचता, वे भी मिल जातीं। मैं काफी हैरान था। मेरी अनुपस्थिति में वे सारी चीजें कौन रख जाता है। मैं उस समय अकेला ही रहता था। जब बाहर निकलता तो अपने कमरे को ताला लगाकर बन्द कर जाता था। ऐसी स्थिति में कमरे में किसी बाहरी आदमी के आने की सम्भावना बिल्कुल नहीं थी। मैं परेशान हो उठा। किसी से कुछ कहते नहीं बनता था। यदि कहता भी तो भला विश्वास कौन करता मेरी बातों पर।

एक रात मैंने एक ऐसा विचित्र सपना देखा जिसने अतीत के गहरे क़ब्र में न जाने कब की दफन इस कथा से संबंधित एक रहस्यमयी घटना को अनावृत कर दिया।

उस दिन मैं कहीं बाहर नहीं निकला। साँझ हुई। कमरे की बत्ती बिना जलाए मैं अपने बिस्तर पर चुपचाप जाकर बैठ गया। मैं यह देखना चाहता था कि कमरे में कौन वे तमाम चीजें रख जाता है।

धीरे-धीरे रात का पहला पहर गुजर गया। सहसा कमरे का वातावरण भारी होने लगा। थोड़ी ही देर बाद देखता क्या हूँ कि अँधेरे में कुहरे जैसी एक प्रकाशमयी आकृति प्रकट हुई। वह आदमकद आकृति थी। एक बार उसने पूरे कमरे का चक्कर लगाया और फिर मेरे पास आकर गायब हो गई। उसके गायब होते ही मेरी पलकें बोझिल होने लगीं और न जाने कब मैं गहरी नींद में सो गया और उसी अवस्था में मैंने सपने में उस टीले की जगह एक आलीशान भव्य हवेली देखी। हवेली के भीतर काफी चहल-पहल थी और चारों ओर रोशनी हो रही थी। एक लम्बे-चौड़े कमरे में फर्श पर कीमती कालीन बिछा था, एक ओर मखमली गद्दा और मसनद लगा था, जिस पर माहेश्वरानन्द अपने कई साथियों के साथ बैठा शराब पी रहा था। सारा कमरा इत्र और गुलाब जल से गमक रहा था। दरवाजों और खिड़कियों पर रेशमी पर्दे लटक रहे थे और जूही, बेला, चमेली के फूलों की लड़ियाँ झूल रही थीं। कमरे के एक ओर चार-पाँच लोग तबला, हारमोनियम, सारंगी आदि लिए हुए बैठे थे। कुछ ही समय बाद एक युवती ने कमरे में प्रवेश किया। वह शायद नर्तकी थी। तेज रोशनी में जब मैंने उसका चेहरा देखा तो एकबारगी चौंक पड़ा। वह वही युवती थी जिसे मैंने गुफा में गौरा की शक्ल में देखा था। पहचानने में किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ मुझे।

नृत्य शुरू हुआ। महफिल जमने लगी। शराब का दौर चलने लगा। लोग झूमने लगे।

सहसा मेरे सामने का सारा दृश्य बदल गया। उसकी जगह दूसरा जो दृश्य उभरा वह काफी घृणित, वीभत्स और रोमाञ्चकारी था।

माहेश्वरानन्द की गोद में नर्तकी बुरी तरह छटपटा रही थी। वह बराबर रो भी रही थी।

''आज तुमको नहीं छोड़ूँगा कामिनी, मेरे दिल की प्यास बुझानी ही होगी तुझे, बहुत इन्तजार करवाया तुमने....'' वासना में डूबे स्वर में माहेश्वरानन्द बोले।

''नहीं, नहीं पण्डित जी! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अपनी जान दे दूँगी। मैं कला बेचती हूँ, जिस्म नहीं, पण्डित जी! मुझको छोड़ दीजिए... रोते हुए नर्तकी ने जवाब दिया।''

वासना में डूबा हुआ माहेश्वरानन्द उस समय जैसे पागल हो गया था। उसने नर्तकी को अपनी भुजाओं में दबोच लिया और बेतहाशा उसे चूमने लगा।

तभी अचानक एक दर्दनाक चीख उभरी और कमरे के वातावरण में फैलकर चिथड़े-चिथड़े हो गई। दूसरे ही क्षण कीमती कालीन खून से भीग उठा। मैंने देखा--कामिनी की निर्जीव काया माहेश्वरानन्द की गोद में एक ओर लुढ़क गई थी और माहेश्वरानन्द आँखें फाड़े उसको ओर देख रहा था। कामिनी ने आत्महत्या कर अपने चरित्र की रक्षा कर ली थी।

मगर बाद में उसकी आत्मा ने माहेश्वरानन्द को नहीं छोड़ा। एक साल के भीतर ही उसका सारा यश-वैभव, धन-सम्पत्ति नष्ट हो गई। एक दिन उसने भी हवेली में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। आत्महत्या के पहले उसकी हालत पागलों जैसी हो गई थी। वह पूरी रात हवेली में चिल्लाता और रोता रहता था।

माहेश्वरानन्द के मरने के बाद हवेली भी धीरे-धीरे टीले की शक्ल में बदल गई। मगर माहेश्वरानन्द की आत्मा भयंकर ब्रह्म बनकर वहाँ भटकती रही। जिन प्रेतात्माओं को उसने कभी अपने वश में कर रखा था, वे उसके मरने के बाद स्वतंत्र तो हो गई थीं मगर प्रेत योनि से उन्हें मुक्ति न मिल सकी। मिलती भी कैसे? एक अघोरी तांत्रिक की मंत्र-शक्ति से बँधी जो थी। वह गुफा ही उन सबका स्थायी निवास स्थान बन गई। वे उसी की सीमा में भटकने लगे।

प्रेतात्माओं की वह रहस्यमयी गुफा दीर्घकाल से अघोरी और कापालिक तांत्रिकों की गुप्त साधना-स्थली थी। दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम काल में जब कापालिकों का बोल-बाला था एक उग्र अघोरी कापालिक ने गुफा को सबसे पहले अपना साधना केन्द्र बनाया। उसने पंचमुण्डी आसन का निर्माण कर तांत्रिक देवी की प्रतिमा स्थापित की और वर्षों तक भीतर रहकर साधना करता रहा। उसके बाद कई उच्चकोटि के तंत्र-साधकों की साधना-स्थली बनी वह गुफा। अन्त में एक दीर्घ अन्तराल के बाद दो सौ वर्ष पूर्व अघोरी साधक काली नाथ कापालिक ने गुफा में रहकर उस विलक्षण तांत्रिक देवी की उपासना शुरू की।

अघोरी कालीनाथ कापालिक ने माहेश्वरानन्द को अपना शिष्य बना लिया और समाधि लेने के पूर्व उसे उच्च कोटि की तामसिक शक्ति प्रदान की। जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ।

मृत्यु के बाद कामिनी की आत्मा को भी शान्ति नहीं मिली। काफी लम्बे अर्से तक वह गुफा की प्रेतात्माओं के साथ भटकती रही। अगर चोखूराम, माहेश्वरानन्द की ब्रह्म प्रेतात्मा को सिद्ध कर कालीनाथ कापालिक का दिया हुआ पंजा हासिल न कर लेता तो शायद कामिनी की आत्मा भटकती रहती।

'पंजे' को हासिल होने पर गुफा की सारी प्रेतात्माएँ चोखूराम के वश में तो हो गईं मगर कामिनी की आत्मा नहीं। वह उसको अपने अधिकार में करने के लिए बराबर कोशिश करता। संयोगवश कामिनी की आत्मा ने मुखिया की लड़की गौरा के रूप में जन्म ले लिया। अपनी विद्या के जरिए जब चोखूराम को इस रहस्य का पता चला तो वह गौरा की पीछे पड़ गया।

कामिनी की आत्मा ने गौरा के रूप में जन्म तो ले लिया किन्तु दो सौ वर्ष पहले की स्मृति बराबर उसमें बनी रही। एक आत्मा जब जन्म ले लेती है तो पिछले जन्मों की सारी स्मृति संस्कार बनकर जीवन में उतर आती है। मगर कामिनी की आत्मा के साथ ऐसा नहीं हुआ। उसकी स्मृति, संस्कार में क्यों परिवर्तित नहीं हुई? इस पर विचार करना परामनोविज्ञान का काम है।

मेरे जीवन के अनुभव और संस्मरण पर आधारित यह विचित्र और अविश्वसनीय कथा एक प्रकार से यहीं समाप्त हो जाती है। कथा पढ़कर निश्चय ही आप सबके मन में विभिन्न प्रतिक्रिया होगी मगर मेरा अनुरोध है कि इस कथा को मनोरंजन तक ही सीमित रखें। हाँ, अन्त में आपको यह बतला दूँ कि प्रेतात्माओं की वह रहस्यमयी गुफा आज भी रहस्यमयी ही बनी हुई है। उसमें भटकने वाली प्रेतात्माओं को मुक्ति मिली कि नहीं यह तो मैं नहीं बतला सकता मगर उस इन्सानी पंजे को गंगा में प्रवाहित कर देने से कामिनी को अवश्य प्रेत-योनि से मुक्ति मिल गई। वह यही चाहती भी थी। अदृश्य रूप से इसीलिए वह मेरे साथ बनारस आई थी। इस समय अन्तरिक्ष में कामिनी की मुक्त आत्मा कहाँ है यह बतला सकना मेरे वश की बात तो नहीं है, किन्तु यदा-कदा जब मैं अपनी विशेष यौगिक स्थिति में रहता हूँ तो उससे मेरा संबंध अपने आप जुट जाता है।

●

कर्णिका-१०

यात्रा प्रेतलोक की

प्रेतों की मति-गति और क्रियाकलापों को गहराई से समझने के लिए, परामानसिक जगत का अध्ययन आवश्यक है। सन् १९५० में मैंने परामानसिक जगत का अध्ययन करना शुरू किया और शीघ्र ही मुझे कुछ ऐसे विचित्र अनुभव हुए, जिससे मेरी आत्मा चमत्कृत हो उठी।

हममें से प्राय: हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की रहस्यमय बातों का जीवन में अनुभव करता है। कोई कहीं जाने पर महसूस करता है कि वह वहाँ पहले भी जा चुका है। सब कुछ जाना पहचाना सा लग रहा है। कोई सपनों में भविष्य जान लेता है। किसी को भूतप्रेत दिखलाई देते हैं, तो किसी की जन्मपत्री की भविष्यवाणी सही निकलती है। पर यह सब होता कैसे है?

इसी प्रश्न से विज्ञान का जन्म होता है। हमारा युग विज्ञान का युग है। आज मनुष्य समूची सृष्टि और ब्रह्माण्ड की खोज में लगा हुआ है तथा उसने प्रकृति के मूल तत्व और उनकी शक्तियों की खोज की है।

विज्ञान के पीछे पागल यह मनुष्य अपने आप में स्वयं एक आश्चर्य है। उसका सामाजिक व्यवहार, उसकी शारीरिक क्रियाएँ और इन सबसे बढ़कर उसका दिमाग इस सृष्टि की सबसे बढ़कर अधिक अजीबो-गरीब चीज है। संसार के सभी धर्मों ने इस की रचना और कार्य प्रणाली पर विस्तार से रोशनी डाली है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी खोजने की कोशिश की है कि मनुष्य के मस्तिष्क के पीछे संचालक शक्ति कौन सी है? और उन्होंने उसे एक नाम दिया है 'चेतना' तथा यह भी कहा है कि मनुष्य की चेतना उसके मस्तिष्क में बन्द एकाकी चेतना नहीं है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली हुई विराट चेतना का अंग है और हर अवस्था में उससे संबंध बनाए रखती है। यही कारण है कि मनुष्यों के अलावा अन्य प्राणियों में तथा सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत में व्याप्त चेतनाएँ एक दूसरे के साथ जुड़ी रहती हैं। एक दूसरे पर प्रभाव डालती हैं और प्रभावित होती हैं।

रूस के लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के प्रो० लियोनिद ने एक अनूठा प्रयोग किया। उन्होने मीलों दूर एक प्रयोग शाला में कुछ अनुसंधानकर्ताओं को परामानसिक संचार द्वारा सम्मोहित कर दिया और उनसे उनका प्रयोग छुड़वा कर उन्हें किसी अन्य कार्य में लगा दिया। वे सब अनजाने में ही विवश से लियोनिद के आदेशों का पालन करने लगे। उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे किसी अन्य व्यक्ति की शक्ति के अधीन हो गए हैं। इस वैज्ञानिक प्रयोग से यह बात सिद्ध होती है कि एक चेतना दूसरी चेतनाओं को किसी भी भौतिक साधन अथवा माध्यम के बिना, संकल्प मात्र से प्रभावित कर सकती है।

मनुष्य की इसी चेतना को आत्मा, सोल, रूह, अथवा परामानसिक चेतना और ब्रह्माण्ड की विराट् चेतना को परम चेतना, अति चेतना, परमात्मा, गॉड या अल्लाह कहा गया है। तांत्रिक लोग परामानसिक चेतना को ''पराशक्ति'' और विराट चेतना अथवा परम चेतना को ''परमशिव'' की संज्ञा देते हैं।

ईश्वर को भले ही वैज्ञानिक स्वीकार न करें, लेकिन ब्रह्माण्ड और उसमें फैली हुई एक ब्रह्माण्डीय ऊर्जा अथवा तत्व की धारणा वैज्ञानिकों ने अवश्य स्वीकार कर ली है। उनके सामने इस ब्रह्माण्ड की अनेक गुत्थियों में से एक गुत्थी यह भी है कि मनुष्य की चेतना का मूल स्वरूप क्या है? और उसका ब्रह्माण्डीय चेतना से क्या संबंध है? एक और भी बड़ा प्रश्न है कि क्या प्रकट या व्यक्त चेतना से परे मनुष्य किसी अप्रकट अथवा अव्यक्त चेतना का भी स्वामी है, जो इस पदार्थ जगत के नियमों से ऊपर है तथा जो मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों से परे कहीं अधिक सूक्ष्म, पराभौतिक-शक्तियाँ प्रदान करती है? जिनके द्वारा वह इस ब्रह्माण्ड में किसी भी स्थान काल के रहस्यों को अपनी जगह बैठा-बैठा ही जान सकता है तथा उसका वर्णन भी कर सकता है।

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि धर्म जिसे परा चेतना कहता है, वह सत्य है तथा मनुष्य का जागृत मन इस विराट मन का एक छोटा सा भाग है, जिसका एक बड़ा अंश एक रहस्यमय आवरण के पीछे छिपा रहता है और वह उस आवरण के पीछे से हमारे चेतन मन को कठपुतली की तरह नचाता रहता है। वैज्ञानिकों ने उस उप चेतन मन को परा-मन अथवा 'पैरासाइकिक तत्व' कहा है।

मनुष्य की जीवितावस्था में जीवन का तीन भाग जागृत मन से प्रभावित रहता है और चौथा भाग उप चेतन अथवा परामन के आधीन रहता है। मृत्यु के अनन्तर जागृत मन का अस्तित्व तो समाप्त हो जाता है, लेकिन उसका मौलिक तत्व, जिसमें वासना, संस्कार और तमाम भौतिक वृत्तियाँ रहती हैं, उस उप चेतन मन में चला जाता है। यही कारण है कि मरने के बाद उप चेतन मन की शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। इतना ही नहीं, विराट मन अथवा परा चेतना से भी उसका सम्पर्क और अधिक घनिष्ठ हो जाता है। परामनोविज्ञान का यह अत्यन्त गम्भीर विषय है, जिस पर प्रेत विद्या के सारे सिद्धान्त निर्भर हैं।

प्रत्येक जीवित मनुष्य का मरने के बाद कुछ समय के लिए प्रेत होना निश्चित है, जिसे जीवात्मा कहा जाता है, उसके तीन योग रूप हैं :-

(१) **मानवात्मा**- जब जीवात्मा, मानव शरीर यानी पार्थिव शरीर में रहती है, तो उसे मानवात्मा कहते हैं।

(२) **प्रेतात्मा**-मरने के बाद जब जीवात्मा वासनामय शरीर में रहती है, तो उसे प्रेतात्मा कहते हैं।

(३) **सूक्ष्मात्मा**-इसी प्रकार जब वह सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित सूक्ष्मतम शरीर में रहती है, तो उसे सूक्ष्मात्मा कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा की तीन अवस्थाएँ और तीन भोग शरीर हैं।

वासनामय शरीर धारी प्रेतात्माओं का जो जगत है, उसे हम वासनालोक या प्रेतलोक कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि प्रेत लोक-सुदूर कहीं अन्तरिक्ष में विद्यमान है। मगर नहीं! काफी छान-बीन करने के बाद इस संबंध में जो तथ्य सामने आए हैं, उसके अनुसार, प्रेत लोक, अन्तरिक्ष में नहीं बल्कि हमारे इसी धरती में दूध में पानी की तरह मिला हुआ है।

वासना दो प्रकार की होती है, अच्छी भी और बुरी भी। इस दृष्टि से प्रेत लोक को भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। अच्छी वासनाओं के भाग को पितृलोक और बुरी वासनाओं के भाग को प्रेतलोक कहा गया है। पितृलोक के ऊपर सूक्ष्म शरीर धारी आत्माओं का सूक्ष्म लोक है। उसके बाद मन: लोक है, जिसे देवलोक भी कहा जाता है। यह मन: लोक नक्षत्र मण्डलों की सीमा और गुरुत्वाकर्षण के बाहर सुदूर अन्तरिक्ष में है। उसमें निवास करने वाली देवात्माओं में मन:शक्ति और विचार शक्ति अति प्रबल होती है। इसी प्रकार सूक्ष्मात्माओं में इच्छा शक्ति और प्राण शक्ति प्रबल होती है। लेकिन जहाँ तक प्रेतात्माओं का प्रश्न है, उनमें सिर्फ वासना की प्रबलता रहती है। वासना की शक्ति ही उनकी स्व-शक्ति है।

परामानसिक जगत के विद्वानों का कहना है कि देवात्माओं, सूक्ष्मताओं, प्रेतात्माओं में क्रमश: जो मन:शक्ति विचार शक्ति, इच्छाशक्ति और प्राणशक्ति विद्यमान हैं, वे सभी शक्तियाँ एक साथ मानव शरीर में हैं। इसीलिए मनुष्य को और मानव शरीर को श्रेष्ठ माना गया है।

मस्तिष्क के तीन भाग हैं। वे तीनों भाग, मन:शक्ति, विचार शक्ति और इच्छा शक्ति के केंद्र हैं। प्राण शक्ति का केन्द्र है नाभि। उन शक्तियों का संबंध प्राण शक्ति से जहाँ स्थापित होता है, वह है हृदय।

जैसे, मानव शरीर इन तमाम शक्तियों का केन्द्र है, उसी प्रकार मानव शरीर में मन:शरीर, सूक्ष्म शरीर और वासना शरीर का भी बीज रूप में अस्तित्व है। इस तथ्य को

वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। इतना ही नहीं, वे इस संबंध में खोज और अनुसंधान भी कर रहे हैं। भौतिक शरीर का निर्माण पंच भौतिक तत्वों के अणुओं के संगठन से होता है, जबकि सूक्ष्म शरीर की रचना सूक्ष्म भौतिक तत्वों के परमाणुओं के संगठन अथवा संयोग से होती है। इसलिए सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर के सर्वाधिक निकट है। योगी लोग मनःशरीर और वासना शरीर से अधिक महत्व इसीलिए सूक्ष्म शरीर को देते हैं कि वे भौतिक शरीर की भाँति उसका उपयोग इच्छानुसार कर सकते हैं।

सूक्ष्म शरीर के संबंध में वैज्ञानिकों ने काफी प्रगति की है। १२-१३ वर्ष पूर्व सोवियत रूस के एक इलेक्ट्रानिक विशेषज्ञ सेमयोन किर्लियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलेण्टिना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विधि का आविष्कार किया था। उस विशेष विधि द्वारा सजीव अंगियों, प्राणियों और पौधों के सान्निध्य में होने वाले सूक्ष्म विद्युत संबंधी कार्य-कलापों का सफल छायांकन किया जा सकता है।

अपने प्रयोग में वैज्ञानिक दम्पत्ति ने अपनी विशेष विधि द्वारा एक मानव शरीर के अत्यन्त निकट से छायाचित्र खींचे। इन छाया चित्रों में गर्दन, हृदय, उदर आदि अवयवों पर विभिन्न रंगों के सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिए, जो इन अवयवों से विसर्जित होने वाली विद्युत ऊर्जाओं के द्योतक थे और उनके सामर्थ्य को दर्शाते थे। ये असाधारण छाया चित्र गुप्त विद्या विदों (आकल्टिस्टों) के इस सिद्धान्त की पुष्टि करते प्रतीत होते थे कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक (भौतिक) शरीर और, दूसरा सूक्ष्म शरीर, जिसकी सब विशेषताएँ प्राकृतिक शरीर (पार्थिव शरीर) जैसी होती हैं, पर जो दिखलाई नहीं पड़ता। सूक्ष्म शरीर अस्थाई तौर पर भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

यहाँ एक बार फिर समझ लेना चाहिए कि परा चेतना 'आत्मा' है और परम चेतना 'परमात्मा' है। इस आधार पर मन के दो रूप हैं--चेतन और अचेतन। चेतन मन को ही जागृत मन कहते हैं। अचेतन मन, परा चेतना (आत्मा) का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसी प्रकार चेतन मन परम चेतना (परमात्मा) का एक मुख्य अंश हैं।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, इसी 'चेतन मन' का एक बहुत बड़ा अंश किसी अज्ञात रहस्यमय आवरण में छिपा है। चेतन मन के इस छिपे हुए भाग को 'उपचेतन मन' कहते हैं और यह उपचेतन मन का केन्द्र मस्तिष्क है। मस्तिष्क के जिस भाग में वह केन्द्र है, उसको "मेडुला आव्लोन्गटा" कहते है। 'मेडुलाआव्लोन्गटा' का आकार मुर्गे के अण्डे के समान है और उसके भीतर एक अज्ञात तरल पदार्थ भरा हुआ हैं। जिसका रहस्य आज तक वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आ सका है।

उसी अज्ञात तरल पदार्थ में ज्ञान तन्तुओं का समूह तैरता रहता है। वे ज्ञान तन्तुएँ बाल से भी हजारों गुना अधिक पतले हैं और छल्ले की तरह आपस में गुथे हुए हैं।

उनका एक सिरा मेरुदण्ड के भीतर से आने वाली सुषुम्ना नाड़ी से मिला है और दूसरा सिरा ब्रह्मरन्ध्र से मिला है। सिर पर जहाँ शिखा (चुटिया) रखने की प्रथा है, वहीं सूई की नोक के बराबर छेद है। उसी को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं।

मेडुला-आव्लोन्गटा के रहस्यमय तरल पदार्थ के भीतर तैरते हुए ज्ञान तन्तु समूह में उप चेतन मन और उसकी शक्ति का अस्तित्व है। जिसे धनञ्जय प्राण संचालित करता है।

धनञ्जय प्राण द्वारा संचालित, ब्रह्मरन्ध्र द्वारा उपचेतन मन का सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड और उसमें विद्यमान समस्त लोक-लोकान्तरों और जगतों से अदृश्य संबंध है। इसी उप चेतन मन की रहस्यमयी शक्ति के मध्यम से ग्रह नक्षत्रों और लोक-लोकान्तरों में निवास करने वाले प्राणी अपने विचारों, भावनाओं इच्छाओं और संकल्पमय उद्देश्यों को मानव मस्तिष्क में संप्रेषित करते हैं, जो बाद में मानवीय विचारों भावनाओं, इच्छाओं आदि में परिवर्तित होकर भौतिक रूप और आकार ग्रहण करते हैं।

उप चेतन मन दो प्रकार का कार्य करता है, जहाँ वह एक ओर अदृश्य लोकों व अदृश्य प्राणियों के विचारों, इच्छाओं आदि को ग्रहण करता है, वहीं दूसरी ओर मानवीय विचारों, भावनाओं, इच्छाओं आदि को प्रसारित भी करता है।

ग्रहण और प्रसारण की ये दोनों क्रियाएँ उस समय और अधिक बढ़ जाती हैं, जबकि शरीर में रक्त-संचार अपने व्यवस्थित ढंग से होता रहता है, प्राणों की गति समान रहती है और शरीर पूर्ण स्वस्थ रहता है।

जैसा कि ऊपर प्रसंगवश बतलाया गया है कि परा मानसिक जगत के अनुसार आत्माओं के तीन प्रकार हैं--दिव्यात्मा, देवात्मा और मनुष्यात्मा। मनुष्यात्मा के तीन भेद हैं-जीवात्मा, सूक्ष्मात्मा और प्रेतात्मा। प्रस्तुत कथा प्रसंग में मैं सबसे पहले प्रेतात्माओं के विषय में चर्चा करूँगा।

प्रेतात्माएँ जिस वातावरण में रहती हैं, उसे वासना लोक या प्रेतलोक कहा जाता है। मनुष्य का जन्म वासंना के ही कारण होता है। उसके शरीर की रचना भी वासना से ही होती है और पूरा जीवन वह प्राय: वासना में ही डूबा रहता है। इसलिए उसके 'उपचेतन मन' का संबंध बराबर वासना लोक से बना रहता है।

वासना लोक में प्रेतात्माएँ अपने शरीर की रचना स्वयं करती हैं, जिसे छाया शरीर भी कहा जाता है। जैसे, एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार किसी प्राणी का चित्र या प्रतिमा हूबहू बना लेता है, उसी प्रकार प्रेतात्माएँ भी अपने पूर्व पार्थिव शरीर के आधार पर वासना लोक में अपना छाया शरीर बना लिया करती हैं। जैसा कि बतलाया गया है कि मृत्यु के बाद कुछ समय के लिए सूक्ष्म शरीर न मिलने की स्थिति में सभी लोगों को प्रेत योनि स्वीकार करनी पड़ती है। प्रेत शरीर एक प्रकार से स्थूल और सूक्ष्म शरीर के बीच "नाव" का काम करता है।

इसके अलावा वे लोग भी प्रेत योनि में जाते हैं, जो आयु रहते हुए भी किसी रोग या व्याधि के कारण मर जाते हैं। ऐसे लोग, तब तक प्रेतलोक में रहते हैं, जब तक कि उनकी शेष आयु समाप्त नहीं हो जाती। यदि जीवन में उनकी आयु दस वर्ष शेष रह गई है, तो उसका चौगुना यानि चालीस वर्ष वे प्रेत लोक में रहेंगे।

इसी प्रकार जो लोग किसी कारणवश स्वयं आत्म-हत्या कर मृत्यु को गले लगा लेते हैं, वे भी प्रेतलोक जाते हैं और प्रेत शरीर धारण करते हैं। इस प्रकार की प्रेतात्माएँ अपने जीवन की शेष आयु का आठ गुना अधिक समय तक प्रेत लोक में रहती हैं।

ऐसे लोग भी प्रेतलोक की यात्रा करते हैं, जिनकी किसी कारण वश हत्या कर दी गई है अथवा किसी दुर्घटना में मरे हैं। वे लोग अपनी शेष आयु का सोलह गुना अधिक समय प्रेत लोक में व्यतीत करते हैं।

पहले प्रकार के लोग, जो नए शरीर की प्राप्ति की प्रतीक्षा के लिए प्रेत लोक में हैं, उन्हें अधिक कष्टों का सामना नहीं करना पड़ता। उनकी दिनचर्या में भी कोई अन्तर नहीं होता । वे जैसे स्थूल शरीर और स्थूल जगत में रहा करते थे, वैसे ही प्रेतलोक में भी जीवन व्यतीत करते हैं। अपनी वासना के अनुसार अपने वातावरण की सृष्टि कर लेते हैं। साहित्यिक अथवा लेखक अपने अनुकूल वातावरण का निर्माण कर साहित्य रचना में बराबर डूबा रहेगा। यदि कोई कलाकार अथवा संगीतकार है, तो उसी के अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर अपनी कला और संगीत की साधना करता रहेगा। उपचेतन मन के द्वारा जीवित व्यक्ति का इन सभी प्रकार के प्रेतात्माओं से बराबर सम्पर्क बना रहने के कारण उनके विचारों और भावनाओं का प्रभाव उपचेतन मन पर हर क्षण पड़ता रहता है, किन्तु वे चेतन मन की परिधि में आने के समय तक काफी क्षीण व दुर्बल हो जाती हैं। प्रेतात्माओं के वे विचार और भावनाएँ पूर्ण रूप से चेतन मन में प्रकट हुआ करती हैं, जिनमें वासना का वेग अतिप्रबल होता है। इस प्रकार वासनावेग युक्त विचारों भावनाओं अथवा इच्छाओं को मानसिक जगत में प्रकाशित होते ही मनुष्य तुरन्त उसी के अनुसार काम जाने-अनजाने में कर बैठता है। बाद में मनुष्य स्वयं यह सोच कर आश्चर्य चकित हो उठता है कि अचानक या अपने आप उससे यह काम हो कैसे गया? प्रेतात्माएँ अच्छी हों या बुरी, मनुष्य को, चेतन-अचेतन या उपचेतन मन पर इसी प्रकार अपना प्रभाव डाल कर अपनी कामना या वासना की पूर्ति कर लिया करती है। साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार और दार्शनिक, विद्वान, बुद्धिजीवियों को प्रेतात्माएँ, जो अगले शरीर की प्रतीक्षा में हैं, अपने गुण, कला, सिद्धान्त एवं विचारों से संबंधित जीवित व्यक्तियों को, उपचेतन एवं चेतन मन के द्वारा, बराबर सहायता करती रहती हैं। उनको उन्नति की दिशा में बराबर प्रेरणा देती रहती हैं। इससे उन्हें सन्तोष एवं शान्ति मिलती है।

इसी प्रकार अन्य प्रकार की अथवा निम्नकोटि की प्रेतात्माएँ भी करती हैं। जीवन काल में मनुष्य की जो वासना सबसे अधिक प्रबल और स्थायी होती है, वही वासना

मरने के बाद भी प्रबल और स्थायी रहती है, और उसी वासना की तृप्ति के लिए प्रेतात्मा बराबर प्रयत्न करती रहती है। प्रेत शरीर केवल भोग शरीर है। मानव शरीर, भोग, और कर्म-मय है। भौतिक शरीर के द्वारा भोग भी किया जाता है और कर्म भी। इसीलिए प्रेतात्माओं जैसी भोग शरीरधारी आत्माएँ मनुष्य के शरीर को माध्यम बना कर भोग भोगती हैं और तृप्ति का अनुभव करती हैं। जैसे कोई व्यक्ति शराबी रहा है जीवन में। मरने के बाद पर्थिव शरीर के अभाव में शराब तो पी नहीं सकता इसलिए जो व्यक्ति शराब पीता होगा उसके अचेतन मन में प्रभाव डाल कर उसको प्रेतात्मा उसे प्रेरित करेगी और जब वह शराब पीने लगेगा, तो वह प्रेतात्मा उस व्यक्ति के शराब के माध्यम से मदिरा के तत्वों को और गुणों को ग्रहण कर तृप्ति का अनुभव करेगी मगर इसका जरा सा भी पता उस शराब पीने वाले व्यक्ति को न लगेगा। लेकिन, हाँ। उसे शराब का नशा न होगा। इसके लिए वह आश्चर्य भले ही कर सकता है।

इसी प्रकार जो खूनी और डकैत आत्माएँ होती हैं, वे जीवित व्यक्तियों पर प्रभाव डाल कर उससे खून, कत्ल, और चोरी करवा देती हैं और उसके परिणामों में सुख का अनुभव करती हैं।

इस प्रसंग में यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि आवेशवश और सहसा, बिना किसी पूर्व योजना अथवा उद्देश्य के कोई भी काम, यदि वह अच्छा हो या बुरा अनचाहे में किसी व्यक्ति के द्वारा हो जाता है, तो उसकी पृष्ठ भूमि में इसी प्रकार की अतृप्त प्रेतात्माओं की वासनाएँ ही रहती हैं।

जीवन काल में जिस किसी व्यक्ति को कोई अच्छी, बुरी आदत नहीं रही है और एकाएक लग जाती है, तो उसके लिए भी प्रेतात्माओं की अदृश्य प्रेरणा ही समझनी चाहिए। एकाएक एक चोर व्यक्ति साधु बन जाता है। कोई-कोई व्यक्ति पूरे जीवन अच्छे और भलाई के काम करते हैं, लेकिन अचनाक उनके भी स्वभाव और विचारों में परिवर्तन हो जाता है। इन सब का क्या रहस्य है?

मैंने प्रत्यक्ष देखा है और अनुभव भी किया है कि जब कभी कोई व्यक्ति किसी विषय के संबंध में गहराई से विचार करता है अथवा कोई गम्भीर चिन्तन मनन करता है तो, उस व्यक्ति की भावनाओं के अनुकूल अनेकों प्रेतात्माएँ उसके चारों ओर अदृश्य रूप से चक्कर काटने लगती हैं। इसी प्रकार जहाँ कोई दुर्घटना होती है। सामूहिक मृत्यु होती है। जहाँ कोई व्यक्ति मरणासन्न अवस्था में रहता है। वहाँ उस स्थान पर प्रेतात्माएँ सामुहिक रूप से चक्कर काटने लगती हैं। जहाँ पति-पत्नी सम्भोग रत रहते हैं अथवा जहाँ बच्चा पैदा होने वाला होता है वहाँ भी प्रेतात्माएँ मँडरा लगती हैं।

जहाँ जिस स्थान पर भयंकर दुर्घटना या सामूहिक मृत्यु होने वाली होती है वहाँ उस स्थान पर पहले से ही प्रेतात्माएँ उपस्थित हो जाया करती हैं। कभी-कभी तो यह भी

देखने में आता है कि प्रेतात्माएँ स्वयं दुर्घटनाओं और सामूहिक मौतों का आयोजन करती है। मगर ऐसा निकृष्ट आत्माएँ ही करती हैं। इससे उनको सुख और आनन्द मिलता है। इस प्रकार जो लोग मरते हैं--उन्हें वे प्रेतात्माएँ अपने समाज में मिला लेती हैं।

मरणासन्न व्यक्ति को भी काफी परेशान करती हैं, प्रेतात्माएँ। मरने वाला व्यक्ति उन्हें देख कर यह समझता है कि वे यम के दूत हैं। कभी-कभी प्रेतात्माएँ, तुरन्त मरे हुए व्यक्ति के शव में भी प्रवेश कर जाती हैं और हड़कम्प मचाती हैं। इसीलिए परिजन लोग शव के समीप आग रखते हैं, दीप जलाते हैं और शव को अकेला भी नहीं छोड़ते।

पति-पत्नी के सम्भोग के समय में भी कभी-कदा मौका पाकर उनके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और रति का आनन्द लेती हैं। ऐसा भी होता है कि उस समय गर्भ में भी चली जाती हैं। मगर माता-पिता के संस्कार एवं कर्म से तारतम्य न होने के कारण गर्भस्थ शिशु के शरीर के साथ बाहर निकल आती हैं। इसी अवस्था को गर्भपात कहते हैं। गर्भपात का प्राय: यही कारण होता है।

वास्तव में प्रेतों का जीवन अत्यन्त कष्टमय जीवन है। पार्थिव शरीर के अभाव में वासना वेग के कारण असीम यातना सहनी पड़ती हैं, उन्हें। यही 'नर्क' है। प्रेत लोक अन्धकारमय है। 'न' यानि नहीं। 'अर्क' अर्थात् सूर्य। जहाँ सूर्य अथवा उसका प्रकाश नहीं है--वहीं 'नर्क' है। जैसे चन्द्रमा पर पन्द्रह दिन रात्रि और पन्द्रह दिन प्रकाश रहता है, उसी प्रकार वासनालोक यानि प्रेतलोक में साल में ३५० दिन अन्धकार रहता है और १५ दिन सूर्य का प्रकाश रहता है। उसी प्रकाशमय दिन को पितृ पक्ष कहते हैं, जो वास्तव में प्रेतात्माओं का सबेरा है।

देवताओं में भाव प्रधान हैं। पितरों में मंत्र प्रधान हैं। मनुष्यों में कर्म प्रधान है। उसी प्रकार प्रेतों में वासना की प्रधानता है। प्रेतात्माओं के नाम पर दी गई वस्तुएँ भौतिक दृष्टि से भले ही न मिलती हों; मगर अपने नाम से किसी व्यक्ति को वह वस्तु देने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं, यही उनकी तृप्ति है। यदि कोई व्यक्ति जीवन काल में मिठाई अधिक खाता रहा हो, मरने के बाद उसके सगे संबंधी उसके नाम पर मिठाई खिलाते हैं, तो उसकी प्रेतात्मा प्रसन्न होती है और वह खाने वाले व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर मिठाई के तत्वों और गुणों को जिनकी केवल अनुभूति मात्र की जा सकती है, ग्रहण कर लेती है। यही उसकी तृप्ति और सन्तोष है।

ऊपर प्रसंगवश ब्रह्मरन्ध्र की चर्चा की गई है। वह जहाँ एक ओर 'उपचेतन मन' का गुप्त केन्द्र है, वहीं उसका एक भाग परा मानसिक चेतना का भी रहस्यमय केन्द्र है।

प्रेतात्मा, सूक्ष्मात्मा और जीवात्मा को शरीर में प्रवेश करने का एक मात्र मार्ग ब्रह्मरन्ध्र ही है। इसके अलावा एक और मार्ग है, और वह है नाभि।

जिस किसी व्यक्ति से प्रेतात्माओं की वासना, भावना और इच्छा मिल गई; तुरन्त वे ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। इसी को प्रेत बाधा कहते हैं।

यदि किसी व्यक्ति का किसी प्रेतात्मा से पूर्व जन्म का संबंध है, तो प्रेतात्मा उसे देखते ही अपनी अच्छाई, बुराई का बदला लेने के लिए उसके शरीर में प्रवेश कर जाएगी। यह दूसरे प्रकार की प्रेत बाधा समझी जाती है।

रूप, सौन्दर्य, आदि को महत्व देने वाली प्रेतात्माएँ अथवा विलास पूर्ण जीवन यापन की हुई प्रेतात्माएँ, जहाँ जिस स्त्री या पुरुष में अपने अनुरूप, रूप, सौन्दर्य और विलासिता देखती हैं उस स्त्री या पुरुष के शरीर में प्रवेश कर उन सबका उपभोग करने लग जाता है। यह तीसरे प्रकार की प्रेत बाधा है।

जीवन काल में जिस स्त्री या पुरुष से सर्वाधिक सहानुभूति, प्रेम, अपनत्व और सहायता मिलनी होती है प्रेतात्माएँ उसकी ओर बराबर आकर्षित रहती हैं। अदृश्य रूप से उसको सभी प्रकार की सहायता करती हैं। कभी-कभी उसके शरीर में प्रवेश कर अपनी किसी वासना की पूर्ति भी करती है। यह चौथे प्रकार की बाधा है।

इसी प्रकार जीवन काल में जिस स्त्री या पुरुष से कपट, तकलीफ, यातना, यंत्रणा और मानसिक क्लेश मिला होता है और मिला होता है धोखा। प्रेतात्माएँ उससे बदला लेना कभी नहीं भूलती। यह पाँचवें प्रकार प्रेत बाधा है।

प्रेतात्माएँ सबसे पहले उपचेतन मन पर आक्रमण करती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति की आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन 'मन' की स्थिति विचित्र हो जाती है। व्यक्ति हमेशा अपने आप में खोया हुआ और डूबा हुआ सा रहता है। वह क्या बोल रहा है? क्या कर रहा है? क्या सोच विचार कर रहा है? इन सबका उसे जरा सा भी खयाल नहीं रहता। उसकी अर्ध चेतन स्थिति रहती है। मति, गति भी अर्ध विक्षिप्तों जैसी रहती है, उस व्यक्ति की। उसे नींद बहुत कम आती है। यदि कभी कदा नींद आ भी गई, तो बड़े भयंकर स्वप्न देखता है। मोटा ताजा काले रंग का आदमी, आग, पानी, खून, कीचड़ आदि का अधिकतर सपने दिखलाई पड़ते हैं। बार-बार रोमांच का होना, अँधेरे में डर लगना, एकान्त में अधिक रहना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, उँगलियों के नखों का पीला पड़ जाना, आत्म-हत्या करने का प्रयास करना आदि लक्षण भी इसी अवस्था के अन्तर्गत हैं।

प्रेतात्माएँ जब उपचेतन मन से चेतन मन को प्रभावित करती हैं तो उस समय व्यक्ति की मानसिक यंत्रणा के साथ-साथ शारीरिक यंत्रणा भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब चेतन मन की सीमा को लाँघकर प्रेतात्माएँ व्यक्ति की आत्मा पर आक्रमण करती हैं, तो चेतन मन, अचेतन अवस्था में बदल जाता है। परामनोविज्ञान इसी को मन की जड़ावस्था या मूढ़ावस्था कहता है। इस प्रकार मन की अचेतन स्थिति में उपचेतन मन

अधिक सक्रिय और शक्तिशाली हो उठता है। मगर दूसरी ओर आत्मा प्रेतात्मा से प्रभावित होकर क्षीण होने लगती है, प्रेत बाधा की इस भयंकर अवस्था में व्यक्ति को जरा-सा भी ज्ञान नहीं रहता। बाह्य चेतना के अलावा उसकी बाह्य-प्रज्ञा भी लुप्त हो जाती है। किन्तु उपचेतन मन के सक्रिय रहने के फलस्वरूप उसके मुँह से चमत्कार पूर्ण भूत, भविष्य और वर्तमान काल से संबंधित बातें भी निकलती हैं। क्योंकि उसके लिए अन्तर्प्रज्ञा अथवा विराट चेतना का द्वार खुल जाता है। जितने प्रकार की प्रेत बाधाएँ हैं, उनमें यह प्रेत बाधा सर्वाधिक भयंकर होती है। इस बाधा में मृत्यु की सम्भावना बनी रहती है। आत्मा की शक्ति क्षीण होने पर प्रेतात्माएँ व्यक्ति को अपने समाज में मिला लेती हैं।

इस प्रकार व्यक्ति की आत्मा से संघर्ष करने वाली प्रेतात्माएँ अपनी वासना को पूरी करने के लिए चमत्कार पूर्ण बातें तो करती ही हैं, इसके अलावा लोगों को प्रभावित करने के लिए अपने आपको दुर्गा, काली, शीतला माई, सन्तोषी माई और हनुमान, भैरव, वीर आदि बतलाती हैं। जिसे साधारण लोग सत्य मानकर पूजा करते हैं, चढ़ावा भी चढ़ाते हैं और उसके बदले तरह-तरह की मनौतियाँ मानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं हमारे देश में इस प्रकार भ्रम के वशीभूत लाखों लोग हैं। इस सन्दर्भ में जान लेना चाहिए कि कभी किसी अवस्था में मनुष्य के शरीर में किसी भी प्रकार के देवी-देवता का प्रवेश असम्भव है। यदि प्रवेश करती हैं, तो केवल प्रेतात्माएँ। भले ही वे अपने को देवी कहें, भवानी कहें, या कहें देवता।

जो लोग प्रेत की साधना करते हैं, यदि अज्ञानतावश इस प्रकार की प्रेतात्मा को उन्होंने सिद्ध कर लिया, तो वह प्रेतात्मा साधक के ही शरीर में प्रवेश कर उपर्युक्त वातावरण तैयार कर देती है। इसी को 'आवेश' कहते हैं। प्रेत सिद्ध करने वाला व्यक्ति स्वयं इस भ्रम में पड़ जाता है कि उसके शरीर में कोई उच्च कोटि की दैवी शक्ति प्रविष्ट होकर आश्चर्य जनक और चमत्कारपूर्ण बातें करती है। लोग यही समझते हैं कि उस व्यक्ति पर दुर्गा, काली, भवानी, हनुमान, वीर, देवी आदि आकर मनौतियाँ मानने वाले अथवा पूजा बलि आदि देने वाले व्यक्तियों की मनोकामनाएँ पूरी करती हैं, जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। हाँ! एक बात अवश्य है कि इस प्रकार की छलनामयी प्रेतात्माओं के द्वारा लोगों का कुछ न कुछ और कभी न कभी कल्याण हो भी जाता है।

जिन दिनों मैं परामानसिक जगत के सिद्धान्तों के आधार पर प्रेत विद्या की इस प्रकार की तमाम सम्भावनाओं पर खोज कार्य कर रहा था, उसी समय मेरी भेंट आसाम के एक प्रेत सिद्ध तांत्रिक से हुई, नाम था मृणाल सेन। कुछ समय के लिए काशीवास करने आए हुए थे। मृणाल बाबू मान-सरोवर मुहल्ले के एक मकान में किराए पर रहते थे।

सेन बाबू को प्रेतात्माओं की मति-गति और क्रिया-कलापों का सिर्फ ज्ञान ही नहीं था बल्कि उन्होंने कई शक्तिशाली प्रेतात्माओं को भेड़ बकरी की तरह पाल भी रखा था।

जिस मकान में सेन बाबू रहते थे उसी में मेरे एक मित्र किराए पर रहते थे नाम था लक्खीराम। लक्खीराम ने एक दिन मुझे बतलाया कि रात के समय कभी कदा किसी युवती स्त्री की प्रेतात्मा सेन बाबू से मिलने के लिए आया करती है। सेन बाबू से मेरा परिचय लक्खीराम ने ही कराया था। एक दिन मैंने अपनी खोज एवं अनुसंधान के विषय की चर्चा करते हुए कहा कि जब तक क्रियात्मक रूप से इस दिशा में कुछ न किया जाएगा तब तक वास्तविकता से परिचित नहीं हुआ जा सकता। सिद्धान्त अपनी जगह है। मेरी बात सुनकर सेन बाबू ने एक बार मेरी ओर देखा फिर बोले--यही मेरा भी विचार है। तुम्हें रिसर्च के अलावा क्रियात्मक रूप से प्रेतात्माओं से सम्पर्क भी करना चाहिए। --यदि आप इस दिशा में मेरा मार्ग दर्शन करें तो मैं सहर्ष तैयार हूँ। मृणाल सेन ने तुरन्त स्वीकृति दे दी मुझे। प्रसन्न हो उठा मैं। प्रेतात्माओं की 'खोज' के संबंध में मैंने जो कल्पनाएँ की थीं वह साकार होती-सी प्रतीत हुईं।

उच्च कोटि की प्रेतात्माएँ एक विशेष सीमा तक प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को उद्‌घाटित कर सकने में समर्थ होती हैं। मृणाल सेन ने आगे बतलाया कि इसी उद्देश्य से सृष्टि के गूढ़ तत्वों से तथा साथ ही जीवन के रहस्यमय तथ्यों से परिचित होने के लिए तांत्रिक साधना के सभी सम्प्रदायों में किसी-न-किसी रूप में प्रेत साधना प्रचलित है। मगर प्रत्येक सम्प्रदाय के अपने अलग-अलग साधना नियम, पद्धति और विधियाँ हैं। और किस पद्धति और किस विधि से किस प्रकार की प्रेतात्माएँ अधिकार में आती हैं और उनसे कौन-सा काम लिया जा सकता है इन सब बातों का भी तंत्र साहित्य में पूरा विवरण मिलता है। किस प्रकार की प्रेतात्माओं से कौन-सा कार्य सम्भव है? यह पूछने पर सेन बाबू ने बतलाया कि शक्ति और सामर्थ्य के आधार पर प्रेतात्माओं को तीन कोटि में विभक्त किया जा सकता है। सात्विक वृत्ति की प्रेतात्माएँ उच्च कोटि की समझी जाती हैं। इनमें विपुल शक्ति और सामर्थ्य होता है। इनकी सहायता से धार्मिक, बौद्धिक कार्यों में मार्ग दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की प्रेतात्माएँ मानव के प्रति कल्याणकारी भावनाएँ रखती हैं। इन्हीं के द्वारा मानव जीवन के रहस्यों और सृष्टि अथवा प्रकृति के गूढ़ तत्वों को भी जाना समझा जा सकता है।

राजसी वृत्ति की प्रेतात्माएँ मध्यम कोटि की होती हैं। तांत्रिक लोग इनको सिद्धकर इनकी सहायता से मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, आकर्षण आदि कार्य करते हैं। तामसिक वृत्ति की प्रेतात्माएँ निम्न कोटि की समझी जाती हैं। निकृष्ट प्रकार के तांत्रिक लोग इस प्रकार की प्रेतात्माओं को अधिकार में कर चमत्कारपूर्ण कार्य करते हैं। जैसे हाथ को हवा में हिलाकर मिठाई, पान, इलाइची आदि मँगाना। प्रेतात्माएँ अदृश्य प्राणी हैं, मगर वे स्थूल और भौतिक वस्तुओं को इस प्रकार कैसे ले आती हैं? मेरे इस प्रश्न को सुनकर सेन महाशय एक बार हँसे फिर बोले--"वास्तव में प्रेतात्माएँ कहीं से कोई वस्तु ले नहीं आतीं। प्रेत सिद्ध व्यक्ति जिस वस्तु की कल्पना करेगा प्रेतात्माएँ मानस पटल पर

देख लेती हैं और फिर जहाँ, जिस स्थान पर वह वस्तु रहती है वहाँ जाकर देख आती हैं और तुरन्त अपने मनोबल और वासना वेग से उसकी भौतिक सृष्टि कर देती हैं, लेकिन उस वस्तु की सत्ता भौतिक दृष्टि से तभी तक रहती है जब तक प्रेतात्मा का मनोबल बना रहता है और वासना का संबंध उस वस्तु से जुड़ा रहता है। देखने में यह कार्य अवश्य कौतूहलपूर्ण और आश्चर्य जनक लगता है मगर इससे कोई लाभ नहीं।'' लोगों को केवल आकर्षित करने के लिए अथवा अपने 'अहं' को तुष्ट करने के उद्देश्य से तांत्रिक लोग यह खेल दिखाते हैं।

ऐसे तांत्रिक लोगों के प्रति (जो व्यक्ति इस रहस्य को नहीं जानता) आकर्षित अपना तन, मन, धन सब कुछ गँवा बैठता है। बहुत से ऐसे भी तांत्रिक होते हैं जो किए रहते हैं इस प्रकार को प्रेत सिद्धि, और वे ही इस प्रकार का चमत्कार करती हैं। ऐसे महापुरुष लोग मदारी की तरह तमाशा दिखाने के सिवाय किसी भी प्रकार की न सहायता कर सकते हैं और न तो किसी प्रकार का कल्याण ही कर सकते हैं।

मृतात्माओं से सम्पर्क

वास्तव में मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, बल्कि जीवन का प्रारम्भ है। जैसे दिन भर के परिश्रम के बाद नींद आवश्यक है उसी प्रकार जीवन भर के श्रम और भाग-दौड़ के बाद मृत्यु आवश्यक है। मृत्यु जीवन भर की थकान के बाद हमें विश्राम और शान्ति देती है, जिसके फलस्वरूप हम पुनः तरोताजा होकर नया जीवन शुरू करते हैं।

मेरी नजर में मृत्यु का अर्थ है गहरी नींद, जिससे जागने पर हम नया जीवन, नया वातावरण और नया परिवार पाते हैं। फिर हमारी नई यात्रा शुरू होती है। इस प्रसंग में यह भी जान लेना जरूरी है कि स्वर्ग-नर्क केवल कल्पना मात्र हैं। शास्त्रों में इनकी कल्पना इसलिए की गई है कि लोग पाप से बचें और सद्कार्य की ओर प्रवृत्त हों। नर्क का भय उन्हें दुष्कर्म से बचाएगा और स्वर्ग सुख की लालसा उन्हें सद्कार्य अथवा पुण्य की ओर प्रेरित करेगी। जो कुछ भी है, वह हमारे विचार हैं, हमारी भावनाएँ हैं। उन्हीं के अनुसार मरणोपरान्त हमारे लिए वातावरण तैयार होता है।

मृत्यु एक मंगलकारी क्षण है। एक सुखद और आनन्दमय अनुभव है मगर हम उसे अपने संस्कार, वासना, लोभ आदि के कारण दारुण और कष्टमय बना देते हैं। इन्हीं सब का संस्कार हमारी आत्मा पर पड़ा रहता है, जिससे हम मृत्यु के अज्ञात भय से हमेशा त्रस्त रहते हैं।

मृत्यु के समय एक नीरव विस्फोट के साथ स्थूल शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरू हो जाता है और शरीर को जला देने या जमीन में गाड़ देने के बाद भी ये परमाणु वातावरण में बिखरे रहते हैं। परन्तु इनमें फिर से उसी आकृति में एकत्र होने की तीव्र प्रवृति रहती है। साथ ही इनमें मनुष्य की अतृप्त भोग-वासनाओं की लालसा भी बनी

रहती है। इसी को प्रेतात्मा कहते हैं। प्रेतात्मा का शरीर वासनामय आकाशीय होता है। मृत्यु के बाद और प्रेतात्मा के पूर्व की अवस्था को 'मृतात्मा' कहते हैं। मृतात्मा और प्रेतात्मा में बस थोड़ा-सा ही अन्तर है। वासना और कामना अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की होती हैं। स्थूल शरीर को छोड़कर जितने भी शरीर हैं सब भोग-शरीर हैं। मृतात्माओं के भी शरीर भोग-शरीर हैं। वे अपनी वासनाओं-कामनाओं की पूर्ति के लिए जीवित व्यक्तियों का सहारा लेती हैं मगर उन्हीं व्यक्तियों का, जिनका हृदय दुर्बल है अथवा जिनके विचार, भाव, संस्कार और वासनाएँ उनसे मिलती-जुलती हैं।

मृतात्माओं का शरीर आकाशीय होने के कारण उनकी गति प्रकाश की गति के समान होती है। वे एक क्षण में हजारों मील की दूरी तय कर लेती हैं। अपने आकर्षण-केन्द्र की ओर वे तुरन्त दौड़ पड़ती हैं।

जीवित व्यक्तियों के शरीर में मृतात्माएँ और प्रेतात्माएँ कैसे प्रवेश करती हैं इस पर मैंने काफी गहराई से खोज की। मृतात्माओं और प्रेतात्माओं में मैंने जो किंचित अन्तर बताया है वह यह है कि मृतात्माएँ अपने संस्कार और अपनी वासनाओं को जिस व्यक्ति में पाती हैं उसी के माध्यम से उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर अपनी कामना-पूर्ति कर लिया करती हैं। उदाहरण के लिए--जैसे किसी व्यक्ति को पढ़ने-लिखने का शौक अधिक है। वह उसका संस्कार बन गया है। पढ़ना-लिखना उसकी 'वासना' कहलाएगी। जब कभी वह अपने संस्कार अथवा अपनी वासना के अनुसार पढ़ने लिखने बैठेगा, उस समय कोई मृतात्मा जिसकी वही वासना रही है, तुरन्त उस व्यक्ति की ओर आकर्षित होगी और वासना एवं संस्कार के ही माध्यम से उसके शरीर में प्रवेश कर अपनी वासना की पूर्ति कर लेगी। दूसरी ओर उस व्यक्ति की हालत यह होगी कि वह उस समय का पढ़ा-लिखा भूल जाएगा। किसी भी प्रकार का उसमें संस्कार न बन पाएगा।

इसी प्रकार अन्य वासना, कामना और संस्कार के विषय में भी समझना चाहिए। हमारी जिस वासना को मृतात्माएँ भोगती हैं, उसका परिणाम हमारे लिए कुछ भी नहीं होता। इसके विपरीत कुछ समय के लिए उस वासना के प्रति हमारे मन में अरुचि पैदा हो जाती है। इस संबंध में प्रेतात्माओं के अपने अलग ढंग हैं। वे जिस व्यक्ति को अपनी वासना, कामना अथवा अपने संस्कार के अनुरूप देखती हैं तुरन्त सूक्ष्मतम प्राण वायु यानी 'ईथर' के माध्यम से उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और अपनी वासना को तृप्त करने लग जाती हैं--इसी को 'प्रेत बाधा' कहते हैं। ऐसे व्यक्ति की बाह्य-चेतना को प्रेतात्माएँ लुप्त कर उसके अन्तर्चेतना को प्रभावित कर अपनी इच्छानुसार उस व्यक्ति से काम करवाती हैं। उनके कार्य, विचार, भाव आदि उसी व्यक्ति जैसे होते हैं जिस पर वह 'हावी' होती हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं, इस विषय में पाश्चात्य देशों में अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। परामनोविज्ञान के हजारों केन्द्र खुल चुके हैं। वास्तव में यह अत्यन्त गहन और जटिल विषय है। जिसकी विवेचना थोड़े से शब्दों में नहीं हो सकती।

अच्छे संस्कार और अच्छी वासना वाली मृतात्माएँ और प्रेतात्माएँ तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर रहती हैं मगर जो कुत्सित भावनाओं, वासनाओं और बुरे संस्कारों की होती हैं वे गुरुत्वाकर्षण के भीतर मानवीय वातावरण में ही चक्कर लगाया करती हैं।

इन दोनों प्रकार की आत्माओं को कब और किस अवसर पर मानवीय शरीर मिलेगा और वे कब संसार में लौटेंगी इस संबंध में कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता।

मगर यह बात सच है कि संसार के प्रति आकर्षण और मनुष्य से सम्पर्क स्थापित करने की लालसा उनमें बराबर बनी रहती है। वे बराबर ऐसे लोगों की खोज में रहती हैं जिनसे उनकी वासना या संस्कार मिलते-जुलते हों। चालीस वर्ष के दीर्घ काल में, मेरा जितनी मृतात्माओं से सम्पर्क हुआ है उनकी सूची काफी लम्बी है। अन्तिम रूप से मैंने यही निष्कर्ष निकाला है कि जो व्यक्ति जिस अवस्था में जिस प्रकृति या स्वभाव का होता है, उसकी मृतात्मा या प्रेतात्मा भी उसी स्वभाव की होती है।

मैंने अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की मृतात्माओं और प्रेतात्माओं से सम्पर्क स्थापित कर उनकी मति-गति का पता लगाया है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि सभी प्रकार की आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने, उनकी मति-गति का पता लगाने और उनसे लौकिक सहायता प्राप्त करने के लिए तंत्र-शास्त्र में कुल सोलह प्रकार की क्रियाएँ अथवा साधनाएँ हैं। वैसे पश्चिम के देशों में इसके लिए 'प्लान चेट' का आविष्कार हुआ है। मगर वह साधन, पूर्ण सफल नहीं है। उसमें धोखा है। जिस मृतात्मा को बुलाने के लिए प्रयोग किया जाता है वह स्वयं न आकर, उसके स्थान पर उसकी नकल करती हुई आस-पास भटकने वाली मामूली किस्म की आत्माएँ आ जाती हैं। मृतात्मा यदि बुरे विचारों, भावों और संस्कारों, की हुई तो उनके लिए किसी भी साधन-पद्धति का प्रयोग करते समय मन के एकाग्रता की कम ही आवश्यकता पड़ती है, मगर जो ऊँचे संस्कार भाव-विचार और सद्वासना की आत्माएँ हैं, उनको आकर्षित करने के लिए अत्यधिक मन की एकाग्रता और विचारों की स्थिरता की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि एकमात्र 'मन' ही ऐसी शक्ति है, जिससे आकर्षित होकर सभी प्रकार की आत्माएँ स्थूल, लौकिक अथवा पार्थिव जगत में प्रकट हो सकती हैं। सर्वप्रथम यौगिक क्रियाओं द्वारा अपने मन को एकाग्र और शक्तिशाली बनाना पड़ता है। जब इसमें भरपूर सफलता मिल जाती है तो तांत्रिक-पद्धति के आधार पर उनसे सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की जाती है। भिन्न-भिन्न आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने की भिन्न-भिन्न तांत्रिक पद्धति हैं। जैसा कि मैं ऊपर बतला चुका हूँ आत्मा के चार मुख्य भेद हैं। पहले आत्मा को ही लीजिए। क्या है वह?

विश्व-ब्रह्माण्ड में क्रियाशील और सर्वव्यापक परम-तत्व जिसे आप परमात्मा कह सकते हैं, उसका एक लघु अंश है आत्मा। उसके भीतर एक चेतन तत्व है जिसे

'मन' कहते हैं। जब वह चेतन--तत्व अर्थात् मन, जड़ तत्व से सम्पर्क में आता है तो उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है। तब हम 'आत्मा' को 'जीवात्मा' कहने लग जाते हैं। इस विश्व-ब्रह्माण्ड में एक और 'तत्व' क्रियाशील है जिससे 'गति' उत्पन्न होती है, वह तत्व है--प्राण तत्व। जीवात्मा भौतिक जगत में प्रवेश करने के पहले प्राण तत्व का आवरण धारण करती है। इसी आवरण को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म यानी प्रेतयोनि से मुक्त होने के बाद मृतात्मा सूक्ष्म शरीर धारण कर अन्तरिक्ष की गहराई में चली जाती है और स्थूल जगत में पुन: आने के लिए स्थूल शरीर की प्रतीक्षा करती है। मैं अपनी इस कथा में केवल मृतात्माओं से सम्पर्क की ही चर्चा करूँगा और उससे संबंधित एक ऐसी अविश्‍वसनीय और रोमांचकारी घटना का उल्लेख करूँगा जिससे 'भारतीय आत्मविद्या' के तिमिराच्छन्न और रहस्यमय पक्ष पर प्रकाश पड़ेगा। मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के दो मुख्य तरीके हैं। पहला है किसी एकान्त स्थान या कमरे के शान्त एकान्त वातावरण में आधी रात के समय एक तेल का दीप जला कर एकाग्रमन से किसी तांत्रिक मंत्र का जप करना। दूसरा तरीका है किसी व्यक्ति को माध्यम बनाकर उसके शरीर से मृतात्माओं से मंत्र-बल से सम्पर्क स्थापित करना। मैंने शुरू-शुरू में पहला तरीका ही अपनाया।

उस समय मेरी उम्र करीब २५ वर्ष की रही होगी। युवावस्था में सभी सुनहले सपने देखते हैं और सभी किसी से प्रेम करने के लिए लालायित रहते हैं। मैंने भी श्यामली को लेकर सपना देखा था। उससे मैं प्रेम करता था और वह भी मुझे दिल से चाहती थे। हम दोनों शीघ्र शादी कर लेना चाहते थे। श्यामली को एक युवक गजानन पहले से ही चाहता था, मगर श्यामली उसकी कुछ बुरी आदतों के कारण उससे घृणा करती थी। जब मेरे प्रेम-प्रसंग के बारे में उसे मालूम हुआ और यह भी मालूम हुआ कि श्यामली मुझसे शादी करना चाहती है तो गजानन एकबारगी भड़क उठा। मुझसे तो कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी, मगर श्यामली को उसने कई बार धमकाया। श्यामली पर धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक दिन तो गजानन ने श्यामली को जान से मार डालने की भी धमकी दे डाली। इस पर भी श्यामली विचलित नहीं हुई।

उन्हीं दिनों मुझे एक जरूरी काम से कलकत्ता जाना पड़ गया। जब लौटकर आया तो मालूम हुआ कि श्यामली की हत्या कर दी गई थी। मुझे गहरा आघात लगा। मेरा सारा अस्तित्व असीम दु:ख और पीड़ा के सागर में डूब गया। सारे सपने टूट गए और मेरे सामने गहरा अन्धकार छा गया।

श्यामली का कत्ल निश्चय ही गजानन ने किया था इसमें जरा भी सन्देह नहीं था। मगर कोई चश्मदीद गवाह न होने और कोई पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण वह साफ बच निकला। जब कभी मेरे सामने वह आता तो एक अनजानी-सी हूक मेरे मन में उठती। मगर मैं कर ही क्या सकता था? एक साल का समय बीत गया। श्यामली की दी हुई

पीले-पुखराज की अँगूठी मेरी उँगली में पड़ी थी। जब कभी गौर से उसकी ओर देखता तो ऐसा लगता कि श्यामली मुझे छोड़कर कहीं नहीं गई है। किसी अदृश्य शक्ति के जरिए उसका संबंध मुझसे अज्ञात रूप से बराबर बना हुआ है। तभी मेरे मन में उसकी मृतात्मा से सम्पर्क स्थापित करने की प्रेरणा जागृत हुई। उन दिनों मैं बनारस के नगवा मुहल्ले के एक मकान में अकेला रहता था।

जाड़े की पूर्णमासी की रात थी। एक लम्बे-चौड़े कमरे को मैंने साफ किया और जब आधी रात हुई तो चमेली के तेल का दीपक जलाया और उसके सामने बैठकर एकाग्र व स्थिर मन से मंत्र का जप करने लगा। गंगा की तरफ वाली खिड़की खुली थी। रुपहली चाँदनी छनकर कमरे के भीतर आ रही थी। रात का दो बजा होगा। चारों ओर सन्नाटा, कहीं किसी के चेतन होने का कोई संकेत नहीं। ऐसी हालत में चाँदनी के सहारे एक छाया को कमरे में प्रवेश करते हुए मैंने देखा। पहले तो वह घने कुहरे जैसी लगी, मगर बाद में धीरे-धीरे वह बर्फ जैसी ठोस और पारदर्शक हो गई। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तभी वह पारदर्शक छाया बिल्कुल सजीव, साकार सुन्दर युवती के रूप में बदल गयी। उसने पलटकर पीछे की ओर देखा। मैं भी अब उसको बिल्कुल साफ देख रहा था चमकता हुआ साँवला चेहरा। वक्ष के नुकीलेपन से होड़ लेती हुई नाक और सम्मोहक आँखें। एक विचित्र-सी बेचैनी से मन-प्राण जकड़ गया। एक बार उसका मौन सम्मोहक निमन्त्रण स्वीकार कर लूँ, ऐसा भाव मन में आया, मगर दूसरे क्षण मैंने अपने को सँभाल लिया। लाल होंठों पर बिखरी मुस्कराहट शायद मेरे इरादे को भाँप गई थीं। कुछ ऐसा लगा कि सम्मोहक आँखें सहम-सी गयी हैं, पर उनमें अस्वीकृति का कोई संकेत नहीं उभरा था और भय की भी कोई छाया नहीं उभरी थी। साँसों की गति पर चढ़ते-उतरते उरोज, सम्मोहक आँखें बार-बार दिल को भेंदकर निकल जाने वाली मुस्कराहट, क्षण--प्रतिक्षण मेरी उत्तेजना को बढ़ा रहे थे। रह-रहकर माथा झन्ना उठता था।

सहसा मेरी निगाह उँगली में पहनी पुखराज जड़ी अँगूठी पर टिक गई। कुछ क्षणों के लिए मेरा ध्यान उस युवती की ओर से हटकर कल्पना में डूब गया। अँगूठी पहनाने के बाद मेरी बाँह से टिके हुए उस मासूम चेहरे ने मुझसे कहा था--'जब कभी भी अकेले रहोगे तो यह अँगूठी तुम्हें मेरी याद दिला देगी। तनहाइयों में यह अँगूठी तुम्हें मेरे प्यार का वास्ता देती रहेगी।' अँगूठी में जड़े पुखराज सी वे बड़ी-बड़ी निश्छल आँखें मुझे उसी अन्दाज से देख रही थीं। वासना और भावना का एक अपूर्व-सा अन्तर्द्वन्द्व मेरे मानस में छिड़ गया था।

दीपक के मन्द प्रकाश में मैंने देखा--वह युवती स्थिर नजरों से मेरी ओर निहार रही थी।

एकाएक मेरी कल्पना टूट गई। अचकचाकर पूछ बैठा--'कौन हो तुम?'

उत्तर में एक मधुर अट्टाहास मेरे कानों से टकराया। वह अट्टाहास श्यामली का नहीं बल्कि किसी और का था।

श्यामली के जगह यह कौन युवती आ गयी? किसकी है यह मृतात्मा? मैं सोचने लगा। तभी उस युवती ने फुसफुसाहट के स्वर में किंचित हँसते हुए कहा--'मैं मालकिन हूँ। इस मकान की मालकिन। मेरा नाम शोभा है।'

'शोभा!'--मेरे मुँह से निकल पड़ा और उसी के साथ तीन साल पहले घटी एक घटना मेरे मानस पटल पर उभर आई। मकान मालिक मेरे एक मित्र थे, उनकी ही पत्नी का नाम था--शोभा। उसे मैंने देखा तो नहीं था मगर उसके रूप और सौन्दर्य के बारे में बहुत कुछ सुना था। शादी के कुछ ही दिनों बाद मालूम हुआ कि शोभा ने आत्महत्या कर ली है। आत्महत्या का कारण क्या था यह अन्त तक मालूम न हो सका।

'तुमने आत्महत्या क्यों की थी?' मैंने कारण जानने के उद्देश्य से पूछा।

'आत्महत्या?.....' शोभा की मृतात्मा ने कहा--'मैंने आत्महत्या कहाँ की थी? मेरी तो हत्या की गई थी।'

'किसने तुम्हारी हत्या की थी?'

'तुम्हारे मित्र ने!'

'क्यों?'

'उनको मुझ पर शक हो गया था।' इतना कहकर वह एकबारगी सिसकने लगी। फिर थोड़ी देर बाद उसी अवस्था में आगे कहने लगी--'गजानन को तो आप जानते ही हैं!'

'हाँ खूब जानता हूँ।'

'वह मुझसे शादी करना चाहता था। मगर मेरे माता-पिता तैयार नहीं हुए। उन्होंने मेरी शादी आपके मित्र के साथ कर दी। गजानन बौखला गया। चारों ओर वह मुझे बदनाम करने लगा। उस पापी ने आपके मित्र को बतलाया कि तुम्हारी पत्नी के साथ मेरा शारीरिक संबंध रह चुका है, वह मुझसे प्रेम करती थी और शादी करने के लिए भी तैयार थी। मैंने आपके मित्र को काफी समझाया, मगर उनको मेरी किसी भी बात पर विश्वास नहीं हुआ। गजानन ने मेरी जिन्दगी नर्क बना दी थी, मगर अब मैं उसे नहीं छोडूँगी आपने मुझे जगा दिया है। आपकी तांत्रिक-शक्ति ने मुझे चैतन्य कर दिया है। अब मैं गजानन से बदला ले लूँगी। उस बदमाश को छोडूँगी नहीं।'

दूसरे ही दिन मुझे समाचार मिला कि गजानन अपने कमरे में मृत पाया गया है। प्रत्यक्षदर्शियों ने बतलाया कि कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द था। उसे तोड़कर लोग जब भीतर घुसे तो देखा कि वह बिस्तर पर औंधा पड़ा था और मुँह से काफी खून निकल कर बिस्तर पर फैला हुआ था। गजानन की मृत्यु सभी के लिए रहस्यमयी बनी रह गई। भीतर से दरवाजा बन्द था। कमरे में न कोई दूसरा दरवाजा था और न तो कोई खिड़की ही थी इसलिए किसी के द्वारा गजानन की हत्या किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। अतः पुलिस ने आत्महत्या मान कर अपनी जाँच खत्म कर दी।

मैंने श्यामली की मृतात्मा से सम्पर्क करना चाहा था, मगर हो गया शोभा से। सोचा अच्छा ही हुआ, एक रहस्य तो खुला और यह भी एक नई बात मालूम हुई कि मृतात्माएँ किसी-न-किसी तरह अपना बदला लेकर ही छोड़ती हैं। मगर भौतिक दृष्टि से लोगों को उसका कार्य-कारण संबंध अन्त तक समझ में नहीं आता।

उसके बाद मैंने कई बार तांत्रिक प्रयोग के बल पर श्यामली की मृतात्मा से सम्पर्क करना चाहा मगर बराबर असफल रहा। कारण समझ में नहीं आया। श्यामली से सम्पर्क होने के बजाय आस-पास भटकती, अतृप्त आत्माओं से सम्पर्क हो जाता।

आखिर एक रात इसका रहस्य खुला। हमेशा की तरह तेल का दीपक जलाकर मैं आधी रात में मंत्र-जाप कर रहा था। रात की गहराई के साथ-साथ निस्तब्धता भी घनीभूत होती जा रही थी। सहसा एक बिजली-सा झटका लगा। उसी के साथ मैंने देखा--सामने एक युवती खड़ी थी। मैं तुरन्त पहचान गया। वह श्यामली थी। वह मेरे करीब आना चाहती थी, पर जब भी इसके लिए प्रयास करती तो मेरे उसके बीच कुहरा जैसा एक पर्दा आ जाता।

श्यामली ने मुझे बतलाया कि जब भी मैंने उससे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया बार-बार उसे यहाँ आने के लिए कोई अदृश्य शक्ति रोक लिया करती थी। इसके बाद उसने जो रहस्यमयी कथा सुनाई वह निश्चय ही पारलौकिक दृष्टि से मेरे लिए काफी महत्वपूर्ण थी।

गजानन ने ही उसकी हत्या की थी, इसमें कोई शक न था। काफी देर तक श्यामली को अपने मरने का एहसास नहीं हुआ था। जब उसकी अन्तर्चेतना जागृत हुई उस समय हरिश्चन्द्र घाट पर उसकी लाश आधी से ज्यादा जल चुकी थी। वह मेरे पास भी पहुँची और मुझसे बात करने की भी काफी कोशिश की, मगर कर न सकी। उसको सब कुछ सपना जैसा लग रहा था। उसी स्थिति में वह न जाने कितने दिनों तक पृथ्वी के वातावरण में भटकती रही। कोई अदृश्य-शक्ति उसे बराबर इधर-उधर ढकेलती रहती। तभी उसकी नजर एक औरत पर पड़ी। उसने अनुभव किया कि उसकी वासना, भावना और संस्कार उस औरत से काफी मिलती-जुलती है। एकाएक उस अदृश्य शक्ति के वशीभूत होकर वह उस औरत के शरीर में प्रवेश कर गई और उसी के साथ उसकी अन्तर्चेतना भी लुप्त हो गई। जब वह वापस लौटी तो उसने अपने आपको शरीर के बंधन में पाया। वह औरत श्यामली की माँ थी और श्यामली उसकी लड़की।

अन्त में श्यामली ने बतलाया कि इस समय पलंग पर वह अपनी माँ के बगल में सोई है। उसके शरीर में केवल सूक्ष्मतम प्राण स्पन्दन कर रहा है। बाहरी तौर पर एक प्रकार से वह मर चुकी है। अगर मैंने उसे शीघ्र मुक्त नहीं किया तो हो सकता है उसकी आत्मा से शरीर का सम्पर्क टूट जाएगा।

मैंने तुरन्त श्यामली की आत्मा को मंत्र-शक्ति के बंधन से मुक्त कर दिया।

श्यामली के सम्पर्क से अपनी खोज की दिशा में मुझे दो नई बातें मालूम हुई। पहली यह कि मृतात्मा की यदि अन्तर्चेतना किसी कारणवश सुप्त है तो उससे किसी भी प्रकार सम्पर्क नहीं हो सकता। दूसरी यह कि यदि मृतात्मा ने कहीं जन्म ले लिया है तो कुछ समय तक अन्तर्चेतना के कारण पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है। यदि समय की अवधि बढ़ गई तो उसी स्मृति के आधार पर बालक या बालिकाएँ पूर्वजन्म की बातें बतलाने लगते है। जीवन में अन्तर्चेतना का ही महत्व है। कोई भी शक्ति, जो मृतात्माओं से सम्पर्क स्थापित करने का आधार है, तभी सक्रिय होती है, जबकि अन्तर्चेतना जागृत रहती है।

इसी सन्दर्भ में अपने खोज-काल के प्रारम्भिक दिनों की एक विचित्र और रोमांचक घटना और सुना देना चाहता हूँ। मैंने दूसरी विधि के अनुसार अपने एक मित्र के लड़के राघव को माध्यम बनाया और उस पर अपने दादा जी की आत्मा के आवाहन का प्रयास किया। उनकी मृत्यु एक साल के अन्दर ही हुई थी। वे साधक पुरुष थे। उनका जीवन सात्विक और त्यागमय था। चार घंटे के अथक प्रयत्न के बाद उनकी आत्मा आई। मैंने वास्तविकता को समझने के लिए तुरन्त प्रश्न किया--'आपकी मृत्यु कब, किस दिन हुई थी?'

आत्मा ने सही-सही उत्तर दिया।

'आपकी सत्ता इस समय कहाँ है?' मैंने पुन: प्रश्न किया।

'पृथ्वी से बहुत दूर अन्तरिक्ष में। इसीलिए आने में इतना समय लगा है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण हमारे लिए बाधक है। इससे भी अधिक कठिन है मनुष्य से सम्पर्क स्थापित करना' दादाजी की आत्मा ने बतलाया।

''मृत्यु के तुरन्त बात क्या आप मानव-अस्तित्व से संबंध भंग कर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल गए थे?''

'नहीं! कुछ समय तक मृत्यु के बाद प्राप्त नए जीवन और नए वातावरण को समझने का मैंने प्रयास किया और अपनी चिता के जलने तक यहाँ रहा, फिर गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकल गया।'

'क्या आपको अपने परिवार के सदस्यों का स्मरण होता है?'

'क्यों नहीं, मगर उन्हीं सदस्यों के विषय में अधिक सोचता हूँ, जिनका मुझसे जीवन काल में सर्वाधिक आत्मीय संबंध था।'

'क्या आप मुझे कोई सन्देश देना चाहते हैं?'

'हाँ। भविष्य से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें बतला देता हूँ। तुम्हारी कल्याणकारी प्रवृत्ति, उपकार, करुणा और दया की भावना ही तुम्हारे नाश का कारण बनेगी। परिवार में तुम्हारा अपना कोई न होगा। सभी तुम्हारे प्रति स्वार्थी होंगे। तुम्हारी मानसिक और वैचारिक उच्चता को साधारण लोग नहीं समझ सकेंगे। नारी के प्रति सदा तुम्हारे हृदय में स्नेह, प्रेम और अपनत्व की भावना रहेगी मगर बार-बार तुमको उससे धोखा मिलेगा। सन् १९७० से १९८० के बीच का समय तुम्हारे लिए मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक संक्रांति काल सिद्ध होगा। १९७० के प्रारम्भ में तुम्हारे जीवन में आने वाली एक स्त्री इस संक्रान्ति काल का मुख्य कारण बनेगी। तुम उस स्त्री के जघन्य अपराधों और भयंकर पापों को धोने का काफी प्रयास करोगे और उसके कलुषित जीवन में अध्यात्म का संचार करने का भी प्रयास करोगे मगर इसका परिणाम उल्टा ही होगा। समझ लो एक चोर को साधु नहीं बनाया जा सकता, पर एक साधु को बड़ी सरलता से चोर अवश्य बनाया जा सकता है।'

इतना कहकर एकाएक दादाजी की आत्मा गायब हो गई। मगर दूसरे ही क्षण मेरे मित्र के लड़के राघव का सारा शरीर बुरी तरह काँपने लगा। जैसे मिर्गी का उसे दौरा पड़ गया हो। चेहरा काला पड़ गया। आँखें लाल हो उठीं। मैंने तांत्रिक क्रिया बन्द कर दी। उसका कोई कुपरिणाम नहीं हो सकता था। मैं एकटक राघव की ओर देखने लगा।

अचानक खयाल आया कि सम्भव है राघव की 'आत्मा' दादाजी की आत्मा की शक्ति से विचलित हो गई हो और उसी का यह परिणाम हो।

मगर नहीं। मेरा यह विचार भ्रमात्मक था। एकाएक राघव चीख पड़ा और उसी के साथ भयंकर अट्टाहास करते हुए बोला--'जानते नहीं कि मैं कौन हूँ?'

राघव के चीखने व अट्टाहास करने और बोलने के ढंग से मैं समझ गया कि उस पर कोई तपोमयी दुष्ट आत्मा आ गई है।

'कौन हो तुम?' मैंने पूछा।

'मैं डाकू मानसिंह हूँ !'

यह सुनकर मैं घबरा गया। हाथ से छूटकर माला गिर पड़ी। किसी प्रकार अपने को सँभाला और फिर शान्त स्वर में बोला--'मैंने तो आपको बुलाया नहीं था फिर कैसे आ गए आप?'

'मैं रामनगर की रामलीला देखने रोजाना इधर से गुजरता हूँ। मुझे यहाँ का वातावरण अच्छा लगा। थोड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। इस लड़के की आत्मा सोई हुई मिली, इसकी अन्तर्चेतना भी लुप्त मिली, बस मैं आ गया।'

'आपकी क्या इच्छा है? क्या चाहिए आपको?'

'काफी दिनों का भूखा हूँ। खाना खिला सकते हो?'

'क्या खाएँगे आप?'

'मुर्गे का गोश्त और शराब चाहिए मुझे।'

अभी मानसिंह का वाक्य पूरा ही हुआ था कि उसी के साथ झनझना कर सौ रुपए के सिक्के जमीन पर मेरे चारों तरफ गिर पड़े। कहाँ और किधर से आए वे रुपए, मैं तत्काल समझ न सका।

तभी कड़कड़ाती हुई आवाज गूँजी 'ये रुपए मेरे हैं। आपको मुर्गा और शराब लाने के लिए दिए हैं।'

हे भगवान! कहाँ फँस गया मैं। तुरन्त अपने एक साथी को रात ग्यारह बजे मुर्गे का गोश्त और शराब की बोतल लाने को कहा। मैं जान गया कि बिना खाए-पीए मानसिंह की आत्मा पिण्ड न छोड़ेगी।

सामने शराब की भरी बोतलें और गोश्त की प्लेट मैंने रख दी। राघव के द्वारा डाकू मानसिंह की आत्मा ने सिर्फ दस मिनट के अन्दर शराब की बोतलें खाली कर दीं और प्लेट का सारा गोश्त खत्म कर दिया।

मैं भौंचक्का-सा देखता रहा। फिर बोला--'अब तो आप जाएँगे न!'

'हाँ, अब मैं जाऊँगा, मगर सुनो! तुमने मेरी सहायता की है, इसके बदले तुम मुझसे क्या चाहते हो?'

मैंने मन में सोचा, एक भयंकर डाकू की दुष्ट आत्मा से मुझे भला कौन-सी सहायता मिलेगी? मैंने विनम्र स्वर में कहा--'बस, आपकी मेहरबानी चाहिए।'

मेरी बात सुनकर डाकू मानसिंह की आत्मा एकबारगी खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर सहज स्वर में बोली 'तुम मुझसे भले ही डर के कारण कुछ न माँगो, मगर मैं तुम्हारी ऐन मौकों पर बराबर मदद किया करूँगा। अच्छा, अब मैं चलता हूँ।'

मानसिंह की आत्मा के अन्तिम शब्दों के साथ ही राघव सहज हो उठा। वह आँखें फाड़कर अँधेरे कमरे में चारों ओर देखने लगा।

'राघव! तुमको कैसा लग रहा है इस समय?'--मैंने पूछा।

'बस ऐसा लगता है कि गहरी नींद से मैं अचानक जाग पड़ा।'

कहानी तो खत्म हो गई यहाँ। मगर अन्त में दो बातें मैं बतला देना जरूरी समझता हूँ। पहली यह कि दादाजी की आत्मा ने जो भविष्यवाणियाँ की थीं, वे बिल्कुल

सही उतरीं, और दूसरी यह कि डाकू मानसिंह की आत्मा ने अदृश्य रूप से कई विषम और जटिल मौकों पर मेरी आर्थिक सहायता की। आज भी उसकी आत्मा रामनगर की रामलीला देखने आती है या नहीं यह तो मैं नहीं बतला सकता, मगर यह जरूर कहूँगा कि वह विलक्षण था।

●

और अब अन्त में

एक प्रकार से मेरी इस पुस्तक की यात्रा समाप्त हो जाती है, लेकिन मेरे अन्वेषण की, चिन्तनमनन की और अनुभव की यात्रा यहाँ अभी समाप्त नहीं हुई है। तिमिराच्छन्न पारलौकिक जगत के रहस्यमय मार्ग का पाथिक आज भी हूँ मैं। कभी कदा उस मार्ग पर भटकती हुई भिन्न भिन्न संस्कारों और भिन्न भिन्न विचारों की देहहीन परलोक गत आत्माओं से भेंट हो जाती है, परिचय हो जाता है, और हो जाती है घनिष्ठता और फिर उनकी शुरू हो जाती है मरणोपरान्त की अनुभव कथा। जिसकी सहायता से मुझे उपलब्ध होती है अपने अन्वेषण के लिये सर्वथा एक नई दिशा और प्राप्त होता है सर्वथा एक नया आयाम और तब उनका आश्रय लेकर लिखने बैठ जाता हूँ पारलौकिक जगत और उनको उपलब्ध आत्माओं पर सर्वथा नई पुस्तक। यह सिलसिला कब तक चलेगा यह कहा नहीं जा सकता ।

समाप्त

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

परलोक विज्ञान
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
मारण पात्र (योग-तन्त्र विषय)
कुण्डलिनी शक्ति (योग-तन्त्र विषय)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
तीसरा नेत्र (१-२ भाग)
मृतात्माओं से सम्पर्क
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली-११०००७
दूरभाष : २३८५६३९१

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष . २४२०४०४

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : २३३५२६३; २३३३४३१